तेरापंथ-दिग्दर्शन

लेखक

मुनि श्री नगराजजी

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१ ।

प्राक्कथन

जैन-धर्म, दर्शन व इतिहास के अधिकारी विद्वान् डाक्टर हर्मन जैकोबी ने भारतवर्ष से अपने देश जर्मनी की ओर विदा होते हुए एक भाषण में कहा था—"मेरी यह भारत-यात्रा अप्रत्याशित सफल रही है और वह इसलिए कि इस बार मैंने राजस्थान में जाकर तेरापंथ के रूप में भगवान् महावीर के साधु-समुदाय को देखा है। मैं अपने आगमिक अध्ययन के आधार से यह विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि इस पंथ की आडम्बर-शून्य व अहिंसा-प्रधान संयम-साधना वही है जो आज से अढ़ाई हजार वर्ष पहले भगवान् श्री महावीर के श्रमण-संघ में थी।"

"तेरापंथ-दिग्दर्शन" इसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय की परिचय-पुस्तिका है। आज के जन-जीवन की व्यस्तता को समझते हुए अति संक्षेप की शैली में यह लिखी गई है। फिर भी सूक्ष्म शब्द-विन्यास के होते हुए भी जिज्ञासाशील व्यक्ति तेरापंथ का सर्वाङ्गीण दर्शन एक साथ पा सकें—यह मेरा अभिप्रेत रहा है। इस अभिप्रेत को निभाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नहीं कह सकता।

धर्म से अधिक मानव मन का पड़ोसी एक भी दूसरा शब्द रहा हो, ऐसा नहीं लगता। यह वह शब्द है, जिस पर मनुष्य अपने आपको सदा न्योछावर किए रहा है। पर इसके साथ-साथ यह भी इतना ही सत्य है कि मनुष्य ने धर्म को शाब्दिक रूप से अपनाया और क्रियान्वित रूप से उसे ठुकराया। जहाँ धर्म ने कहा—'आयतुले पयासु, अर्थात् अपनी आत्मा के समान समस्त प्राणियों को समझो, वहाँ उसने धर्म के नाम पर वैर, विरोध, घृणा, द्वेष आदि को अपनाया। धर्म ने जहाँ कहा—'मा गृधः कस्यचिद् धनम् अर्थात् दूसरे

के धन में आसक्त मत बनो, 'वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते—धन से मनुष्य को त्राण नहीं मिलता' वहाँ मनुष्य ने अपने इष्ट पदार्थों में धन को ही प्राथमिकता दी। वह शोषक और संग्राहक बना। त्याग-मूलक धर्म के नाम पर भी उसने सोना-चाँदी और हीरे-मोतियों का ढेर लगाया। जहाँ धर्म ने कहा—एकैव मानुषी जातिः—मनुष्य की जाति एक है, वहाँ मनुष्य ने धर्म के नाम पर ही मनुष्य जाति को सदा परस्पर विरोधी खण्डों में देखा। अपने ही जैसे हाथ और पैर वाले मनुष्यों को अस्पृश्य कह कर दुत्कारा। पानी और हवा की तरह सर्वसुलभ धर्म को अपनी बपौती की धरोहर मान कर ऐंठा।

तेरापंथ प्रवर्त्तक आचार्य श्रीभिक्षुगणी ने इन्हीं सब धर्म-विरोधी आचरणों से खिन्न होकर एक युग-धर्म के रूप में तेरापंथ का प्रवर्त्तन किया। वे अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल रहे, यह प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित तेरापंथ की गतिविधि व नियमोपनियम से स्वयं प्रकट होगा।

अगले वर्ष तेरापंथ के दो सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। नवम अधि-नायक आचार्य श्रीतुलसी के नायकत्व में विराट् समारोह आयोजित होने जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इसी उपलक्ष में लिखी गई है। आचार्य श्रीभिक्षु व तेरापंथ-शासन के प्रति यह लघुकाय साहित्य-श्रद्धांजलि अर्पित कर मैं अपने आपको कृतकृत्य मानता हूँ।

सं० २०१६ वैशाख शुक्ला सप्तमी,
कलकत्ता

मुनि नगराज

प्रकाशकीय

विक्रम सम्वत् २०१७ आाषाढ़ पूर्णिमा को तेरापंथ अपने दो सौ वर्ष पूरे कर रहा है। युग-निर्माता आचार्य श्री तुलसी जैसे आचार्यो के शासनकाल में ऐसे प्रसंग का उपस्थित होना एक असाधारण महत्व रखता है। ऐसे प्रसंगों पर ही तेरापंथ की अप्रतिम संयम-साधना, अविचल संगठन-शक्ति, आचार्य श्री भिक्षु का अपूर्व अहिंसा-चिन्तन, और तर्क-प्रधान दर्शन विश्व-विश्रुत हो सकता है। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा विस्तृत रूप से तेरापंथ द्विशताब्दि समारोह आयोजित कर रही है। इस अवधि तक निर्धारित आगम-साहित्य, भिक्षु-साहित्य, तेरापंथ-इतिहास और तेरापंथ-दर्शन, आदि ग्रन्थ प्रकाशित किए जा सकें, ऐसा निश्चय भी महासभा ने किया है। इस अवसर के लिए एक ऐसी पुस्तक भी अपेक्षित थी जो संक्षेप में तेरापंथ का समग्र परिचय दे सके और जो सुगमता से देश और विदेश में विद्वानों तक पहुँचाई जा सके। मुनि श्री नगराज जी द्वारा लिखित यह "तेरापंथ-दिग्दर्शन" पुस्तक हमारी प्रस्तुत अपेक्षा की पूरक है। मुनि श्री हिन्दी के अभ्यस्त लेखक हैं। इससे पूर्व आप दशों पुस्तकें विभिन्न विषयों पर लिख चुके हैं।

द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष में यह प्रथम प्रकाशन प्रस्तुत करते हुए हमें परम हर्ष है।

ज्येष्ठ-शुक्ला सप्तमी,
२०१६
कलकत्ता–१

मोहन लाल बाँठिया
मन्त्री
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

अनुक्रम

जैन-धर्म : प्रागऐतिहासिक

भारतवर्ष सदा से ऋषि-महर्षियों, श्रमण-निर्ग्रन्थों की तपोभूमि रहा है। उनकी ज्ञानाराधना और चरित्र-साधना से भारतीय जन-मानस आध्यात्मिक उर्वरता पाता रहा है। उनकी तप.पूत वाणी ही आगम, वेद, उपनिषद् और त्रिपिटको के रूप मे प्रस्फुटित होकर भारतीय-संस्कृति का मौलिक आधार वनी है। जैन-धर्म आगम आधार से अनादि अनन्त है। कालचक्र के उत्कर्ष और अपकर्ष के सूचक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक अध्याय युग्म मे अडतालीस तीर्थंकर होते है। यही क्रम इस भरत खंड मे चलता रहा है और चलता रहेगा। इस अवसर्पिणी पक्ष के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथ (आदिनाथ) और चौवीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर थे। इतिहास भी इस दिशा मे वहुत स्पष्ट होता जा रहा है। महावीर तो इतिहास के जाज्वल्यमान नक्षत्र है ही और अव तेईसवे तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ भी ऐतिहासिक पुरुषो की गणना मे आने लगे है। इससे भी पहले इतिहास की पहुँच तक जैन धर्म भारतवर्ष मे वर्तमान मिलता है। पुरातत्व-गवेपणाओ से व अन्य पुष्ट आधारो से यह भलीभाँति प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म प्रागऐतिहासिक है। वेद, पुराण आदि से भी अनेक तीर्थंकरों व जैन धर्म के अस्तित्व का पता चलता है। वैदिक परम्परा मे भी आदिनाथ प्रभु अवतारों की कोटि मे गिने गये है। भगवान् महावीर के युग में जैन धर्म का पुन प्रवर्तन हुआ और यही आलोक आज अढाई हजार वर्षो के पश्चात् भी एक ज्योतिपुज के रूप मे मानव-जाति को नि श्रेयस् की ओर अग्रसर होने के लिये मार्ग दर्शन दे रहा है।

तेरापंथ

भगवान् महावीर के बाद जैन-धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर शाखाओं तथा प्रशाखाओं में विभक्त होता चला गया। काल-प्रवाह से शिथिल होते हुए जैन धर्म मे समय-समय पर सुधार व क्रान्तियाँ आती रही है। विक्रम सवत् १८१७ मे साध्वाचार को शुद्ध और सुदृढ़ बनाने के लिए व अहिंसा, दया, दान आदि को रूढ़िगत व्याख्याओं के कठघरे से निकाल कर उन्हे यथार्थ स्वरूप मे उपस्थित करने के लिए जो एक व्यापक उत्क्रान्ति हुई, उसीका परिणाम तेरापंथ है।

आचार्य श्री भिक्षुगणी

तेरापंथ के प्रवर्त्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी थे। उनका जन्म राजस्थान के कंटालिया ग्राम मे विक्रम संवत् १७८३ मे हुआ था। आपने संवत् १८१७ में तेरापंथ का प्रवर्तन किया और संवत् १८६० में आपका स्वर्गवास हुआ। आप एक असाधारण पुरुष थे। आपका जीवन आदि से अन्त तक संघर्षो की घुमड़ती घटाओं में ही बीता। असीम शास्त्र-ज्ञान और अनुपम मेधा आपके जीवन के सहज गुण थे। आप एक महाप्राण युग-पुरुष थे। आप अबाध गति से सत्य की राह पर श्रेयोभिमुख होकर बढ़ते ही चले। उनकी अथक तपस्या का परिपाक ही तेरापथ है, जिसमें आज १९९ वर्ष बाद नवम अधिनायक आचार्य श्रीतुलसी के नेतृत्व में ६५२ साधु-साध्वी देश के कोने-कोने में अणुव्रत आन्दोलन के रूप में नैतिक नव-जागरण की अलख जगा रहे हैं।

नामकरण

तेरापंथ का नामकरण सर्वप्रथम सर्वसाधारण की वाणी में प्रस्फुटित हुआ। आचार्य श्री भिक्षुगणी इस आध्यात्मिक क्रांति के

शुभारम्भ मे अपने साथी साधुओ के सहित १३ की संख्या मे थे। राजस्थान के लोगो ने इस नवोदित धर्म-परम्परा को तेरा (तेरह) पथ कहना शुरू किया। राजस्थानी भाषा मे तेरह को तेरा कहा जाता है। इस प्रचलित लोक-संज्ञा को आचार्य श्री भिक्षुगणी ने दो अध्यात्म मूलक अर्थो से अनुप्राणित कर उसे सदा के लिए स्वीकार किया। उन्होने कहा—हे प्रभो ! यह तेरा पथ अर्थात् हे भगवन् ! यह तुम्हारा ही पथ (रास्ता) है। दूसरा अर्थ उन्होने यह लगाया कि पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति—इन तेरह साध्वाचारके नियमो का पालन करने वालों का मत तेरापथ है।

प्राणवान् संघ-संस्थान

तेरापथ संघ व्यवस्था के अनुसार समस्त सघ मे सर्वाधिकार सम्पन्न एक आचार्य होते हैं। वे व्यवस्था विशेष की दृष्टि से साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों (दलो) का निर्माण करते हैं। एक दल मे एक प्रमुख होता है और अन्य उसके सहचारी। इस प्रकार सारा संघ छोटी-छोटी इकाइयों में वँट जाता है। आचार्य उन अग्रगण्यों को पृथक्-पृथक् प्रान्तो, नगरो, और गाँवों मे जाकर जन-कल्याणकारी प्रेरणाये देने का निर्देश करते है। आचार्य का निर्देश सर्वोपरि और सर्वमान्य होता है। पृथक्-पृथक् वर्गो मे अग्रगण्य का आदेश उनके सभी सहवर्तियो को मान्य होता है। विनय और अनुशासनशीलता के संस्कार सघ मे परम्परागत व्यवस्था से स्वत बनते है। विनय, अनुशासनशीलता आदि प्रशिक्षण के भी मुख्य अंग होते हैं। यही कारण है कि आदेश-पालन पराधीनता का अग न रह कर जीवन का सहज गुण वन गया है। इस सुदृढ सघ-व्यवस्था का परिणाम यह होता है कि सघ के समस्त साधु-साध्वियो की शक्ति का उपयोग जन कल्याण की किसी एक ही दिशा मे सहजतया हो जाता है। पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय नही वढते और न फिर सजातीय सम्प्रदायो

में होनेवाले घृणा, वैमनस्य, प्रतिद्वंद्विता आदि के लिये भी कोई अव-काश रह जाता है। वर्तमान आचार्य अपने उत्तरवर्ती आचार्य को नियुक्त करते हैं।

मर्यादा-महोत्सव

मर्यादा-महोत्सव संघ-व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। इस व्यवस्था के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् साधु-साध्वीजन आचार्य द्वारा निर्णीत स्थान की ओर पाद-विहार करते है। सैकड़ों और सहस्रों मीलो का विहार करते हुए वे सब आचार्य के पास पहुँचने लगते है। माघ शुक्ला सप्तमी को इस समारोह की सम्पन्नता होती है। लगभग ५०० व ६०० साधु-साध्वियों के बीच आचार्य, आचार्य श्री भिक्षुगणी द्वारा विरचित मर्यादाओ का वाचन करते है। सहस्रो दर्शनार्थी देश के कोने-कोने से पहुँच जाते है। माघ शुक्ला सप्तमी के दिन तेरापंथ सविधान की पूर्णता हुई थी। इसलिए तेरा-पंथ के चतुर्थ अधिनायक श्रीमज्जयाचार्य ने मर्यादा-महोत्सव के नाम से इस समारोह की प्रवृत्ति संघ मे डाली। दो व ढाई मास का साधु-समागम सारे सघ मे एक नयी स्फूर्ति और चेतना ला देता है। साधु-जन विगत वर्ष का कार्य-विवरण आचार्य के सम्मुख उपस्थित करते है और आचार्य साधु-साध्वियो के चातुर्मास एवं आगामी वर्ष का कार्यक्रम निर्धारित करते है। सगठन और आचार की दृढता के लिए मर्यादा-महोत्सव एक निरुपम उपक्रम है। भगवान् बुद्ध ने एक बार अपने श्रमण-संघ के बारे मे कहा था—भिक्षुओ, यह श्रमण-सघ तब तक अबाध गति से चलता रहेगा, जब तक समस्त भिक्षु पुनः-पुनः एकत्रित होते रहेंगे और अपने आचार-धर्म पर विचार करते रहेंगे। एकमत होकर जमा होंगे और एकमत होकर उठेंगे। मर्यादा-महोत्सव सचमुच ही इस उक्ति को चरितार्थ करता है।

इस समारोह काल मे साधुओ की परस्पर होने वाली सिद्धान्त-चर्चा व चिन्तन-मनन बौद्ध धर्म को जीवन-प्रदान करने वाली संगीतियों की याद दिला देती है। आचार्य का वात्सल्य और साधु-साध्वियों का भक्ति-प्रकार किसी भी विचारक को लुभाए बिना नही रहता। साधु-जनो का पारस्परिक सौजन्य एवं विनयपूर्ण व्यवहार एक समुन्नत सस्कृति का परिचय देता है।

संघ मे और भी अनेक समारोह मनाए जाते है। भाद्र शुक्ला त्रयोदशी को प्रतिवर्ष भिक्षु चरमोत्सव मनाया जाता है। तेरापथ-प्रवर्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी का स्वर्गवास इसी तिथि को हुआ था। इसीलिए उस दिन आचार्य श्री भिक्षु के जीवन की विशेषताओ पर चतुर्विध संघ व आचार्य प्रकाश डालते है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष एक पट्टोत्सव समारोह मनाया जाता है। संघ के वर्तमान आचार्य जिस तिथि को आचार्य-पद पर आरूढ़ होते है, उसी तिथि को साधु-साध्वी-जन व अन्य गृहस्थ वक्ता अपनी भावना भरी कविताओ, गीतिकाओं से उनका वर्धापन करते है।

अणुव्रत आन्दोलन के सम्बन्ध से भी अहिंसा-दिवस, मैत्री-दिवस आदि देश-व्यापी समारोह मनाए जाते है। आचार्यश्री के तत्वावधान मे अणुव्रत आन्दोलन का वार्षिक अधिवेशन भी सम्पन्न होता है, जिसमे विभिन्न प्रान्तो व विभिन्न धर्मो के लोग एकत्रित होकर आचार्यश्री से नैतिक प्रेरणाएँ लेते है।

आचार-संहिता

अहिंसा : अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच महाव्रत कहलाते है। इन पाँच महाव्रतों का पालन प्रत्येक साधु और साध्वी के लिए अनिवार्य होता है। अहिंसा महाव्रत मे वे सूक्ष्म जीवों की हिंसा से भी बचते है। जैन धर्म की मान्यता के अनुसार

६ प्रकार के जीव होते ह—पृथ्वीकायिक, अप्पकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। पृथ्वीकायिक अहिसा के लिए वे छोटे-से-छोटे प्रस्तर का भी भेद नही करते। सद्य: निष्कासित मिट्टी आदि का उपयोग नही करते और न उसका स्पर्श ही करते है। अपक्व नमक भी अपने उपयोग मे नही लाते है। अप्पकायिक अहिसा के लिए उबला हुआ जल पीते है या किसी पदार्थ विशेष के सम्मिश्रण से निर्जीव हुए पानी को ग्रहण करते है। तेजस्कायिक अहिसा की दृष्टि से अग्नि मात्र का वे न स्पर्श करते है और न किसी प्रकार से उसे उपयोग में लाते है। वायुकायिक अहिसा की दृष्टि से वे अपने मुख पर मुखवस्त्रिका धारण किये रहते है क्योकि बोलते समय मुख से उत्पन्न होने वाले शब्द सयुक्त वायु के पूर्ण वेग से आकाशस्थ वायु के जीवो का हनन जैन शास्त्रो में बताया गया है। मुखवस्त्रिका से वह वायु खण्डित हो जाता है और सभावित हिसा टल जाती है। इसीलिए वे ताली नही बजाते, पंखे आदि से हवा नही लेते। स्वाभाविक श्वासोच्छ्वास मे जैन शास्त्रो के अनुसार हिसा नही मानी गई है। इसलिए नाक आदि पर वस्त्र धारण किए रहने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। वन-स्पतिकायिक अहिसा की दृष्टि से बिना उबले फलो, सब्जियों आदि का वे न उपयोग करते है और न स्पर्श ही करते है। बीजादि रहित गिरी निर्जीव मानी जाती है। गेहूँ आदि अपक्व धान्य का वे स्पर्श नही करते है।

वे चीटी प्रमुख सूक्ष्म जन्तुओ की अहिसा के लिए एक रजो-हरण (ऊन का बना चँवर जैसा एक उपकरण विशेष) अपने पास रखते है। चलते समय दृष्टि परिमार्जन करके चलना उनका नियम होता है। अँधेरे में जहाँ दृष्टि-परिमार्जन नही हो सकता वहाँ वे रजोहरण से भूमि परिमार्जित करके ही चरण-विन्यास करते है। जहाँ चीटी आदि जन्तुओं की बहुलता होती है वहाँ भी उस रजोहरण से स्थान

परिमार्जन करते हैं। अहिंसा की इस कायिक साधना के साथ साथ मानसिक और वाचिक साधना का भी सूक्ष्म विवेक साधुचर्या मे अत्यन्त आवश्यक होता है। किसी व्यक्ति को गाली देना व उसके प्रति अपशब्दो का प्रयोग करना तो दूर रहा मन मे भी ईर्ष्या, द्वेप, घृणा आदि का उत्पन्न होना पाप माना जाता है। आत्मा के अमरत्व मे उन साधु-जनो का पूर्ण विश्वास होता है और अहिंसा उनका निरपवादिक व्रत। इसलिए वे जीवन के प्रति निर्मोह और निर्भय होकर चलते हैं। वे अहिंसा व्रत का पालन करते हुए किसी आक्रान्ता पर भी प्रतिप्रहार नही कर सकते हैं, चाहे वह मनुष्य हो या हिंस्र पशु विशेप। वे अपने बचाव के लिए कभी न्यायालय की शरण नही जाते। वे सदा "समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो." के उदार आदर्श को ही जीवन मे चरितार्थ करते हुए चलते हैं।

सत्य : सत्य के पालन में देश, काल आदि का वे कोई अपवाद नही मानते हैं। असत्य किसी भी परिस्थिति में आचरणीय नही होता। सत्य-पालन के साथ ही वे अहिंसा की सुरक्षा भी आवश्यक समझते हैं। यदि कोई शिकारी उनसे पूछे कि हिरण किधर से भागा है तो वे यह जानते हुए भी कि हिरण इधर गया है, न सत्य कहेंगे और न असत्य; मौन रहेंगे। वहाँ सत्य कहने में अहिंसा का खंडन है और असत्य कहने में सत्य का। इसलिये मौन ही उनका अनिवार्य आचार होता है।

अस्तेय : "दन्त सोहणमित्तंपि उग्गहंसि अजाइया" अर्थात् साधु अयाचित दंत शोधक तृण-शलाका भी ग्रहण न करे—यह जैन-शास्त्रों की उक्ति है। इसी को जीवन-व्यवहार में पूर्णत चरितार्थ करते हुए वे चलते हैं। वे जहाँ ठहरते हैं, मकान मालिक से स्वीकृति लेते हैं और जब वहाँ से प्रस्थान करते है तो वह मकान गृहपति को सँभला देते हैं।

ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य पालन उनका अनिवार्य धर्म है। इस सम्बन्ध में उनकी कुछ अन्य मर्यादाये भी है। कोई उपासिका साधु के चरण नही छू सकती, कोई उपासक साध्वी के चरण नहीं छू सकता। साधु के लिए स्त्री मात्र का स्पर्श वर्जित है और साध्वी के लिए पुरुष मात्र का। साधु किसी अकेली स्त्री से न बात करते है और न भिक्षा ही लेते है। ऐसे ही साध्वी किसी अकेले पुरुष से न बात करती है और न भिक्षा ही लेती है। उनके लिए मानसिक विकार भी वर्जित है और यदि आ जाए तो उसका प्रायश्चित्त करना होता है।

अपरिग्रह : रुपया-पैसा, नोट आदि किसी प्रकार का वे अर्थ-संग्रह नही करते और न वे अर्थ का कोई उपयोग ही करते है। तेरापंथी साधुओं के मठ, स्थल, स्थानक, उपाश्रय आदि निर्धारित स्थान नही होते। वे अपने उपयोग के लिए भवन आदि का निर्माण करना, करवाना और अपने लिए बनाए गए भवन आदि मे रहना आदि कार्यो में अहिसा और अपरिग्रह महाव्रत का भंग मानते है। प्रत्येक साधु के पास सीमित वस्त्र और सीमित काष्ठ आदि के पात्र होते है। आवश्यकताओ को कहाँ तक सीमित किया जा सकता है, इसके लिए उन साधुओं का जीवन एक उदाहरण है। स्वल्प-सी उपकरण सामग्री मे वे शीत, ग्रीष्म, और वर्षाकाल को आनन्दपूर्वक बिता देते है। वे सूर्यास्त से सूर्योदय पर्यन्त भोजन, पानी, औषधि आदि का कोई उपयोग नही करते, चाहे कैसी ही प्रतिकूल परिस्थिति क्यो न हो। वे गृहस्थ से कोई शारीरिक सेवा नही लेते और प्रत्येक कार्य अपने ही हाथो से करते है, चाहे वह काम सिलाई, धुलाई का हो या इंजेक्सन लगाने, ऑपरेशन करने या मोतियाबिंद उतारने आदि का हो। वे शौच के लिए शहर से बाहर मैदान मे जाते है। रुग्णावस्था में किसी साधु की हरिजनोचित सेवा को साधु ही करता है, कोई हरि-

जन नही। वे अपने बालों का लुंचन करते हैं और इसके लिए कैंची, उस्तरे आदि का उपयोग नही करते।

माधुकरी भिक्षा

जैन साधुओ की भिक्षा के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने कहा है—"जहा दुम्मस्स पुप्फेसु भमरो आवियई रसं" अर्थात् जैसे भ्रमर सुविकसित फूलो से थोड़ा-थोडा रस लेकर तृप्त रहता है, उसी प्रकार साधु वहुत सारे घरों से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर तृप्त रहे। जैन साधु के भिक्षा-ग्रहण मे अहिंसा का पूरा विवेक बरता जाता है। अपने लिए बना भोजन वे नही लेते। गृहस्थ अपने लिए बनाए गए भोजन से अपनी आवश्यकता को सीमित कर जो भोजन देता है वही उनके लिए ग्राह्य है। यही नियम वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि प्रत्येक ग्राह्य पदार्थो के लिए लागू होता है।

सिद्धान्त पक्ष

वैसे तो तेरापंथ का समग्र सिद्धान्त जैन आगमों को प्रमाण मानकर चलता है फिर भी आचार्य श्री भिक्षुगणी ने बहुत सारे विषयों मे जैन-शास्त्रो का ही एक गंभीर चिन्तन संसार के सामने रखा, जहाँ तक सामान्य लोक-चिन्तन सहसा नही पहुँच पाता। दया व अनुकम्पा के विषय मे उन्होने कहा; लोग कहा करते हैं, बचाओ, पर सर्वांग विशुद्ध और व्यापक सिद्धान्त 'मत मारो' का ही है। बचाओ की बात तो स्वयं ही उसमे अन्तर्हित हो जाती है। बचाओ के एकान्तिक उपदेश मे मारते रहो की बात भी परोक्ष रूप से स्वीकृत हो जाती है, क्योकि मारने की प्रवृत्ति न रहे तो बचाने का कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता।

तेरापंथ मानता है कि बचाने की ही बात कहनी है तो बधिक को पाप कर्म से बचाओ, यह कहना चाहिए। बधिक का हृदय बदल कर यदि उसे उस आत्महनन से बचा लिया जाता है तब बध्य तो स्वयं बच ही जाता है। जीव की हिंसा करने वाला तत्व दृष्टि मे अपना ही आत्महनन करता है। जहाॅ लोग रुपया-पैसा देकर बकरे आदि को कसाई से छुडवाते हैं वहाँ वे वास्तव में एक बकरे को बचा कर दो बकरों को मारने का प्रबन्ध कर देते हैं। हिंसा, प्रलोभन और बलात्कार के साथ शुद्ध अनुकम्पा नही ठहर सकती।

दान : पूर्ण संयमी पात्र को जो दान दिया जाता है, वही परम आध्यात्मिक दान है। एक ओर लोग नाना अनैतिक कर्मो से निम्न वर्ग का शोषण करते रहते हैं और दूसरी ओर उनकी सुख-सुविधा के लिए यत्किंचित् दान करते रहते हैं। इस प्रकार का दान आध्यात्मिक तो क्या सामाजिक भी माना जाए तो अज्ञान है। वह तो ठीक राजस्थान की इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली बात है।

एरण की चोरी करी दियो सुई को दान,
ऊँची चढ़कर देखण लागी कितोक दूर विमान।

अर्थात्—सुनार की पड़ोसिन ने अवसर पाकर उसका एरण चुरा लिया और उसे जब इस बात की चिंता हुई कि पाप से मुक्त होना है तो राह चलते किसी याचक को एक सूई का दान कर दिया और इसमें इतना हर्ष मनाया कि घर के ऊपर चढ़ कर आकाश की ओर झाँकने लगी कि मैंने जो दान-पुण्य किया है, उसके प्रभाव से स्वर्ग का विमान मुझे ले चलने के लिये आयेगा।

उक्त प्रकार के दान की परम्परा अनाध्यात्मिक ही नही, अपितु असामाजिक भी है। इससे समाज मे विषमता बने रहने का आश्वासन हो जाता है। दान करो, दान करो का एकान्तिक पक्ष शोषण करो की बात को भी परोक्ष रूप मे स्वीकार कर लेता है। तेरापथ

का मंतव्य है कि शोपण न करो, संग्रह न करो– यही बात परम आध्यात्मिक है और समाज-शास्त्र की रीढ है। शोपण व सग्रह समाज से मिटा तो याचक और दाता के रूप मे हीनता और उच्चता की होने वाली अनुभूतियाँ समाज से अपने आप मिट जाएँगी।

तेरापथ के अनुसार समाज सेवा आदि के कार्य जो आत्म-शुद्धि की अनवद्य प्रेरणा करते हैं, वे पारमार्थिक हैं। जो केवल शरीर सेवा तक ही रह जाते हैं, वे लौकिक कर्तव्य मात्र हैं।

तेरापंथ के अभिमतानुसार किसी भी धर्म, जाति व देश का व्यक्ति अहिंसा, क्षमा, सत्य, संतोप, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने से मोक्ष की ओर ही अग्रसर होता है।

तेरापथ मूर्तिपूजा मे विश्वास नही करता है। अरिहन्त, सिद्ध आदि परमेष्ठिपंचक की भाव-स्मृति और भाव-अर्चा ही वहाँ अभिमत है।

विद्या के क्षेत्र में

संघ मे शतप्रतिशत साधु साध्वियाँ शिक्षित हैं। एक भी निरक्षर नही है। अध्ययन-अध्यापन की संघ मे स्वतंत्र व्यवस्था है। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी शिक्षा-व्यवस्था की आधारभूत भाषाएँ हैं। गुजराती, बंगला, कन्नड़, तामिल, तेलगू आदि प्रादेशिक व अंग्रेजी, जर्मन आदि विदेशी भाषाओ को भी ऐच्छिक रूप से साधु-जन पढते हैं। संघ मे धर्म-दर्शन, व्याकरण, साहित्य आदि विपयों के अनेक अधिकारी विद्वान् है। वे समीक्षात्मक बुद्धि से साम्यवाद, समाजवाद, सर्वोदय आदि का भी अध्ययन करते हैं। संस्कृत भाषा के अभ्यासी ऐसे भी साधु संघ मे हैं, जिन्होने एक-एक दिन मे पाँच-पाँच सौ व सहस्र-सहस्र श्लोकों की रचना की है। अनेक आशु कवि है जो तत्काल दिए गए विपय पर श्लोकबद्ध भाषा में प्रशस्त विवेचन कर देते हैं

ग्रन्थ-प्रणयन की दिशा में भी साधु समाज ने बहुत बडा कार्य किया है। हिंदी, संस्कृत, प्राकृत आदि मे अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ आचार्य श्रीतुलसी व उनके मेधावी शिष्यों ने दर्शन, व्याकरण, काव्य आदि विषयों पर लिखे हैं।

लगभग सात वर्षो से आचार्य श्री तुलसी ने संघ में एक व्यवस्थित शिक्षा व परीक्षापद्धति का शुभारम्भ कर दिया है, जिसके अनुसार शिक्षार्थी साधु-साध्वीजन योग्य, योग्यतर व योग्यतम की परीक्षाएँ देते हैं। उन परीक्षाओं के लिए सात वर्ष का समय निर्धारित है। समग्र अध्ययन एक व्यापक दृष्टिकोण से चलता है। जहाँ वे जैन आगमो का अध्ययन करते हैं, वहाँ गीता, रामायण आदि ग्रन्थों का भी तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इतिहास, गणित, साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन आदि सभी आवश्यक विषय वे अपने पाठ्यक्रम के आधार से पढ़ते हैं। योग्यतम की परीक्षा तक वे सस्कृत व्याकरण में भिक्षु शब्दानुशासन के अष्टादश सहस्र श्लोक परिमाण वाली वृहद्वृत्ति पढ लेते हैं। न्याय के विषय में वे रत्नाकरावतारिका सहित प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार पढ़ लेते हैं। योग्यतम की परीक्षा के बाद किसी एक ही विषय पर अधिकार पूर्ण ग्रन्थ लिख कर वे 'कल्प' की परीक्षा देते हैं।

तेरापंथ की संघ-व्यवस्था के अनुसार नाम के साथ शिक्षा विषयक उपाधियों का प्रयोग नही होता है। परीक्षा का लक्ष्य किसी ज्ञान-विशेष की सीमा तक पहुँचना ही है। संघ के साधु-साध्वी जन विद्यालयो या विश्वविद्यालयों मे नही पढ़ते, न वे तत्सम्बन्धी परीक्षाएँ ही देते हैं। वेतन देकर या दिलवाकर भी वे किसी विद्वान् से नही पढते। उनके पढ़ने का क्रम संघ के आचार्य या विद्वान् साधुओं के सान्निध्य मे ही चलता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के विद्वानों व विशेषज्ञों से वे विद्यार्जन करते हैं जो अवैतनिक रूप से अपनी सेवाएँ उन्हे देना चाहते हैं।

तेरापंथ साधु-संघ की शिक्षा-व्यवस्था ने कंठस्थ करने की परम्परा

को जीवित और विकसित किया है। दश-दश और बीस-बीस हजार श्लोको को कंठस्थ करने वाले साधु-साध्वियाँ विद्यमान है। कुछ साधुजन तो इस दिशा मे और भी बहुत आगे बढ जाते है। कंठस्थ स्मृति-ज्ञान की यह परम्परा उस युग की याद दिलाने वाली है जब लेखन-कला का प्रचलन नही हुआ था। आगम, उपनिषद् और त्रिपिटक लोग कंठस्थ ही रखा करते थे।

अवधान विद्या : स्मृति और गणित से सम्बन्धित एक चामत्कारिक साधना अवधान विद्या है। अवधानकार श्रवणमात्र से संस्कृत के कठिनतम श्लोक, वृहत् अंक-संख्याएँ, ज्ञात या अज्ञात भाषाओं के वाक्य आदि अनेक बाते ज्यो-की-त्यों स्मरण रखते है। घन्टो मे हल होने वाले गणित के बहुत प्रकार के प्रश्नो का कुछ ही क्षणो में वे समाधान दे देते है। सघ के अनेक साधु-साध्वियों ने इस दिशा मे सफलता प्राप्त की है। विगत दो वर्षो मे विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अवधानकारों द्वारा जो अवधान प्रयोग हुए, उनमे सर्वसाधारण से लेकर देश के विद्वानो व विचारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति लोगों ने भी उक्त प्रकार के आयोजनों मे सक्रिय भाग लेकर मुक्त कठ से इस स्मृति-साधना की प्रशंसा की है।

कला

तप साधना के रुक्ष जीवन में साहित्य और कला का असाधारण विकास साहित्यकारो व कलाविदो को भी आश्चर्य में डाल देता है। लिपि-कौशल मे जो विकास तेरापथ के साधु-साध्वियो ने किया है, उसे निर्विवाद रूप से वेजोड मान लेना पड़ता है। सहस्रो पृष्ठ के ग्रन्थ आज भी हाथ से लिखे जाते है। उन ग्रन्थो का लिपि-सौन्दर्य और उनकी स्वच्छता व शुद्धता आदि विशेषताओ के सामने आज की अति

विकसित मुद्रण कला भी फीकी पड़ जाती है। मानसिक और कायिक एकाग्रता की इस निरुपम साधना को देख कर लोग विस्मित रह जाते हैं। सौन्दर्य, स्वच्छता आदि को सुरक्षित रखते हुए और चश्मा, आईग्लास आदि कृत्रिम साधनों का सहारा न लेते हुए भी कितना सूक्ष्म लिखा जा सकता है, इसका दूसरा उदाहरण सम्भवत: अन्यत्र देखने को नही मिलेगा। नौ इंच लम्बे और चार इंच चौडे पत्र के दो पृष्ठों में अढ़ाई हजार श्लोक लिखे गए हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उक्त परिमाण के पत्र मे उतनी सूक्ष्मता से गीता लिखी जाए तो उस एक ही पत्र में तीन सम्पूर्ण गीताएँ पूरी हो जाएँगी, फिर भी पत्र खाली रहेगा, क्योंकि गीता के समग्र श्लोक ७०० के लगभग ही है। उक्त समग्र पत्र मे लगभग ८०००० अक्षर हैं। इसी पत्र को देख कर प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि पश्चिम के देश कितनी ही तरक्की यान्त्रिक क्षमताओं मे कर गए हैं, पर हस्त-लेख की इस कला में वे कही के कही रह जाते हैं। लेख कलाकारों ने तरतमता से इस प्रकार अनेक पत्र लिख डाले हैं। सम्यक् साधना से मानसिक एकाग्रता और नेत्र ज्योति उत्कर्ष की किस सीमा तक पहुँच जाती है, यह इसी बात का प्रतीक है।

प्रश्न हो सकता है कि आज के मुद्रण-प्रधान युग मे इस प्रकार के सूक्ष्म और श्रमसाध्य लेखों का क्या उपयोग है। भले ही अन्य क्षेत्रों में मुद्रण-कला ने लेखन-कला की उपयोगिता को अस्वीकृत कर दिया हो, पर पाद-विहारी, विद्या-रसिक साधुओ के लिए उसकी उपयोगिता आज भी ज्यो-की-त्यों सुरक्षित है। हर ग्राम में पुस्त-कालय नही मिल सकता, जब कि दर्शन आदि विषयों के मौलिक ग्रंथ बड़े-बडे पुस्तकालयो मे भी सुलभ नही होते। संघ के विहरणशील साधुओ के लिए मात्र यही अवलम्बन रह जाता है कि वे आवश्यक ग्रन्थों को सूक्ष्मता से लिपिबद्ध कर अपने साथ लिए चले। ग्रन्थों का भार वहन कोई नौकर या वाहन विशेष तो जैन-आचार-सहिता

के अनुसार कर ही नही सकता, इसलिए ग्रन्थ जितने ही सूक्ष्म रूप मे लिखे होते हैं, उतने ही वे अधिक संख्या मे और सुविधा से रखे जा सकते हैं। अत: तेरा-पथ साधु संघ की कला केवल कला के लिए ही नही, अपितु उपयोगिता के लिए भी है।

चित्र-कला, सिलाई-कला, पात्र-निर्माण-कला आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनकी सरस अनुभूति दर्शक ही कर सकता है, पाठक नही।

अणुव्रत आन्दोलन

जब कि भारत स्वतत्र हुआ ही था और देश मे नव-निर्माण की लहर उठ रही थी, आचार्य श्री तुलसी ने दो दृष्टियों से अणुव्रत आन्दोलन का शुभारम्भ किया। एक व्यवस्थित और सुसगठित साधु सघ का देश और मानव जाति के लिए सार्वजनीन उपयोग हो जो नितान्त अपेक्षित है। दूसरा यह कि देश का नैतिक स्तर इस गति से निम्न स्तर पर आ रहा था और नैतिक मूल्य इस असाधारण रूप से विघटित होते जा रहे थे कि हर व्यक्ति और समुदाय का यह कर्तव्य हो गया था कि वह इस दिशा मे कुछ क्रियाशील होकर मानव समाज को नैतिक ऊर्ध्वसंचरण का योग दे। इन्ही आधारो से एक व्यवस्थित रूपरेखा के साथ अणुव्रत आन्दोलन देश के सामने आया। आन्दोलन के व्रत कोई अपूर्व नही थे, पर समग्र तेरापथ साधु संघ का कटिवद्ध होकर इस अनुष्ठान मे जुट जाना विलक्षण अवश्य था। उसी का परिणाम हुआ कि अणुव्रत आन्दोलन थोडे ही वर्षो में राष्ट्र के चरित्र-निर्माण का सर्वाधिक समृद्ध उपक्रम सिद्ध हो रहा है। देश के प्रमुख विचारको ने और उच्चतम अधिकारियो ने माना है कि "देश के भौतिक शरीर का निर्माण हमारी पचवर्षीय योजनाओ से हो रहा है और उसकी आत्मा का निर्माण अणुव्रत आन्दोलन से।"[1]

१—अखिल भारतीय कॉंग्रेस समिति के तात्कालीन अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेवर के भाषण से

अणुव्रत पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। सांसारिक व्यक्ति अपूर्णताओं से घिरा है। पूर्ण ब्रह्मचारी बन कर चले ऐसा सामर्थ्य उसमें कहाँ है, पर यह तो अपेक्षित है कि वह इस विषय मे मूलभूत सामाजिक मूल्यों का विघटन न करे, वह पर स्त्री-गमन और वेश्या-गमन न करे। वह इस दिशा में यथा संभव संयम वृद्धि करता रहे यही ब्रह्मचर्य अणुव्रत का हार्द है। इसी प्रकार अन्य अणुव्रतों को समझ लेना चाहिए। आन्दोलन की रूप-रेखा में मिलावट न करना, कूट माप-तौल न करना, रिश्वत न लेना आदि समग्र ४५ नियम हैं। उन्हें न्यूनाधिकता से ग्रहण करने वाले क्रमशः प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती, और विशिष्ट अणुव्रती कहलाते हैं। एक लाख से भी अधिक व्यक्ति इन व्रतों को शपथ रूप से अपना चुके हैं।

आन्दोलन के वर्गीय कार्यक्रम मे वर्ग सम्बन्धी निर्धारित नियम दिए जाते हैं। जैसे—विद्यार्थियो के लिए अवैधानिक तरीको से परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न न करना, तोड़-फोड़ मूलक हिंसात्मक प्रवृत्तियों मे भाग नही लेना आदि। व्यापारियों के लिए कूट माप-तौल नहीं करना, मिलावट नही करना आदि। राज कर्मचारियो के लिए रिश्वत नही लेना आदि। विभिन्न वर्गो के सहस्र-सहस्र लोगो ने इन नियमो को लेकर नैतिक जागृति की प्रेरणा पाई है।

आन्दोलन के और भी अनेक कार्यक्रम प्रस्फुटित हुए हैं और होते जा रहे हैं। कोई भी अच्छाई या बुराई अनुकूल वातावरण में ही पलती है। अणुव्रत आन्दोलन ने नैतिकता के पक्ष में एक व्यापक और चिरस्थायी वातावरण देश में प्रस्तुत कर दिया है। साहित्यकार, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता, राजनयिक नेता, अधिकारीगण आदि इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सक्रिय भाग ले रहे हैं। जनता इसे समय की खुराक मान कर पचाती जा रही है। यह प्रथम ही उदाहरण है कि किसी धर्म या सम्प्रदाय ने इतने व्यापक रूप से देश के

नैतिक जागरण के लिए सार्वजनिक रूप मे अपनी सेवाएँ प्रदान की हो और अपने साधु संघ की राष्ट्रमान्य उपयोगिता सिद्ध की हो।

साधु-दीक्षा

साधु-दीक्षा भी देश के सामने एक ज्वलन्त समस्या हो रही है। धर्म सघो के नियंत्रण शिथिल हो गए हैं। अनेकानेक सम्प्रदाय और एक-एक सम्प्रदाय मे अनेकानेक गुरु और फिर ऐसी स्थिति मे पारस्परिक स्पर्धाएँ न हो और उन स्पर्धाओ के संघर्ष मे अयोग्य दीक्षाओ की भरमार न हो, यह कैसे हो सकता है। प्रलोभन, भुलावा, बलप्रयोग आदि जघन्य प्रवृत्तियाँ दीक्षा जैसी पवित्र वस्तु के साथ जुड़ गई हैं। इसी का परिणाम है कि संसद् और विधान सभाओं मे आये दिन दीक्षा-प्रतिबन्धक बिल आते रहते हैं। तेरापंथ संघ का दीक्षा-शुद्धिकरण भी एक प्रमुख विषय रहा है। मनीषी आचार्यों ने दीक्षा सम्बन्धी असंयम को रोकने के लिए अनेक प्रकार की सुदृढ मर्यादाएँ स्थापित की है। दीक्षा का अधिकार संघ की मर्यादा के अनुसार केवल आचार्य को ही है। सभी दीक्षाएँ उन्ही के हाथो होती है या किसी विशेप परिस्थिति मे और किसी विशेप स्थान में उनके ही आदेश से होती है। वर्षो तक दीक्षार्थियों की साधनाएँ चलती रहती हैं। पूर्ण परिपक्वता देख कर ही आचार्य किसी भाई या बहन को साधु सघ मे दीक्षित करते हैं। दीक्षा से पूर्व अनिवार्यत. आवश्यक हो जाता है कि दीक्षार्थी व्यक्ति के पारिवारिक जन उसकी दीक्षा के लिए सहमत हो। माता, पिता, पति, पत्नी अपना लिखित अनुरोध आचार्य प्रवर को देते हैं। इस प्रकार अनवद्य विधि से होने वाली दीक्षाओ का परिणाम बहुत ही सुन्दर रहा और रहता है। समुचित दीक्षा के साथ सघ मे जाते ही समुचित शिक्षा का सुयोग भी हरएक साधु को मिल जाता है। उनकी वर्चस्व

जीवन-साधना, स्व-कल्याण और पर-कल्याण के लिए सफल सिद्ध होती है। लगभग २०० वर्षों के इतिहास में ९० प्रतिशत साधु कठोरतम जैन दीक्षा के आजीवन अनुष्ठान में सफल रहे हैं। यह सब तेरापंथ साधु सघ की सर्वांग सुन्दर दीक्षा-पद्धति का ही विशुद्ध परिणाम है।

तपश्चर्या

संघ के साधु-साध्वियों की तप. साधना भी प्राचीन तपोयुग की याद दिलाने वाली है। सघ में अनेकानेक साधु आजीवन एकान्तर तप से चल रहे हैं। वे एक दिन भोजन करते हैं और अगले दिन व्रत। यही क्रम सदा के लिए चलता रहता है। पाँच, सात और दस दिनो की तपस्या संघ मे साधारण ही मानी जाती है। पचास-पचास और इससे भी अधिक दिनो की तपस्या करने वाले साधु साध्वियाँ भी संघ में हैं। सघ में १०८ दिनों की तपश्चर्या पहले भी हो चुकी है। उक्त प्रकार की तपश्चर्या मे पानी के अतिरिक्त कुछ भी खाया-पिया नही जाता है। एक प्रकार की तपस्या वह होती है जिसमे उबली हुई छाछ का नितरा हुआ पानी ही पीया जाता है और कुछ भी खाया-पिया नही जाता। ऐसी तपस्याएँ छह-छह व नौ-नौ महीने तक की होती रही हैं। इसी वर्ष (वि० सं० २०१६) मे साध्वी श्रीपन्नाजी ने छह महीने को तपस्या की है व साध्वी श्रीभूराजी ने ३३६ दिन की तपस्या की हैं। एक-एक तपस्वी अपने जीवनकाल मे कितनी उग्र तपस्या कर लेते हैं इसका एक उदाहरण तपस्वी श्रीशिवजी स्वामी की तपस्या का विवरण है। ३५ वर्ष के साधु-जीवन में उन्होंने जो जलाधार व तक्रजलाधार तप किया वह इस प्रकार है.—

तपस्या		कितनी बार
१ दिन का उपवास	——	४२२ बार
२ दिनो का उपवास	——	२२ बार

तपस्या		कितनी बार
३ दिनों का उपवास	—	३४ बार
४ दिनों का उपवास	—	८ बार
५ दिनों का उपवास	—	११ बार
६ दिनो का उपवास	—	७ बार
७ दिनों का उपवास	—	३ बार
८ दिनो का उपवास	—	६ बार
९ दिनों का उपवास	—	३ बार
१० दिनों का उपवास	—	३ बार
११ दिनों का उपवास	—	३ बार
१२ दिनों क़ा उपवास	—	३ बार
१३ दिनो का उपवास	—	२ बार
१४ दिनो का उपवास	—	३ बार
१५ दिनो का उपवास	—	३ बार
१६ दिनों का उपवास	—	२ बार
३० दिनों का उपवास - एक महीना	—	१२ बार
३२ दिनों का उपवास	—	१ बार
३६ दिनों का उपवास	—	२ बार
४० दिनों का उपवास	—	१ बार
४५ दिनों का उपवास	—	९ बार
५० दिनों का उपवास	—	२ बार
५५ दिनों का उपवास	—	१ बार
६० दिनों का उपवास	—	५ बार
७८ दिनों का उपवास	—	१ बार
९० दिनों का उपवास	—	१ बार
१८६ दिनों का उपवास	—	१ बार

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के तप हैं, जो अनेकानेक साधु-

साध्वी-जन करते है। जिनमे लघुसिंहनिक्रीड़ित, रत्नावली, आयम्बिल वर्धमान, कर्मचूर, आदि तप उल्लेखनीय है।

वर्तमान में मुनिश्री सुखलालजी संघ में असाधारण तपस्वी है। वे बैसाख व जेठ की चिलचिलाती धूप में अत्युष्ण शिला पर लेट कर घन्टों तक आतप लेते हैं, स्वाध्याय करते है, जहाँ साधारण व्यक्ति का कुछ क्षणों के लिए भी ठहर सकना दुस्साध्य होता है। भोजन-त्याग की उग्र तपस्याएँ तो उनकी चलती ही रहती है। कभी-कभी सबको आश्चर्य में डाल देने वाली जल-त्याग की लम्बी तपस्या भी वे करते है। अभी-अभी वि० संवत् २०१६ की चैत्र पूर्णमासी को उनकी एक छह महीने की तपस्या पूरी हुई। इस तपस्या के बीच उनका यथोचित भोजन चालू था और पानी का पूर्ण परिहार था। राजस्थान जैसे उष्ण प्रदेश मे ऐसी तपस्या हो सकती है, यह सर्वसाधारण के समझ मे भी नही आ सकता है और न आयुर्वेदाचार्य व एम. बी., बी एस. डाक्टरो के ही। पर स्थिति यह है कि तपस्वी लोग अपने आपको इतना साध लेते है कि उन पर स्वास्थ्य के सामान्य नियम लागू ही नही होते। मुनि श्री सुखलालजी भी शिवजी स्वामी की तरह तीस-तीस, चालीस-चालीस और पचास-पचास दिनों की निराहार तपस्याएँ अनेकों बार कर चूके है, जिनमे केवल जल ही उनके जीवन का आधार था। आचार्य श्री तुलसी के निर्देशानुसार वे सरदार शहर राजस्थान में मान्य मन्त्रीमुनि श्रीमगनलालजी स्वामी के सान्निध्य मे रहते है।

तपस्विनी साध्वियों में साध्वी श्रीअणचाजी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होने लघुसिंहनिक्रीडित तप की चतुर्थ परिपाटी को भी पूर्ण कर डाला है, जिसका कि शताब्दियोके इतिहास मे कोई दूसरा उदाहरण नही मिलता। यह तप छह महीने व सात दिन का होता है। इसमे क्रमशः ६ तक तप को चढ़ाया जाता है और वापिस

एक तक उतारा जाता है। जैसे सर्वप्रथम मे एक दिन का व्रत, फिर दो दिन का व्रत, फिर एक दिन का व फिर तीन दिन का, फिर चार दिन का व फिर तीन दिन का व फिर पाँच दिन का। इसी क्रमसे हर एक तप को दो-दो बार चढाया जाता है और वहाँ से दो-दो बार करते हुए उतारा जाता है। बीच मे एक-एक दिन का भोजन (पारणा) चलता रहता है। इस तप की विशेष कठोरता तो इस बात मे है कि भोजन के दिन भी एक ही बार भोजन किया जाता है और वह भी एक ही प्रकार का धान्य; जैसे चने की रोटी खाई तो केवल चने की रूखी रोटी और गेहूँ की रोटी खाई तो केवल गेहूँ की रूखी रोटी। बहुत सारे तपस्वी इस परिपाटी को लाँघने का प्रयत्न करते है, पर बीच ही मे वे समाधि मरण प्राप्त कर लेते है। साध्वीश्री अणचांजी का यह तप आचार्यश्री तुलसी के निर्देशन मे चला और वह अपने लक्ष्य मे पूर्ण सफल हुई।

इस प्रकार सघ के साधु-साध्वियों के तप का लेखा-जोखा बहुत ही अनोखा है। शास्त्रों मे अनेकानेक उग्र तपस्वियो का वर्णन आता है, पर तेरापंथ सम्प्रदाय मे वैसे तपस्वी साक्षात् देखे जा सकते है। हो सकता है संघ के सर्वाङ्गीण अभ्युदय मे यह तपोबल ही एक प्रमुख कारण हो।

आचार्य परम्परा

लौहपुरुष श्रीभिक्षुगणी तेरापथ के प्रवर्त्तक और प्रथम आचार्य थे। आचार्यश्री तुलसी इस संघ के नवम आचार्य है। तेरापथ के इतिहास मे यह एक उल्लेखनीय बात रही है कि अब तक के लगभग दोसौ वर्षो की अवधि मे एक के बाद एक आचार्य उतने ही प्रभावशाली, देश-कालके ज्ञाता, विचारक और कर्मशील हो रहे है। यही कारण है कि संघर्षो और घटनाओं से संकुल दो

वर्षों की इस अवधि में समस्त संघ उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हो रहा है। इस अवधि में श्रीमज्जयाचार्य जैसे आचार्य संघ को मिले जो एक कुशल व्यवस्थापक, अप्रतिम शास्त्रज्ञ और जन्मसिद्ध कवि थे। उन्होंने व्यवस्था की दृष्टि से संघ को नाना मर्यादाओं और नाना व्यवस्थाओं के रूप में बहुत बड़ा अनुदान दिया है। राजस्थानी भाषा मे साढ़े तीन लाख पद्यों की नव्य रचनाएँ उन्होंने अपने जीवन काल में की है। कालूगणिराज जैसे आचार्य संघ को मिले जिनके पुण्य प्रसाद से साधु संघ अप्रत्याशित रूप से फला, फूला और आगे बढ़ा। नवों आचार्यों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—

१—आचार्य श्री भिक्षुगणी
२—आचार्य श्री भारीमालगणी
३—आचार्य श्री ऋषिरायगणी
४—आचार्य श्री जयगणी — श्रीमज्जयाचार्य
५—आचार्य श्री मघवागणी
६—आचार्य श्री माणकगणी
७—आचार्य श्री डालगणी
८—आचार्य श्री कालूगणी
९—आचार्य श्री तुलसीगणी

वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी

आचार्य श्री तुलसी संघ के क्रांतिकारी आचार्यों मे से एक है। इन्होंने ११ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की और २२ वर्ष की अवस्था में आचार्य पद पाया। २२ वर्ष का एक युवक ५०० साधु-साध्वी और लाखों अनुयायियों का दायित्व सँभाले—यह इतिहास की विरल घटनाओं में से एक है। ११ से २२ तक का समय आपका अपने जीवन-निर्माण का समय था। इस बीच में आपने लगभग २१ हजार श्लोक संस्कृत, प्राकृत आदि

भाषाओ के कंठस्थ किए और शास्त्र, साहित्य, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि विषयों पर अधिकार पाया। २२ से ३३ वर्ष तक संघ निर्माण के कार्य में विशेष रस लिया। साधु-समुदाय को सामयिक विद्याओं की ओर आगे बढ़ाया और साध्वी-समाज को संस्कृत, प्राकृत, हिंदी आदि भाषाओं के राजमार्ग पर ला खड़ा किया। आपने अपनी आयु के ३४ वे वर्ष मे सामाजिक अभ्युदय की ओर चरणविन्यास किया। अणुव्रत आन्दोलन के रूप मे आप स्वयं तथा सघ के साधु-साध्वी जन देश के नैतिक नव निर्माण में जुटे।

आगम-शोध-कार्य : नैतिक नव निर्माण के साथ-साथ लगभग दो वर्षों से आपने एक और गुरुतर कार्य का भार उठाया है। यह है जैन शास्त्रों का शोध-कार्य। भगवान् महावीर से लेकर २५०० वर्षों की अवधि मे जैन आगमो के मूल पाठ बहुत स्थानों पर संदिग्ध हो चले हैं। उनके मौलिक स्वरूप को प्रामाणिक शोध के द्वारा असंदिग्ध बनाया जाए, यह एक महत्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक कार्य होगा। आचार्यश्री ने पाठ शुद्धि के साथ-साथ मूल आगमों का हिन्दी अनुवाद भी प्रारम्भ करवाया है। अनुवाद मे सन्दिग्ध और विवादपूर्ण स्थलो का अर्थ एक प्रामाणिक समीक्षा के साथ टिप्पणियो मे प्रकट किया जाएगा। इस प्रकार जैन आगमो की यह अनुसन्धान-प्रधान अनुवाद पद्धति अपने आप मे प्रथम होगी। इस कार्य के साथ-साथ जैन आगमो का एक प्रामाणिक कोष भी आचार्य प्रवर तैयार करवा रहे हैं। वह भी बहुत सी अपूर्व विशेषताओ के साथ सम्पन्न होगा, ऐसी आशा है। सुना जाता है कि कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य के ग्रन्थ-निर्माण सम्बन्धी कार्य मे ८४ लेखनियाँ चला करती थी। आचार्यश्री के ग्रन्थ-प्रणयन की व्यवस्था मानो उसी ऐतिहासिक संस्मरण को दुहरा रही है। आचार्य श्री ने इससे पूर्व जैन सिद्धान्त दीपिका, श्रीभिक्षु न्याय कर्णिका, कालू यशोविलास आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

तेरापंथ के दो सौ वर्ष

तेरापंथ के प्रवर्त्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी चाहते थे कि प्राचीन जैन परम्परा में संयममूलक, शिक्षामूलक, संगठनमूलक सुधार आए, पर वैसा सम्भव नही हो सका। तब संवत् १८१७ आषाढ़ पूर्णिमा के दिन उन्होने अपने तेरह साथी अन्य साधुओ सहित नवीन प्रव्रज्या ग्रहण की। तेरापंथ के इतिहास का वही आदि दिवस बन गया।

विक्रम संवत् २०१७ आषाढ पूर्णिमा तक तेरापंथ के दो सौ वर्ष पूरे होते है। इन दो सौ वर्षो का इतिहास सघर्षात्मक, घटनात्मक और विकासात्मक रहा है। इतिहास बताता है कि प्रारम्भ मे सत्य का विरोध अवश्य होता है, क्योकि सर्व साधारण उस सत्य को एकाएक सह नही पाते, किन्तु कालान्तर से लोग उसी सत्य को सहते है। उससे अपने जीवन मार्ग को आलोकित करते है। ठीक यही तेरापंथ के विषय में घटित हुआ है। आचार्य भिक्षुगणी को जीवन मे अनेक संघर्ष सहने पड़े। प्रतिपक्षी लोगो ने इतने निम्न स्तर से उनका विरोध किया कि भिक्षुजी तथा उनके अनुयायी साधुओ को भिक्षा मत दो, स्थान मत दो और उनके पास मत जाओ, यहाँ तक कि एक बार तो उन्हे चातुर्मास मे राजकीय सहयोग से शहर से निकलवा दिया। और भी अनेक प्रयत्न उनके विरोध में लोगो ने किए। धीरे-धीरे सत्य स्वयं चमकने लगा और आचार्य श्री भिक्षुगणी की क्षमा, तपस्या व संयम-साधना से लोग प्रभावित होने लगे। राजस्थान मे सर्वत्र मान बढ़ने लगा। राजा महाराजा लोग भी तेरापंथी आचार्यों एवं साधुओं को पूर्ण आदर की दृष्टि से देखने लगे। प्रतिपक्षियों का विरोध ही तेरापंथ की प्रगति का एक मुख्य कारण बन गया। साधु संख्या प्रारंभ मे १३ थी और वह भी घट कर ६ तक चली गई थी। आज २०० वर्षो के बाद तेरापथ के साधु-साध्वियों की संख्या लगभग ६५० हो गई है। श्रावक अर्थात् अनुयायी गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब, राजस्थान

उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, आन्ध्र, मद्रास, मैसूर, आदि भारतवर्ष के सभी प्रमुख प्रान्तों में हैं ।

विगत १० वर्षो से तो तेरापंथ साधु-संघ ने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से सेवाएँ देकर समग्र देश का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। देश के अधिकारियो, विचारकों एवं विद्वानों ने तेरापथ की संगठन-शक्ति तथा साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । जर्मन, इंगलैण्ड, अमेरिका प्रभृति विदेशों के भी अनेक विचारक एव विद्वानों ने तेरापंथ की जानकारी प्राप्त की और वे उससे अत्यन्त प्रभावित हुए है ।

धार्मिक सह-अस्तित्व की दिशा में

सदा से ही तेरापंथ संघ की मण्डनात्मक नीति रही है। दूसरे किसी भी धर्म विशेष के प्रति निन्दात्मक, आक्षेपात्मक साहित्य लिखना संघीय नीति मे सदा ही वर्जित रहा है। यहाँ तक कि दूसरे लोगो द्वारा तेरापंथ पर किए गए निन्दात्मक और भ्रान्तिपूर्ण आक्षेपों का कभी निम्नस्तरीय प्रतिवाद भी नही किया गया है। तेरापंथ मण्डनात्मक पद्धति से ही अपने अभिमतो को आगे वढाता आया है। तेरापंथ के वर्तमान अधिनायक आचार्यश्री तुलसी ने तो धार्मिक सह-अस्तित्वकी दिशा मे एक पचसूत्री कार्यक्रम भी जनता के समक्ष रखा है। जिसमे वहुत सारे दूसरे सम्प्रदायो व धर्मो के आचार्यो व गुरुओ ने पूर्ण सहमति प्रकट की है। जनता मे धार्मिक वैमनस्य घटे हैं। असहिष्णुताएँ सीमित हुई हैं और धार्मिक सह-अस्तित्व का वातावरण वना है। पचसूत्री योजना यह है :—

१— मण्डनात्मक नीति वरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किये जाएँ ।

२— दूसरो के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए ।

३— दूसरे सम्प्रदाय और उनके साधु-सन्तों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।

४— कोई सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि के रूप मे अवांछनीय व्यवहार न किया जाए।

५— धर्म के मौलिक तथ्य अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

धार्मिक सहिष्णुता के विषय में तेरापंथ स्वयं उक्त योजना के आधार पर चलता है और दूसरे धर्म-संघ उस पर चलें, ऐसी अपेक्षा रखता है।

नवीन समाज-व्यवस्था में दान और दया

मुनि श्री नगराजजी

हरियाणा प्रान्तीय आध्यात्मिक प्रशिक्षण शिविर

हांसी (हिसार)।

(ता० 3—6—1962 से 10—6—1962 तक)

के शुभ अवसर पर

श्रीमती धापांदेवी धर्मपत्नि

स्वर्गीय ला० रामनारायण जी (भिवानी)

की ओर से सादर भेंट

नवीन समाज-व्यवस्था में दान और दया

नवीन समाज-व्यवस्था में दान और दया

लेखक

मुनिश्री नगराजजी

सम्पादक

सोहनलाल बाफणा

प्रकाशक

साहित्य निकेतन

४०६३, नयाबाजार, दिल्ली

प्रकाशक
सोहनलाल बाफणा
संचालक
साहित्य निकेतन
४०६३, नयाबाजार, दिल्ली ।

●

द्वितीय संस्करण
जून १९६२

●

मूल्य : २५ नये पैसे

●

मुद्रक
रामस्वरूप शर्मा
राष्ट्र भारती प्रेस, कूचा चेलान, दिल्ली ।

प्राक्कथन

कहा जाता है कि "राम लंका-विजय के पश्चात् जब अयोध्या आये तो एक बहुत बडा समारोह किया गया। राम राज्य-सिंहासन पर बैठे और युद्ध मे साथ देने वाले वीरों को एक-एक करके पारितोषिक देने लगे। हनुमान को छोड़कर सबको पारितोषिक दिया। अन्त मे किसी के याद दिलाने पर राम ने हनुमान को भी अपने सम्मुख बुलाया और कहा—हनुमान! तुम क्या चाहते हो? हनुमान ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—मै चाहता हूँ, जैसे अब तक मैं आपकी सेवा करता रहा, भविष्य मे भी वैसे ही करता रहूँ। राम ने कहा—मैं और सब कुछ दे सकता हूँ, पर यह नही दे सकता, क्योंकि तुम जो चाहते हो, वह तभी सम्भव हो सकता है, जब मुझे पुन. वनवास मिले, कोई दूसरा रावण सीता का अपहरण करे और तुम मुझे सेवा दो, यह मैं कैसे चाह सकता हूँ? हनुमान चुप होकर अपने आसन पर जा बैठे।" इस मनोरंजक उदाहरण से विचारको के लिए एक नया चिन्तन-मार्ग खुल जाता है। समाज मे अब तक यह बद्धमूल संस्कार रहा है—सबकी सेवा करो। यही कारण है, लोग उत्पन्न कष्टों को मिटाने का ही प्रयत्न करते है। उन कष्टों के मूल को मिटाने का प्रयत्न नही करते। देश मे भिखमगे अधिक हो जाते है, लोग कहते है उन्हे दान करो। उनका दुःख दूर होगा, पर परिणाम यह होता है कि उन्हे आजीवन के लिए भिखमंगा बना दिया जाता है और दान देकर उनकी बढ़ोतरी की जाती है। लोग यह नही सोचते, आखिर गरीबी का कारण शोषण व संग्रह है। यदि हम इन कारणो को मिटा देगे तो समाज मे न भिखमंगी रहेगी और न दानवीरता। राम और हनुमान के उदाहरण

से यह स्पष्ट हो जाता है, सेवा चाहने वाला अव्यक्त रूप से व्यक्ति और समाज की कष्ट-परम्परा को चाह लेता है।

'चक्कवत्ती सीहनादसुत्त' नामक बौद्ध ग्रन्थ मे लिखा है—दृढनेमि चक्रवर्ती की परम्परा मे सात चक्रवर्तियों ने अहिंसा, सत्य आदि पचशीलों का प्रचार चालू रखा इसलिए उनके राज्य में गरीबी व गरीबी से पैदा होने वाले और दुर्गुण जनता मे नही आये। आठवे चक्रवर्ती ने पंचशील का प्रचार छोड दिया। परिणामस्वरूप लोग सग्रह-प्रिय हो गये। जो सग्रह-कुशल नही थे, उन लोगों मे दारिद्रच छा गया। दारिद्रच के कारण लोग चोरी करने लगे। पहला चोर जब पकड़कर राजदरबार मे लाया गया तो राजा ने उससे पूछा—तुम चोरी किसलिए करते हो? चोर ने उत्तर दिया—धनाभाव के कष्ट से। राजा उदार था, उसने उस चोर को यथोचित धन दिया और कहा भविष्य मे चोरी न करना। नगर में यह चर्चा फैल गई कि जो चोरी करता है उसे राजा धन देता है। थोडे ही दिनों में सहस्रो लोग चोरी करने लगे। राजा का कोष खाली हो गया और शहर मे अव्यवस्था फैल गई। तब राजा ने पुनः पचशील का प्रचार आरम्भ किया और शनैः शनैः उस अव्यवस्था को मिटाने मे सफल हुआ। आज की समाज-व्यवस्था मे भी यह चिन्तन उभर आया है कि दान करो, सेवा करो आदि उद्घोषों से समाज आधिमुक्त और व्याधिमुक्त नही होगा। 'नवीन समाज-व्यवस्था मे दान और दया' नामक प्रस्तुत पुस्तक मे इसी विषय पर सुविस्तृस्त विवेचन किया गया है। समाज के नये निर्माण और बदलते हुए मूल्यों मे विचारक समाज इस ओर चिन्तन के लिए प्रेरित होगा, ऐसी आशा है।

सम्वत् २०१४, कार्तिक शुक्ला ८ — मुनि नगराज

नयाबाज़ार, दिल्ली

आरम्भ और हेतु

मनुष्य की जीवन-व्यवस्था जब से व्यष्टि रूप से समष्टि रूप में परिवर्तित हुई, तब से ही दान-प्रथा का उदय हुआ, ऐसा लगता है। समष्टि जीवन में आकर मनुष्य ने घर बनाये, गांव व नगरों की रचना की, पंच-पचायत और राज्य-व्यवस्था का निर्माण किया। उन्ही दिनो पारिवारिकता और सामाजिकता को भी उसने जन्म दिया। समष्टि-जीवन की उस परिकल्पना मे जो अधूरापन रहा, वह यह था कि अनाथ, अकर्मण्य, अपांग व्यक्तियो के जीवन-यापन की कोई समुचित व्यवस्था नही थी। तथाप्रकार के व्यक्तियो की बढोतरी सामाजिक व्यवस्थापको के सामने समस्या होकर आई। उसका जो तात्कालिक समाधान सोचा गया, वह यह था कि धनी और ऐश्वर्यशील व्यक्ति उन गरीबो के लिए कुछ दान करे। किन्तु संग्रह करना जिनके जीवन का ध्येय था, उन धनियो द्वारा दान का स्वीकरण कठिन ही नही, असम्भव के लगभग था। लगता है, समाज के कर्णधारों ने उन्ही परिस्थितियो मे दान को धर्म का अंग बताकर और दानियों को स्वर्गीय सिंहासन का प्रलोभन दिखलाकर उनकी थैलियो के मुँह दीन-अनाथों के लिए खुलवाये। इस प्रकार दान-धर्म का जन्म हुआ।

यह केवल कल्पना की ही बात नही अन्य बहुत सारी सामाजिक जीवन की समस्याओं को भी हल करने का यही मार्ग अपनाया जाता था; क्योकि धर्म पर व्यक्ति की बुद्धि केन्द्रित थी। अतः जो उससे क़रवाना हो, वह धर्म के नाम पर ही सहज सम्भव हो सकता था। यही तो कारण

था कि हिन्दूधर्म में जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त संस्कारों व क्रिया-काण्डों पर धर्म की छाप लगा दी गई। रहन-सहन व वेशभूषा जैसे सामान्य व्यवहार भी धर्म के विशेष अग बना दिये गये। अर्थात् निरूपकों को जो रहन-सहन, वेशभूषा व अन्य संस्कार पसन्द थे, वैसे ही लोग चले, इसलिए उन्होने जनता की निष्ठा इस ओर केन्द्रित करने के लिए उन सबका सम्बन्ध धर्म से जोड दिया। धनी और ऐश्वर्यशीलों के लिए यह अत्यन्त आनन्द और उल्लास का विषय हुआ कि वे अपने कौशल व अनीतिमय आचरणों से धन-संग्रह कर लौकिक व्यवस्था के सर्वेसर्वा बने रहें, भौतिक सुख-सुविधाओं का आनन्द लेते रहें और उसी धन से थोड़ा-सा दान कर लोकोत्तर व्यवस्था के भी अधिनेता बने। यह प्रश्न सम्भवत. तात्कालिक विचारकों के मस्तिष्क मे नही आया होगा कि बेचारे गरीबों की कष्ट-मुक्ति आखिर किस लोक में होगी; क्योंकि उनके पास धन नही है तो लौकिक और लोकोत्तर सुख को वे कैसे खरीद सकेंगे ? किन्तु कुछ भी हो प्रथा चली और चलती रही। समाज मे भिख-मंगी बढने लगी, क्योकि धनियों ने अपनी थैलियों के मुख लोकोत्तर सुख की व्यवस्था में खोल रखे थे। सहस्रों वर्षो के इतिहास मे तथाप्रकार की दान व्यवस्था के विरोध मे कोई क्रान्ति नही उठी; क्योंकि दोनों ही वर्गो के स्वार्थो का वहाँ पूर्ण समझौता था। निम्नवर्ग तथाप्रकार के दानग्रहण में अपनी लौकिक सद्गति मान रहा था और धनीवर्ग अपने लोकोत्तर अभियान के सफल होने का विश्वास कर रहा था।

दान से अधिकार

युग बदला, स्थितियाँ बदली। मानव के सहस्राब्दियों से सुषुप्त मानस में चेतना उद्दीप्त हुई और वह जीवन के प्रत्येक पहलू को एक शल्य-चिकित्सा की विधि से देखने लगा। परिणामस्वरूप राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में नाना प्रकार के मानदण्ड स्थापित हुए। ऐसी स्थिति में उस

मानव की तीक्ष्ण निगाहों से दान भी शल्य-चिकित्सा की मेज पर आये बिना कैसे रुक सकता था ? यह आज का युग है जिसमे सहस्राब्दियो से पद्-दलित मानवता ने स्वाभिमान की सास ली है। आज का गरीब, याचक और शोषित दान नही चाहता, वह अपने अधिकारो को पाने के लिए कटिवद्ध है। उसका अभिमत है—कोटि-कोटि गरीब जनता का मनमाना शोषण कर आज जो उसे जूठी रोटी का एक वचा टुकडा देकर सन्तोष कराया जाता है; वह ऐसे दान-धर्म को नही चाहता। सही वात तो यह है कि एक ओर शोषण चल रहा है और दूसरी ओर दान। यह तो इस कहावत को चरितार्थ करनेवाली वात है—

एरण की चोरी करी दियो सूइ को दान।
ऊँचो चढ़कर देखण लागी कितोक दूर विमान ॥

सुनार की पड़ोसिन ने आँख वचाकर रात को उसका एरण उठा लिया और सुवह होते ही किसी राह चलते भिखमगे को एक सुई का दान कर ऊपर देखने लगी कि मेरे दान-पुण्य के प्रभाव से अवश्य कोई स्वर्ग का विमान मुझे ले चलने के लिये आयेगा। अस्तु, इसलिये वह चाहता है कि दान करने की मनोवृत्ति को छोड़कर शोषण न करने की ही मनोवृत्ति को अपनाया जाये। इससे समाज मे ऐसी व्यवस्था का सूत्र-पात होगा जिसमे दानी और याचक दूसरे शब्दो मे 'अहं' और 'हीनता' का कोई स्थान ही न रहेगा।

सर्वोदय के क्षेत्र में

भारतवर्ष एक आध्यात्मिकता प्रधान देश है और आज वह एक नई समाज-व्यवस्था की सीढियों पर अग्रसर हो रहा है। ऐसी स्थिति मे ऋषि-महर्षियो के प्राचीन सन्देशो व आज की नवीनतम विचारधाराओं के विकास सम्वन्धी इतिहास को हृदयंगम करते हुए अन्यान्य पहलुओ की तरह दान-प्रथा पर भी एक तटस्थ निगाह से विचार कर लेना परम

आवश्यक प्रतीत होता है । ऐसे तो समाज-प्रणेताओ ने समय-समय पर इस सम्बन्ध में बहुत सारे विचार दिये है। महात्मा गाधी कहते है—"बिना[१] प्रामाणिक परिश्रम के किसी भी चगे मनुष्य को मुफ्त मे खाना देना मेरी अहिंसा बर्दाश्त नही कर सकती। अगर मेरा बस चले तो जहाँ मुफ्त खाना मिलता है ऐसा प्रत्येक 'सदाव्रत' या 'अन्नछत्र' मै बन्द करा दूँ।"

जीवन-व्यवहार में सर्वोदय का विचार करते हुए सुप्रसिद्ध सर्वोदयी लेखक श्री भगवानदास केला लिखते है[२]—"कुछ आदमी सोचते है कि हमें अपने काम से इतनी अधिक आय होनी चाहिए कि हम दान-धर्म, तीर्थयात्रा आदि अच्छी तरह कर सकें। समय-समय पर ब्राह्मण-भोजन व जातीय-भोज कराकर उसका पुण्य ले सकें। यह समझ ठीक नहीं। अनुचित कार्य कर धन कमाना और उस धन से कुछ पुण्य प्राप्त करने की कोशिश करना वैसा ही है, जैसा कीचड़ में पाँव रखकर पीछे उसे धोने की कोशिश करना। सात्विक ईमानदारी या मेहनत का काम करने वाले को दान-पुण्य आदि की चिन्ता मे नही पड़ना चाहिए। उसका काम ही यज्ञ रूप है।"

इस प्रकार जहाँ भी नई समाज-व्यवस्था का चिन्तन होता है, लग-भग सभी एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते है। लोकतन्त्र के प्रशस्त व्याख्याता प्रो॰ आर॰ आर॰ कुमरिया 'साइकोलोजिकल फाउन्डेशन ऑफ दी स्टेट' मे 'समाजसेवा और दान' शीर्षक मे लिखते है[3]—

---

१. सर्वोदय दिसंबर सन् ३८ तथा गांधी वाणी पृष्ठ १५३

२. सर्वोदय दैनिक जीवन में, पृष्ठ ४०

3 Charity does not destroy suffering, it only gives a bit of relief to a person who is suffering. Under democratic social welfare schemes our object is to destroy suffering through a eollective effort. Because the happiness of one and all is aimed at the effort of one and all is required

"दान कष्टों का नाश नहीं करता। वह दुखी को एक क्षणिक सन्तोष देता है। जनतान्त्रिक समाज के निर्माण मे हमे सामूहिक प्रयत्नों द्वारा कष्टो का समूल अन्त करना है; क्योंकि यहाँ सबका सुख अभीष्ट है। इसलिए सबका प्रयत्न भी अपेक्षित है। सब लोगो के सुख-निर्माण में सब लोगो ने भाग लिया, अतः कोई किसी का अहसानमन्द नही है। इस प्रकार मानव का व्यक्तित्व सुरक्षित है। मानवता की कीमत उस समाज मे सुरक्षित नही रह सकती, जिस समाज मे दान (Charity) अनुकम्पा (Compassion) और दया (Kindness) का ऊँचा मूल्य माना गया है। मानवता केवल उस समाज मे सुरक्षित रह सकती है जहाँ मनुष्य की इच्छाओ की वृद्धि सामूहिक और सहयौगिक प्रयत्नो द्वारा ही होती है। सहयोग ही ऐसे समाज का आधार है और उस जनतान्त्रिक समाज मे यही सर्वोत्कृष्ट गुण है।"

ऐसा लगता है आज के युग मे तथाप्रकार की दानप्रथा की अनुप-योगिता के विषय मे कोई विचारक दो मत नहीं होगे, क्योकि आज स्वाभिमानी राष्ट्र वही माना जाता है जो इस बात का गौरव रखता है कि हमारे देश मे भिखमगे और भिखमगी नही है, न कि वह जिसमे सत्तर लाख भिखमगे है और लोगो की दानवीरता के कारण उनकी आजीविका चलती है। इसी का परिणाम है कि आज भारतवर्ष की प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाओं मे स्थान-स्थान पर भिक्षा-निरोधक बिल आ

---

to achieve it. And because everybody has contributed towards its achievement, nobody is under the obligation of anybody and thus, the human dignity is maintained. Human dignity cannot be maintained in a society in which charity, compassion and kindness are prize values. It can be maintained only in a society in which satisfaction of human wants is achieved through co-operaiive and collective effort. Co-operativeness is the hub of such a society It is the highest virtue.

रहे है और सभी सरकारे तथाप्रकार की भावनाओ को चरितार्थरूप देने मे प्रयत्नशील है ।

शास्त्रकारों की दृष्टि में

प्रश्न केवल यही रह जाता है; गरीब, अनाथ, अपागों को प्रचलित प्रथा से कुछ दे देने की पद्धति न भी रहे किन्तु सामूहिक सेवाभाव से, वैयक्तिक प्रयत्नों से या किसी संस्था आदि द्वारा बहुजन संचालित प्रयत्नो से जो कार्य भारतीय संस्कृति में हमेशा से हो रहा है और प्रस्तुत युग में भी यथासाध्य जिसे बढावा मिल रहा है क्या उसकी भी कोई उपयोगिता नवीन समाज-व्यवस्था में नही रहेगी ? प्रश्न गम्भीर है, क्योकि एक ओर ऐसी समाज रचना का कार्य सामने है जिसमे बहुत सारे मानदण्ड आमूल परिवर्तन की अपेक्षा रखते है और एक ओर उन सस्कारों का जन-जन के मस्तिष्क पर जमघट है जिन पर सहस्राब्दियों से धर्म, पुण्य व मोक्ष की छाप लगाई जा रही है। किन्तु स्थिति यह है कि बहुत सारे कार्य समाज में ऐसे प्रचलित है, जिन पर प्रणेताओं ने धर्म व पुण्य की छाप नही लगाई थी, किसी एक मर्यादा में तथाप्रकार के कार्यों मे धर्म व पुण्य के होने का निरूपण किया था। किन्तु वे ही कार्य जनताके अन्धविश्वासो के कारण रूढ़ियों मे परिणत होकर विकृत रूप ले रहे है । जैसे दान का ही प्रसग है जहाँ तक शास्त्रकारो का सम्बन्ध है उन्होंने तो कहा—[1]सत्पात्र को दान करने वाले भी थोड़े और सत्पात्रता के आधार पर जीने वाले भी थोड़े है। इसलिए सत्पात्र को दान देने वाले और सत्पात्र से लेने वाले दोनों सद्गति को प्राप्त होते है । गीताकार दानमात्र को सात्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन भेदो मे विभक्त करते है— "दान वह है जो दिया जाता है और सात्विक दान वह है जो देश, काल

१—दुल्लहा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छन्ति सोग्गइं ॥ द० अ० ५। १००

और पात्र के विवेक से अनुपकारी व्यक्ति को दिया जाता है। जो प्रत्युपकार की दृष्टि से फल-आकाक्षा के लिए व परिक्लिष्ट वृत्ति से दिया जाता है, वह राजसिक दान है और जो देश, काल व पात्र का विवेक किये विना अर्थात् असद्देश, असत्काल और असत्पात्र को दिया जाता है वह तामसिक दान कहा जाता है[१]।" उक्त तीन दानो मे मोक्ष का हेतु व धर्म, पुण्य का हेतु कहा जाने वाला दान केवल सात्विक दान है। यहाँ अब यह देखना है कि आज समाज मे जो दान का ढर्रा चल रहा है, उसमे सात्विक दान कहाँ तक है और राजसिक तथा तामसिक कहाँ तक ? जहाँ दानी के लिए वताया गया है, फल या प्रत्युपकार की भावना से दान न करे वहाँ आज के दानी इन्ही दो तत्त्वो को दान का उद्देश्य बना बैठे है।

आज के दानवीर

आज का दान यश और कामना के विषैले कीटाणुओ से बुरी तरह आक्रान्त है। आज का दानी किसी भी सार्वजनिक सस्था को दान करते समय या तो शर्त ही कर लेता है या अभिप्राय समझ लेना चाहता है कि मेरा वहाँ फोटो लगेगा या मेरा शिलालेख मे नाम खुदेगा या नही ? सेवा कार्य करने वाली ऐसी विरली ही संस्था मिलेगी, जिसके साथ संचालक ने अपना नाम न जोड़ दिया हो। आज जहाँ लोग भगवान् का मन्दिर वनवाते है, वहाँ भगवान् गौण हो जाते है और मन्दिर के परिचय मे वनाने वाले की जाति व नाम जुड जाता है। नामोल्लेख के उक्त

---

१. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥२०॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुन ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥ गीता अ० १७

प्रकार के उपक्रमों मे साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि नाम-संयोजन के पीछे कोई भी आवश्यकता या महत्त्वपूर्ण आदर्श नहीं है। फिर भी यही तत्त्व आज के दान का अनन्य हेतु बन रहा है।

आज के दान मे विवशता भी एक हेतु बन जाती है। बहुत सारे लोग दान देना चाहते नही, किन्तु उत्साही लोग कोई चन्दे की योजना खडी कर देते है और कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो को साथ लेकर सामने आ बैठते है, तब उन्हें दो-चार बार टालमटोल करने के वाद कुछ लिखना ही पडता है। पिछले दिनो कुछ व्यक्ति मिले जो बता रहे थे कि अमुक-अमुक गणमान्य व्यक्ति भूदान के सिलसिले मे पदयात्रा करते हुए जब हमारे शहर आये तो सब लोगो की तरह हमे भी कुछ भूमि उन्हे दे देनी पडी। किन्तु अब हम इस खोज मे है कि कोई दूसरी सस्ती भूमि मोल मिल जाये तो वह देकर हम अपना कौल पूरा कर देंगे, क्योकि हमारी भूमि अधिक उपजाऊ है और उसकी अधिक कीमत है। अस्तु; यहाँ कोई भूमिदान व उसके कार्यकर्ताओं की समालोचना नही है, पर यहाँ तो आज के दानियों के मानस की स्थिति का एक चित्रण है।

आज के दानपात्र

शास्त्रकारों ने पात्र को देखकर याने सुपात्र को दान करने की जहाँ बात कही, वहाँ उन्होने सुपात्र के लक्षण बतलाये[1]—जैसे मधुकर फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस लेकर सन्तोष करता है उसी प्रकार ज्ञानी और जितेन्द्रिय मुमुक्षु मधुकरी वृत्ति से अपने संयमपूर्ण जीवन निर्वाह के लिए भिक्षा-ग्रहण करते है। आज के दान-पात्र उक्त सत्पात्रता की मर्यादा मे कहाँ तक आते है, यह आलोचना का विषय है, क्योकि भिखमंगी आज एक पेशा बन गया है। सहस्रों हट्टे-कट्टे लोग कैसे इस काम मे निपुणता प्राप्त

---

१. जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियई रसं।
न य पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥

कर समाज मे अकर्मण्यता व वेकारी फैला रहे है इसका भी एक हृदय-द्रावी इतिहास वनता है। यहाँ तक कि पेशेवर भिखमगे स्वस्थ बालकों को विकृताग कर उनसे अपनी भिखमंगी का व्यवसाय चलवाते है। ऐसे अनेको उदाहरण प्रत्यक्ष अनुभव मे आये हैं।

विगत वर्ष की घटना है, देहली मे जव हम थे, उसी समय एक जैन तेरापथी दम्पती लगभग १०-१२ वर्ष के एक वालक को साथ लिए दर्शनार्थ आये। उन्होने वताया कि यह लडका गेरुक वस्त्रधारी भिख-मगो के चगुल मे था। यह वड़ा दुखी था। कल हम लोगो ने इसे वहाँ से निकाला। पूछे जाने पर इस वालक ने हमे अपना जीवन-वृत्तान्त वताया। उसने कहा—'मैं दक्षिण मे वगलोर के पास किसी एक ग्राम मे रहने वाले मिल-मजदूर का वालक हूँ। एक दिन जव मैं घर से घूमने के लिए निकला था, तव कुछ गेरुक वस्त्रधारी बावा लोग मुझे मिले और मुझे मिठाई, फल आदि खिलाये। फिर वे मुझे अपने साथ चलने का आग्रह करने लगे और कहा—'तुम्हे दिल्ली ले चलेंगे और वहाँ सिनेमा व और भी वहुत सारी चीजे दिखलायेंगे। वापस यहाँ लाकर छोड़ देंगे'। मैं उनके भुलावे मे आ गया। वहुत दिनों तक उनके साथ भटकता रहा। गेरुक वस्त्र पहनाकर वे मुझे भी अपने साथ रखते और भीख मांगने का तरीका सिखलाते। एक दिन एक सुनसान स्थान मे उन्होने जवरदस्ती मेरी जीभ मे लोहे का वडा काँटा आर-पार कर दिया। इससे मैं तीन दिन तक वेहोश-सा पड़ा रहा। बुखार भी हुआ था। उसके वाद जीभ मे वह छेद स्थायी रूप से बन गया और ऊपर की व्याधि धीरे-धीरे मिट चली। उसके वाद शहर मे जाते समय मेरी जीभ के उस

एमेए समणा मुत्ता जे लोए सन्ति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु दानभत्तेसणे रया ॥३॥
महुकारसमा बुद्धा जे भवन्ति अणिस्सिया।
नाणापिण्डरया दन्ता तेण वुच्चन्ति साहुणो ॥५॥ दश० अ० १

छेद में एक छोटा त्रिशूल लटका देते और जीभ बाहर रखवाकर दयावनी शक्ल में मुझसे भिखमगी करवाते। मैं भी वैसा ही करने लगा। दिन में जितने पैसे इकट्ठे करता, सायं उनके सामने रख देता। वे हमेशा यही कहते कल इससे और अधिक लाना। देहली मे ऐसा करते कुछ समय बीता पर मै आये दिन अधिक-से-अधिक पैसा नहीं ला सकता था। तब वे लोग मुझ पर बहुत बिगडते। कभी वे ज्यादा पैसे लाने के लिए सिनेमा दिखलाने का लालच देते और कभी मार-पीट करने की धमकी भी। एक दिन जब उन्होने यहाँ तक कह डाला कि तू बड़ा हराम है। जान-बूझकर पूरी मेहनत नहीं करता। कल यदि इतने पैसे नही लायेगा तो हम लोग तुझे किसी कुएँ मे डाल देगे। मै उससे एक-दम घबरा गया व दूसरे दिन जब हमारी टोली माँगने के लिए चाँदनी चौक से निकली, मै आँख बचाकर मालीवाडे की ओर निकल पडा। मैं इस स्थिति में था कि किसे कहूँ और क्या कहूँ? आखिर मुहल्ले के बीच जैसे मैं शरीर पर मोर की पाँखे लगाये, जीभ पर त्रिशूल पिरोये, गेरुक वस्त्र पहने, भिखमंगी कर रहा था, उसी वेश मे मैंने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया—"अरे मुझे कोई बचाओ, मुझे कोई बचाओ, मैं मारा जाऊँगा।" कुछ आदमी इकट्ठे हुए। उनमे से ये लोग (साथ लाने वाले तेरापथी दम्पती की ओर सकेत कर) मुझे अपने घर ले गये और मेरी सारी जीवन-घटना इन्होने सुनी। इसके पश्चात् इन्होंने मेरा भिखमंगी का चोगा हटवाकर अच्छे कपड़े पहनाए और अपने बच्चे की तरह मुझे खिलाया।" उपस्थित बहुत सारे लोगो ने देखा उसकी जीभ में एक बड़ा छेद था।

इसी प्रकार एक अठारह वर्षीय युवक गुम होने के बारह महीने बाद अपने घर आया। उसने भी बताया—"जब मैं बगाल मे अपने निवास-स्थल से किसी दूसरे गाँव की ओर जा रहा था, उसी समय दो-चार आदमी मुझसे मिले और कहने लगे हमें भी वही जाना है जहाँ तुम जा रहे हो। मै उनके साथ-साथ चलने लगा। 'यह रास्ता सीधा है' कहकर

वे मुझे एक घने जंगल मे ले गये। वहाँ गुफा मे एक बाबा रहते थे। मुझे ले जाकर उन्हे सौपा। उन लोगो को बाबा ने ५००) रुपये दिये और वे चले गए। बाबा आठ प्रहर चौसठ घडी कडी निगाह से मेरी निगरानी रखते। मुझे निकलने का कोई मौका नही मिला। मैं बाबा की बहुत सेवा करने लगा। धीरे-धीरे मुझे पता चला कि बाबा किसी देवी की साधना कर रहे हैं और बलि के लिए मुझे यहाँ लाया गया है। मै यह जानकर मन मे बहुत घबराया पर ऊपर से बाबा को यह विश्वास हो गया कि मेरे साथ यह घुलमिल गया है तथा मेरा पक्का चेला बन गया है। एक दिन वे गुफा छोडकर मथुरा की ओर जाने वाले थे। तीन सौ रुपये उन्होने मुझे दिए और कहा—"आराम से रहना, मै कुछ दिनों बाद आऊँगा।" बाबा चले गए तो एक दो दिनो के बाद मैने भी वहाँ से अपना रास्ता लिया।"

कौन नही जानता इस भयकर भिखमगी का मूल कहाँ है? भिखमगी के व्यवसाय ने भी नाना रूप ले लिए है। कुछ भिखमंगे ऐसे है जो साधु-सन्यासी के पवित्र वेश मे अपनी पूजनीयता या दया-पात्रता दिखलाकर पेट भरा करते है। साधूचित साधना से उनका कोई सरोकार नहीं। कुछ भिखमगे वास्तव मे बड़े धनी होते है। ये पैसे जोड़ते जाते है। किन्तु उस जुड़ी धनराशि से एक पैसा भी अपनी सुख-सुविधा के लिए वे खर्च नही करते। देखने मे वे अत्यन्त दरिद्र, असहाय लगते है, किन्तु मरने के पश्चात् उनके फटे चिथडों से हजारों रुपये तक की धनराशि निकलती है। कुछ अगोपाङ्ग से पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी केवल भिखमगी के लिए ऐसा दिखावा बनाते है कि सचमुच ही ये रोगी, अन्धे या बहरे है। अस्तु; नई समाज-व्यवस्था यह कभी क्षम्य नही मान सकती कि धर्म या पुण्य के नाम पर इस प्रकार अयोग्य दान-पात्रो की फौज बढ़कर देश के लिए अभिशाप बनती रहे।

त्याग और दान

जहाँ हम दान के आध्यात्मिक चिन्तन मे उतरते है, वहाँ दान का महत्त्व मिलता है, किन्तु वह दान कैसा हो यही समझ लेना सर्वसाधारण ने भुला दिया है। तत्त्वचिन्तक आज भी उसी गहराई मे बैठते है। आचार्य विनोबाभावे "त्याग और दान" शीर्षक लेख मे लिखते है[1]—"एक आदमी ने भलेपन से पैसा कमाया है। उसे द्रव्य का लोभ है फिर भी नाम का कहिए या परोपकार का कहिए खासा ख्याल है। उसे ऐसा विश्वास है कि दान धर्म के लिए—इसीमे देश को भी ले लीजिए खर्च किया हुआ धन ब्याज समेत वापस मिल जाता है। इसलिए वह इस काम मे खुले हाथों खर्च करता है। एक दूसरे आदमी ने इसी तरह सच्चाई से पैसा कमाया था, लेकिन इसमे उसे सन्तोष नही होता था। उसने एक बार बाग के लिए कुआँ खुदवाया। कुआँ बहुत गहरा था। कुआँ जितना गहरा था इससे निकली चीजों (मिट्टी, पत्थर) का ढेर भी उतना ही ऊँचा चला गया। वह सोचने लगा कि मेरी—तिजौरी मे भी पैसे का एक ऐसा ही टीला लगा हुआ है। उसी अनुपात से किसी जगह कोई गड्ढा तो नही पड गया है ? इस विचार ने उस पर अपना प्रभुत्व जमा लिया कि व्यापारिक सच्चाई की रक्षा मैंने भले ही की हो फिर भी इस बालू की बुनियाद पर मेरा मकान कब तक टिक सकेगा ? अत मे पत्थर, मिट्टी और माणिक, मोतियों मे उसे कोई फर्क दिखाई न दिया। यह सोचकर कि फिजूल का कूडा-कचरा भरकर रखने से क्या लाभ ? उसने अपना सारा धन गंगा मे बहा दिया। उससे कोई-कोई पूछते है "दान ही क्यों न कर दिया" ? वह जवाब देता है—दान करते समय पात्र को देखना पडता है। अपात्र को देने से धर्म के बदले अधर्म हाने का डर जो रहता है। मुझे अनायास गगा का पात्र मिल गया। उसमें मैंने दान कर

१. 'विनोबा के विचार' संस्करण चौथा पृ० ४-६।

दिया। इससे भी संक्षेप में वह इतना ही कहता है "कूडे-कचरे का भी कही दान किया जाता है"। उसका अन्तिम उत्तर है "मौन"। इस तरह उसके सम्पत्ति-त्याग से सब सगो ने उसका परित्याग कर दिया। पहली मिसाल दान की है, दूसरी त्याग की। आज के जमाने मे पहली मिसाल जिस तरह दिल पर जमती है उस तरह दूसरी नही। लेकिन यह हमारी कमजोरी है।

त्याग और दान के इसी विचार को विनोबा एक दिलचस्प उदाहरण से और भी स्पष्ट कर देते है[1]—पुराने जमाने मे आदमी और घोडा अलग-अलग रहते थे। कोई किसी के अधीन न था। एक बार आदमी को कोई जल्दी का काम आ पड़ा। उसने थोड़ी देर के लिए घोड़े से उसकी पीठ किराये पर माँगी। घोड़े ने भी पडोसी के धर्म को सोचकर आदमी का कहना स्वीकार कर लिया। आदमी ने कहा—तेरी पीठ पर मै यो नही बैठ सकता। तू लगाम लगाने दे तभी मैं बैठ सकूँगा। लगाम लगाकर मनुष्य उस पर सवार हो गया और घोडे ने भी थोडे समय मे उसका काम बजा दिया। अब करार के माफिक घोडे की पीठ खाली करनी चाहिए थी; पर आदमी से लोभ न छूटता था। वह कहता है—"हाँ तुमने मेरी खिदमत की है (और आगे भी करेगा) इसे मै कभी नही भूलूँगा। तेरे लिए घुड़साल बनाऊँगा, तुझे दाना, घास दूँगा, पानी पिलाऊँगा, खरहरा करूँगा, जो कहेगा, वह करूँगा; पर छोडने की बात मुझसे न कहना। घोड़ा त्याग चाहता था; आदमी दान की बाते कर रहा था—भले आदमी कम-से-कम अपना करार तो पूरा होने दे।"

सच बात तो यह है कि शास्त्रकारो ने आध्यात्मिक दान पर ही बल दिया है जो देश, काल और पात्र की सीमा मे मर्यादित है और उन्होने तो समय-समय पर तथाप्रकार के दानो को चुनौती भी दी है। भगवान् श्री महावीर कहते है—"जो असयमी, अव्रती व्यक्ति को भोजन, पानी

१—'विनोबा के विचार' संस्करण चौथा पृष्ठ ४६।

आदि कुछ दान किया जाता है, वह एकान्त पाप कर्म है और पाप-मुक्ति का मार्ग नही है[१]।"

समाज-व्यवस्था मे माँगकर खाना या तथाप्रकार के अकर्मण्य व्यक्तियो को किसी भी लालच से खिलाना समाज-शास्त्र के नियमों मे नही आ सकता। प्राचीन काल मे भी धर्म और आध्यात्मिकता-प्रधान भारतवर्ष मे केवल ऋषि-मुनि व सन्यासरत आत्माओ के भिक्षाजीवी होने की उपादेयता रही और उन्हे ही यथाविधि दान करने का महत्पुण्य गाया गया है। समाज मे रहने वाले व्यक्ति के लिए भिक्षाजीवी होना स्वय एक पाप है। इसी विचार को आचार्य विनोबा भावे अपने शब्दो मे लिखते है[२]—"दुनिया में बिना शारीरिक श्रम के भिक्षा माँगने का अधिकार केवल सच्चे सन्यासी को है। सच्चे संन्यासीको— जो ईश्वर-भक्ति के रग मे रगा हुआ है। ऐसे सन्यासी को यह अधिकार है, क्योकि ऊपर से देखने मे भले ही ऐसा मालूम पड़ता हो कि वह कुछ नही करता, पर अनेक दूसरी बातो से वह समाज की सेवा किया करता है। पर ऐसे सन्यासी को छोडकर किसी को अकर्मण्य रहने का अधिकार नही है।" इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि मे भी समाज-शास्त्र के नियम से प्रचलित दान-प्रथा का कोई महत्त्व नही रह जाता।

भूमिदान

देश मे आजकल भूमिदान, सम्पत्तिदान आदि आन्दोलनों की सुविस्तृत चर्चा है। इस प्रसंग मे हम उस ओर भी कुछ दृष्टिपात करे तो

---

१. समणोवासगस्स णं भन्ते। तहारुवं असंजयअविरयअपडिहयअपचक्खायपावकम्मे पासुएण वा अपासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असणपाण जावकि कज्जइ? गोयमा! एगन्तसो से पावेकम्मे कज्जइ नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ।

(भगवती शतक ८ उद्देशक ६)

२. 'विनोबा के विचार' पृ० ४६

यह सर्वाङ्गीण विवेचन के लिए प्रासगिक ही होगा। भूमिदान, सम्पत्ति-दान आदि प्रवृत्तियो को लेकर आचार्य विनोवा भावे जनता के सामने समय-समय पर स्पष्टीकरण रखा करते है—"मेरा दान हीनता व गर्वको पोषण देने वाला दान नही है, वह तो अधिकार मात्र का सविभाजन है और उसके नीचे यह भूमि है कि भूमिदान और सम्पत्तिदान करने वाला व्यक्ति कभी यह न सोचे कि मैं कुछ महान् हूँ और गरीव भाइयो पर कोई दया कर रहा हूँ; क्योकि भूमि हवा और पानी की तरह सवकी है। हवा को मनुष्य इस मर्यादा मे ही अपनी कह सकता है कि वह उसके श्वास के लिए आवश्यक है। पानी भी उतना ही उसका है, जितना वह पी सकता है। इसी प्रकार भूमि भी देश की औसतन मर्यादा से ही उसकी है। इससे अधिक उसका जो सग्रह है, वह उसके सामर्थ्य का दुरुपयोग और सामाजिक न्यायका भंग है। अत. देनेवाले को यह सोचना चाहिए कि मैं अपने भाई को उसका संविभाग दे रहा हूँ।" यहाँ दान का वास्तविक अर्थ वँटवारा है जो चिर प्रचलित दान से सर्वथा निरपेक्ष है।

शब्द और परिभाषा का वेमेल यहाँ भी अखरता है। सुस्पष्ट तो यह होता कि "भूमि संविभाग" शब्द का प्रयोग होता। लगता है, दान शब्द का व्यवहार करके यहाँ भी कुछ जनता के बद्धमूल सस्कारो से उद्देश्य सिद्धि की वात सहज समझी गई है, क्योकि सर्वसाधारण जितने दान शब्द से चिमटे है, उतने अधिकार या सविभाग शब्द से नही। तथापि सुदूर भविष्य के लिए यह इतना श्रेयस्कर नही हुआ। यह तो इतिहास के इन्ही उपक्रमो की पुनरावृत्ति हुई, जिस समय लोगो ने सामयिक समस्याओ को धर्म कहकर सुलझाया और जनता इन कार्यो को ऐसे पकड बैठी कि उनके विकृत परिणाम आज वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध हो रहे है। आवश्यकता तो थी कि जव दान शब्द मे अह व हीनता का भाव इस प्रकार भर गया है कि वह निकाले भी नही निकलता और जो दान शब्द प्रगतिशील युग मे वहुत कुछ हेय सिद्ध हो रहा है, उससे जनता का बद्धमूल व्यामोह हटाकर शब्द और परिभाषा मे स्पष्ट और एकरूप

कोई मार्ग-दर्शन दिया जाता। आशा है चिन्तन के क्षेत्र में यह पुनरालोचन-का विषय होगा।

सेवा नहीं व्यवस्था

दान और दया का घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। जहाँ दान है, वहाँ उसके नीचे दया की भित्ति है। जहाँ से दया उद्भूत होती है, वही से दान का आरम्भ है। किन्तु यह बात शास्त्रोक्त सत्पात्र दान के विषय मे लागू नही है, क्योकि वहाँ सर्वारम्भ परित्यागी जितेन्द्रिय मुमुक्षु जो भिक्षा ग्रहण करते है, वह दीन-वृत्ति से नही[1]। उसे मिलने और न मिलने की कोई परवाह नही होती। उसकी वृत्ति मे सिंह का-सा स्वाभिमान होता है। उसे जो भक्त-जन दान करते है वह दान केवल कहने भर को ही है। वहाँ वह यह नही मानता कि मैं साधु को देकर उस पर कोई अनुग्रह कर रहा हूँ, प्रत्युत वह यह समझता है, अकिंचन तपस्वी ने मेरे यहाँ से कुछ भिक्षा लेकर मुझे पूर्ण अनुगृहीत किया है। पर समाज मे प्रचलित दान के साथ तो दया की बात जुडी ही रहती है। वहाँ व्यक्ति या संस्था को दान देकर व्यक्ति यह सोचने का अवसर पाता है—"मैंने गरीब व असहायों के लिए कुछ दिया है।" अतः प्रस्तुत निबन्ध मे दान की विवक्षा मे दया और दया की विवक्षा मे दान सर्वत्र अन्तर्भूत है। वर्तमान युग मे जब से यह एक सर्वसम्मत तथ्य बना कि दान और दया के साथ जो अहं और हीनता का भाव जुड गया है, वह उस सारी अच्छाई को निगले जा रहा है; तब से दया के स्थान पर सेवा शब्द आया। अर्थात् दान व दया करने वाला यह न माने कि मै किसी पर अनुग्रह कर रहा हूँ प्रत्युत वह यह माने कि मैं सबका सेवक हूँ और सबकी सेवा कर रहा हूँ। फिर भी वर्तमान का व्यवहार तो यह बताता

१—अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीएज्जा पण्डिए।
अमुच्छिओ भोयणम्मि मायन्ने एसणारए॥ दशवै० ५।२।२६।

है कि दया के स्थान पर सेवा शब्द तो समाज मे आया, किन्तु सेवा शब्द के साथ जुडी आत्म-लाघव की भावना यथार्थ रूप से नही आई। सेवा के इस युग में सहस्रो सार्वजनिक कार्यकर्ता निकल पड़े हैं और सहस्रो धनी समाज-हित के लिए अपना बहुत-कुछ न्यौछावर करने लगे हैं। किन्तु लगता है, सार्वजनिक सेवा में लगे व्यक्तियों के हृदय मे सेवा से भी अधिक अपने-आपको लोकप्रिय बना लेने की निष्ठा है। लोकप्रियता जनतन्त्र-प्रणाली का वह मंत्र है जो चुनावो की वेदी पर साधा जाने पर यश, अधिकार और सम्पति आदि सब कुछ देता है। चरित्र, विद्वत्ता, शासन-कुशलता आदि योग्यताओं के मन्त्र उतने फलप्रद नही होते, जितना लोकप्रियता का। समाज मे सेवा के लिए सेवा करने वाले कितने व्यक्ति है और यश, अधिकार के विनिमय के लिए सेवा का तप अर्जित करने वाले कितने ?

इसका तात्पर्य यह नही कि बहुत सारी सस्थाएँ और बहुत सारे कार्यकर्ता सेवा के लिए सेवा नही कर रहे है। भारतवर्ष में ऐसे लोगों की भी कमी नही है जो 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के सिद्धान्त को ही अपने जीवन का महामन्त्र मानकर चलते है। जहाँ तक चालू समाज-व्यवस्था का प्रश्न है, वहाँ कोई भी विचारक दो मत नही होगा कि समाज मे तथाप्रकार के कार्यकर्ताओ एव तथाप्रकार की सेवा-मूलक प्रवृत्तियो की कोई सामाजिक उपयोगिता नही है, किन्तु प्रश्न है आज नवीन समाज-व्यवस्था का। जब नये सिरे से एक नये समाज का निर्माण युग के नवीन चिन्तन के आधार पर हो रहा है, वहाँ प्रत्येक नागरिक सेवा नही व्यवस्था को चाहेगा। अब तक एक आधे राष्ट्र को छोडकर प्राय पूर्व व पश्चिम के सभी देशो मे सेवाभावी दानियो, कार्यकर्ताओ तथा सस्थाओ के योगदान से पाठशालाये और विश्वविद्यालय, कुएँ, तालाब, प्याऊ और बावडी, वाचनालय और पुस्तकालय (लायब्रेरीज) औषधालय और चिकित्सालय (हास्पीटल्स) सडकें और फुटपाथें, सदाव्रत और अन्नछत्र आदि प्रवृत्तियाँ चलती है, पर इनसे देश की किसी भी

समस्या का मौलिक हल नही निकलता। क्योकि वे सारी व्यवस्थाए आवश्यकता की दृष्टि से न होकर दानियो व कार्यकर्ताओ के सेवाभाव की पूरक होती है। उदाहरणार्थ—एक गाँव है। वहाँ एक धर्मशाला, एक पाठशाला व एक लायब्रेरी पर्याप्त है, पर यदि वहाँ बहुत सारे सम्पन्न व्यक्ति व कार्यकर्ता रह रहे है तो वहाँ अनेकों धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ आदि अवश्य हो जायेगी। यदि वही गाँव सामान्य कर्मकरो की बस्ती है व वहाँ ऐसे कार्यकर्ताओ की कमी है जो दूसरे गाँव से भी धन बटोरकर ला सके तो उस गाँव मे पर्याप्त पाठशालाएँ आदि भी नही बन पाएँगी। इसका अर्थ होगा कि पडोसी दो गाँवो मे दो प्रकार की स्थितियाँ पैदा हो जायेगी। यही हाल एक ही देश व प्रान्त के विभिन्न भागो मे होगा। प्रश्न हो सकता है क्या सेवाभावी लोग अपने आप अपने देश व प्रान्त मे शिक्षा, पानी, चिकित्सा आदि के विषय मे एक सामान्य अनुपात नही बिठा लेगे ? यह असम्भव होगा; क्योकि वहाँ एक नियामकता नही है। एक सरकार अपने राज्य मे ऐसा अनुपात बिठा सकती है, क्योकि वहाँ एक व्यवस्था है। अभी तो स्थिति यह है कि पानी, स्वास्थ्य व शिक्षा आदि की व्यवस्था का भार शासकवर्ग ने केवल सार्वजनिक सस्थाओ पर ही नही छोड़ रखा है, वे स्वय भी इस विषय मे अपने आपको उत्तरदायी समझते है और यथासम्भव उसमे हाथ बँटाते है। सेवाभावी सस्थाओ के आधार पर देश की कैसी व्यवस्था बनती है, यह तो तब पता चलता जब शासक-समुदाय जीवन की उन समस्याओ को केवल सेवाभावी संस्थाओं (राम भरोसे) पर छोड देता। अस्तु, सेवाभावी सस्थाओ की उपयोगिता आज के युग मे यही तक मर्यादित है कि जब तक राज्य-व्यवस्थाये जीवन-यापन की उक्त आवश्यकताओ को पूर्ण करने के लिए अपने आपको समर्थ न बना ले। आज हरएक राज्य-व्यवस्था ने इन कार्यों को अपने पर लिया है, पर वह उतना आर्थिक सामर्थ्य नही पा रही है। इसीलिए इस नई व्यवस्था व प्राचीन व्यवस्था के सन्धिकाल मे सेवाभावी संस्थाओं तथा राजकीय उपक्रमों का समझौता चल रहा है।

दूसरी बात यह है कि सेवा-भावना का सारा सिद्धान्त ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधूरा है। जहाँ बच्चों को जन्म से ही यह सिखलाया जाता है और इसे ही समाज का नारा बना दिया जाता है कि दूसरो का कष्ट दूर करो, गरीबो को दान दो आदि-आदि; वहाँ परोक्षतः समाज में दुःख, दर्द और पीड़ा बनी रहे, यह स्वीकार कर लिया जाता है; क्योकि सेवा स्वयं इन्ही पर आधारित है। गरीबी, रोग, पीड़ा आदि समाज मे न हों तो सेवा की कोई आवश्यकता ही नही रह जाती।

सिद्धान्त की पूर्णता वहाँ लगती है जहाँ 'सबकी सेवा करो' के बदले समाज का नारा हो 'किसी को कष्ट न दो', 'सबकी रक्षा करो' के बदले नारा हो 'किसी को मत मारो,' 'गरीबों को दान दो' के बदले नारा हो 'संग्रह मत करो'। सामान्य दृष्टि मे इन सामुदायिक घोषों मे कोई अन्तर नही लगता, पर गहराई से सोचने से वहॉ रात और दिन-सा भेद समझ मे आता है। पहले नारे मे रोग का इलाज है; दूसरे मे रोग पैदा ही न हो ऐसा वन्दोवस्त है। उदाहरणार्थ–'दान दो' इस घोष का समाज पर प्रभाव पड़ेगा; जो गरीब है उन्हे दान मिलता रहेगा, पर उससे उन्हे एक क्षणिक आराम होगा, उनके रोग को मूल से नही काटेगा। जो मिला वह खाया; फिर गरीब! इस प्रकार फिर दान फिर गरीब, फिर दान फिर गरीव की अनवस्था का प्रसंग सदा के लिए चलता ही रहेगा। 'दान दो' का प्रतिपक्षी नारा है 'सग्रह मत करो'। यह समस्या के मूल पर पहुँचता है। गरीबी व अमीरी, गड्ढा व ढेर इसी संग्रह-वृत्ति की देन है। यदि समाज का हरएक व्यक्ति अपनी औसतन आवश्यकता से अधिक सग्रह नही करेगा तो दान लेने व देने की कोई भी स्थिति पैदा नही होगी। कोई किसी की सेवा (दया) या दान पर नही जीयेगा। उस समय सारा समाज स्वतन्त्रता, समानता और विश्व-प्रेम की तिपाई पर अवस्थान करेगा।

समाजवादी जीवन-व्यवस्था

स्वतन्त्र भारत के नवनिर्माण को लेकर कांग्रेस के अध्यक्षपद से पं० जवाहरलाल नेहरू समाजवादी व्यवस्था की उद्घोषणा कर चुके है। सर्वोदय के सचालक आचार्य विनोबा भावे भी उस घोषणा के साथ यह कहकर "समाजवाद का[1] सम्बन्ध हिंसासे छूटकर जब अहिंसा से जुड़ गया तो वह सर्वोदयवाद ही हो गया है" संगति बिठा रहे है। यह स्थिति किसी भी समाज-शास्त्री से छिपी नही है कि समाजवाद की अन्तिम मजिल पर जहाँ उत्पादन के साधन, उत्पाद्य वस्तु और भूमि आदि जीवन के प्रत्येक उपकरण समाज के है और समाज का प्रत्येक व्यक्ति समुचित श्रम देकर सविभाग पाने का अधिकारी है, उस व्यवस्था मे वहाँ की जनता के स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्न, वस्त्र की चिन्ता राज्य-व्यवस्था अपने पर ले लेती है; वैयक्तिक दान की व सस्था विशेष के रूप मे सेवा कार्य की वहाँ कोई अपेक्षा नही रह जाती। रूढ लोगो का यह प्रश्न हो सकता है कि यदि ऐसी व्यवस्था सफल हो गई तो अनादिकाल से चलनेवाले दान और सेवा (दया) धर्म का लोप ही हो जायगा। किन्तु उन्हे अब युग के साथ अपने विशाल दृष्टिकोण से हरएक बात को परखना होगा। स्थिति यह है कि सेवा, दान आदि कार्य सदा से ही समाज के अंग है। समाज-व्यवस्था के साथ सामाजिक कर्तव्य याने समाज-धर्म बदलता रहता है, नये-नये युग मे उसकी नई-नई परिभाषाएँ बनतीं रहतीं है। आज तक की समाज-व्यवस्था में दान या सेवादि कार्य समाज धर्म के महत्त्वपूर्ण अंग थे। नई समाज-व्यवस्था में "एक के लिए सब और सबके लिए एक" के सिद्धान्त को मानते हुए सबके सुख और दुःख की अनुभूति में समान अनुभूति करना, जीवनोपयोगी सामग्री मात्र को वैयक्तिक सम्पत्ति न मानकर देश व समाज की सम्पत्ति मानना व देश मे प्रचलित भूमि, धन आदि के वैयक्तिक अधिकारों को वैध प्रयत्नो से

---

१. सर्वोदय सन् ५५ फरवरी

हटाकर सामुदायिक अधिकार मे लेना ही सेवा-धर्म—या किसी भी नाम से कहा जानेवाला समाज-धर्म रह जायेगा।

जो लोग यह सोचते है कि चिरकाल से प्रचलित दान, दया (सेवा) आदि हमारी आत्मा के शाश्वत धर्म थे, अव वे केवल समाज-धर्म रह जाएँगे तो हमारे लिए मुक्ति का द्वार ही वन्द हो जायेगा। उनके लिए समझने की वात यह है कि पहले और अब मे केवल व्यवस्था-भेद ही है। उस व्यवस्था-भेद से अहिंसा-सत्य रूप स्वधर्म का लोप नही होता। यदि हम समाज-रचना का एक ऐतिहासिक अध्ययन करते है तो वह आज तक व्यष्टि से समष्टि की ओर बढती आ रही है। जहाँ व्यक्ति से परिवार वना, वहाँ मनुष्य की ऐसी समझ वनी कि एक परिवार के हम सव एक है। उसी समष्टिवाद का आज तक का चरम विकास है कि जैसे अव तक तुम पारिवारिक जनो के वारे मे सोचते थे, हम सब एक है, अव अपने समस्त देशवासियो के वारे मे सोचो कि हम सब एक है। इससे भी आगे समष्टिवाद विकसित हुआ तो समाज-व्यवस्था का पहला नारा यह होगा समस्त मानव जाति एक परिवार है।

पहले जव व्यक्ति अपने परिवार की चिन्ता करता तो परिवार तक के समस्त लोगो के लिए भोजन, पानी, रहन-सहन की एक व्यवस्था होती थी। उस समय अपने पारिवारिक वच्चो की शिक्षा के लिए उसे अलग अध्यापक की व्यवस्था करनी पडती थी। यदि आस-पास जलाशय न होता तो पारिवारिक जनो के लिए ही एक कुआँ खुदाने की जरूरत पड़ती। किन्तु इस प्रणाली मे भी विकास हुआ। शिक्षा की सामुदायिक व्यवस्था के लिए गाँव या मुहल्ले के लोग एक पाठशाला, पानी की पूर्ति के लिए एक कुआँ वनाने लगे। पता नही चलता कि जव व्यक्ति परिवार की शिक्षा व पानी की व्यवस्था के लिए अपनी अर्थ-राशि से कुछ खर्च करता था, तव उस पर धर्म या पुण्य की कोई छाप नही थी, किन्तु ज्योंही गाँव या मुहल्ले की सामुदायिक शिक्षा व पानी की व्यवस्था के लिए सामुदायिक अर्थ-संग्रह (चन्दा)

की प्रथा चली, त्योंही हरएक चन्दा देनेवाला व्यक्ति अपने आपको धार्मिक अनुभव करने लगा। समाजशास्त्र की दृष्टि से तो वह सुविधावाद था कि जिससे एक-एक परिवार को एक-एक कुआँ व एक-एक पाठशाला का खर्च न उठाना पड़े और अल्प व्यय और अल्प श्रम मे समस्त गाँव व मुहल्ले वालों के लिए सबकी एक व्यवस्था बन जाये। व्यवस्था के इस परिवर्तन में ऐसी कोई बात नही थी कि उसमे योगभूत होकर जिसका कि वह स्वयं भी एक फलभोक्ता है, कोई आदमी धार्मिक होने का अहं करे। सामूहिक व्यवस्था में अपने हिस्से का योग दे देना यदि कोई विशेष धर्म है ,तब तो तथाप्रकार का धर्म अब किसको मिलेगा, यह केवल प्रश्न ही रह जायेगा, जबकि शासन-व्यवस्थाओं ने शिक्षा और पानी को व्यक्ति-व्यक्ति के लिए सुलभ बना देना अपना दायित्व समझ लिया है। राज्य-व्यवस्था सामूहिक करों से अर्थ-सग्रह करती है और सामूहिक हित के लिए उसका उपयोग करती है और जनतन्त्र की शासन-व्यवस्था स्वयं सामूहिक है। जहाँ व्यवस्था सबकी और सबके लिए हो, वहाँ धर्म और पुण्य किसके द्वारा और किसके लिए ? फिर भी यदि सामूहिक व्यवस्था मे धर्म और पुण्य का मोह रहता है तो फिर तो वह पारिवारिक व्यवस्था में भी क्यों नही मान लिया गया होता, जहाँ सब कमाते है और सब खाते है या कुछ कमाते है और सब खाते है।

पाठशाला, कुआँ, चिकित्सालय आदि धर्म और पुण्य के महान् साधन माने जानेवाले कार्य समाजवादी युग में शासन-व्यवस्था के ही अंग बन जाते है। समाजवादी शासन-व्यवस्था तथाप्रकार की आवश्यकताओं को केवल संग्रह और शोषण की भित्ति पर खड़े हुए धनियो के धर्म व पुण्य कमाने के लिए नही छोड़कर उसे अपने दायित्व का विषय बना लेगी। नई जीवन-व्यवस्था के निर्माण में अपेक्षा है कि आज जन-जन अपने बद्धमूल संस्कारो से ऊँचे उठकर के नये आलोक मे जीवन के नये मूल्यों को खोज निकाले।

लेखक की अन्य पुस्तकें

१ जैनधर्म और बौद्धधर्म
२. अहिंसा विवेक
३ अहिंसा पर्यवेक्षण
४. जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान [हिन्दी और गुजराती]
५. अणुव्रत जीवन दर्शन [हिन्दी और बंगला]
६. आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी [हिन्दी और गुजराती]
७ प्रेरणा-दीप
८. अणु से पूर्ण की ओर
९. अहिंसा के अंचल मे
१०. अणुव्रत विचार
११. अणुव्रत दृष्टि
१२ अणुव्रत क्रान्ति के बढ़ते चरण
१३ अणुव्रत-आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग [हिन्दी और बंगला]
१४. अणुव्रत दिग्दर्शन
१५ युग प्रवर्तक भगवान् श्री महावीर
१६ आचार्य श्री तुलसी : एक अध्ययन
१७ तेरापंथ दिग्दर्शन
१८. युगधर्म तेरापथ [हिन्दी, अंग्रेजी उड़िया और कन्नड़]
१९ बाल दीक्षा : एक विवेचन

Author's Books in English

1 Jain Philosophy and modern Science
2 The Anuvrat Ideology
3. From Atom to Absolute
4. Light of Inspiration.
5 Pity and charity in the New Pattern of Society
6 A Pen-sketch of Acharya shri Tulsi
7 The strides of the Anuvrat Movement
8 Glimpses of Terapanth.

"अणुव्रत-आन्दोलन में मेरा सदा से विश्वास रहा है और जब मै इसके बहुमुखी प्रसार की चर्चाए चारों ओर से सुनता हूँ, तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इसकी सफलता का आधार यह मानता हूँ—आचार्य तुलसी के नेतृत्व में ६५० जीवन-दानी साधु इसके पीछे लगे है। काम तभी होता है, जब लगन से काम करने वाले कार्यकर्ता उसमें जुटे। दूसरी बात यह है-साधु-सन्तों के उपदेशों का ही असर धर्म-प्रधान भारतवर्ष के जन-जीवन पर पड़ता है।

मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता तो इस बात से है कि देश में इस आन्दोलन ने सार्वजनिक रूप ले लिया है। मैं समझता हूँ कि अब लोगों में ये भावनाए नही रह गई है कि यह कोई साम्प्रदायिक आन्दोलन है। इस आन्दोलन का एक सार्वजनिक रूप ही इसके सुनहरे भविष्य का सूचक है।

व्रत तो अच्छे है ही, किन्तु विचारों की शुद्धि अधिक व्यापक रूप ले सकती है। बुराइयों का उन्मूलन तभी होता है, जब सारे वातावरण में नैतिकता के प्रति उत्साह भर जाता है।

—राजेन्द्रप्रसाद (राष्ट्रपति)

●

हम ऐसे युग में रह रहे है, जब हमारा जीवत्मा सोया हुआ है। आत्मबल का अकाल है और सुस्ती का राज है। हमारे युवक तेजी से भौतिकवाद की ओर झुकते चले जा रहे है। इस समय किसी भी ऐसे आन्दोलन का स्वागत हो सकता है, जो आत्मबल की ओर ले जाने वाला हो। इस समय हमारे देश मे अणुव्रत-आन्दोलन ही एक ऐसा आन्दोलन है, जो इस कार्य को कर रहा है। यह काम ऐसा है कि इसको सब तरफ से बढावा मिलना चाहिए।

—एस० राधाकृष्णन् (उपराष्ट्रपति)

अणुव्रत-आन्दोलन

प्रवर्तक

आचार्य श्री तुलसी

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति प्रकाशन

प्रकाशक : —
अ० भा० अणुव्रत समिति
१५३२ चन्द्रावल रोड, सब्जी मंडी
दिल्ली

दसम् संस्करण १००००
१ फरवरी १९६१
मूल्य १२ नये पैसे

मुद्रक :—
सत्य प्रिंटिंग प्रेस,
२, शिवनगर करौल बाग
दिल्ली—५

प्रकाशकीय

अणुव्रत-आन्दोलन के सफल प्रयोग को चलते आते बारह वर्ष होने चले है। आन्दोलन ने राष्ट्र मे एक अभिनय विचार-चेतना पैदा की है। भौतिकवाद के माधन मंचार से धूमिल वने वातावरण मे अध्यात्म जागृति की नव-किरण का उन्मेष होने चला है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैमे शाश्वत आदर्शों का युग-व्यवहार्य प्रयोग इस आन्दोलन ने जन-जन के समक्ष रखा है। जैसा कि आन्दोलन का घोष है, सयम और सच्चारित्र्य का जीवन ही वास्तविक जीवन है, जिस ओर जन-जन को प्रेरित करने के लिये आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्य श्रीतुलसी एवं उनके आदेशानुवर्ती लगभग ६५० परिव्राजकगण सतत् प्रयत्नशील है।

वदलती हुई युगीन परिस्थितियो के साथ-साथ बुराइयो के रूप भी वदलते हैं। उन पर सीधी चोट की जा सके, एतदर्थ अणुव्रत-आन्दोलन के अन्तर्गत अहिंसा आदि विश्वजनीन आदर्शों के आधार पर जो छोटे-छोटे व्यवहार्य नियमो की सकलना की गई, वस्तुतः उससे विपथगामी लोक-जीवन को सत्पथ की ओर उन्मुख व अग्रसर होने मे एक पगडडी जैसा सहारा मिला है। इस योजनावद्ध महाअभियान ने मानव ने जो आत्म-चेतना और नैतिक-शुद्धि की सद्‌बुद्धि पैदा की है, भारत के आध्यात्मिक जागरण एव नैतिक पुनरुत्थान के इतिहास में वह सदा स्वर्णाक्षरो मे लिखी रहेगी। यह श्रेयस् काम हास्रोत वडा उज्जवल भविष्य अपने गर्भ मे लिए है, जो किसी भी विज्ञ व्यक्ति के लिए अतर्क्य नही।

आन्दोलन के इस बारह वर्षीय प्रयोग-काल में आन्दोलनगत नियम-परम्परा को लेकर आन्दोलन-प्रवर्तक के समक्ष अनेक प्रकार के विचार आये, चिन्तन चला। अणुव्रत-नियम व्यापक रूप से अधिकाधिक व्यवहार्य एवं अन्तरतम का संस्पर्श करने वाले बनें, इस दृष्टि से समय-समय पर उनमें कुछ परिष्करण भी होता रहा।

अब तक हुए समग्र परिष्करण को लिए आन्दोलन के नियमों का संशोधित रूप यह है· जिसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करते हमे वडी प्रसन्नता है।

आशा है, नैतिक पुनरुत्थान मे निष्ठा रखने वाले पाठक इससे नव-जीवन की प्रेरणा लेगें।

१५३२, चन्द्रावल रोड
सब्जीमंडी, दिल्ली
दिनाक ३१ मार्च १९५८

मन्त्री,
अ० भा० अणुव्रत समिति

जीवन की आध्यात्मिक व नैतिक सिंचाई के लिए अणुव्रत-आन्दोलन एक योजना है। उसका लक्ष्य सामाजिक व राजनैतिक उन्नति से बहुत अधिक व्यापक है। यह आध्यात्मिक उन्नति है। आध्यात्मिक उन्नति न केवल उच्चतम उन्नति है, परन्तु सर्वतोमुखी उन्नति है। इसमे अपना निज का हित व दूसरो का हित भी सम्मिलित है।

—आचार्य तुलसी

विषयानुक्रमणिका

आचार और विचार ये जहा दो है, वहां एक भी है। इनमें जहां पौर्वापर्य (पहले-पीछे का भाव है, वहां नही भी है। विचार के अनुरूप ही आचार वनता है अथवा विचार ही स्वयं आचार का रूप लेता है। आर्ष-वाणी में मिलता है—"पहले विचार और पीछे आचार।" आचार शुद्ध नही तो विचार कैसे शुद्ध होगा ? शुद्ध विचार के विना आचार शुद्ध नहीं वनता। आचार विचार के अनुकूल चले, तव उनमें द्वैध नही रहता। विचार जैसा आचार नही वनता, वहाँ वे दो वन जाते हैं। अपेक्षा है, विचार और आचार में सामजस्य आये।

कई व्यक्ति ऐसे है, जिनमें विचारों की स्फुरणा नही है, उन्हें जगाने की आवश्यकता है। कई व्यक्ति जाग्रत है. किन्तु उनकी गति सयम की दिशा में नही है, उनकी गति वदलने की आवश्यकता है। कई व्यक्ति सही दिशा में है, किन्तु उनके विचार केवल विचार तक ही सीमित है, उन्हे सावधान करने की आवश्यकता है।

मूल वात है—आचार-शुद्धि की आवश्यकता। उसके लिए विचार-क्रान्ति चाहिए। उसके लिए सही दिशा में गति और इसके लिए जागरण अपेक्षित है।

राजनीति की धारा परिस्थिति को बदलना चाहती है और वह उसको बदल सकती है। अणुव्रत का मार्ग संयम का मार्ग है। इसके द्वारा हमें व्यक्ति को वदलना है। परिस्थिति वदले, इसमें हमारा विरोध नहीं, किन्तु उसके वदलने पर भी व्यक्ति न बदले अथवा दूसरे पथ की ओर मुड़ जाय, यह वांछनीय नहीं। सामग्री के अभाव में जो कराहता रहे, वही उसे पाकर विलासी वन जाये, यह उचित नहीं। संयम की साधना नहीं होगी, तव यह होता है। संयम का लगाव न गरीवी से है, न अमीरी से। इच्छाओं पर विजय हो—यही उसका स्वरूप है। इच्छाएँ सम्भव है एक साथ नष्ट भी हों, किन्तु उन पर अंकुश तो रहना ही चाहिए। शक्तिशाली और पूँजीपति वर्ग को इच्छाओं पर नियन्त्रण करना है और अधिक संग्रह को भी त्यागना है। गरीवों के लिए अधिक संग्रह के त्याग की वात नहीं आती, किन्तु इच्छाओं पर नियन्त्रण करने की वात उनके लिए भी वैसी ही महत्त्वपूर्ण है, जैसी धनी वर्ग के लिए है।

वड़े या उच्च कहलानेवाले वर्ग के लिए यह चुनौती है कि वह सन्तोषी वने। निम्न वर्ग स्वयं उनके पीछे चलेगा। ऐसा नहीं होता है, तव तक देखा-देखी या स्पर्धा मिटती नही।

विश्व की जटिल परिस्थितियों, मानसिक और शारीरिक वेदनाओं को पाते हुए भी क्या मनुष्य-समाज नही चेतेगा? जीवन की नश्वरता और सुख-सुविधाओं की अस्थिरता को समझते हुए भी क्या वह नहीं सोचेगा?

जीवन की दिशा वदलने के लिए हम सबका एक घोष होना चाहिए—'संयमः खलु जीवनम्"। अणुव्रत-आन्दोलन का यही घोष है। जीवन के क्षणों में शान्ति आये, उसके लिए वह नितान्त आवश्यक है।

आचार्य तुलसी

अणुव्रत की परिभाषा

अणुव्रत का अर्थ है—प्रत्येक व्रत का अणु से लेकर सब व्रतों का क्रमशः बढता हुआ पालन। उदाहरण के लिए कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रह मे विश्वास तो रखता है, लेकिन उनके अनुसार चलने की ताकत अपने मे नही पाता, इस पद्धति का आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसा से दूर रहने या एक हद के बाहर और किसी खास ढग से सग्रह न करने का सकल्प करेगा और धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढेगा। ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते है।

—किशोरलाल घ० मश्रुवाला

आदि-वचन

पवित्रता की पहली मंजिल

मनुष्य बुद्धि-कुशल प्राणी है। उसकी क्रिया पहले बौद्धिक होती है, फिर दैहिक। इसलिए उसकी सारी क्रियाएं बुद्धि की उपज होती हैं, फिर चाहे समस्याएं हों या समाधान। समस्याएं स्व-वशता में निर्मित होती है, समाधान उनसे उकता कर ढूंढ़ना पड़ता है—वह परवशता है। जीभ पर नियन्त्रण न हो, तो अधिक खाने में आ जाता है। इससे और समस्या खड़ी होती है। आदमी रोगी बन जाता है। रोग कष्ट देता है, तो उसके समाधान की बात सूझती है। दवा ली जाती है, रोग चला जाता है। फिर वही क्रम। पेट के लिए नही, किन्तु जीभ के लिए खाता है। फिर समस्या खड़ी होती है, समाधान चाहता है। समाधान इसलिए नही कि जीभ पर नियन्त्रण रहे, किन्तु इसलिए कि जीभ को स्वाद भी मिलता रहे और रोगी होने से भी बचा जाय। यह है आदत की लाचारी और औषधि के साथ खिलवाड़।

धर्म तो सहज होता है। वह मनुष्य की बुद्धि की उपज नहीं है। बुद्धि की उपज है, उसका उपयोग। उपयोग में वंचन

चलती है। बुराई करने पर मानसिक असन्तोष बढ़ता है और समाधान के लिए धर्म की शरण ली जाती है, परमात्मा की प्रार्थना की जाती है और इससे कुछ शान्ति मिलती है। फिर बुराई की ओर पाँव बढ़ते हैं, फिर अशान्ति और फिर धर्म की शरण ! धर्म की यह शरण पवित्र और शुद्ध बनने के लिए नहीं ली जाती, किन्तु बुराई का फल—यहाँ या अगले जन्म में कभी और कही भी न मिले, इसलिए ली जाती है। तात्पर्य यह है कि बुरा बने रहने के लिए आदमी धर्म का कवच धारण करता है। यही है धर्म के साथ खिलवाड़ या आत्म-वंचना।

व्रत-ग्रहण से आत्म-सयमन सधता है। उसकी मर्यादा यह है कि बुराई को सुरक्षित रखने के लिए धर्म की शरण न लो, किन्तु उससे बचने के लिए लो। धर्म पवित्र आत्मा में ठहरता है (धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ) अणुव्रत-आन्दोलन का उद्देश्य है—जीवन पवित्र बने। दैनिक व्यवहार में सचाई और प्रामाणिकता आये। धर्म की भूमिका विकसित हो।

धर्म का नवनीत

जैन, बौद्ध, वैदिक, इस्लाम, ईसाई आदि अनेक धर्म-सम्प्रदाय है। ये धर्म नही है, धर्म को समझने की विचार-धाराएं है। धर्म के पीछे जैन या बौद्ध नाम की मुद्रा नही है। वह सबके लिए समान है। धर्म को समझाने वाले तीर्थङ्करों, आचार्यों और उपदेशकों के पीछे सम्प्रदाय या मत चलते है।

प्रत्येक व्यक्ति की विशुद्धि का नाम ही धर्म है। यह विशुद्धि साधना और तपस्या से प्राप्त होती है। अहिंसा धर्म है। उसे समझने की पद्धति भिन्न-भिन्न हो सकती है। उसकी वास्तविकता भिन्न नहीं हो सकती। मन्थन की प्रक्रिया भिन्न होने पर भी नवनीत में कोई अन्तर नहीं होता—मात्रा थोड़ी-बहुत भले हो। अहिंसा सब धर्म-मतों का नवनीत है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इसीके रूपान्तर हैं। आहार संयम, सादगी आदि अहिंसा के ही चिन्ह हैं। अणुव्रत-आन्दोलन सर्वसाधारण के लिए सर्व-सम्मत नवनीत प्रस्तुत करता है, इसलिए कि मौलिक धर्म का आचरण बढे और धर्म के नाम पर चलने वाले साम्प्रदायिक आग्रह मिट जाये।

समन्वय और सहिष्णुता की दिशा

'दूसरों का अनिष्ट नही करूंगा', इसमें दूसरों का इष्ट स्वयं सध जाता है। 'दूसरों का इष्ट करूंगा' इसकी मर्यादाएं बडी जटिल और विवादास्पद हैं। कोई बड़े जीव-जन्तुओं के इष्ट-साधन के लिए छोटे जीव-जन्तुओं के अनिष्ट को क्षम्य मानता है, कोई मनुष्य के इष्ट-साधन के लिए छोटे-बड़े सभी जीव-जन्तुओं के अनिष्ट को क्षम्य मानता है। कोई बड़े मनुष्यों के लिए छोटे मनुष्यों के अनिष्ट को क्षम्य मानता है। कोई किसी के लिए भी किसी के अनिष्ट को क्षम्य नही मानता। इस प्रकार अनेक मतवाद हैं। इन मत-वादों को मिटाना कठिन है। इनको लेकर लड़ना अधर्म है, हिंसा है। इस परिस्थिति में सही

मार्ग यही है कि मौलिक तत्त्वों का समन्वय किया जाय, सामुदायिक रूप में आचरण किया जाय और विचार भेदों के स्थलों मे सहिष्णुता बरती जाय। अणुव्रत-आन्दोलन की एक प्रतिज्ञा है—'मै सब धर्मों के प्रति तितिक्षा के भाव रखूंगा।'

विधि-निषेध

नियमों की रचना 'नही' के रूप मे अधिक है, 'हां' में कम। विधायक क्रिया की मर्यादा नही हो सकती। वह देश, काल, परिस्थिति और व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। वह कहां, कब, क्या, कितना करे—इसकी मर्यादा सर्वसाधारण रूप से नही हो सकती। निषेध की मर्यादा हो सकती है। व्यक्ति को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है, किन्तु दूसरों की स्वतन्त्रता में वह बाधक न बने तब। सब लोग अपने आप पर नियन्त्रण नही करते, इसीलिए सामूहिक नियमों से जनता पर नियन्त्रण किया जाता है। आखिर नियमन का रूप अधिकांशतया निषेधात्मक होगा। जो स्वयं अपने पर अंकुश रख सकता है, उसे बाहरी नियमन की अपेक्षा नही रहती। फिर तो निरोधक शक्ति बढ़ती है, आत्म-संयम बढ़ता है। कर्तव्य में पवित्रता अपने आप आ जाती है। अणुव्रत-आन्दोलन की मुख्य अपेक्षा यह है कि व्यक्ति-व्यक्ति में अनाचार से अपना बचाव करने की क्षमता उत्पन्न हो। फिर आचार तो उनकी अपनी मान्यता व विश्वास पर निर्भर होगा। चरित्र की न्यूनतम मर्यादाए जैसे सबके लिए समान रूप से स्वीकार्य हो सकती है, वैसे आचार या कर्तव्य की पद्धति

नही हो सकती। उसके पीछे भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदाय के दृष्टिकोण जुड़ जाते है।

असाम्प्रदायिक आन्दोलन

अणुव्रत-आन्दोलन किसी का नहीं और सबका है, किसी एक सम्प्रदाय के लिए नहीं; सबके लिए है। इसका स्वरूप चारित्रिक है, इसलिए इसमें अधिकार और पद की व्यवस्था नहीं है। अधिकार की मर्यादा है, आत्मानुशासन और आत्म-निरीक्षण; और पद है, 'अणुव्रती'—जो व्रत ग्रहण. करने से ही प्राप्त होता है।

चरित्र का आन्दोलन

यह आन्दोलन चरित्र का आन्दोलन है। आज विश्व को चरित्र की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उसने सबसे अधिक किसी वस्तु को खोया है तो चरित्र को। विश्व की दुःखद अवस्था का प्रधान कारण चरित्र-हीनता ही है। जीवन की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती, तो जीवन जटिल बनता है। इसलिए अर्थनीति के सुधार की आवश्यकता महसूस होती है। वह कोई शाश्वत नही होती, बदल सकती है और बदलती भी है। कई राष्ट्रों में वह बदल चुकी है फिर भी वे अभय और अनातंकित नही है। जीवन-निर्वाह और विलास के साधन सुलभ होने पर भी वह शान्त नही है। इससे जान पड़ता है—शान्ति का मार्ग कुछ और है। वह यही है—चरित्र का विकास हो। बाहर की सब सुविधाएं है, पर अन्दर सन्तोष नही, तो शान्ति

कहां ? बाहर की सुविधाएँ नहीं और अन्दर सन्तोष नहीं तो फिर अशान्ति का कहना ही क्या ? बाहरी सुविधाएं हों और अन्दर सन्तोष हो—ऐसी शान्ति की स्थिति में भी कोई विशेष बात नहीं। किन्तु बाहरी असुविधाओं के होते हुए भी अगर आन्तरिक सन्तोष हो, तो भी शान्ति प्राप्त की जा सकती है—व्रतों के ग्रहण से। यही व्रत का मर्म है।

सर्व-साधारण भूमिका

जीवन की न्यूनतम मर्यादा सबके लिए समान रूप से ग्राह्य होती है—फिर चाहे वे आत्मवादी हों या अनात्मवादी; धर्म की कठोर साधना में रस लेने वाले हों या न हों। अनात्मवादी पूर्ण अहिंसा में विश्वास भले ही न करे, किन्तु हिंसा अच्छी है—ऐसा तो वे नही कहते। राजनीति या कूटनीति को अनिवार्य मानने वाले भी यह नही चाहने कि उनकी पत्नियां उनसे छलनापूर्ण व्यवहार करे। असत्य और अप्रामाणिक भी दूसरों से सचाई और प्रामाणिकता की आशा रखा करते हैं। बुराई सचमुच मनुष्य की दुर्बलता है, स्थिति नही। सर्वसामान्य स्थिति भलाई है, जिसकी साधना व्रत है। अणुव्रत-आन्दोलन उसीकी भूमिका है।

अणुव्रत

अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत। व्रत छोटा या बडा नहीं होता, किन्तु उसका अखण्ड ग्रहण न हो, तब वह अणु या अपूर्ण होता है। 'अणुव्रत' जैन आचार का विशिष्ट शब्द है। पतंजलि भी

देश-काल की सीमा से मर्यादित अहिंसा आदि को व्रत और देश-काल की मर्यादा से मुक्त अहिंसा आदि को महाव्रत बताते हैं।

व्रत-ग्रहण का उद्देश्य

व्रतों के पीछे आत्म-शुद्धि की भावना है। ऐहिक लाभ या व्यवस्था के लिए व्रतों का ग्रहण नही होना चाहिए। उनके ग्रहण से ऐहिक लाभ स्वय सधता है। व्रतों के ग्रहण का उद्देश्य तो आत्म-शोधन ही होना चाहिए। समाज की व्यवस्था ही अगर साध्य हो, तो वह राजकीय सत्ता से, व्रतों की अपेक्षा अधिक सरलता पूर्वक हो सकती है। किन्तु व्रतों की भावना इससे बहुत आगे है। वह परमार्थ-मूलक है। उससे स्वार्थ और परमार्थ स्वयं फलित होते है।

प्रारम्भ से अब तक

इस कार्यक्रम का प्रारम्भ छोटे रूप में हुआ था। यह इतना व्यापक रूप लेगा, इसकी कल्पना भी न थी। जनता ने आवश्यक समझा—जैन-जैनेतर सभीने इसे अपनाया–यह प्रसन्नता की बात है। मेरी भावना साकार बनी। उसमें मेरे शिष्यों—साधु और श्रावकों का वांछित सहयोग रहा। उन्होंने नियम तथा अन्य आवश्यक विषय भी सुझाये। आलोचकों की आलोचनाओं से मैंने लाभ उठाया। ग्राह्य अंश लिया और उपेक्षणीय की उपेक्षा की। उचित सुझावों को स्वीकार करने के लिए आज भी मै तैयार हूँ।

व्रत-परम्परा भारतीय मानस की अति प्राचीन परम्परा है। मैंने इसका कोई नया आविष्कार नही किया है। मैंने सिर्फ उस प्राचीन परम्परा को जीवन-व्यापी बनाने की प्रेरणा मात्र दी है। यह मेरा सहज धर्म है। मुझे आशा है, लोग जीवन-शुद्धि के व्रतों को प्राथमिकता देगे। जटिल स्थितियों के बावजूद इन्हें अपनायेगे। असल में जटिल तथा विकट परिस्थितियों में ही व्रतों के संकल्प की कसौटी होती है। कसौटी के मौकों को आमन्त्रित करना ही व्रतों की सफलता की ओर पग बढ़ाना है।

—आचार्य तुलसी

लक्ष्य और साधन

१—अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है :—

(क) जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना।

(ख) अहिंसा और विश्व-शान्ति की भावना का प्रसार करना।

२—इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन-स्वरूप मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का व्रती बनाना।

३—अणुव्रतों को ग्रहण करने वाला "अणुव्रती" कहलायेगा।

४—जीवन-शुद्धि में विश्वास रखने वाले किसी भी धर्म, दल, जाति, वर्ण और राष्ट्र के स्त्री-पुरुष "अणुव्रती" हो सकेंगे।

५—अणुव्रती तीन श्रेणियों में विभक्त होंगे—

(क) अणुव्रतों, शील और चर्या तथा आत्म-उपासना के व्रतों को स्वीकार करने वाला "अणुव्रती"।

(ख) इनके साथ-साथ परिशिष्ट संख्या १ में बतलाये गये विशेष व्रतों को स्वीकार करने वाला 'विशिष्ट अणुव्रती'।

(ग) परिशिष्ट संख्या २ व ३ में बतलाये गये ग्यारह व्रतों या वर्गीय नियमों को स्वीकार करने वाला "प्रवेशक अणुव्रती" कहलायेगा।

६—व्रत-भंग होने पर अणुव्रती को प्रायश्चित्त करना आवश्यक होगा।

७—व्रत-पालन की दिशा में अणुव्रतियों का मार्ग-दर्शन प्रवर्तक करेंगे।

: १ :

अहिंसा अणुव्रत

"अहिंसा सव्वभूयखेमंकरी" (जैन)

(अहिंसा सब जीवों के लिए कल्याणकारी है।)

"अहिंसा सव्वपाणानं अरियो ति पवुच्चति" (बौद्ध)

(अहिंसा सब जीवों का आर्य—परम तत्त्व है।)

"मा हिंस्यात् सर्व भूतानि" (वैदिक)

(किसी भी जीव की हिंसा मत करो।)

अहिंसा में मेरी श्रद्धा है। हिंसा को मैं त्याज्य मानता हूं। अहिंसा के क्रमिक विकास के लिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूं :—

१—चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक घात नहीं करूंगा।

२—आत्म-हत्या नहीं करूंगा।

३—हत्या व तोड़-फोड़ का उद्देश्य रखने वाले दल या संस्था का सदस्य नहीं बनूंगा और न ऐसे कार्यों में भाग लूंगा।

४—जातीयता के कारण किसी को अस्पृश्य या घृणित नहीं मानूंगा।

५—सब धर्मों के प्रति तितिक्षा के भाव रखूंगा—भ्रान्ति नहीं फैलाऊंगा व मिथ्या-आरोप नही लगाऊंगा।

६—किसी के साथ क्रूर-व्यवहार नहीं करूंगा।

(क) किसी कर्मचारी, नौकर या मजदूर से अति श्रम नहीं लूंगा।

(ख) अपने आश्रित प्राणी के खान-पान व आजीविका का कलुष-भाव से विच्छेद नहीं करूंगा।

(ग) पशुओं पर अति भार नहीं लादूंगा।

सत्य अणुव्रत

"सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः" (वैदिक)

(सत्य सम्पूर्णतः मेरी रक्षा करे।)

"यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची" (वौद्ध)

(जिसमें धर्म और सत्य है, वह पवित्र है।)

"सच्च लोगम्मि सारभूय" (जैन)

(सत्य लोक में सारभूत है।)

सत्य में मेरी श्रद्धा है। असत्य को मैं त्याज्य मानता हूं। सत्य के क्रमिक विकास के लिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूं :—

१—क्रय-विक्रय में माप-तौल, संख्या, प्रकार आदि के विषय में असत्य नहीं बोलूंगा।

२—जान-बूझकर असत्य निर्णय नही दूंगा।

३—असत्य मामला नही करूंगा और न असत्य साक्षी दूंगा।

४—सौंपी या धरी (बन्धक) वस्तु के लिए इन्कार नही करूंगा।

५—जालसाजी नहीं करूंगा।

(क) जाली हस्ताक्षर नही करूंगा।

(ख) झूठा खत या दस्तावेज नहीं लिखाऊंगा।

(ग) जाली सिक्का या नोट नहीं बनाऊंगा ।

६—वंचनापूर्ण व्यवहार नही करूंगा ।

(क) मिथ्या प्रमाण-पत्र नहीं दूंगा ।

(ख) मिथ्या विज्ञापन नहीं करूंगा ।

(ग) अवैध तरीकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होने की चेष्टा नहीं करूंगा ।

(घ) अवैध तरीकों से विद्यार्थियों के परीक्षा में उत्तीर्ण होने मेंसहायक नहीं बनूंगा ।

७—स्वार्थ, लोभ या द्वेषवश भ्रमोत्पादक और मिथ्या संवाद, लेख व टिप्पणी प्रकाशित नहीं करूंगा ।

: ३ :

अचौर्य अणुव्रत

"लोके अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मण" (बौद्ध)

(जो अदत्त नहीं लेता, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ।)

"लोभाविले आययइ अदत्तं" (जैन)

(चोरी वही करता है, जो लोभी है।)

अचौर्य में मेरी श्रद्धा है। चोरी को मैं त्याज्य मानता हूँ। अचौर्य के क्रमिक-विकास के लिये मैं निम्न व्रतो को ग्रहण करता हूँ :—

१—दूसरों की वस्तु को चोर-वृत्ति से नही लूंगा।

२—जान-बूझकर चोरी की वस्तु को नही खरीदूंगा और न चोर को चोरी करने में सहायता दूंगा।

३—राज्य-निषिद्ध वस्तु का व्यापार व आयात-निर्यात नहीं करूंगा।

४—व्यापार में अप्रामाणिकता नहीं बरतूंगा।

(क) किसी चीज में मिलावट नहीं करूंगा। जैसे—दूध में पानी, घी में वेजीटेबल, आटे में सिंघराज, औषधि आदि में अन्य वस्तु का मिश्रण।

(ख) नकली को असली बताकर नहीं बेचूंगा। जैसे—कलचर मोती को खरे मोती बताना, अशुद्ध घी को शुद्ध घी बताना आदि।

(ग) एक प्रकार की वस्तु दिखाकर दूसरे प्रकार की वस्तु नही दूँगा।

(घ) सौदे के बीच में कुछ नही खाऊंगा।

(ङ) तौल-माप में कमी-बेसी नही करूंगा।

(च) अच्छे माल को बट्टा काटने की नीयत से खराब या दागी नही ठहराऊँगा।

(छ) व्यापारार्थ चोर-बाजार नहीं करूंगा।

५—किसी ट्रस्ट या संस्था का अधिकारी होकर उसकी धन-सम्पत्ति का अपहरण या अपव्यय नहीं करूंगा।

६—बिना टिकिट रेलादि से यात्रा नहीं करूंगा।

: ४ :

ब्रह्मचर्य अणुव्रत

"तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं" (जैन)

(ब्रह्मचर्य सब तपों मे प्रधान है।)

"मा ते कामगुणे रमस्सु चित्त" (बौद्ध)

(तेरा चित्त काम-भोग में रमण न करे।)

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" (वैदिक)

(ब्रह्मचर्य-तप के द्वारा देवों ने मृत्यु को जीत लिया।)

ब्रह्मचर्य में मेरी श्रद्धा है। अब्रह्मचर्य को मैं त्याज्य मानता हूँ। ब्रह्मचर्य के क्रमिक-विकास के लिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूँ:—

१—कुमार-अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

२—४५ वर्ष की आयु के बाद विवाह नहीं करूंगा।

३—महीने में कमसे-कम २० दिन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

४—किसी प्रकार का अप्राकृतिक मैथुन नहीं करूंगा।

५—वेश्या व पर स्त्री-गमन नही करूंगा।

: ५ :

अपरिग्रह अणुव्रत

"मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" (वैदिक)

(किसी के धन पर मत ललचाओ)

"इच्छाहु आगाससमा अणंतया" (जैन)

(इच्छा आकाश के समान अनन्त है।)

"तण्हक्खयो सब्बं दुक्खं जिनाति" (बौद्ध)

(जिसके तृष्णा क्षीण हो जाती है, वह सबदुःखों को जीत लेता है।)

अपरिग्रह में मेरी श्रद्धा है। परिग्रह को मैं त्याज्य मानता हूँ अपरिग्रह के क्रमिक-विकास के लिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूँ :—

१—अपने मर्यादित परिमाण (......) से अधिक परिग्रह नहीं रखूंगा।

२—घूंस नही लूंगा।

३—मत (वोट) के लिए रुपया न लूंगा और न दूंगा।

४—लोभवश रोगी की चिकित्सा में अनुचित समय नहीं लगाऊंगा।

५—सगाई-विवाह के प्रसंग में किसी प्रकार के लेने का ठहराव नही करूंगा।

६—दहेज आदि का प्रदर्शन नहीं करूंगा और न प्रदर्शन में भाग लूंगा।

शील और चर्या

अणुव्रती की जीवन-चर्या जीवन-शुद्धि की भावना के प्रतिकूल न हो, इसलिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूँ :—

१—आमिष भोजन नहीं करूंगा।

२—मद्यपान नहीं करूंगा।

३—भांग, गांजा, तम्बाकू, जर्दा आदि का खाने-पीनें व सूंघने में व्यवहार नहीं करूंगा।

४—खाने-पीने की वस्तुओं की दैनिक मर्यादा करूंगा। किसी भी दिन ३१ वस्तुओं से अधिक नही खाऊंगा।

५—वर्तमान वस्त्रों के सिवाय रेशमी आदि कृमि-हिंसाजन्य वस्त्र न पहनूंगा और न ओढूंगा।

६—विशेष परिस्थिति और विदेशवास के अतिरिक्त, वर्तमान वस्त्रों के सिवाय स्वदेश से वाहर बने वस्त्र न पहनूंगा और न ओढूंगा।

७—असद्-आजीविका नहीं करूंगा।

(क) मद्य का व्यापार नही करूंगा।

(ख) जुआ और घुड़दौड नही खेलूंगा।

(ग) आमिष का व्यापार नही करूंगा।

८—मृतक के पीछे प्रथा रूप से नही रोऊंगा।

९—होली पर गन्दे पदार्थ नही डालूँगा और न अश्लील व भद्दा व्यवहार करूंगा।

आत्म-उपासना

१—प्रतिदिन आत्म-चिन्तन करूंगा ।-❋

२—प्रतिमास एक उपवास करूंगा । यदि यह सम्भव न हुआ तो दो एकाशन करूंगा ।

३—पक्ष में एक बार व्रतावलोकन और पाक्षिक भूलों व प्रगति का निरीक्षण करूंगा ।

४—किसी के साथ अनुचित या कटु व्यवहार हो जाने पर १५ दिन की अवधि में क्षमा-याचना कर लूंगा ।

५—प्रतिवर्ष एक अहिंसा दिवस मनाऊंगा । उस दिन—

(क) उपवास रखूंगा ।

(ख) ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा ।

(ग) असत्य व्यवहार नही करूंगा ।

(घ) कटु वचन नही बोलूंगा ।

(ङ) मनुष्य, पशु-पक्षी आदि पर प्रहार नहीं करूंगा ।

(च) मनुष्य व पशुओं पर सवारी नहीं करूंगा ।

(छ) वर्ष भर में हुई भूलों की आलोचना करूंगा ।

(ज) किसी के साथ हुए कटु व्यवहार के लिए क्षमत-क्षामरणा करूंगा ।

❋ देखें-परिशिष्ट सं० ४

परिशिष्ट--१

विशिष्ट अणुव्रती के व्रत

१—अपने लिए प्रतिवर्ष १०० गज से अधिक पहिनने ओढ़ने का कपड़ा नही खरीदूंगा अथवा हाथ के कते और बुने वस्त्र के सिवाय अन्य वस्त्र नहीं पहनूंगा।

२—घूंस नही दूंगा।

३—आय-कर, बिक्री-कर और मृत्यु-कर की चोरी नहीं करूंगा।

४—राज्य द्वारा निर्धारित दर से अधिक व्याज नहीं लूंगा।

५—सट्टा नही करूंगा।

६—संग्रहीत पूंजी (सोना, चांदी, जवाहिरात, आभूषण और नकद रुपए) एक लाख से अधिक नही रखूंगा।

परिशिष्ट—२

प्रवेशक अणुव्रती के व्रत

१—चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक घात नही करूंगा।

२—सौपी या धरी (बन्धक) वस्तु के लिए इन्कार नहीं करूंगा।

३—दूसरों की वस्तु को चोर-वृत्ति से नही लूंगा।

४—किसी भी चीज में मिलावट कर या नकली को असली बताकर नही बेचूंगा।

५—तौल-माप में कमी-बेसी नही करूंगा।

६—वेश्या व पर स्त्री-गमन नहीं करूंगा।

७—जुआ नही खेलूंगा।

८—सगाई व विवाह के प्रसग में किसी प्रकार के लेने का ठहराव नहीं करूंगा।

९—मत (वोट) के लिए रुपया न लूंगा और न दूंगा।

१०—मद्यपान नही करूंगा।

११—भांग, गांजा, तम्बाकू आदि का खाने, पीने व सूंघने में व्यवहार नही करूंगा।

परिशिष्ट—३

वर्गीय अणुव्रत नियम

विद्यार्थी के लिए :

१—मैं परीक्षा में अवैधानिक तरीकों से उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

२—मैं तोड-फोड़मूलक हिसात्मक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

३—मैं विवाह प्रसंग में रुपये आदि लेने का ठहराव नहीं करूंगा।

४—मैं धूम्रपान व मद्यपान नही करूँगा।

५—मैं विना टिकिट रेलादि से यात्रा नहीं करूंगा।

व्यापारी के लिए :

१—मैं किसी भी चीज में मिलावट नही करूंगा।

२—मैं नकली को असली बताकर नही बेचूंगा।

३—मै एक प्रकार की वस्तु दिखाकर दूसरे प्रकार की वस्तु नही दूंगा।

४—मैं सौदे के बीच में कुछ नही खाऊँगा।

५—मैं तौल-माप मे कमी-वेसी नही करूँगा।

६—मै अच्छे माल को बट्टा काटने की नीयत से खराब या दागी नही ठहराऊ गा।

७—मैं व्यापारार्थ चोर-बाजार नही करूंगा।

८—मैं राज्य-निषिद्ध वस्तु का व्यापार व आयात-निर्यात नहीं करूंगा।

राज्य कर्मचारी के लिए :

१—मैं रिश्वत नहीं लूंगा।

२—मैं अपने प्राप्त अधिकारों से किसी के साथ अन्याय नहीं करूंगा।

३—मैं जनता और सरकार को धोखा नही दूंगा।

महिला के लिए :

१—मैं दहेज का प्रदर्शन नही करूंगी।

२—मै अपने लड़के-लड़की की शादी में रुपये आदि लेने का ठहराव नहीं करूंगी।

३—मैं आभूषण आदि के लिए पति को बाध्य नहीं करूंगी।

४—मैं सास-श्वसुर आदि के साथ कटु-व्यवहार हो जाने पर क्षमा-याचना करूंगी।

५—मैं अश्लील व भद्दे गीत नहीं गाऊंगी।

६—मैं मृतक के पीछे प्रथा रूप से नहीं रोऊंगी।

७—मै बच्चों के लिए गाली व अभद्र शब्दों का प्रयोग नही करूंगी।

नोट:—प्रवेशक अणुव्रती बनने के लिए महिलाओ को कम से कम पांच नियम अनिवार्यत: पालन करने होंगे।

चुनाव सम्बन्धी नियम

उम्मीदवार के लिए :

१—मैं रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नही करूंगा।

२—मैं किसी दल या उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूंगा।

३—मैं धमकी व अन्य हिंसात्मक प्रभाव से किसी को मतदान के लिए प्रभावित नही करूंगा।

४—मैं मत गणना में पर्चियां हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

५—मैं प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि बताकर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

६—मैं दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार नही बनूंगा।

७—मैं सेवा-भाव से रहित केवल व्यवसाय-बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूंगा।

८—मैं अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी-टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

९—मैं अपने अभिकर्ता (एजेन्ट), समर्थक और कार्यकर्ता को इन व्रतों की भावनाओं का उल्लंघन करने की अनुमति नही दूंगा।

चुनाव अधिकारी के लिए :

१—मैं अपने कर्तव्य-पालन में पक्षपात, प्रलोभन व अन्याय को प्रश्रय नही दूँगा ।

सत्तारूढ़ उम्मीदवार के लिए :

१—मै राजकीय साधनों तथा अधिकारों का अवैध उपयोग नही करूँगा ।

मतदाताओं के लिए :

१—मैं रुपये-पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान नही करूंगा ।

२—मैं किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा नहीं दूंगा ।

३—मै जाली नाम से मतदान नही करूंगा ।

समर्थक के लिए :

१—मै अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का असत्य प्रचार नहीं करूंगा ।

२—मै अनैतिक उपक्रमों से दूसरे की सभा को भंग करने का प्रयत्न नही करूंगा ।

३—मै उम्मीदवार-सम्बन्धी सारे नियमों का पालन करूंगा ।

परिशिष्ट—४

आत्म-चिन्तन

१—किसी के साथ कोई मानसिक, वाचिक या कायिक दुर्व्यवहार तो नही किया ?

२—घर के या दूसरे व्यक्तियों से झगड़ा तो नही किया ?

३—झूठ बोलकर अपना दोष छिपाने की कोशिश तो नही की ?

४—स्वार्थ या बिना स्वार्थ किसी झूठी बात का प्रचार तो नही किया ?

५—धन पाने के लिए विश्वासघात तो नही किया ?

६—किसी की कोई वस्तु चुराई तो नही ?

७—कामभोग की तीव्र अभिलाषा तो नही रखी ?

८—स्वप्रशसा और परनिन्दा से प्रसन्नता व स्वनिन्दा और परप्रशंसा से अप्रसन्नता तो नही हुई ?

९—क्रोध तो नही आया और आया तो क्यो, किस पर और कितनी बार ?

१०—अपने मुंह से अपनी बड़ाई तो नही की ?

११—किसी का झूठा पक्ष लेकर विवाद तो नही फैलाया और किसी को अपमानित करने की कोशिश तो नही की ?

१२—किसी की निन्दा तो नहीं की ?

१३—किसी के साथ अशिष्ट व्यवहार तो नहीं किया ?

१४—अविनय, भूल या अपराध हो जाने पर क्षमा-याचना की या नही ?

१५—जिह्वा की लोलुपतावश अधिक तो नहीं खाया-पीया ?

१६—ताश, चोपड़, केरम आदि खेलों में समय को बर्बाद तो नहीं किया ?

१७—किन्ही अनैतिक या अवांछनीय कार्यों में भाग तो नहीं लिया ?

१८—किसी व्यक्ति, जाति, दल, पक्ष या धर्म के प्रति भ्रांति तो नहीं फैलाई ?

१९—व्रतों की भावना को भुलाया तो नहीं ?

२०—दिन-भर में कौन से अनुचित, अप्रिय एवं अवगुण पैदा करने वाले कार्य किये ?

शिक्षाएं

व्रतों का पालन आन्तरिक भावना से होना चाहिए। अणुव्रती व्रतों के पालन में दृढ़ता रखे। यहां कुछ शिक्षाएं दी जाती है, जिन्हें व्रतों की शुद्धि के लिए निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए :—

अणुव्रती—

१—आन्दोलन के प्रति निष्ठा व सद्भावना रखे।

२—व्रतों की भाषा तक सीमित न रहकर भावना से व्रतों का पालन करे।

३—तर्क दृष्टि से बचकर अवाँछनीय कार्य न करे।

४—प्रत्येक कार्य करते हुये जागरुक रहे कि वह कोई अनुचित या निद्य कार्य तो नही कर रहा है।

५—भूल को समझ लेने के बाद दुराग्रह न करे।

६- व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेषवश किसी का मर्म प्रगट न करे।

७—कोई अणुव्रती अन्य अणुव्रती को व्रत भंग करते देखे, तो या तो उसे वह सचेत करे या प्रवर्तक को निवेदन करे, पर दूसरों में प्रचार न करे।

८—उत्तरोत्तर व्रतों का विकास करे एवं दूसरों को व्रती बनने की प्रेरणा दे।

अणुव्रत-प्रार्थना

(राग—उच्च हिमालय की चोटी से)

बड़े भाग्य हे भगिनी बन्धुओं, जीवन सफल बनाएं हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पाएं हम॥
अपरिग्रह, अस्तेय, अहिंसा, सच्चे सुख के साधन हैं।
सुखी देख लो सन्त अकिंचन, संयम ही जिनका धन हैं॥
उसी दिशा में, दृढ़ निष्ठा से, क्यों नहीं कदम बढ़ाये हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पाएं हम॥१॥
रहें यदि व्यापारी तो, प्रामाणिकता रख पाएंगे।
राज्य-कर्मचारी जो होंगे, रिश्वत कभी न खाएंगे।
दृढ़ आस्था, आदर्श नागरिकता के नियम निभाएं हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम॥२॥
गृहणी हो, गृहपति हो चाहे, विद्यार्थी, अध्यापक हो।
वैद्य, वकील शील हो सब में नैतिक निष्ठा व्यापक हो॥
धर्मशास्त्र के धार्मिकपन को, आचरणों में लाएं हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती वन पायें हम॥३॥
अच्छा हो अपने नियमों से, हम अपना संकोच करें।
नहीं दूसरे वध बन्धन से, मानवता की शान हरें॥
यह विवेक मानव का निज गुण, इसका गौरव गाएं हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पाएं हम॥४॥
आत्म-शुद्धि के आन्दोलन में, तन-मन अर्पण कर देंगे।
कड़ी जांच हो लिए व्रतों में आँच नहीं आने देंगे॥
भौतिकवादी प्रलोभनों में, कभी न हृदय लुभाएं हम॥
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पाएं हम॥५॥
सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे जन-जन का मानस, ऐसी जागृति घर-घर हो॥
'तुलसी' सत्य, अहिंसा की, जय-विजय-ध्वजा फहराएं हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पाएं हम॥६॥

यहाँ से काटिए

अणुव्रत आन्दोलन

(प्रवेश पत्र)

श्रीयुत् मन्त्री,
अ० भा० अणुव्रत समिति,
१५३२, चन्द्रावल रोड,
सब्जीमण्डी, दिल्ली ।

प्रिय महाशय,

मैंने आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन के लक्ष्य व व्रतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और गभीरता पूर्वक विचार करने के बाद प्रवेशक / अणुव्रती / विशिष्ट / अणुव्रती बन रहा हूँ / बन रही हूँ। मैं इस आन्दोलन के व्रतों व नियमों का विधिवत् पालन करता रहूँगा / करती रहूँगी।

दिनांक ———————— हस्ताक्षर

पूरा नाम ————————————————

पिता या पति का नाम ————————————————

जाति ———————— आयु ———————— व्यवसाय ————————

स्थाई पता ————————————————

————————————————

वर्तमान पता ————————————————

हमें अपने देश का मकान बनाना है। उसकी बुनियाद गहरी होनी चाहिए। बुनियाद यदि रेत की होगी तो ज्यों ही रेत ढह जायेगी, मकान भी ढह जायेगा। गहरी बुनियाद चरित्र की होती है। देश में जो काम हमें करने है, वे बहुत लम्बे-चौडे है। इन सबकी बुनियाद चरित्र है। इसे लेकर बहुत अच्छा काम अणुव्रत-आन्दोलन में हो रहा है। मैं मानता हूँ—इस काम की जितनी तरक्की हो, उतना ही अच्छा है। इसलिए मै अणुव्रत-आन्दोलन की पूरी तरक्की चाहता हूँ।

—जवाहरलाल नेहरू
(प्रधान मन्त्री)

अणुव्रत प्रकाशन

१—अणुव्रत-दर्शन

२—अणुव्रत जीवन-दर्शन

३—अणु से पूर्व की ओर

४—नवनिर्माण की पुकार

५—प्रेरणा-दीप

६—नैतिकता की ओर

७—अणुव्रत-विचार-दोहन

८—अणुव्रत दृष्टि

९—प्रगति की पगडडियां

१०—विचारकों की दृष्टि मे—अणुव्रत आन्दोलन

११—मानवता का मार्ग-अणुव्रत-आन्दोलन

१२—अणुव्रत-क्राति के बढ़ते चरण

१३—मैत्री-दिवस [अंग्रेजी संस्करण]

१४—भौतिक प्रगति और नैतिकता

१५—अणुव्रत-आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग

१६—ज्योति के कण

१७—अणुव्रत नियमावली [अंग्रेजी सस्करण]

१८—उदबोधन

१९—आह्वान

२०—जागरण

अणुव्रत-विचार

(दिल्ली, राजस्थान,गुजरात व बम्बई के हिन्दुस्तान , नवभारत टाइम्स आदि प्रमुख दैनिक पत्रो मे प्रकाशित मुनि श्री नगराज जी के भाषणो का संकलन)

सम्पादक

मोतीलाल जैन

प्रकाशकः—
मोतीलाल जैन,
मंत्री, अणुव्रत समिति, कानपुर।

प्रथम संस्करण
२०००

इस पुस्तक के प्रकाशन मे लाला अमीरसिंह महावीरप्रसाद जैन ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, जिसके लिए अणुव्रत समिति उनकी आभारी है। दिल्ली निवासिनी कुमारी त्रिशला बी० ए०, साहित्यरत्न ने इस पुस्तक के अन्य कार्यों में जो महत्वपूर्ण सहयोग दिया है वह अवश्य प्रशंसनीय है।

—मन्त्री

मुद्रकः—
नेशनल हेराल्ड प्रेस,
कैसरबाग, लखनऊ।

मूल्य ७५ नए पैसे

दो शब्द

विगत पाच वर्षो से मुनि श्री नगराज जी देहली, जयपुर व बम्बई आदि केन्द्रो मे अणुव्रत कार्यक्रम चलाते रहे है। विभिन्न वर्गो मे व विभिन्न प्रसगो पर होने वाले आपके प्रवचनो को देश के दैनिक-पत्रो ने प्रमुख स्थान दिया है। आपके प्रत्येक भाषण मे चिन्तन और स्थाई प्रेरणा तत्त्व का सद्भाव है। उन विखरे भाषणो का व्यवस्थित रूप ही यह 'अणुवत–विचार' है ।

मुनि श्री नगराज जी के भाषणो का एक सकलन 'अणु से पूर्ण की ओर' नाम से मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी कर चुके है। 'अणु से पूर्ण की ओर' पुस्तक मे २५ भापणो का समग्र सकलन है और प्रस्तुत पुस्तक में ११२ भापणो का समाचार पत्रो से समद्धृत सकलन। उपलब्ध भाषणों की सख्या तो वहुत अधिक थी पर इस पुस्तक मे कुछ ही भाषण लिए गए। संकलन मे विचारों की पुनरावृत्ति न हो यह ध्यान वरता गया है, तथापि एक ही वक्ता के वहुत सारे भापणो मे कुछ भावो का मिल जाना अस्वाभाविक नही होता। भाव खण्डित न हो इसलिए उन समान अशो को ज्यो का त्यों रखना ही आवश्यक समझा गया है।

१६ जून, १९५८

कानपुर

मोतीलाल जैन।

अनुक्रम

अणुव्रत-विचार

धर्म

धर्म का सन्देश-प्राणी मात्र को अभयदान

भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुंच कर आज मानव-जाति असन्तुलित हो चुकी है। निर्माण के नाम पर अस्त्रो का निर्माण आज मनुष्य पर हावी हो चला है। विनाश के कगारो पर पहुची मानव-जाति मे सन्तुलन लाने के लिए धर्म का पुनरुज्जीवन अत्यन्त अपेक्षित है।

भौतिक विज्ञान ने जहा प्रलयकारी अणु-अस्त्र मनुष्य को दिए वहां धर्म के उदय से विश्व शान्ति व विश्व मैत्री का सर्जक अभयदान का अमोघ मत्र मनुष्य को मिलेगा। व्यक्ति व्यक्ति को, समाज समाज को, एक देश दूसरे देश को अभय प्रदान करेगा। जब एक इकाई दूसरी इकाई को यह भरोसा करा देगी मेरे से तुम्हे भय नही है तब मानव मानव के बीच संघर्ष रह सकेगा यह सोचा ही नही जा सकता।

अग्नि अपने तेजो धर्म से, पानी द्रवत्व धर्म से, पवन गति धर्म से अस्तित्वशील है। इसी प्रकार मानव-जाति भी अपने अहिसा-धर्म पर प्रतिष्ठित है। धर्म से च्युत होने का अर्थ मानव-जाति का आधार शून्य होना है। धर्म वृक्ष है, अहिसा उसकी शाखा है। धर्म का जितना अधिक सिचन होगा अहिसा की शाखा उतनी ही अधिक पुष्पित और फलित होगी।

धर्म को वर्चस्वी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विश्व के सभी धर्मों के लिए चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के पारस्परिक असहिष्णुताएं मिटें और सह-अस्तित्व बढे। भारतवर्ष मे आचार्य श्री तुलसी अपने ६५० साधु शिष्यो सहित अणुव्रत आन्दोलन के नाम से एक व्यापक तथा प्रभावशाली कार्यक्रम चला रहे है। नैतिक नव जागरण के साथ साथ धार्मिक सह-

अवस्थान भी उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। आचार्य श्री तुलसी ने विभिन्न धर्मों में सहचारिता का आधार बनाने के लिये धर्म गुरुओ, धर्माचार्यो तथा धर्म प्रेमी जनता का ध्यान निम्न पाच बातो की ओर खीचा है —

(१) मण्डनात्मक नीति बरती जाए, दूसरे धर्मों के प्रति आक्षेप न किया जाए।

(२) सब धर्मो के प्रति सहिष्णुता रखी जाए ।

(३) किसी धर्म के व धर्म गुरु के प्रति घृणा के भाव न फैलाए जाए।

(४) सम्प्रदाय परिवर्तन के लिए किसी पर दबाव न डाला जाए, स्वेच्छा से ऐसा करने वालो का सामाजिक बहिष्कार न किया जाए ।

(५) सर्वमान्य धर्म का सगठित प्रचार किया जाए ।

(दिल्ली मे विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर दिए गए भापण से)

विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध वेश-भूषा से नही है, उसका सम्बन्ध विचारों से है। किसी सम्प्रदाय विशेष की वेश-भूषा मे आ जाने मात्र से कोई व्यक्ति साम्प्रदायिक नही बन जाता और सम्प्रदायो से परे धोती कुर्ता पहने रहने से ही कोई व्यक्ति असाम्प्रदायिक नही बन जाता। सही अर्थ मे विचारों की असहिष्णुता ही साम्प्रदायिकता है और विचारो का सम्प्रदाय ही सकीर्णता का द्योतक है। आज लोग सम्प्रदायो से मुक्त रहने की बात सोचते हैं, पर दो कदम आगे चल कर ही वे अपने विचारों का एक ऐसा सम्प्रदाय बना लेते हैं कि उससे बाहर रह जाने वाला व्यक्ति व समुदाय उनकी दृष्टि

में प्रतिक्रियावादी, सकीर्ण व साम्प्रदायिक हो जाता है। वे उसके विचारो को सहन नही कर सकते। उनके सत्य की दुनिया बहुत छोटी हो जाती है। वे उसी मे आग्रह पूर्वक चलते है—यह है विचारो का सम्प्रदाय ।

मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि जीवन मे एक बार व्यक्ति उदार होकर आगे बढता है और जीवन के हेय तथा उपादेय तथ्यो का नया मूल्याकन करता है, किन्तु वहा स्थिर हो जाता है। अपने से पीछे चलने वालो को जैसे साम्प्रदायिक व रूढिग्रस्त बताता है उसी प्रकार अपने से अगली पीढी के नये विचारो को भी अपनी असहिष्णुता के कारण भावावेश, बच्चो का खिलवाड़ व अनुभव-शून्य विचार सरणि माना करता है। अस्तु-विरोधी विचारो को सह सकने वाला व्यक्ति ही उदारता एव विचारकता की कोटि मे आ सकता है।

असहिष्णुता एक ऐसी बीमारी है जो जीवन की जमी जमाई सारी लडियो को उथल पुथल कर देती है। पारिवारिक जीवन मे गृह-कलह व सार्वजनिक एव राजनैतिक जीवन मे होने वाली स्पर्धाये,मिथ्या-आक्षेप,प्रतिद्वन्द्विता व नाना लडाई-झगडे इसी के परिणाम है। धार्मिक जगत मे भी सम्प्रदायो या व्यक्तियो के बीच होने वाली असमञ्जसता इसी का परिणाम है। अत. आज के सामाजिक जीवन को स्वस्थ, आदर्श व उन्नत करने के लिए विचार सहिष्णुता व सर्वधर्म सद्भाव की वृत्ति को बढावा देने की आवश्यकता है।

(बम्बई में अणुव्रत विचार-परिषद मे दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्क्रान्ति में ही धर्म का पुनरुज्जीवन

दीपक से दीपक जलता जाए तो दीपक की कितनी ही लम्बी कतार क्यो न हो, सहज ही जगमगा उठती है। हर एक व्यापारी अपने पास के

व्यापारी को, हर एक वावू अपने पास की कुर्सी पर वैठे वावू को, हर एक नागरिक अपने पड़ोसी नागरिक को आगे से आगे नैतिक ज्योति प्रदान करता रहे तो सहज ही नैतिक निर्माण का वह कार्य हो सकता है जो सुविस्तृत शास्त्रोपदेश से, ताजीरातहिंद के कानून से, वड़े वडे प्रशिक्षण केन्द्रो से नहीं हो सकता। बुद्ध के ६० शिष्यो ने सर्वप्रथम जो उपदेश प्रारम्भ किया वही तो वौद्ध धर्म के रूप मे सारे एशिया मे फैला। सुधार का क्रम व्यष्टि से समष्टि की ओर वढता है। सभी धर्मो का समन्वित तत्त्व आज नैतिक शब्दों में भर गया है। धर्म रूढ़ियो, आडम्बरो के संस्कारो से आच्छादित हो गया है यही कारण है कि आज का वुद्धिवादी मानव उसके प्रति आकृष्ट नहीं है फिर भी वह अपने जीवन-व्यवहार मे अहिंसा, सत्य व नीति को स्वीकार करता है, अतः नैतिक उत्क्रान्ति मे ही धर्म का पुनरुज्जीवन है।

(नई दिल्ली विड़ला मंदिर मे दिए गए सार्वजनिक भाषण से)

धार्मिक सह-अस्तित्व आवश्यक

धर्म कल्याणकारी है, पर इतिहास के पृष्ठ वताते है—धर्म के नाम पर मानव ने मानव के रक्त से होली खेली। संग्रह, शोपण व नाना आडम्बरो को प्रश्रय मिला, नाना अध-विश्वासो व रूढियो का पोपण हुआ। आज के वुद्धिवादी विज्ञान की शरण मे गए पर वहा भी त्राण नही मिला। आज धर्म के पुनरुज्जीवन का युग है, और उसका पहला सूत्र होगा—धार्मिक सह-अस्तित्व। राजनैतिक क्षेत्र में भी सह-अस्तित्व की वात वल पकडती जा रही है, जव कि धर्म का शुद्ध रूप तो मैत्री, सहिष्णुता व समन्वय है ही।

(सब्जीमंडी (दिल्ली) गीता-भवन मे दिए गए भाषण से)

धर्मों में सामञ्जस्य कठिन नहीं

विश्व के विभिन्न धर्मों मे आचार-व्यवहार की विभिन्नताओ के वावजूद

भी विरोध कम और सामञ्जस्य अधिक है। जो थोडा विरोध व दूरी है भी तो उस पर ध्यान देने की इतनी जरूरत नही। आज तो आवश्यकता है सामञ्जस्य की कड़ियो को अधिकाधिक मजबूत करने की। पारस्परिक विभिन्नताओ के वावजूद भी मानव के शारीरिक अवयवो मे जिस प्रकार सहयोगात्मक एकरूपता का अपूर्व समन्वय नजर आता है उसी प्रकार आज आवश्यकता इस वात की है कि सव धर्म अपने तुच्छ भेद भावो को भूल कर समन्वित रूप से आगे वढे। आज तो राजनैतिक असमान प्रणालियो मे भी कूटनीति के स्थान पर समन्वय की चर्चाए चल रही है। अत विवेक और वुद्धि के साथ आध्यात्मिकता और नैतिकता के मूल सिद्धान्तो पर गहन तत्त्व-चिन्तन कर सव धर्म एक समन्वित मार्ग पर चल कर जन कल्याण का प्रयास करे। शान्ति और सहिष्णता, अहिसा और सत्य, मैत्री और विश्व-वन्धुत्व ही जहा सव धर्मो के मूलाधार है वहा पारस्परिक सामञ्जस्य कठिन नही है।

धर्म का मूल्याङ्कन जीवन व्यवहार से

आज धर्म के प्रति जन साधारण मे उदासीनता की भावना उत्तरोत्तर वढती जा रही है। धार्मिक जगत् के लिए यह आत्म-निरीक्षण का अवसर है। धर्म अपने विशुद्ध स्वरूप मे जन-कल्याण का एक अमोघ साधन है और प्रत्येक युग मे धर्म-साधना मानव के आत्मिक सुख और शाति के लिए आवश्यक रहेगी। धर्म मे जो विकृतिया और अनैतिकताए आ गई है, उनको दूर करना धार्मिको का प्रथम कर्त्तव्य है। आज का युग धर्म का मूल्याकन शास्त्र-वचनो के द्वारा नही धार्मिको के जीवन को देख कर करेगा। धर्म के सत्य, अहिसा आदि मूल तत्त्वो को जीवन मे उतारने की आवश्यकता है।

धर्म जो अपरिग्रहका पोषक है अगर वह निहित स्वार्थो का पोषक वन गया तो यह एक घोर विडम्वना होगी। राजनीति के साथ जो धर्म का गठ-वन्धन करते है, वे धर्म को तो विकृत करते ही है, राजसत्ता का भी कोई

हित नहीं करते। व्यक्तिगत और सामूहिक स्वार्थों के लिए धर्म का दुरुपयोग करना घोर अविवेक का परिचायक है। विभिन्न धर्मों को अपना पृथक् अस्तित्व कायम रखते हुए भी एक दूसरे के निकट आने की आवश्यकता है।

धर्म जीवन का स्वभाव

धर्म जीवन का स्वभाव है, आत्मा का गुण है, कोई तिजौरी में रखने की वस्तु नहीं। अपने विशुद्ध आचरणों के द्वारा व्यक्ति धर्म स्थान की तरह दुकान पर भी धर्म साधना कर सकता है। मनुष्य के व्यवहार में सब जगह धर्म एवं नैतिकता साथ रहनी चाहिए। जीवन व्यवहार में व्यक्ति जब क्रियात्मक रूप से नैतिकता को अपनाएगा तभी व्यक्ति की संस्कृति और नागरिकता ऊंची उठ सकेगी। जीवन व्यवहार में धर्म व नैतिकता आए इसी भावना से अणुव्रत-आन्दोलन अनुप्रेरित है। यह आन्दोलन सभी धर्मों को एक क्रान्तिकारी मोड़ देने वाला व सर्वजनोपयोगी प्रयास है।

अहिंसा

मांसाहार पशुता की ओर एक कदम

आज देश मे मासाहार व अन्य हिसात्मक प्रवृत्तिया जिस गति से बढ रही है उससे स्पष्ट हो जाता है कि आज का मानव समाज अहिसा से हिसा की दिशा मे कदम वढा रहा ह। इसम कोई सदेह नही कि नए युग का यह प्रवाह उत्कर्ष की ओर न वहकर अपकप की ओर वह रहा ह। इसे शीघ्र ही न मोड़ा गया तो मानव समाज, पश-समाज की सीमा मे जा लगेगा ।

आज के नये समाज का नारा है"समानता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"। आज का मानव निर्धन व धनिक का, गोरे व काले का, स्पृश्य व अस्पृश्य का भेद नही सहता। किन्तु आश्चर्य है अपने विषय मे समता के नाम पर सव कुछ चाहने वाला मानव पशु-समाज को खा जाने का भी अपना अधिकार मानता है। मासाहार करने वाले सोचे क्या वे पशुओ के प्रति घोर अन्याय नही कर रहे है? समान अधिकारो की वात तो दूर, क्या वे उनके जीने के सहज अधिकार भी उन्हे प्रदान करते है? मनुष्य स्वार्थी है। अपनी सुख सुविधाओ को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। मूक पशुओ को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार तो होगा यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं है। अपने स्वाद के लिये कितने निरपराध और मूक पशुओ को वह प्रतिदिन मरवा डालता है। सच बात तो यह है आज उसके मस्तिष्क मे मार्क्स का साम्यवाद है, जिसकी सीमाए बहुत छोटी है। पशु-पक्षियो की तो बात ही क्या मानव जाति को भी वहा अभय नही है। भगवान् श्री महावीर और गौतम

बुद्ध का साम्योग यदि आज चलता तो उसकी पभाषा प्राणी जगत तक विस्तृत होती ।

यह मानना अत्यन्त निराधार है कि भारतवर्ष मे अहिसा का विकास अल्प था और अधिकाश लोग मासाहारी ही थे। सुप्रसिद्ध विदेशी यात्री फाहियान के शब्दो मे उस समय देश की स्थिति यह थी ---इस देश मे मुर्गियां नही पाली जाती, पशुओ का क्रय-विक्रय नही होता, यहा के बा जारो मे मास वेचने वालो की दुकाने नही थी और न शराब ही निकाली जाती थी। अस्तु-आज जो लोग नाना दलीलो से मासाहार को उत्तेजन देते है वे अहिसा की ओर बढते हुए समाज को पशुता की ओर मोडते है।

कुछ विचारक कहे जाने वाले लोग भी कहा करते है---ससार के सब लोग यदि शाकाहारी हो गए तो खायेगे क्या ?. मासाहार के आधार से ही तो आज की मानव-सृष्टि चल रही है। इस प्रकार की निरर्थक तर्को के द्वारा किसी भी विषय को अव्यवहार्य बता देना अविचारकता है। एक साथ हम दुरूह कल्पना क्यो करें कि आज ही सारा ससार मासाहार छोड दे । मासाहार छोडने की दिशा मे मानव-समाज अबाध गति से बढता ही जाए तो भी सारे संसार से मासाहार का मिट जाना शताब्दियो और सहस्राब्दियों का काम होगा। क्या इस अवधि मे आज के मनुष्य का वैज्ञानिक मस्तिष्क अन्नाहार और शाकाहार का उत्पादन नही बढा लेगा ? आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। जब मानव-समाज का यह अटल ध्येय बन जाएगा कि उसे क्रमशः निरामिषता की ओर ही बढ़ना है तो वह अपने मार्ग की दुविधाओ को मिटाते हुए अवश्य अपने लक्ष्य की ओर बढेगा। आज जिस प्रकार से कुछ लोगो द्वारा मासाहार को उत्तेजन मिल रहा है यदि समाज ने उसी रास्ते को सही मान लिया तो उसका अर्थ होगा जो करोडो लोग आज निरामिष भोजी हैं वे भी मासाहारी बन जाएंगे।

समाज मे क्रूरताएं बढेगी, युद्ध होगे और मानवीय सभ्यता व सस्कृति का लोप होने लगेगा ।

मनुष्य का राजमार्ग : अहिसा

अहिसा मानवीय जीवन-दर्शन की कुजी है। सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह का अहिसा के साथ अभिन्न सम्बन्ध है और अहिसा की साधना ही जीवन की एक सर्वागीण साधना होती है। एक अहिसक अपने व्यक्तिगत जीवन मे ही नही पारिवारिक और राष्ट्रीय जीवन मे भी अहिसा को ही अपनी धुरी बना कर चलता है।

अहिसा मानव के पारलौकिक नि.श्रेयस् का साधन ही नही लौकिक दृष्टि से भी श्रेयस्करी है। समष्टि जीवन की सारी शृखलाये अहिसा के आधार पर जुडी हुई है। अगर सामाजिक जीवन मे अहिसक भावना न रहे तो सामाजिक जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती। यद्यपि यह सत्य है कि अहिसा का आधार आत्मा है, परन्तु अहिसा के व्यावहारिक प्रयोग के लिए जीवन के सारे क्षेत्र खुले हुए है।

वास्तव मे अहिंसा ही मनुष्य का राजमार्ग है और एक मात्र अहिसा की दिशा ही मानवीय प्रगति की दिशा हो सकती है।

साधन शुद्धता से ही साध्य प्राप्ति

भारतीय संस्कृति का मूलाधार अहिसा है। अहिसा की निष्ठा भारतीय जनता के हृदय मे बहुत गहरी जमी हुई है, पर आज सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण जो खीझ और असन्तोष उत्पन्न हो रहा है, यह हिसा के आकर्षण को बढा रहा है। कुछ लोग ऐसा अनुभव करते है कि हिसा के द्वारा सामाजिक वैषम्य और शोषण को शीघ्र समाप्त किया जा सकता है, पर यह एक

विचार-भ्रम है । वातस्त्व में शुद्ध साधनो के द्वारा ही शुद्ध साध्य प्राप्त किया जा सकता है। सम्भव है कि अशुद्ध साधनो के द्वारा तात्कालिक रूप से कुछ लाभ होता हुआ प्रतीत हो, पर अन्तत. अलाभ ही होता है।

अहिंसा उत्कर्ष की ओर

आज का युग संघर्ष का युग है । पूर्व के इस क्षितिज से लेकर पश्चिम के उस क्षितिज तक मजदूर व उद्योगपतियो मे, किसान व भूमिपतियो मे, शासक व जनता मे, विद्यार्थी व अध्यापक मे सर्वत्र सघर्ष है। समस्त लोग इस संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए दो रास्तो से चलते है—कुछ हिसा के और कुछ अहिसा के। किन्तु अव लगता है कि हिसा पर चलने वालो का विश्वास टूटता जा रहा है । विगत दशक मे अहिसा ने ऐसे अनोखे चमत्कार दिखला डाले है कि जिनसे हिसा के पैर उखडने लगे है। चालीस करोड भारतीयो की स्वतंत्रता, कोरिया के गृह-युद्ध की समाप्ति और हिन्द चीन की अन्तरङ्ग समस्याओ के हल इतिहास की वे घटनाएं है जो विश्व को अचानक हिंसा से अहिसा की ओर मुड़ने के लिए विवश कर देती है। इस दशक मे अहिसा अपने आप मे सफल रही, यही वात नही है, अपितु हिरोशिमा और नागासाकी मे होने वाले हिसा के उद्धत उपक्रमो ने मानव मेदिनी को त्राण पाने के लिए अहिसा की ओर देखने के लिए प्रेरित किया है। इसलिए यह निर्विवाद सत्य है कि इस युग मे अहिसा उत्कर्ष की ओर है।

आवश्यकता है कि अहिसा केवल सामयिक नीति के रूप मे न अपनाई जाकर सिद्धान्त के रूप मे अपनाई जाए। जव यह सिद्धान्त वन कर जीवन मे आएगी तव एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण नही करेगा और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को धोखा नही देगा। इससे जीवन में न्याय बढेगा। रिश्वत लेने व देने की वाते तव नही रहेगी और समाज का सम्मार्जन होगा।

यदि ऐसा नही होता है तो अहिंसा को ललकारने वाली शक्तिया उठ खडी हो जाएगी और हिंसा के द्वारा अर्थ, सत्ता आदि छीनने का प्रयत्न करेगी जिसका कि सकेत कम्युनिस्ट मैनीफैस्टो की अतिम पक्तियो मे मिलता है। कार्ल मार्क्स कहते है—सर्वहारा दल (मजदूर वर्ग) के पास खोने के लिए कुछ नही है सिवाय अपनी बेडियो के और पाने के लिये तो ससार पडा है। ऐ दुनिया के मजदूरो ! एक हो जाओ। अस्तु, अहिंसा का प्रतिष्ठान इसी मे है कि अहिंसावादी मन, वचन और कर्म से अहिंसक होकर चले।

(दिल्ली मे अणुव्रत अहिंसा दिवस पर दिए गए भाषण से)

स्वार्थ के सरक्षण मे सिद्धान्त की उपेक्षा न हो

अगर प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि मै चाहे किसी की भी हिंसा करू मेरी ही हिंसा होती है, मै चाहे किसी को भी पीडित करू मै स्वय पीडित होता हू तो सम्भवत कोई भी व्यक्ति हिंसक और पीड़नकारी प्रवृत्तियो मे सलग्न नही हो सकता। हिंसा मनुष्य की असत् प्रवृत्ति है और इससे हिंसक का घोर आत्मिक पतन होता है। कोई भी व्यक्ति स्वय अपना पतन किए बिना दूसरे को कष्ट नही पहुचा सकता। इसलिए अन्य जीवो की हिंसा करना अपनी आत्मा को पतन के गड्ढे मे ढकेलना है।

आज समानता के सिद्धान्त का तुमुल नाद चारो ओर सुनाई पड रहा है, परन्तु मानव समाज ने इस सिद्धान्त की उपादेयता भी अपने तक ही सीमित मान ली है। अगर मानव मात्र मे समानता की भावना ग्राह्य है तो प्राणी मात्र के समानता के सिद्धान्त का तिरस्कार क्यो ? परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जब स्वार्थ का सरक्षण होता है तो सिद्धान्त की उपेक्षा हो जाती है। क्या मनुष्य शारीरिक दृष्टि से सबल है, इसीलिए अन्य प्राणियो को उसकी कृपा पर जीवित रहना होगा ? अगर ऐसा हुआ तो मनुष्य के जीवन पर भी उससे सबलतर प्राणियो का धावा हो सकता है जो उसे कभी स्वीकार

नहीं हो सकता। यह मनुष्य की एक भयंकर भूल है कि वह सारे जीव-जगत् को अपने लिए मान बैठा है जब कि संसार में प्रत्येक जीव अपने अपने कर्मानुसार विचरण कर रहे हैं।

हिंसा और क्रूरता की भावना दानवी भावना है और मनुष्य की आत्मा का पतन करने वाली दुष्प्रवृत्ति है। इन्हें त्याग कर प्राणीमात्र के प्रति समता की भावना ग्रहण करके ही मनुष्य अपनी ओर से सारे ससार को अभय-दान कर सकता है, जो दानो मे सबसे बड़ा दान है।

अहिंसा एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग

परिवार से व्यक्ति का समष्टि जीवन आरम्भ होता है। वहा उसे माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र-वधू आदि के बीच अनुशासन मानते हुए और मनवाते हुए चलना पडता है। वहा यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व आर्जव गुणो को लेकर चलता है तो उसे आत्मिक-शान्ति, पारिवारिक जनो का प्रेम, विश्वास और प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाडी सुगमता से चलती रहती है। इसके साथ साथ क्रोध, मान आदि की अल्पता मे निःश्रेयस् का मार्ग भी सधता जाता है। इसके बदले व्यक्ति यदि आवेश, अहकार, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है तो वहा उसे नित नये कलह, आक्रोश, अपमान आदि भोगने पड़ते है। दूसरा पहलू अहिसा का है जिसके प्रयोग की बात मनुष्य एकाएक सोचता ही नही। पर जीवन-व्यवहार के प्रसगो मे हिसा की अपेक्षा अहिसा अधिक सफल है। मान लीजिए कमरे के बीच मे स्याही से भरी दावात पड़ी है। कोई व्यक्ति उधर से आया और दावात पर ठोकर लगने से स्याही इधर उधर बिखर कर पुस्तकों और कपड़ो पर लग गई। उस समय कोई व्यक्ति गुस्से में आकर कहता है—"अन्धा होकर चलता है? इतनी बडी स्याही की दावात भी नहीं दीखती? कैसा मूर्ख है।" तो अवश्य उत्तर मिलेगा—

"मै क्या मूर्ख हू, मूर्ख है दावात को बीच मे रखने वाला। क्या यह भी कोई दावात रखने का स्थान है?' यदि उस परिस्थिति मे स्याही के बिखरते ही मधुरता से यह कहा जाता है-'अहा ! किसने भूलकर दावात रख दी?' तो सामने वाला व्यक्ति यह कहता है—'दावात रखने वाले की क्या गलती है, देख कर मुझे भी तो चलना चाहिए था।' अस्तु-अहिंसा एक सधा हुआ मनोवैज्ञानिक प्रयोग होता है जिसे काम मे लाकर सास बहु को, पिता पुत्र को तथा भाई अपने भाई को बिना किसी कटुता के ही आत्म-निरीक्षण की भूमि पर ला सकता।

(बबई मे 'बाप नु घर' सस्था के कार्यकर्ताओ के बीच दिए गए भाषण से)

क्या हिंसा और असत्य से काम चल सकता है ?

जीवन व्यवहार मे जहा अहिंसा सत्य आदि का प्रश्न आता है साधारणतया हर एक व्यक्ति यही कहता है सब जगह अहिंसा से काम नहीं चलता, सब जगह सत्य से काम नही चलता। लेकिन क्या सब जगह हिंसा व असत्य से काम चल सकता है? यदि नही तो फिर अहिंसा और सत्य पर ही निष्ठा क्यो न रखी जाए।

शिक्षा

शिक्षा के ध्येय में परिवर्तन आवश्यक

शिक्षा जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है। जनतंत्र के युग में शिक्षित व अशिक्षित के मत का बराबर महत्त्व होते हुए भी समग्र विश्व में शासन की बागडोर शिक्षितों के ही हाथों में है। उन शिक्षितों ने अणु-युग का सर्जन किया। परिणामतः आज सारा संसार मौत के कगारे पर खड़ा है। प्रश्न होता है उन शिक्षितों ने ऐसा क्यों किया? उत्तर स्पष्ट है—वे यही मानकर चले होंगे कि शिक्षा का ध्येय अणु-विकास है, आत्म-विकास नहीं। आज विश्व के अतीत इतिहास से कोई अनुभव लेना चाहे तो वह यही ले कि शिक्षा का लक्ष्य जड़-विज्ञान नहीं चैतन्य का विकास है। होने वाले अणुबमों के परीक्षण किसी प्रकार से टाले भी जा सकते हैं पर यदि मानव की मनोवृत्ति को बदलना है तो शिक्षा के ध्येय में आमूल परिवर्तन आवश्यक है।

सामान्य लोगों के लिए शिक्षा का ध्येय नौकरी बन गई है। किसान का लड़का खेती से और मजदूर का लड़का मजदूरी से छुटकारा पाने के लिए पढ़ता है। आफिस में क्लर्क हो जाना तरक्की है और आफिसर हो जाना शिक्षा का परम ध्येय। आज की विद्या में नौकरी है पर जीवन का आनन्द नहीं। लड़कियां भी पढ़ती हैं पर लगता है वे भी इसी घुड़दौड़ में हैं। वे इसलिए पढ़ती हैं कि चूल्हे और चक्की से छुटकारा मिले। यदि यही क्रम चलता रहा तो संभव है खेत और रसोई खाली हो जाएंगी और आफिस व कैन्टीन भर जाएंगे।

शिक्षा के द्वारा आध्यात्मिक पक्ष ऊंचा उठे

जीवन के अन्य पहलुओं की अपेक्षा शिक्षा का पहलू विशेष चिन्तनीय है। आज की शिक्षा पद्धति से लोगो का विश्वास टूटता सा जा रहा है, किन्तु परिवर्तित शिक्षा प्रणाली क्या हो, किस ओर ले जाने वाली हो यह विषय अभी तक लेखको और विचारको की लेखनी व वाणी से प्रस्तुत नही हो सका है। यह तो स्पष्ट ही है कि आज की शिक्षा मनुष्य के केवल भौतिक विकास पर ही बल देती है और उसी का परिणाम है कि नैतिक या आध्यात्मिक विकास के अभाव मे आज का मनुष्य भौतिक साधनो का उपयोग अणुबमो व उदजनबमो के रूप मे कर रहा है। यदि शिक्षा के द्वारा मनुष्य का आध्यात्मिक पक्ष ऊचा उठे तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' व 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्' का उदार सिद्धान्त चरितार्थ होने में विलम्ब न हो ।

विद्यालयों मे नैतिक प्रशिक्षण आवश्यक

विद्यालयो मे धार्मिक प्रशिक्षण कैसे हो ? यह अब तक एक विवादास्पद विषय है। विद्यार्थियो को जरा भी धार्मिक प्रशिक्षण नही मिलता। इसके परिणाम भी लोग अनुशासन हीनता व सस्कृति शून्यता के रूप मे प्रत्यक्ष देख रहे है। धार्मिक शिक्षा व्यवहार्य कैसे बने यह भी एक जटिलतम प्रश्न है। कोई भी स्पष्ट मार्ग अब तक दिखलाई नही दे रहा है। वर्तमान स्थितियो मे जब कि भाषा भी एक प्रश्न चिन्ह बन रही है, निर्विरोध धार्मिक शिक्षा का रास्ता शीघ्र ही निकल जाए यह कठिन लगता है। प्रस्तुत वातावरण मे इस का समाधान एक मात्र यही रह जाता है कि विद्यार्थियो के लिए भूगोल, अंकगणित और इतिहास की तरह नैतिक-विज्ञान को भी स्वतत्र विषय बना दिया जाए। सामान्य रूप से तो नैतिकता की बाते हर

विषय के साथ विद्यार्थी पढते ही है, परन्तु जब तक नैतिक विज्ञान स्वतन्त्र व अनिवार्य विषय नही हो जाता तब तक विद्यार्थी उससे पूरा लाभ नही उठा सकते। धर्म का सर्वोत्तम अग आचार-शुद्धि है। उसका विवेक नैतिक प्रशिक्षण से सुलभ हो जाता है। आज की शिक्षा प्रणाली मे धर्म व आध्यात्म को इतना उपेक्षित कर दिया है कि भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त कुछ पढने को रह ही नही गया है। आज के विद्यार्थी प्रात काल राम व सीता का नाम नही लेते समाचार पत्रो मे दिलीप और मधुबाला की खोज करते है।

अध्यात्म विद्या के उदय की स्वर्णिम बेला

आज की शिक्षा व्यवस्था मे पश्चिमी विद्याओं का प्राधान्य है। आज के विद्यार्थी यह सहजतया जानते है कि डार्विन का विकासवाद क्या है और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है, पर वे यह जरा भी नही जानते कि भगवान् श्री महावीर का स्याद्वाद क्या है और श्री शकर का अद्वैतवाद क्या है ? शिक्षा व्यवस्था की इसी अपूर्णता के कारण भारतवर्ष मे आज पश्चिमी विद्याओ का आयात हो रहा है, पर यहा से पूर्वी विद्याओं का निर्यात नही हो पाता।

पश्चिमी विद्याए भौतिकता-प्रधान है और पूर्वी विद्याये अध्यात्म-प्रधान। जड विद्या के परमाणु बम, उदजनबम के रूप मे होने वाले विकास के कारण आज का विश्व सत्रस्त है। वह शाति की खोज मे है। अतः आज अध्यात्म-विद्याओ के उदय की स्वर्णिम बेला है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे आज जो भारत का गौरव बना है वह मात्र इसी का परिणाम है कि उसने शाति व सह-अस्तित्व की बात ससार के सामने रखी है। आज भारतीय विद्यार्थियों पर दायित्व है कि वह विरासत मे मिली उन बहुमूल्य विद्याओ का अन्वेपण करे, पढ़ें व उनका दूर दूर तक निर्यात करें।

अध्यापक पुस्तक बनें

अध्यापक छात्रो के लिए स्वयं एक पोथी बने, क्योकि छात्र अन्य पुस्तको से तो केवल शब्द व विषय ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। आचरण का पाठ वे अध्यापक की जीती जागती पोथी से पढते हैं। वह पोथी जितनी प्रशस्त होगी उतने ही बालक अधिक सस्कारित होगे। उस पोथी का ही स्थायी प्रभाव उनके आचरणो पर पडता है। एक विद्यार्थी पाठ्यक्रम की पुस्तको मे पढता है कि धूम्रपान नही करना चाहिए और अध्यापको को बीडी सिगरेट पीते देखता है तो वह पहली पोथी का पाठ न पढ कर दूसरी पोथी का सबक सीखेगा।

अध्यापको के हाथ मे देश का सबसे महत्वपूर्ण निर्माण कार्य है। वे ऐसे कारखाने के कारीगर हैं जहा मानव और मानवता का निर्माण होता है। यदि लोकोक्ति की भाषा मे कहा जाए तो मानव-निर्माण का कार्य विधाता ने किया और मानवता-निर्माण का अवशेष कार्य अध्यापक-जन कर रहे हैं। इस दायित्व को समझते हुए अध्यापक-जन अपना जीवन विद्यार्थियो के लिए अनुकरणीय बनाए, जिससे कि वे देश पर छाई अनैतिकता की महा-तमिस्त्रा को चीर कर नैतिक नव जागरण की प्रकाश किरण ला सकें।

विद्यार्थियों में

-रोटी और कपड़ा ही जीवन का दर्शन नहीं

आज विज्ञान का युग है। लोग समझते है कि पाश्चात्यवासियो ने एक नई देन दी है, किन्तु यह यथार्थ नही है। भारतवासी किसी भी युग में इस भौतिक विज्ञान से अपरिचित थे ऐसी बात नही है। किन्तु उन्होने भौतिक विज्ञान को अधिक महत्व नही दिया। उनकी विज्ञान सम्बन्धी परिभाषा भी कुछ भिन्न थी। जब आज के लोग भौतिक विज्ञान मे मानव का कल्याण देखते है तब भारतवासियो ने इसे आध्यात्मिक विकास मे देखा था। इसलिए उनकी भाषा मे विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान था––

> 'एवं खु णाणिणो सार ज न हिसइ किचण।
> अहिसा समयं चेव एयावन्त वियाणिया॥'

अर्थात् ज्ञानी होने का सार यही है कि मनुष्य किसी की हिसा न करे। यही विज्ञान है। आज के विद्यार्थी मार्क्सवाद की ओर अधिक झुकते है। मार्क्सवाद रोटी और कपडे का दर्शन है। रोटी और कपडे का दर्शन वह क्यों न हो जबकि उसकी इससे अधिक पहुंच ही नही है। लोग कहते है कि मार्क्सवाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद के रूप मे एक नया दृष्टिकोण दिया है। चेतना भौतिक पदार्थो का एक सघर्ष जन्य परिणाम है। जड का ही अन्तिम विकास चैतन्य है। किन्तु वे यह नही जानते कि भारतीय दार्शनिकों ने इसका प्रत्युत्तर सहस्त्रो वर्ष पूर्व ही दे रखा है। 'नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सत.' अर्थात सत् का अभाव और असत् का उत्पाद नही हो सकता। गुणात्मक परिवर्तन मे भी यही सिद्धान्त लागू होता है। हाइड्रोजन और आक्सीजन के मर्यादित सम्मिश्रण से जल पैदा होता है।

मार्क्सवाद कहता है कि यह गुणात्मक परिवर्तन है और दूसरे शब्दो में यह असत् की उत्पत्ति है, पर भारतीय दार्शनिको के शब्दो मे यह न तो आत्यन्तिक परिवर्तन है और न असत् की उत्पत्ति ही। जल का पार्थिव स्वरूप तो केवल भूत का ही पर्यायान्तर है। अतः विद्यार्थियो को आज के युग में भारतीय दर्शन मे प्रतिपादित जीवन तत्त्व को अपना कर चलने की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि मार्क्सवाद जीवन तत्त्व का दर्शन नही है।

(रोहतक जाट कालेज मे विद्यार्थियों के बीच दिए गए भाषण से)

विद्यार्थी भारतीय दर्शन के अन्वेषक बनें

आज विज्ञान का युग है ऐसा कहा जाता है। समाज विज्ञान के साथ इतना घुल मिल गया है कि कभी कभी जीवन सत्य से परिपूर्ण भारतीय दर्शन की अवज्ञा कर बैठता है। किन्तु आज के विद्यार्थी को यह समझना चाहिए कि भारतीय दर्शन केवल कल्पनाओ का पुलिन्दा नही है जो विज्ञान के झोकों मे क्षत-विक्षत हो जाएगा। उसके पीछे एक साधना, एक अन्वेषण व एक दिव्य-दृष्टि रही है। यह समझ बैठना भी भूल है कि अब विज्ञान के युग मे दर्शन की आवश्यकता नही। उससे भी बडी भूल वे करते है जो दर्शन और विज्ञान मे केवल भेद ही समझते है। किन्तु अब वस्तु स्थिति ऐसी नहीं रही है। दर्शन और विज्ञान की दूरी भरती जा रही है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स के शब्दो मे कहे तो दर्शन और विज्ञान की सीमा रेखा जो सब तरह से निकम्मी लगती थी इन दिनो मे होने वाले थियोरिटीकल साइन्स के विकास ने उसे आकर्षक एव महत्वपूर्ण बना दिया है। ऐसे बहुत से विषय है जिन्हे सहस्रों वर्ष पूर्व ऋषि-मुनियो ने जैसे बताए आज का नवीन वैज्ञानिक युग उनकी पुष्टि करने लगा है। उदाहरणार्थ-स्याद्वाद जैन दर्शन का महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है। आधुनिक विज्ञान मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने वाली प्रो० आईन्सटीन की 'थियोरी ऑफ रिलेटिविटी" उसकी यथार्थता की पूरे बल से पुष्टि करती है। सबसे मौलिक और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि

जैन, बौद्ध व वैदिक दर्शनों मे जैसे आत्मा के अमर-अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, वैसे ही वैज्ञानिको को भी अव यह लगने लगा है कि इस विश्व मे हम ऐसे अजनवी या यो ही आ टपकने वाले प्राणी तो नही है जैसा कि हम सोचा करते थे। आज के विद्यार्थी भारतीय दर्शन को भले नही, किन्तु उसमें प्रतिपादित सात्विक जीवन तत्त्व का सदैव अन्वेषण करते रहे।

मानवता युक्त मानव बनें

आज के युग की यह सवसे वडी विडम्वना है कि मानव अपने मूल-स्वरूप को खोता जा रहा है। मानवता की उदार भावना से दूर होकर आज राजनीति दुर्नीति वन गई है। विज्ञान विध्वस और विनाश का दूत वन कर मानव के लिए अभिशाप हो गया है। विद्यार्थियो का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वे अपने जीवन की प्रत्येक गति-विधि मे मानवता की रक्षा के लिए पूर्ण सतर्क रहे। अनेक विद्यार्थी अपने जीवन मे महान् वैज्ञानिक, जननेता, वीर, समाज सुधारक वनने के स्वप्न देखते होगे, पर वे कुछ भी वनने के पूर्व मानवता युक्त मानव वने।

नैतिकता ही संजीवन औषधि

विद्यार्थी अगली पीढ़ी के कर्णधार व भावी भारत की तस्वीर है। जो भारतवर्ष अपने नैतिक व आध्यात्मिक आदर्शो से विश्व को उपकृत करता रहा व कर रहा है, भविष्य मे वही कार्य विद्यार्थियो को करना है। जीवन-व्यवहार मे ऊंचे आदर्शो को चरितार्थ करना यही मनुष्यता की कसौटी है।

आज देश मे नैतिकता का ह्रास हुआ है। जन-जीवन नाना रूढ़ियों व कुसस्कारो से ग्रसित है। अर्थवाद के आतंक से मानवता पीड़ित हो चुकी है। प्रत्येक विद्यार्थी को नैतिकता की ज्योति शिखा हाथ मे लेकर अमानवता

के घने अधकार मे आगे बढना है। दोषो के दुश्चक्र व्यूह को तोडने के लिए अभिमन्यु बनना है और शाति की महा मन्दाकिनी बहाने के लिए भगीरथ।

केवल भौतिक विकास के चरम शिखर पर पहुच जाना ही विद्यार्थियो की मजिल नही है। आध्यात्मिकता शून्य भौतिकवादिता ने ही अणुशक्ति के उद्दाम प्रतीक अणुबम व उदजनबम को प्रलयकारी अस्त्र के रूप में उपस्थित किया है। वह मनुष्य का त्राण कभी नही बन सकती। भोगवाद के परिणाम स्वरूप आज का मानव समाज प्रकृति के वरदानो को भी अपने लिए अभिशापो मे परिणत कर रहा है। नैतिकता व आध्यात्मिकता का विकास ही एकमात्र सजीवन औषधि है, जिससे दु खाक्रान्त मानव की समस्त आधि-व्याधिया समूल दूर हो सकती है।

विद्यार्थी वर्ग राजनीति से दूर रहे

विद्यार्थी जीवन का लक्ष्य है—विद्या का अर्जन करना, अपनी सात्विक शक्तियो का विकास करना। इससे पूर्व यदि विद्यार्थी सक्रिय राजनीति में कूद पडते है तो वे देश का ही नही, सही अर्थो मे अपने वैयक्तिक जीवन का भी अलाभ ही करते है। जीवन-लक्ष्य अधूरा रह जाता है। भावुकता और भावावेश मे दो चार राजनैतिक छलाग भर लेने के पश्चात् वे निष्क्रिय व निस्तेज हो जाते है। अपना ही जीवन उन्हे भार लगने लगता है क्योकि विद्यार्जन की शुद्ध भित्ति के बिना किसी भी क्षेत्र मे उनकी महत्वकाक्षाएं कैसे पूरी हो सकती है ? अत विद्यार्थी वर्ग को यह हृदयगम कर लेना चाहिए कि विद्यार्थी जीवन और सक्रिय राजनीति मे पूर्व और पश्चिम का भेद है।

विद्यार्थी असमय और अकारण ही अपना जीवन गोलियो की बौछारों मे होम देते है। यह भावुकता, आवेश और अदूरदर्शिता का परिणाम है। लेखा-जोखा मिला कर यदि विद्यार्थी देखेंगे तो उन्हे स्पष्ट लगेगा कि

यह घाटे का सौदा है। इस सौदे मे वे हिंसा और तोड़ फोड़ में विश्वास रखने वाले दलों के औजार बन जाते हैं। क्या विद्यार्थी इस बात को नहीं समझते कि उनके जीवन का यह कितना सस्ता उपयोग है ? अणुव्रतों मे उनके लिए यह जो भावना दी गई है—तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग न लें, विद्यार्थी जीवन के लिए एक प्रकाश-किरण है। इस भावना के अनुसरण से विद्यार्थियों में अनुशासनशीलता और सहिष्णुता का संचार होगा और वे अपने लक्ष्य से इधर उधर नही भटकेंगे।

विद्यार्थी अतीत का गौरव अपनाएं

भारतवर्ष का अतीत आर्थिक, बौद्धिक व नैतिक सभी दृष्टिकोणों से उन्नत था। भारतीय ऋषि, महर्षियों और मनीषियों ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व बिना किसी वैधशाला और प्रयोगशाला के केवल आत्म-साक्षात्कार के बल पर सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों के बारे मे वे तथ्य संसार के सामने रखे जिनके बारे मे आज भी आश्चर्य होता है। संसार के लोग जब संस्कृति और सभ्यता नाम की चीज जानते तक न थे तब यहां नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय थे, जहां पहाड़ों और नदियो को ही पार करके नही. समुद्रों को पार करके भी विद्यार्थी आया करते थे। भारतवासी कहा करते थे—ऐ संसार वालों ! नैतिकता और जीवन के आचार-विचार की शिक्षा यदि कही से लेनी है तो वह भारत से लो। संसार को दी जाने वाली यह चुनौती भारतवासियों के लिए गौरवोक्ति से कही अधिक यथार्थता की सूचक थी।

यह भारत आज भी वही है। वही हिमालय प्रहरी की तरह यहां खड़ा है। वे ही गंगा और सिंधु भारत भू को शस्य-श्यामला बनाती है। अरबसागर अब भी उसके पैर प्रक्षालन कर रहा है। परजो कुछ भारतवासियों को विरासत मे मिला था उसे काफी अंशों मे वे खो चुके हैं। भारतवर्ष ने अतीत में महत्वपूर्ण सन्देश संसार को दिए, इससे कोई नतमस्तक होने वाला नहीं है। लोग

यह देखना चाहते है कि वह सन्देश तथा वह आचार और व्यवहार की विद्या स्वय भारतीयों के जीवन मे कितनी और क्या उतरी हुई है ? उनके स्वय के जीवन मे वह सत्य नातिवकता और सदाचार कितना है। विद्यार्थी भावी पीढी है। उनका समुन्नत और सुसंस्कारित जीवन देश के उज्वल भविष्य का प्रतीक है। अत विद्यार्थी अपने जीवन को शुद्ध और नैतिक वनाते हुए अतीत के गौरव को पुनरुज्जीवित करे।

अनुशासनशीलता व सहिष्णुता आवश्यक

भारतवर्ष ऋषियो व महर्षियो की पुण्यभूमि है जिसने अपना स्वतत्र इतिहास गढा है। वह आर्यावर्त पूर्व दिशा का प्रतीक है। पूर्व से सूर्य निकलता है और चारो दिशाओ मे आलोक बिखेर देता है। भारतवर्ष भी आध्यात्मिक दर्शन व नीति का आलोक चारो दिशाओ मे बिखेरता रहा है। निकट भविष्य में वही दायित्व आज के विद्यार्थियो पर आने वाला है। अत आवश्यक है इस गुरुतर दायित्व को निभाने के लिए विद्यार्थी सव प्रकार से आत्म-निर्माण करे। अपने जीवन मे क्षमा, मैत्री, सहिष्णुता, सन्तोष आदि गुणो का विकास करे। विनय व अनुशासनशीलता विद्यार्थियो के दो प्रमुख गुण है। विनय व अनुशासन भग करने वाले विद्यार्थी ज्ञानार्जन नहीं कर सकते। भगवान् श्री महावीर के सहस्रो साधु शिष्य थे। उन्हे शिक्षा देते हुए उन्होने कहा—बुद्धिमान् विद्यार्थी अनुशासित होने पर कुपित न हो, वह क्षमा धारण करे।

विद्या अक्षर पढ लेना ही नहीं

केवल अक्षरो का ज्ञान कर लेना ही विद्या नही है। अक्षरो मे जो सद्-भावना भरी है उसे जीवन मे उतारना विद्या है। अक्षर तो सिर्फ उस भावना को जानने के माध्यम मात्र है। यदि पढ लेने से वह भावना जीवन मे नहीं

उतरी, नैतिकता और धर्म के ऊंचे आदर्शों की बातें जीवन मे नही आईं तो उस विद्या से क्या हुआ ?

धर्म शब्द सबको प्रिय है। उसका आचरण नैतिकता है। नीति और धर्म का गहरा सम्बन्ध है। शेक्सपियर ने कहा है–जहा धर्म मे नैतिकता नही आई वहा वह धर्म बिना फल के वृक्ष जैसा है और जिस नीति के साथ धर्म नही वह वृक्ष हरा भरा तो है, फल भी है, फूल भी है, पर उसकी जड नही है। बताइए ऐसा पेड़ कब तक खडा रह सकता है। अस्तु—कोई व्यक्ति तभी धार्मिक बन सकता है जब कि उसका आचरण अच्छा हो। धर्म किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित न होकर जीवन के कण कण और क्षण क्षण से सम्बन्धित होना चाहिए। बचपन जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है। विद्यार्थी यदि अभी से सुसंस्कारी बनने का प्रयत्न करेगे तो उनका भावी जीवन उन्नत होगा।

विद्यार्थी वर्ग से ही नैतिक निर्माण सम्भव

आज भारतवर्ष की निर्माण वेला है। बड़े बडे बान्धो का निर्माण हो रहा है, नहरे बनाई जा रही है, बड़े बडे उद्योग धन्धो और कल-कारखानों का जाल बिछाया जा रहा है, पर सबसे बडे निर्माण का दायित्व किन्हीं पर है तो वह स्कूल, कालेज और यूनिवरसिटी पर है। क्योंकि भावी पीढ़ी के लाखों कर्णधार उन्ही के तो नियत्रण मे है। ससार में भारत की पहचान इससे नही होगी कि यहां बड़े बड़े बांध, नहरे और उद्योग धन्धे कितने है, अपितु इससे होगी कि भारतीयो का चरित्र कितना उज्वल और नैतिक स्तर कितना उन्नत है। इस तरह भौतिक-निर्माण से अधिक नैतिक-निर्माण की आवश्यकता है। इसका दायित्व विद्यार्थी वर्ग पर विशेष रूप से आता है। नैतिक निर्माण का प्रारम्भ विद्यार्थी वर्ग से ही हो सकता है, बड़े और बूढों से निर्माण नही, सुधार ही हो सकता है।

छात्राओं को मातृक गौरव मिला है। देश में जितने भी महापुरुष, कवि, राजनैतिक हुए है उनमे से बहुतो ने माताओ से प्रेरणा ली है। भारतीय नारी कभी पिछडी नही रही। उसने जहा अन्यान्य क्षेत्रो मे प्रगति की है वहां उसका चरित्र हमेशा ऊचा और अनुकरणीय रहा है। छात्राओ को बौद्धिक विकास के साथ साथ नैतिक व चारित्रिक विकास भी करना है। जिसका चरित्र जितना ऊचा होगा उसमे उतना ही अधिक आत्मबल होगा, वह अपने जीवन को उतना ही अधिक उज्वल बना सकेगी।

तथ्याग्रही बनें

आज का युग वादों के विवाद का युग है। अनेक परस्पर विरोधी विचारधारायें आकर मस्तिष्क से टकराती हैं। परन्तु विद्यार्थियो का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वे तथ्याग्रही बने। पौराणिक परम्पराओ के नाम पर वे न तो अन्धविश्वासो और कुसस्कारो से चिमटे रहे और न प्रगति के नाम पर आधुनिकता का ही अन्धानुकरण करे। कोई भी सिद्धान्त और व्यवहार न तो केवल प्राचीन होने के कारण हेय होता है और न केवल नवीन होने के कारण उपादेय। सत्यासत्य का निर्णय तो तटस्थ बुद्धि और विवेक के द्वारा ही किया जा सकता है। इसलिए विद्यार्थी पूर्वाग्रहो मे न पड कर अपने मस्तिष्क का द्वार खुला रखे और वस्तु-सत्य को स्वीकार करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहे। शिक्षा का उद्देश्य मानव की विवेक-बुद्धि को विकसित करना ही तो है।

भारतीय संस्कृति मे ज्ञान से चरित्र को विशेष महत्व दिया गया है। जहां ज्ञान और चरित्र का संयोग होता है वहां सोने में सुगध हो जाती है और जीवन के विकास का पथ प्रशस्त हो जाता है, पर चरित्रहीन ज्ञान निर्जीव शरीर को पहनाए हुए आभूषणो की तरह निरर्थक है।

विद्यार्थियों में नैतिक जागृति आवश्यक

विभिन्न वर्गो मे व्याप्त बुराइया परस्पर मिलकर इतनी शृंखलाबद्ध हो गई है कि कोई भी वर्ग उसे तोडने के लिये पर्याप्त सामर्थ्य नही रखता। विद्यार्थी वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो उस शृखला की कडी होने से मुक्त रह रहा है। वह उस पर प्रहार कर सकता है। अत आवश्यक है विद्यार्थी नैतिक जागृति के अग्रदूत वने। आज के विद्यार्थी ही कल के व्यापारी, राजकर्मचारी, नेता वनेंगे। उनका अपना निर्माण ही समग्र भारतवर्ष का निर्माण है, उनकी नैतिक जागृति ही देश के दूषित वातावरण को शुद्ध वना सकती है।

कालेज के वातावरण मे हम साधुओ का आना बहुत सारे विद्यार्थियों को अद्भुत सा लगता होगा क्योकि वे साधु सस्कृति से परिचित नही है। पर उन्हें जानना चाहिए भारतीय सस्कृति मे साधु-समाज का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है। आगम, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, व बौद्ध त्रिपिटक आदि भारतीय सस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ ऋषि महर्षियों व साधु निर्ग्रन्थो की ही तो देन है। क्या एक भी ग्रन्थ वताया जा सकता है जो आर्य संस्कृति मे मूलभुत हो और वह साधु सन्तो की देन न हो।

शान्ति व संयम से काम लें

विद्यार्थी जीवन का लक्ष्य विद्यार्जन करना होता है। इसे भूल कर जब विद्यार्थी उत्तेजनात्मक आन्दोलन में चले जाते है, तव वे ध्येय विहीन होकर अपने जीवन को सदा के लिए निराशा व असफलताओ पर वलिदान कर देते है। लक्ष्य तक वही व्यक्ति पहुंचता है जो इधर उधर झाके विना अध्यवसायलीन होकर उस ओर वढता ही रहे। आजके विद्यार्थी थोड़े से झंझावत मे अपनी राह भूल कर भटक जाते है। उन्हे चाहिए कि विद्यार्थी-जीवन में जो भी समस्या उनके सामने आए, उसे सुलझाने के लिए वे शांति

व संयम से काम लें। विद्यार्थी जीवन की वडी से वड़ी समस्या भी भावी जीवन की तुलना मे वहुत छोटी हुआ करती है। उसके लिए ही अपने जीवन को होम देना शैशव का परिचायक होता है।

विद्यार्थी त्रिशंकु की स्थिति में

विद्यार्थी वर्ग अव तक चौराहे पर है। पूर्व और पश्चिम के विरोधी आकर्षणो ने उसे त्रिशकु वना दिया है। पश्चिम का भौतिक आकर्षण छूटता नही और पूर्व के नैतिक और आध्यात्मिक आकर्षण के विना उसका चारा नही। ऐसी स्थिति मे वह आध्यात्मिक व नैतिक विकास को प्राथमिकता दे। उसके पीछे लगी भौतिक विकास की गाडी भी पटरी से नीचे नही उतरेगी। यदि उसने भौतिक विकास को प्रमुखता दी और नैतिक व आध्यात्मिक विकास को गौण रखा तो वह गाडी के पीछे वैल जोटने जैसा होगा। जिसमें गाडी को भी खतरा है और वैल को भी। आज उदजनवम और अणुवमो से ससार के निरभ्र वातावरण पर भयकर विभीपिका छा गई है, वह उसी का ही परिणाम है।

आशा का उज्ज्वल केन्द्र

आज का जन-जीवन इतना विकृत हो गया है और लोग कुप्रवृत्तियों के इतने अभ्यस्त हो गए है कि वयस्क जनता मे सुधार की सम्भावना वहुत धूमिल प्रतीत होती है। विडम्बना तो यह है कि लोग विकारो को ही सस्कार मान वैठे है जिससे कि विकृति ही आज की सस्कृति वनती जा रही है। इस अन्धकारमय अनैतिक वातावरण मे विद्यार्थी-समाज ही आशा का उज्ज्वल केन्द्र है। वे उन वहुत-सी अनैतिक प्रवृत्तियो से मुक्त है जो उनके वुजुर्गो की रग रग मे घर कर चुकी है। अगर आज का विद्यार्थी-

समाज अपने जीवन में उच्च नैतिक आदर्शों को अपना ले तो कल का व्यापारी-समाज और अधिकारी-वर्ग स्वत: ही शुद्ध हो जाएगा। राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के कार्यक्रम मे अगली पीढी के नैतिक-निर्माण की ओर आज जिस उदासीनता का परिचय दिया जा रहा है, वह भविष्य में घोर अनिष्टकर सिद्ध हो सकता है।

विद्याध्ययन का उद्देश्य केवल द्रव्योपार्जन और उच्च पदों को प्राप्त करना ही नही है। उसका उद्देश्य तो अज्ञान से मुक्त होकर आत्म-निर्माण की ओर प्रवृत्त होना है। विद्यार्थियो को आत्म निर्माण की दिशा में अपना कदम आगे बढाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य

भारत के प्राय: समस्त धर्म प्रवर्तको ने ब्रह्मचर्य के निरुपम महत्व को स्वीकार किया है। ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए। जो भ गोपभोग के भंवर जाल में पडे रहते है वे कभी मोक्ष-मार्ग की ओर उन्मुख नही हो सकते।

आजकल के कुछ मनोवैज्ञानिक सयम को आत्महनन मानते है और इसकी अस्वास्थ्यकर सम्भावनाओं की ओर सकेत करते हैं, परन्तु वे यह भूल जाते है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा सचित शक्ति से ही ससार में बडे से बडे कार्य हुए है। ब्रह्मचर्य का मूल लक्ष्य आत्मोत्थान है, पर इसके शारीरिक और मानसिक लाभ को भी नगण्य नही कहा जा सकता। विद्यार्थी समाज का तो यह परम धर्म है कि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे।

वास्तविक प्रगति

वास्तविक प्रगति धन का ढेर लगाने मे व शरीर से स्थूल हो जाने में

नही है । वह तो आत्मा के उदय मे है। वह उदय त सम्भव है जब मनुष्य ईर्ष्या, स्पर्धा, असहिष्णुता आदि दुर्गुणो से ऊपर उठकर मैत्री, बन्धुता व सहिष्णुता आदि गुणो का विकास करे। विद्यार्थियो के जीवन मे महत्वाकांक्षाए अधिक होती है, क्योकि उनका अबोध जीवन किसी भी दिशा मे आगे से आगे तक वढ सकता है । किन्तु अपने लक्ष्य तक वह व्यक्ति पहुचता है जो आलस्य, भय, निराशा आदि से रहित होकर कार्यं वा साधयेयं देह वा पातयेयम्" की उक्ति को लेकर आगे से आगे बढता ही जाए।

विद्यार्थी भावुकता और आवेश में न बहें

जिस विद्यार्थी वर्ग पर देश की भावी आशाये केंद्रित है वही आज देश की एक नवीन समस्या व अजीब पहेली बन बैठा है। भावुकता व आवेश मे वह उल्टी दिशा मे वहा जा रहा है। वह अनुशासित रहते हुए जीवन-निर्माण की वात को भूल कर स्वय अनुशासक होने की राह मे चल पड़ा है। तनिक प्रतिकूल वात को वर्दाश्त करना उसके आपे की वात नही है। वह उसके लिए वडा मे वड़ा हिंसा व वडा से वडा विध्वस मोल ले सकता है। इंदौर प्रभृति स्थानो मे होने वाले गोलीकाड इसी बात के परिचायक है। इस प्रकार से अनुशासनहीनता का परिचय देना विद्यार्थी जीवन व विद्या को अभिशप्त करना है। विद्यार्थी वर्ग को किसी भी स्थिति मे आवेश व भावुकता में वह नही जाना चाहिए।

विद्यार्थी नैतिक व्रत ग्रहण में भीष्म-प्रतिज्ञ बनें

आज समाज मे रूढियो कुसस्कारो एव अनैतिकताओ का जो जमघट लगा है उसके उन्मूलन का एक मात्र मार्ग यही रह गया है कि विद्यार्थी इस दिशा मे करवट ले। सामाजिक जीवन मे प्रवेश करने से पूर्व वे तथा प्रकार की अनैतिकताओ से बचने के लिए भीष्म-प्रतिज्ञ बनें।

कार्यकर्ताओं में

कार्यकर्ता भाग्यवादी न बने

कार्यकर्ता का धर्म कार्य करना है। निश्चिन्त होकर बैठे रहने की बात उसमें जरा भी नहीं आती। आश्चर्य होता है जब कार्यकर्ताओं के मुंह से सुना जाता है यह काम मेरे से नहीं होने का है, या मुझे समय नहीं है या जैसी होनहार होगी वैसा होगा आदि। ये सारे कथन उनके अकर्मण्य और भाग्यवादी होने के सूचक होते हैं। पुरुषार्थी के सामने नहीं होने का कुछ होता ही नहीं। भारतवर्ष में बहुत सारे लोग प्रातः उठते समय सर्वप्रथम अपनी हथेली को देखते हुए यह कहा करते हैं:—

> कराग्रे वसति लक्ष्मी, करमध्ये सरस्वती।
> करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कुरु दर्शनम्।

हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य भाग में सरस्वती और उसके मूल में ब्रह्मा निवास करते हैं. इसलिए प्रभात में हस्त-दर्शन करना चाहिए। मैं समझता हूं इस उक्ति में यही वास्तविकता छिपी है कि पुरुषार्थ में ही लक्ष्मी, सरस्वती और मोक्ष या भगवान् का निवास है। पुरुषार्थ का प्रतीक हाथ है, इसलिए प्रातः उठते ही अपने हाथों को सम्भालो। कार्यकर्ता कभी भाग्यवादी न बनें। भाग्य सदा परोक्ष रहता है और पुरुषार्थ प्रत्यक्ष। अतः जीवन-व्यवहार में केवल पुरुषार्थ का ही महत्त्व रह जाता है।

कार्यकर्ताओं में सबसे बड़ी बीमारी यह है कि वे सोचते बहुत हैं और करते उसका थोड़ा भी नहीं। योजनाओं के निर्माण में समय और शक्ति खप जाती है और वे योजनाएं केवल कागजी ही रह जाती हैं। कार्यकर्ता

इस बात को न भूले कि उनके मस्तिष्क एक और हाथ दो है। जितना उन्हे सोचना है उससे दुगुना उन्हे करना है।

(सब्जी मडी-दिल्ली के कार्यकर्ताओ के बीच दिए गए भाषण से)

जनतत्र की सफलता का आधार : नैतिक व बौद्धिक उच्चता

कोटि कोटि जनता की दीर्घ साधना के बाद जनतत्र का उदय हुआ है। परन्तु जनतत्र के प्रतीक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि बिना पर्याप्त बौद्धिक विकास के सही जनतत्र की मञ्जिल भी दूर रहेगी। जनतंत्र एक ऐसी शासन पद्धति है जिसमे व्यक्ति व्यक्ति को अपने आपमे उत्तरदायी मानना पड़ता है। इसमे कोई व्यक्ति यह नही कह सकता कि मेरी अनैतिकता का दूसरो से क्या सम्बध है? और उसका समाज और देश पर क्या प्रभाव पडता है? जिस प्रकार दुग्धालय मे अच्छे से अच्छा व साधारण से साधारण दूध आकर एक रस बनता है उसी प्रकार अच्छे व बुरे व्यक्तियो द्वारा होने वाले मतदान से ही जनतत्री शासन व्यवस्था बनती है। उसके अच्छे व बुरेपन मे सबका साझा है। इस पद्धति के अनुसार समाज व देश का आगे बढना व पीछे खिसकना राजनैतिक कार्यकर्ताओ, विधान सभा के सदस्यो, ससद के सदस्यो एव मत्रियो पर निर्भर है, क्योकि वे ही शासन व्यवस्था के स्तम्भ है। अतः उन्हे अपने दायित्व को नही भूलना चाहिए और जनता को जिसके कि द्वारा शासन–अधिकारियो व विधायको का निर्वाचन होता है अपनी नैतिक व बौद्धिक उच्चता को अक्षुण्ण रखना चाहिए। जनतंत्र की सफलता का एकमात्र यही आधार है।

यद्यपि जनतत्र दलबदी व गठबदी को स्वीकार करता है किन्तु सका तात्पर्य यह नही होता कि अपने दल व नेता की बुराइयों का भी समर्थन किया जाए और प्रतिपक्षी की अच्छाइयो पर भी परदा डालने का प्रयत्न

किया जाए। जनतंत्र तभी स्वस्थ रह सकता है जबकि व्यक्ति अपने नेता व दल से भी अधिक गठबन्धन नैतिकता व आदर्श के साथ रखे।

(राजस्थान विधान सभा के सदस्यों के बीच दिए गए भाषण से)

जनता व जन प्रतिनिधि कर्तव्य विमुख न हों

जनता अपने प्रतिनिधियों को लोक सभा मे भेजती है। वे प्रतिनिधि बहुमत के आधार से सारा शासन तन्त्र चलाते है। चुनावो के पश्चात् जनता व उन प्रतिनिधियों का यदि एक दम अलगाव ही बन जाता है, उनकी कडी यदि अनन्तर रूप से जुडी नही रहती है तो वह वास्तविक लोकतत्र व्यवस्था नही बनती। वहा शरीर लोकतत्र का रहता है और आत्मा एकतत्र की। जन-प्रतिनिधियो का जनता के हितो को भूल जाना जैसे औचित्य का उल्लंघन है, जनता का जन-प्रतिनिधियो पर छा जाना उससे भी भयकर है। जनता यह न समझे कि हमने मत देकर जन-प्रतिनिधियो के दिमाग व दिल को एकदम खरीद लिया है और हम उन कठपुतलियो को चाहे जैसे नचाए। प्रत्युत वस्तु स्थिति तो यह है कि मत देने वाले अपने आप को जन नेताओं के हाथो सौंप देते है और समझते है कि हमारा काम इनके नेतृत्व में चलता है। अस्तु-तथ्य यही है कि जनता व जनप्रतिनिधि दोनो ही कर्त्तव्य विमुख न हो।

कर्त्तव्य विमुखता ही सब अनैतिकताओं की जड़ है। व्यापारी, उद्योग-पति, राजकर्मचारी, किसान व मजदूर आदि सब अपने कर्त्तव्यो को भूल रहे है। जिससे मिलावट, शोषण, रिश्वत, हिंसात्मक वृत्तिया आदि दुर्गुणों का समाज मे बोल बाला है। हर एक आदमी अपने रास्ते से चले तो कौन किसको रोकेगा ?

(दिल्ली में कांग्रेस कार्यकर्ताओं के बीच दिए गए भाषण से)

कार्यकर्ता आत्मशोधन के लिए सजग रहें

आज चारो ओर राष्ट्रीय नव-निर्माण की अनेको योजनाएं चल रही हैं परन्तु जब तक मानव का चारित्रिक धरातल सुदृढ नही होगा, स्थायी और सुव्यवस्थित सुधार तथा निर्माण की कल्पना भी नही की जा सकती। प्रत्येक व्यवस्था का सचालन अन्तत व्यक्ति के द्वारा ही होता है अत जब तक समाज में व्यक्ति व्यक्ति के जीवन को अनैतिक प्रवृत्तियो से मुक्त नही किया जाएगा अच्छी से अच्छी व्यवस्था के भी विकृत होने की सम्भावना बनी रहेगी। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था मे तो प्रत्येक व्यक्ति शासन का सूत्रधार होता है, इसलिए यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आत्मशोधन के लिए सजग और सचेष्ट रहे।

कार्यकर्ता वर्ग समाज-शृंखला की एक सयोजक कड़ी है। सामाजिक जीवन की विविध गतिविधियो पर उसका गहरा प्रभाव होता है, इसलिए कार्यकर्ताओ का व्यक्तिगत जीवन भी इतना निर्मल होना चाहिए कि वे समाज के सम्मुख एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थिति कर सकें।

(दिल्ली में प्रजा समाजवादी कार्यकर्ताओ के बीच दिए गए भाषण से।)

अहिंसात्मक आन्दोलनों में साम्प्रदायिक बुद्धि न आए

आज देश मे जितने अहिंसा की दिशा में चलने वाले आन्दोलन हैं, उन्हें अपनी मंजिल की ओर एक दूसरे का सहयोगी बन कर आगे बढना चाहिए। इससे देश पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा और अपनी मञ्जिल निकट होगी। नाना धर्म सम्प्रदायो की तरह नाना अहिंसात्मक आन्दोलनो के कार्यकर्ताओ मे भी साम्प्रदायिक बुद्धि नही आनी चाहिए जिससे कि वे अपने

पक्ष की केवल अच्छाइयों को ही देखते रहें और अन्य पक्ष की बुराइयों को। इससे विरोध बढ़ता है और एक ही दिशा मे चलने वाले एक दूसरे से टकरा जाते हैं।

(बंबई मे भारत सेवक समाज के कार्यकर्ताओ के बीच दिए गए भाषण से)

आरक्षकों में

मनुष्य मानवता के अभाव में दुःखी

लोग कहते है मनुष्य रोटी व कपडे के अभाव मे दु खी है पर सच बात तो यह है वह मानवता के अभाव मे दु खी है। दो भाइयो के पास यदि दो ही रोटिया है और उनमे भ्रातृत्व है तो एक एक रोटी खाकर भी दोनो सुख मान सकते है। यदि दोनो मे भ्रातृत्व नही है तो हो सकता है एक भाई पाच रोटिया अपने कुत्ते को भी डाल दे और एक भाई भूख के मारे कराहता रहे। ऋषि मुनियो ने कहा है—उदार चरित्र वाले लोगो के लिए विश्व ही कुटुम्ब है। मानव मानव का बन्धु है पर आज मानवता के अभाव मे अमीरी व गरीबी के भेद दुर्भेद्य हो रहे है। इसके अतिरिक्त आज के समाज की जितनी समस्याये व सघर्ष है सब अमानवता की आधार भूमि पर ही अवस्थित है

पुलिस वर्ग भी मानव समाज का एक विशेष अग है। उसे रिश्वत लेकर दुविधा ग्रस्त लोगो की परिस्थिति से नाजायज फायदा नही उठाना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है बहुत सारे लोगो ने रिश्वत को पाप मानना ही छोड दिया है।

(नई दिल्ली पुलिस अधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

विज्ञान के बिना मनुष्य जी सकता है पर धर्म के बिना नही

विज्ञान ने अनन्त अन्तरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह का संचार कर असम्भव को सम्भव कर बताया है। निकट भविष्य मे पशुओ व उसके बाद मनुष्य को

भी उपग्रह्-यान का यात्री बना देगा ऐसा उसका दावा है । उससे आगे आकाशीय ग्रह्-लोको मे भी मनुष्य को पहुंचाया जा सके इस दिशा में वह प्रयत्नशील है। पर इसी पृथ्वी पर पैदा होने वाला मनुष्य इसी पृथ्वी पर पैदा होने वाले अन्य मनुष्यो के साथ कैसे रहे और कैसे जीए, इस विषय मे विज्ञान अब तक मौन रहा है और आगे भी रहेगा ऐसा लगता है। धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जीने की कला बताता है। "आत्मन · प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" अपने लिए जो प्रतिकूल है वैसा व्यवहार दूसरों के साथ मत करो। विज्ञान के बिना मनुष्य जी सकता है पर धर्म के बिना मनुष्य मनुष्य रह कर नही जी सकता। अणुव्रत आन्दोलन धर्म के सार्वभौम तथ्यों को उत्तेजन देता है। वह जीवन में न्याय, शाति व नैतिकता का प्रतिष्ठान चाहता है। पुलिस-जन शान्ति व न्याय के प्रतीक होते हैं अतः उन्हे अणुव्रत भावना को अधिक से अधिक जीवन मे उतारना चाहिए।

(दरियागंज [दिल्ली] में पुलिस अधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

रक्षक भक्षक न बनें

पुलिस का दायित्व जनता के जीवन और धन की रक्षा करना है। इसीलिए तो उसका नाम आरक्षक है। पर कभी कभी जब वे समाज विरोधी तत्त्वों के साथ मिलकर उनके संरक्षण का भार अपने पर ले लेते है और निरपराध नागरिकों पर अत्याचार करने लगते है तब वे 'रक्षक ही भक्षक' की कहावत चरितार्थ कर देते है। सच बात तो यह है जब पुलिस के नौजवान व अधिकारी ईमानदार हो जाते है तो जनता से भी बहुत प्रकार के भ्रष्टाचार अनायास ही मिट जाते है। अवैध व्यवसाय चलाने वाले लोग बहुधा यह कहा करते है—हमें राजकीय भय नही होता। क्योंकि राजकर्मचारी भी तो आखिर बाल बच्चे वाले ही मनुष्य है। पैसे की आवश्यकता जैसे हमारे है वैसे उनके भी तो है।

रिश्वत लेने वाले लोगों ने अपने बचाव का भी अजीब उत्तर गढ लिया है। उनसे जब कहा जाता है–भैय्या ! जिससे तुम पैसे लेते हो उसे किसी जन्म मे चुकाने भी तो पडेगे ? वें कहते है—हमारा विश्वास तो यह है कि पिछले जन्म मे हमारे से जिन्होने नाजायज पैसे लिए थे वे लोग अब रिश्वत देकर हमे पैसे चुका रहे है। अपना ऋण वापिस लेते हम पापी कैसे हो सकते है ? यह उत्तर सर्वथा नैतिक साहस की कमी का परिचायक है। अणुव्रत आन्दोलन का उदय मानव की इन दुर्बलताओ को मिटाने और मनुष्य की आत्मिक व नैतिक शुद्धि करने के लिए हुआ है । व्रत-ग्रहण एक साधन है जिससे मनोबल अर्जित होता है और व्यक्ति अपनी मञ्जिल तक पहुचने मे कही डगमगाता नही ।

(दिल्ली-कोतवाली मे पुलिस अधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

चरित्र की प्रतिष्ठा आवश्यक

अच्छे व बुरे लोग सभी काल मे रहे है---कलियुग मे भी , सतयुग में भी। अन्तर इतना ही है कि सतयुग मे समाज की निष्ठा चरित्र पर आधारित रही है। दुराचारी लोग समाज मे सम्मानित होकर नही रह पाते थे। सीता का निर्वासन इस वात का सूचक है कि दुराचार के प्रति चाहे वह अवास्तविक ही क्यो न हो समाज कितना असहिष्णु होता था। आज की बात सर्वथा इसके विपरीत है। आज तो बुरे लोगों के बहुमत मे अच्छे लोगो का जीना कष्टप्रद हो रहा है। रिश्वत लेने का विरोध करने वाले लोग रिश्वत लेने वाले लोगो द्वारा मुसीबत मे फसाए जाते है। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए है। यह चारित्रिक निष्ठा का पतन है, जिसका परिणाम समाज के लिये बहुत गम्भीर हो सकता है।

(आरक्षक निवास (दिल्ली) मे दिए गए भाषण से)

महिलाओं में

'मैं नहीं' 'तू महान्' में समस्याओं का समाधान

आज संघर्ष का युग है। नाना वर्गो मे नाना संघर्ष छिड रहे है। यहा तक कि सजीव सृष्टि की पहली ईंट पुरुष और स्त्री, दम्पत्ति की अभिन्न इकाई मे भी यह संघर्ष जोरो से चल पड़ा है। नारी-समाज भी नाना सगठन अपनी अधिकार रक्षा के लिए वना रहा है। लोग सोचते है नारी की प्रगति से वह समय अव शीघ्र ही आने वाला है जव पतियो को अपनी अधिकार रक्षा के लिए पृथक् संगठन खोलने पडेगे। पर वस्तु स्थिति यह है कि जहां सघर्प है वहा हिसा है। हिसा भारतीय संस्कृति के अनुरूप नही है। भारतीय नारी ने अहिसा, प्रेम और उत्सर्ग के आधार पर अपने अधिकार सुरक्षित ही नही रक्खे प्रत्युत पुरुष पर हुकूमत भी की है। संघर्ष मे अहं होता है। वहा प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग से अपने को वड़ा वताता है। पर ऐसा करने से कोई वर्ग किसी को वड़ा नही मान लेता। अहिसा और प्रेम का विवेक जव जागरूक होता है तव दोनो वर्गो मे दोनो ही एक दूसरे को वडा मानते है। नारी और पुरुष के वीच भी यदि 'मैं महान्' की वात रही तो तनाव वढ़ेगा। जव दोनो मे से कोई भी वर्ग 'तू महान्' का उद्घोषण करेगा तभी नारी और पुरुष में चलने वाले तनाव समाप्त होगे।

नारी और पुरुष के व्यवहारो मे संघर्ष शव्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। इससे वर्गीय भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है जव देश व्यापी चुनावों के अवसर पर सव महिलाएं एक और सव पुरुष एक, देखें कि आखिर देश की सत्ता किसके हाथ मे आती है।

(वंवई में छात्राओं व अध्यापिकाओ की सभा मे दिए गए भाषण से)

महिलाएं नैतिक नव निर्माण मे सक्रिय योग दें

भारतीय नारी का इतिहास त्याग, सयम व कर्त्तव्य पालन की भावना से ओतप्रोत है, पर आज के नारी समाज मे भीरुता, अन्धविश्वास व पराव-लम्बन ने घर कर लिया है। जागृति के इस युग मे उसे बदलना होगा। महिला समाज यदि प्रबुद्ध हो जाता है तो समाज मे जन्म, विवाह व मृत्यु सम्बन्धी आडम्बर की प्रवृत्तिया सहज ही मिट जाती है। फिर दहेज और ठहराव से होने वाले दुष्परिणाम समाज को नही भोगने पडते। महिलाए चाहे तो रिश्वत, मिलावट आदि नाना अनैतिकताओ मे डूबे पुरुष समाज को भी बहुत कुछ सीधे रास्ते पर लगा सकती है और भावी पीढी के कर्ण-धार बालको को आदर्श नागरिक बना सकती है। आज आवश्यकता है कि महिलाए निष्क्रिय व तटस्थ न रह कर देश के नैतिक नव-निर्माण मे सक्रिय योग दें।

(दिल्ली मे अणुव्रत महिला समाज की स्थापना के अवसर पर दिए गए भाषण से)

ठहराव एक सामाजिक अभिशाप

भारतवर्ष के बहुत सारे लोग नदियो को पवित्र मानते है और अपनी पुत्रियो के नाम गगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी आदि देते हैं, पर समाज मे आज उनकी जो दयनीय दशा है वह किसी से छिपी नही है। विवाह के नाम पर वे उल्टा मोल देकर बिकती है। जिनके माता-पिता भरपूर मोल नही दे सकते तो उन्हे आजन्म अविवाहित रह जाने व आत्महत्या कर लेने पर भी विवश होना पडता है। जिस नारी जाति की अमृतोपम दुग्धधारा ने मनुष्य मात्र को पाला है उसके प्रति पुरुष-जाति का यह व्यवहार!

(दिल्ली मे ठहराव विरोधी अभियान के अवसर पर दिए गए भाषण से)

भारतीय संस्कृति मे नारी का गौरवपूर्ण स्थान

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वह शील, त्याग व धर्म के क्षेत्र मे सदा पुरुष से आगे रही है। विद्या, धन और शक्ति का त्रिगुणात्मक रूप भारत वर्ष में नारी को ही माना जाता है। इसीलिए तो सरस्वती विद्या की, लक्ष्मी धन की व दुर्गा शक्ति की अधिनायिका मानी गई है और लोग इनकी पूजा करते है। पता नही लोग किस अर्थ मे यह कहते है कि भारतीय संस्कृति मे नारी की उपेक्षा रही है जब कि यहां के लोग सीताराम व राधाकृष्ण की रट मे राम व कृष्ण से पहले सीता व राधा का नाम पूर्व पद से ग्रहण करते है।

नारी और पुरुष का संघर्ष गम्भीर समस्या

आज के युग मे नारी और पुरुष के सघर्ष को काफी बढावा मिला है, जो अतीत मे कभी नही था। एक समय वह था जब नारी ने पुरुष के लिए और पुरुष ने नारी के लिए अपना सर्वस्व बलिदान किया था। आज यह पुरुष और नारी के सघर्ष की विचारधारा प्रसारित होती रही तो इससे घर-घर मे विग्रह की एक लहर दौड जाएगी और नारी और पुरुष का यह सघर्ष सबसे अधिक भयकर सिद्ध होगा। भारतीय सस्कृति का संदेश हमेशा से ही प्रेम, सौजन्य और अहिसा रहा है। यदि जीवन के इन नैतिक पहलुओ को प्रश्रय दिया गया तो सघर्ष की छोटी मोटी दीवारें स्वयं गिर जाएगी। बहिनें आक्षरिक और बौद्धिक विकास की तरह चारित्रिक विकास को स्थान देगी तो उनका जीवन सादा, सात्विक और सदाचारी बनेगा।

नारी हृदय से दुग्ध धारा

समस्त मानव समाज नारी व पुरुष इन दो भागो मे बंटा हुआ है।

दोनों ही मानव परम्परा के समान अंग है किन्तु कुछ दृष्टियो में नारी-जाति का स्थान पुरुष-जाति से ऊंचा है। नारी जाति की गोद में सारा विश्व खेला है और मातृ-वात्सल्य की अनुपम छाया मे पला-पुषा है। वह जगत्-जननी है। जहां पुरुष के हृदय मे क्षोभ, अहंकार, घृणा प्रेम व दोष भरे है वहा नारी जाति के हृदय से अमृतोपम दुग्धधार बहती है। उसका हृदय प्रेम, सतोष, नम्रता, उत्सर्ग आदि दैवीगुणो से ओतप्रोत है। नाना सस्कृतियो व नाना वाद-प्रवादो से सकुल आज के वातावरण में नव निर्माण की ओर बढने वाली छात्राएं नारी जाति के गौरव को समझें।

भारतीय नारी ने अपने धर्म व अपने सत्य तथा शील की रक्षा के लिए वैभवशाली साम्राज्यो को ठुकराया व अपने प्राणो की वलि चढा दी।

विवाह भी एक व्यवसाय

आज कल विवाह भी एक व्यवसाय वनता जा रहा है। लडकों के माता-पिता सर्व प्रथम यह देखने लगे है कि लडकी का पिता कितना दहेज देगा। विवाह प्रसग पर दर मुलाई के साथ ठहराव होता है। अधिक रुपया देने वाला मिलने पर थोडे रुपया देने वालो का सौदा वापिस हो जाता है।

कुछ वर्षो पूर्व लडकिया महगी थी, लडके सस्ते थे। आज कल लडके महगे हो गए है। लडकियो की इस अमानवीय व्यवसाय मे भयकर दुर्दशा हो रही है। इस सामाजिक अभिशाप के परिणाम स्वरूप वे आत्महत्यायें करने लगी है। कुछ एक आजन्म अविवाहित ही रह जाती है। दो चार लडकियों वाले माता-पिता मे क्या वीतती है यह कहा नही जा सकता। भारतीय सस्कृति मे जिस नारी ने अपने कुल, शील और समाज के सरक्षण मे जलती चिताओ का आलिंगन किया, अपना सब कुछ होम

कर पुरुषो को पथ भ्रष्ट होने से बचाया, अपने नौनिहाल शिशुओ के लिए सदा से अमृतोपम दुग्ध धारा बहाती रही, उस मातृ जाति का यह अपमान ?

आज समाज में मिलावट, झूठा तोल माप, रिश्वत आदि जितने भी अनाचार फैल रहे है, ठहराव की दुष्प्रथा भी उन सबका एक प्रमुख कारण है। लोग जानते है कि हमारे पास बहुत सारा पैसा नही हुआ तो हमारी लडकियो को कौन ब्याहेगा। इसलिए नैतिक, अनैतिक किसी भी प्रयत्न से हमे रुपया बटोर लेना चाहिए, नही तो हमारे इस जीवन की गाड़ी चल नहीं सकेगी। आज यदि सामाजिक जीवन इतना बोझिल न हो तो लगता है धर्म-कर्म मे विश्वास रखने वाला भारतीय मानव छोटी सी जिदगी के लिए बड़े से बड़ा पाप करके भी अर्थ-सग्रह करने की नही सोचेगा।

आज प्रत्येक नागरिक का चाहे वह युवक हो या वृद्ध पहला कर्त्तव्य है कि इस अमानवीय प्रथा का बहिष्कार करे। विद्यार्थियो का दायित्व इस विषय मे और भी बढ जाता है। क्योकि उन्हे ही नई सृष्टि का निर्माण करना है। यदि वे अपने जीवन की साथिन सस्तेपन और महगेपन के आधार पर चुनेगे तो उनके भविष्य के लिए इससे बढ कर कोई भूल नही होगी।

शिक्षित नारी रूढ़ियों से दूर रहें

घर मे कुछ दहेज या छूछक आता है या अपनी लडकी को दिया जाता है तो पहिले मोहल्ले वालो व पारिवारिक जनों को दिखाया जाता है जिससे समाज में होड़ाहोड़ फैलती है और एक विषम समस्या खड़ी हो जाती है। बहुत सी रूढियां ऐसी है जिनके पीछे न कोई भूमिका है और न कोई प्रयोजन , फिर भी महलिाए उनमे विशेष रुचि रखती है और उन्हे आगे बढ़ कर अपनाती है। आज की शिक्षित कही जाने वाली नारिया ऐसी रूढ़ियो से अधिक सावधान रहे।

मजदूरों व कर्मचारियों में

सत्याचरण ही सर्वोत्तम उपासना

युग और परिस्थितियो के साथ जीवन के मूल्य वदलते रहे हैं। सत्य ही एक ऐसा तत्त्व है जो त्रैकालिक महत्व रखता है। अहिसा के स्थान पर हिसा को जीवन का सिद्धात वना कर चलने वाले और त्याग के वदले भोग को महत्व देने वाले वाद व विचार संसार मे आए पर सत्य के वदले असत्य को जीवन का सिद्धान्त मानने वाला कोई भी वाद व विचार अव तक सामने नहीं आया है। भविष्य मे भी नही आएगा ऐसा विश्वास किया जा सकता है। सत्य समाज-व्यवस्था का मेरुदड है और सत्य ही समाज का स्वर्णिम आधार है। जीवन व्यवहार मे उसे अपनाए विना समाज जैसी कोई इकाई सध ही नही सकती। आज सत्य के अभाव मे ही नाना भ्रष्टाचारो के रूप मे नाना दुरवस्थाए पनप रही हैं।

भारतीय सस्कृति मे 'सत्यमेव जयते' 'सच्चमेव भयव' यही जीवन शुद्धि के आदि मत्र रहे हैं। महाभारत मे एक वर्णन है —जाजलि वणिग् व्यवसाय करते हुए भी सत्य की उपासना करता। कभी वह झूठ तोल माप नही करता। उस सत्याचरण से उसे ब्रह्मज्ञान मिला। उसकी दुकान ही उसके कल्याण के लिए तपोवन सिद्ध हुई। आज के व्यापारी व कर्मचारी यदि तथा प्रकार के सत्याचरण करने लगे तो सहज ही धर्म, अर्थ व काम तीनो ही सध जाते हैं।

(स्टेट वैंक आफ इण्डिया (नई दिल्ली) मे कर्मचारियो के बीच दिए गए भाषण से)

मजदूर वर्ग चरित्रवान् बने

आजकल का मजदूर वर्ग, सत्ता और अधिकारो के संघर्ष में लगा हुआ है परन्तु मजदूरों को सर्वप्रथम सघर्ष अपने जीवन की अनैतिकताओ और दुष्प्रवृत्तियों से करना है। जीवन का मूलाधार चरित्र है। अगर मजदूर वर्ग चरित्रवान् नही हुआ तो वह न तो प्राप्त अधिकारो का सदुपयोग ही कर सकेगा और न उन्हे स्थायी ही रख सकेगा। श्रमिक वर्ग के सभी हितैषियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उन्हे जीवन सुधार के लिए प्रेरित करे। इस के विपरीत जो लोग उनको हिसात्मक कार्यवाहियो की ओर प्रेरित करते है, वे उन्हें गुमराह करते है।

(दिल्ली मे मजदूरो की सभा मे दिए गए भाषण से)

मजदूर प्रान्तीयता को न उभारें

मजदूर वर्ग एक सुसंगठित वर्ग है। वह अपनी उन्नति, व अधिकारो के लिए भी कटिबद्ध है, पर उन्हे विवेक से आगे बढना है। सगठन का अर्थ किसी दूसरे वर्ग को परास्त करना नही होता। किसी भी दूसरे वर्ग के उचित हितों मे बाधा पहुचाए बिना जो प्रगति होती है वही वास्तविक प्रगति है। भावुकता और आवेश के साथ उचित अनुचित किसी भी स्थिति पर बड़े बड़े प्रदर्शन कर डालना भी कोई बड़ी बात नही होती। उन्हे सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई उन्हे उकसा कर उनकी भावुकता से नाजायज फायदा तो नही उठा रहा है। प्रान्तीय भावनाओ मे आवश्यकता से अधिक रस लेना भी कभी कभी देश के लिए भयकर स्थिति पैदा कर देता है। मजदूर बन्धुओं को यह ध्यान रख कर चलना है कि हिसा व तोडफोड़ केतरीको से किसी भी समस्या के हल करने का प्रयत्न घोर अनैतिकता है। जनतत्र मे ऐसी प्रवृत्तियो की आवश्यकता नही रह जाती।

(मलाड (बम्बई) मे मजदूरो की सभा मे दिए गए भाषण से)

कर्मचारी वर्ग उत्तेजना और आवेश से काम न ले

आज जागृति का युग है। पूर्व के क्षितिज से लेकर पश्चिम के क्षितिज तक मजदूर, किसान, कर्मचारी आदि हर वर्ग मे महत्वाकांक्षा व चेतना जागृत हुई है। हर एक वर्ग अपने ही पैरो पर खडा होना चाहता है, यह जनतांत्रिक युग की उल्लेखनीय देन है। पश्चिम के कुछ देशो मे अधिकारो के सघर्ष मे रक्तक्रान्तियां हो चुकी है, पर यह भारतवर्ष ऋषि, महर्षि व श्रमण, निर्ग्रन्थो की तपोभूमि है। अहिसा व न्याय इस भूमि के सहज फल है। भारतवर्ष के कर्मचारी व मजदूरो ने अब तक शान्ति पूर्ण तरीको से काम लेकर एक सुन्दर इतिहास गढा है। आज भी उनके सामने अनेको समस्याए है, जिनके लिए कि वे प्रतिक्षण सघर्षशील है। पर इस संघर्ष मे अहिसा की मर्यादा का अतिक्रमण उचित नही होता। यह सच है कि जब तक बच्चा जोर से नही चिल्लाता तब तक माता स्तन पान कराने की नही सोचा करती। मजदूरो और कर्मचारियो मे बहुत बार ऐसा ही होता है। सौ सौ बार चिल्लाने पर भी उनकी कोई नही सुनता। फिर भी यथार्थ यही है कि कैसी भी समस्या सामने क्यो न हो, मजदूर व कर्मचारी उत्तेजना व आवेश से काम न ले।

स्पष्ट है कि बिजली, पानी, डाक, तार आदि जिन लोगो के हाथ मे है वे एक छोटी सी हडताल मे अपनी सब मागे भर सकते है। पर इस अन्तिम अस्त्र को हठात् काम मे लाना सुन्दर नही हुआ करता। महात्मा गाधी ने कहा था—स्वराज्य मुझे दश वर्ष बाद ही क्यो न मिले पर हिंसा से मिलने वाला स्वराज्य मै कभी नही लूगा। मजदूर व कर्मचारी भी अहिसा के मार्ग पर चले। कर्मचारी बन्धुओ को हम केवल ही अहिसा व शान्ति की बात नहीं कहते है कि तु शासको व उद्योगपतियो से भी न्याय, प्रेम व सौजन्य की राह पर चलने की शपथ लेते है। अणुव्रत-आन्दोलन समाज मे समन्वय व सन्तुलन का उद्देश्य लेकर चलता है इसलिए उनसे कहने

की बाते उनसे कहेगे और आपसे कहने की बाते आपसे कहेगे। यह लाभ-प्रद नही होगा कि मजदूरों व कर्मचारियो के सामने शासकों व उद्योग-पतियों की त्रुटियो पर कहा जाए और शासको व उद्योगपतियों के सामने मजदूरो की त्रुटियो पर।

(दिल्ली मे बिजली बोर्ड के मजदूरो के बीच दिए गए भाषण से)

कर्मचारी काम चोर न बनें

रिश्वत लेने वाले दामचोर है और काम से जी चुराने वाले कामचोर। देखा जाता है कर्मचारी थोड़े कामो मे बहुत सारा समय पूरा करना चाहते है, पर थोड़े समय मे बहुत सारे काम पूरा करना नही चाहते। कभी कभी वे इस मनोवृत्ति से काम को बचा लेते है कि मैनेजर बचे काम को अति-रिक्त समय मे कराएगा और हमे अतिरिक्त द्रव्य लाभ होगा। ऐसे लोग कर्मचारी कहलाने के अधिकारी नही है। वे तो केवल द्रव्यचारी है।

(नई दिल्ली में स्टेट बैंक आफ इडिया के कर्मचारियो के बीच दिए गए भाषण से)

सामयिक घटनाओं पर

जीवन सादा और विचार ऊंचे हों

बडे लोगो का जीवन सादा हो यह बात आज जोरो से उठी है। बडे लोगो मे व्यापारी है, जिनकी बडी तोद नये करो ने बहुत कुछ सुखा दी है। बडे लोगो मे राज्य व केन्द्र के मन्त्री जन है, जो आज जनता के मुह पर चढ ही गए है। बडे लोगो मे ऊची तनख्वाह वाले राजकर्मचारी है, वे सादा जीवन बिताने की अपील दूसरो से ही नही करते, इसलिए स्वयं भी अब तक बचे हुए है। कुछ भी हो सामूहिक रूप से सभी वर्गो मे सादापन आए बिना समस्या हल नही हो सकती। घर मे बच्चे भूखे रहे और माता-पिता अपनी शान के लिये कार खरीदें, यह कैसी शान ? ठीक वैसे ही गरीब देश मे बडे लोग ऊचे रहन सहन को अपनी शान समझे, यह शोभास्पद नही है। ऊचे तो व्यक्ति के विचार व कार्य हो। जीवन तो सदा ही सादा हो यह एक शाश्वत तथ्य है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामत्री चाणक्य उसी अपने छोटे आश्रम मे रह कर राज्य कार्य सम्भाला करते थे जहा वे पूर्व जीवन मे विद्यार्थियो को पढाया करते थे। प्राचीन मुद्रा राक्षस नामक सस्कृत नाटक में उनके सादे जीवन के बारे मे लिखा है--

उपल सकल मेतद् मेदक गोमयानां। वटुभिरुपहृतानां र्वाहषा स्तोम अेष ॥

शरणमपि समिद्भि ' शुष्यमाणाभि राभि

र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकु आम् ॥

'कण्डे तोड़ने के लिए एक छोटा सा पत्थर व विद्यार्थियो द्वारा एकत्रित ईधन राशि ही उनका सब कुछ है।' झुके हुएछज्जे व टूटी फूटी दीवार वाला उनका घर है। आज उस आदर्श को चरितार्थ करने वाला

एक भी मत्री नही दीखता। गाधीजी आश्रमों मे रहा करते थे किन्तु आज तो वे सब खाली पड़े है। आज आवश्यकता है कि त्याग भावना से कुछ लोग ऐसा उदाहरण जनता के सामने रखें। विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि उन वातानुकूलित कोठियो को छोड़ देने से आराम घट सकता है पर मंत्रियो की शान नही घटेगी प्रत्युत उनकी शान मे और चार चांद लगेगे।

(मितव्ययिता आन्दोलन के प्रसंग पर)

शान्ति, प्रेम व न्याय में ही सामाजिक सन्तुलन

आए दिन हड़तालों का होना एकमात्र सामाजिक असन्तुलन का ही द्योतक है। हड़ताल आज देश के लिए एक ज्वलन्त समस्या वन गई है। पर एकाएक यह कह देना अविचार होगा कि हडताल करने वाले ही दोपी है या जिनके प्रति की जाती है, वे दोषी है। कुछ हड़ताले तो मात्र पक्ष के औचित्य की घोर अवहेलना कर शासक पक्ष स्वय खड़ा कर लेता है। अपना वादा, अपना न्याय शासक वर्ग नही निभाता। अपने शासकीय सामर्थ्य का उपयोग करता है। इसी का प्रतिक्रियात्मक परिणाम वह हड़ताल होती है। कुछ हड़ताले वर्गीय संगठन के वल पर अनुचित लाभ उठाने की भूमि पर हो जाया करती है। हड़ताल आज एक ऐसा अस्त्र वन गया है जिससे अनुचित से अनुचित माग भी अपने वर्गीय प्रभाव से शासकीय व सामाजिक व्यवस्थाओ को असन्तुलित कर मनाई जा सकती है पर वह न्याय नही है, संगठन शक्ति का दुरुपयोग है और इस वात का प्रतीक है कि अमुक वर्ग अपने तुच्छ स्वार्थो के लिये जन जीवन के साथ कितना खिलवाड़ कर रहा है। भूख हडताल तो दुष्प्रयुक्त हो कर और भी भयंकर अस्त्र वन जाती है। आजकल लोगो ने अन्तिम अस्त्र को

प्रथम अस्त्र बनाना प्रारम्भ कर दिया है। विचार-विनिमय, बीच-बचाव व न्यायालय की सीढियो को पार किए बिना ही लोग व्यापक हडताल व भूख हडताल का ब्रह्मास्त्र छोड़ देते है और एक बार के लिए सारे देश को हिला देते है। यह जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता का दुराचरण है। अस्तु--यह एक निर्विवाद तथ्य है—पक्ष व प्रतिपक्ष के दुराग्रह व दुरहम् में क्षोभ व असन्तुलन है और शान्ति प्रेम व न्याय मे सामाजिक सन्तुलन है। पक्ष व प्रतिपक्ष दोनो ही आत्मावलोकन कर अपने आपको सम्भालते रहे तो आए दिन हड़ताल आदि के विक्षोभ पैदा ही न हो।

(सन् १९५७ अन्तप्रन्तीय बिक्री-कर के सम्बन्ध में व्यापारियों द्वारा दिल्ली मे की गई हडताल व सभावित डाक कर्मचारियो की हड़ताल के प्रसंग पर)।

राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में अहिंसा की उपेक्षा न हो

भारतवर्ष सदा से अहिंसा के प्रतिष्ठान का केन्द्र रहा है। भगवान् श्री महावीर और गौतम बुद्ध जैसे मनीषी समय समय पर यहां के जन-मानस को अहिंसा से परिपोषित करते रहे है। महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन मे यहा चालीस करोड़ जनता ने अहिंसा के मोर्चे पर खड़े रह कर स्वराज्य प्राप्त किया है। यहा के निवासी आज भी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में बडी से बडी समस्याओ को अहिंसात्मक विधि से सुलझाने की सलाह देते है। पर देश के अन्तरङ्ग वातावरण मे छोटी से छोटी समस्याओं को सुलझाने मे भी जो अहिंसा की उपेक्षा हो रही है वह किसी भी विचारक के लिये अत्यन्त खेद का विषय है। 'ईंट का जवाब पत्थर' भी जहा अनादेश रहा है वहा पत्थर का जवाब गोलियो से दिया जाने लगा

है। जिस वाल्मीकि मन्दिर में रह कर महात्मा गांधी ने हरिजनों के प्रति देश के लोगों में बन्धुत्व भाव पैदा किया और हर समस्या को शान्ति, प्रेम व न्याय से सुलझाने की सलाह दी, वही स्थान आज पुलिस की गोलियो से रक्त-रञ्जित हो, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। इसका अर्थ यह नही कि दूसरा पक्ष सर्वथा निर्दोष था। हो सकता है कि पहल भी उसने की हो, पर पत्थर का जवाब गोली यह जरा भी संगत नही हो सकता।

आज देश मे हड़तालो की बाढ़ सी आने लगी है और यही क्रम चालू रहा तो सम्भव है शीघ्र ही देश के बहुसख्यक लोग यह आवाज उठा दें कि हड़ताल करना मात्र अवैध घोषित हो। विचारणीय यह है कि हड़ताल करके भी लोग अहिंसा की मर्यादा मे नही रहते। उसी का परिणाम होता है आए दिन गोलिया चल जाती है; समस्याये घुल जाती है। भारतवासी देश के नवनिर्माण में लगे है। उन्हे अहिंसा को भूलना नही चाहिए। राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में अहिंसा ही अमोघ अस्त्र है। अच्छा हो प्रत्येक नागरिक अणुव्रत-आन्दोलन के इस नियम का पालन करे—"मै तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक कार्यवाही मे भाग नही लूगा।"

(सन् १९५७, देहली हरिजन वस्ती में हुए गोलीकाण्ड के प्रसंग पर)

अणु-अस्त्रों के प्रयोगों की घुड़दौड़ बन्द हों

भौतिक विद्या-सिन्धु के मन्थन से अणुबम रूप जहर निकला है। अणु-अस्त्रों के परीक्षणों द्वारा समस्त वायुमण्डल को रेडियो क्रियात्मक कर मनुष्य मनुष्य को जहर पिला रहा है। प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार सागर-मन्थन से जो जहर निकला था उसे महादेव अकेले ही पी गए थे। आज इस अणुबम जहर को एक ही कोई मानव पीने वाला नही है।

न उस जहर का अब तक कोई उपचार ही निकला है। यह सब देखते हुए लगता है अणु-अस्त्रो के प्रयोगो की यह अन्तर्राष्ट्रीय घुडदौड बन्द नही हुई तो मानव-जाति का अस्तित्व ही सदिग्ध हो जाएगा।

यह एक बहुत ही सामयिक प्रश्न है कि क्या किसी देश को यह अधिकार है कि वह सारे वायुमण्डल को विषाक्त कर दूसरे देशो के जन-जीवन को खतरे में डालता रहे? लगता है कि इस बात पर यदि तटस्थ चि तन हुआ तो अणु-अस्त्रो का परीक्षण करने वाले समस्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अपराधी सिद्ध होगे।

हर एक राष्ट्र यह कहता है—हम अपने सरक्षण के लिए केवल अपनी शक्ति अजमा रहे है, किसी देश पर आक्रमण करने के लिए नही। यदि यह ठीक है तो प्रत्येक राष्ट्र को यह शपथ लेनी चाहिए कि अणु-अस्त्रो के आक्रमण में हम पहल नही करेगे। यदि सभी देश इसी प्रकार की शपथ ले लेते है तो सहज ही अणु-अस्त्रो के प्रलयकारी युद्ध की आशका मिट जाती है।

(ब्रिटेन, अमरीका व रूस द्वारा किए गए अणुअस्त्र-प्रयोगो के प्रसग पर)

भाषा के लिए भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें

हिन्दी व गुरुमुखी भाषा को लेकर जो तनाव पैदा हुआ है और अब तक बढ़ता जा रहा है, यह देश की एकता के लिए बहुत अहितकर है। अब यह सघर्ष इस स्थिति तक पहुच गया है कि भाषा के साथ साथ हिन्दुओं और सिक्खो के भ्रातृत्व को भी खतरा पैदा हो गया है। दोनो ही पक्षों को अब शान्ति, धैर्य व उदारता का परिचय देना चाहिए। भाषा के लिए वे भ्रातृत्व को तिलाञ्जलि न दें। भाषा की अपेक्षा भ्रातृत्व

का मूल्य कई सौ गुना अधिक है। दोनों ही पक्ष अब व्यक्तिगत अहं-पोषण की मान्यता पर न रहें। यत् किंचित् अलाभ उठाकर भी भ्रातृत्व को सुरक्षित रख सकें तो घाटे का सौदा नहीं होगा।

(पंजाब में हुए भाषा-विवाद के प्रसंग पर)

धर्म राजनीति व जातिवाद से दूर रहे

आधिभौतिक व आध्यात्मिक स्थितियों में सन्तुलन लाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस विज्ञान के युग में धर्म और दर्शन का पुनरोदय हो। मानव-जाति को व्याधिमुक्त करने के लिए इससे सीधा और कोई मार्ग नहीं है। पर धर्म भी यदि राजनीति व जातिवाद से प्रभावित होकर दुष्प्रयुक्त हुआ तो अणु-अस्त्रों से कम खतरनाक नहीं होगा। अमरावती के निकट एक गांव में हिन्दुओं और बौद्धों के बीच भाले, छुरी व पत्थर चले। एक मरा, पच्चीस घायल हुए। चार सौ पकड़ गए। यह घटना भविष्य का गम्भीर सूत्रपात हो सकती है। हिन्दू और मुसलमान धर्म के पारस्परिक संघर्षों का विपाक्त परिणाम भारतवर्ष ने बहुत भोगा है। बौद्धधर्म सुदीर्घ अवधि के पश्चात् देश में पुनः प्रवेश कर रहा है। भारतवर्ष के ऐक्य व अखंडता के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दुओं और बौद्धों में किसी साम्प्रदायिक संघर्ष का सूत्रपात न हो।

भारत सरकार किसी भी एक धर्म की सहानुभूति में लाखों करोड़ों रुपया खर्च करे यह उसके असाम्प्रदायिक विधान के अनुकूल नहीं लगता, चाहे इससे अन्तर्राष्ट्रीय लोकप्रियता ही क्यों न मिलती हो। धर्म, राजनीति व जातिवाद से बहुत ऊपर है, अतः उसे राजनीति व जातीय सफलता का औजार न बनाया जाए। सहस्रों की संख्या में जहां लोग धर्म परिवर्तन करते हैं या ऐसा कराया जाता है वहां तात्विकता हमेशा ही संदिग्ध रहती है।

(अमरावती में हिन्दुओं व बौद्धों के बीच हुए झगड़े पर)

दीक्षा प्रबन्धक बिल अनावश्यक

हाल ही मे संसद सदस्य श्री राधारमण द्वारा लोकसभा मे एक बिल प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार साधु, सन्यासी, आचार्य, गुरू, जगद्-गुरू आदि सभी को स्थानीय जिला मजिस्ट्रेट के पास जाकर रजिस्टर्ड होना होगा। मजिस्ट्रेट जो उन्हे साधु होने का प्रमाणपत्र देगे वह उन्हे दस वर्ष के पश्चात् बदलवाना होगा। इस बीच मे किसी कारण से यदि मजिस्ट्रेट ने चाहा तो वह उसे रद्द भी कर सकेगा। किसी को दीक्षा देने-दिलवाने मे भी मजिस्ट्रेट ही अन्तिम आथारिटी (अधिकारी) होगा। उक्त कानून का उल्लघन करने पर दो वर्ष तक की सजा व ५०० रुपये तक जुर्माना देना होगा।

बिल का उद्देश्य तथाकथित साधुओ द्वारा होने वाले अनाचारो को रोकना बताया गया है। पर चोरी, व्यभिचार व कत्ल आदि अनाचारो के विषय मे पहले से भी कानून बने हुए है और वे सब समान रूप से लागू है, चाहे वह साधु वेश वाला व्यक्ति ही क्यो न हो। तब ऐसी स्थिति मे इस बिल की कोई उपयोगिता नही ठहरती। रजिस्टर्ड प्रथा चालू होने से यह पाप घट ही जाएगा ऐसा भी नही लगता। क्योकि रजिस्टर्ड या नोनरजिस्टर्ड दोनो ही के लिए दण्ड व्यवस्था तो समान ही है। इसमे सम्भावित तो यह होता है कि बुरे लोग येन केन प्रकारेण रजिस्टर्ड होकर फायदा उठायेगे और भले लोग व्यर्थ ही मे रजिस्टर्ड होने के झझट मे नही फसेगे। स्थिति यह है हर जगह अच्छाई की ओट में बुराई पल जाती है।

भारतीय विधान के अनुसार हर एक व्यक्ति को धर्माचरण की पूर्ण स्वतन्त्रता है। यह उस स्वतन्त्रता पर सीधा कुठाराघात होगा कि मजिस्ट्रेट की स्वीकृति के बिना कोई न तो साधु बन सकता है और न कोई किसी को

साधु बना सकता है, जबकि मजिस्ट्रेट इस दिशा में 'क' और 'ख' भी नहीं जानता। शराब पीने वाला मजिस्ट्रेट भी भारतीय-संस्कृति के पूज्य साधुजनो का नियंत्रक व परीक्षक हो यह उनके सम्मान के खिलाफ होगा।

(भारतीय लोक सभा मे प्रस्तावित साधु रजिस्ट्रेशन बिल के प्रसंग पर)

दिल्ली नगर निगम के चुनाव

दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है। यहा की प्रत्येक घटना देश के ३६ करोड आदमियो का ध्यान खीचती है। यहां के अच्छे या बुरे चुनाव-स्तर का प्रभाव भी सारे देश पर पडेगा। इसलिए जनता व सभी दलो के राजनैतिक नेता चुनावो का नैतिक-स्तर इतना ऊचा बनाए रखे जो समस्त देशवासियो के लिये एक उदाहरण बन सके। आचार्य श्री तुलसी ने इस सम्बन्ध मे निम्न व्रत देश के सामने रक्खे है।

उम्मीदवारो के लिए नियम.—

१—रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत प्राप्त नही करूगा।

२—किसी दल या उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व अभद्र प्रचार नही करूगा।

३—धमकी व अन्य हिसात्मक उपाय से किसी को अपने पक्ष में मत दान के लिए प्रभावित नही करूगा।

४—मत-गणना में पर्चियां हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नही करूगा।

५—प्रतिपक्षी उम्मीदवार व उसके मतदाताओ को प्रलोभन व भय आदि से तथा शराब आदि पिला कर तटस्थ करने का प्रयत्न नही करूगा।

६—दूसरे उम्मीदवार या दल से धन प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार नहीं बनूगा।

७—सेवाभाव से रहित केवल व्यवसाय वृद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूगा ।

८—अनुचित व अवैध उपायो से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नही करूंगा ।

९—अपने अभिकर्त्ता, (एजेन्ट) समर्थक और कार्यकर्त्ता को इन व्रतों की भावनाओ का उल्लघन करने की अनुमति नही दूगा ।

मतदाताओ के लिए नियम—

१—रुपये पैसे लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान नही करूगा ।

२—किसी उम्मीदवार व दल को झूठा भरोसा नही दूगा ।

३—जाली नाम से मतदान नही करूगा ।

समर्थको के लिये नियमः—

१—अपने पक्ष व विपक्ष के किस उम्मीदवार का असत्य प्रचार नही करूंगा ।

२—अनैतिक उपक्रमो से दूसरो की सभा को भग करने का प्रयत्न नही करूगा ।

३—उम्मीदवार-सबंधी सारे नियमो का पालन करूगा ।

चुनाव अधिकारियो के लिए नियम—

१—अपने कर्त्तव्य पालन मे पक्षपात, प्रलोभन व अन्याय को प्रश्रय नही दूगा ।

सत्तारूढ उम्मीदवारो के लिए नियमः—

१—राजकीय साधनो तथा अधिकारो का अवैध उपयोग नही करूगा ।

(दिल्ली नगर निगम के प्रथम चुनाव-प्रसग पर)

विभिन्न प्रसंगों पर

रिश्वत को तनख्वाह न माना जाए

लोग भ्रष्टाचार इसलिए करते है कि वे अपना दोष प्रकट नही होने देगे। हो सकता है कि वे सुप्रीमकोर्ट तक भी अपना दोष प्रमाणित न होने दे पर उनके ध्यान मे रहना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से भी ऊपर एक कोर्ट और है जहां दोषी अपने आप को बचा नही सकता। उसे कुछ लोग भगवान् का दरबार कहते है और कुछ लोग कुदरत का। वास्तव मे वह कर्म-फल भोग का न्यायालय है। जिसके अनुसार कृतकर्मो का फल मनुष्य भोगता है। अपने किए पापो का फल उसे भोगना ही पडता है।

बहुत सारे लोगो ने रिश्वत को अपनी तनख्वाह का अंग मान लिया है। तनख्वाह बहुत कम है रिश्वत न ले तो क्या करे? यह कथन परम अनैतिकता का सूचक है। क्या यह कभी उचित माना जा सकता है कि किसी की नौकरी न लगी तो वह डाका डाले? अवैध उपाय किसी भी स्थिति मे वैध नही होते। ऐसे बहुत सारे वर्ग है जो अल्प वेतन की समस्या को वैध उपक्रमो से हल करते है। जनतन्त्र के युग मे हर एक वर्ग वैसा कर सकता है। यह तो जरा भी सगत नही है कि रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार को तनख्वाह का अंग मान कर चलाया जाए।

(क्रिमिनल कोर्ट (दिल्ली) मे दिए गए भाषण से)

भारतवर्ष पुन. ब्रह्मावर्त बने

स्वतन्त्र भारतवर्ष आज नाना वाद-प्रवादो व सस्कृतियो के चौराहे

पर है। उसे अपना मार्ग चुनना है। वह न तो प्रगति के नाम पर किसी देश का अन्धानुयायी ही हो सकता है और न वह सस्कृति के नाम पर हड्डियो व निर्जीव परम्पराओं मे अन्ध-विश्वासी ही रह सकता है। हेय व उपादेय का प्रमाण प्राचीनता व नवीनता नही अपितु मनुष्य का जागरूक विवेक ही हुआ करता है। अनुकरण के लिए भारतवर्ष रूस व अमरीका की ओर ही न झाके, अपितु अपने ही अतीत के अध्यात्म पूर्ण इतिहास को पुनरुज्जीवित करे। स्मृतियो व सस्कृत काव्य-ग्रन्थो मे भारतवर्ष व उसके कुरु, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशो की अनवद्य सस्कृति व सदाचार सम्पद् का जो चित्रण किया गया है, वही आज भारतवर्ष के लिए अनुकरणीय है। महर्षि मनु ब्रह्मावर्त्त प्रदेश के विषय मे मनु-स्मृति मे कहते है—दृशद्वती व सरस्वती इन दो नदियो के बीच का भू-खण्ड ब्रह्मावर्त्त कहलाता है। वहा के लोगो का परम्परागत जो आचार है वह विश्ववर्ती अन्य लोगो के सदाचार का मान दण्ड है अर्थात् दूसरे देशो के लोग मानते है—दुराचार वह है जिसे ब्रह्मावर्त्त के लोग नही करते है। नव-निर्माण की दिशा मे अग्रसर होने वाले भारतवर्ष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी सदाचार सम्पद् का विकास कर पुन: ब्रह्मावर्त्त बने।

(इलाहाबाद बैंक के उच्चाधिकारियो और कर्मचारियो के बीच दिए गए भाषण से)

वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बनें

आज प्रयोग व अनुसन्धान का युग है। वह देश अपने आपको समृद्धिशाली मानता है जिसमे अधिकाधिक वैज्ञानिक और अनुसन्धान-शालाएं हो। मानव जाति का भविष्य आज वैज्ञानिको के हाथ मे है। वे चाहे तो उसे सुरक्षा के शिखर पर पहुचा सकते है और वे चाहे तो उसे

विश्व-नाश के गर्त मे ढकेल सकते है। परिस्थितियों की माग है, वैज्ञा-निक अपने आपको आणविक अस्त्रो के निर्माण से रोके। भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि यदि अन्याय का साथ नही देते तो असंख्य जन संहारक महाभारत नही होता, पर वे तात्कालीन प्रलोभनों से अपने को रोक नही सके। आज के वैज्ञानिक भी यदि मानवता को भूल कर राज्याश्रयो के लोभ मे फसे रहे तो अवश्य ही वे प्रलयकारी महा-भारत के हेतु होगे। मानवता के त्राण के लिये वैज्ञानिक राजनीति के औजार न बने।

आणविक अस्त्रो के धनी राष्ट्र कहते है कि हम अपनी सुरक्षा के लिए अस्त्र तैयार कर रहे है। वे इस बात को भूलते है कि अणु-अस्त्रों का सग्रह उनके स्वय के लिये सर्वाधिक खतरनाक है। क्या वे इस बात को नही सोचते कि अणु-अस्त्रो के निर्माण, सरक्षण व प्रयोग दुर्घटनाओं की सम्भावनाओ से परे नही है। प्रधानमत्री श्री नेहरू और विश्व के अन्य लोग जो इन अस्त्रो की बुराइयों से ससार को परिचित करा रहे हैं; अब तक उन्होने इन भयकर सम्भावनाओ की ओर लोगों का ध्यान नही खीचा है, पर अब भी उन्होनें ऐसा किया तो निश्चित ही उन्हें बहुत बडा समर्थन प्राप्त होगा। एकएक अणुबम और उदजनबम के निर्माण मे २० अरब रुपये खर्च होते है ऐसा कहा जाता है। समझना चाहिए कि एक परीक्षण मे २० अरब रुपये पानी मे गए।

(श्रीराम इन्स्टीटयूट आफ इण्डस्ट्रीयल रिसर्च (दिल्ली) के अनुसन्धाताओ के बीच दिए गए भाषण से)

आध्यात्मिक उन्नति का अभाव समाज के सर्वांगीण विकास में पक्षाघात

मानव का सामाजिक जीवन आध्यात्मिक और भौतिक दो पहलुओं की इकाई है। आज मनुष्य की अधिकाश शक्ति अपने भौतिक पक्ष को

बलवान् बनाने में लग रही है। आज वह जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के नाम पर भोग और ऐश्वर्य के असीम साधन जुटाने मे लगा है। इस माने मे उसने अभूतपूर्व उन्नति भी की है और करता भी जा रहा है। पर जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक व नैतिक पक्ष को गौण व उपेक्षित ही नही कर रहा है अपितु भुला भी रहा है। वह अब तक मानवता को ऊचा नही उठा रहा है अपितु मानवता पर हावी होने वाले भोग परक तत्वो का ही सकलन कर रहा है। यह वास्तविकता की आज उसे चुनौती है। आध्यात्मिक उन्नति का अभाव समाज के सर्वांगीण विकास मे पक्षाघात सिद्ध होगा।

विचारों का आस्तिक्य आचार में आए

दु.ख जिहासा और सुख लिप्सा से भारतीय दर्शनों का उदय हुआ। परिणाम स्वरूप केवल लोकायतिक (नास्तिक) मत को छोडकर जैन, वौद्ध और वैदिक आत्मा के आस्तिक्य पर एकमत है। केवल नास्तिक दर्शन ही इस विषय मे अपनी भिन्न धारणा रखता है। फलतः आस्तिक दर्शनो ने दु.ख जिहासा के लिए वताया—"धन मनुष्य का त्राण नहीं है।" "उदार चरित्र वालो के लिए विश्व ही कुटुम्ब है।" "कामार्थी पुरुष सोचता है, झूरता है, तप्त होता है, परितप्त होता है।" "भोग भुक्त नही हुए हम ही भुक्त हो गए।" इस प्रकार आस्तिक दर्शनों ने जहा त्याग और सयम की वात कही वहा नास्तिक दार्शनिको ने कहा—"यावज्जीवेत् सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृतं पिबेत्।" आज की भारतीय जनता के विचारो मे पूर्ण आस्तिकता है। अहिंसा, सयम, व त्याग उनके आदर्श है। पर आचार पक्ष मे वह "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्" का ही अनुसरण करती है। आज के जन-जीवन मे छाई हुई क्रूर अनैतिकताओं को देखते हुए यह सोचा ही नही जा सकता कि यह आस्तिक है।

वहां "वसुधैव कुटुम्बकम्" के स्थान पर "मैं, बीबी और मुन्ना" का आदर्श मिलता है। "धन मनुष्य का त्राण नही है" इस स्थान पर "पैसा ही सब कुछ है" का नारा सुनाई पडता है। "भोगों को घटाओ" के स्थान पर "भोगों को बढ़ाओ" का ही उपक्रम दिखाई पड़ता है। यह आचार और विचार का असन्तुलन ही समस्याओ का मूल कारण है। जिस दिन विचार पक्ष की तरह आचार पक्ष मे भी आस्तिकता का उदय हो जाएगा सारी समस्याएं स्वत. पलायन बोल देगी।

(अणुव्रत विचार परिषद् (दिल्ली) में दिए गए भाषण से)

पश्चिम पर पूर्व की विजय

आज ध्वंस और निर्माण का सन्धिकाल है। जीवन के प्राचीन मूल्य ढहते जा रहे है और नये स्थानापन्न हो रहे है। आज की पीढ़ी ने वे परिवर्तन देख है जो सम्भवत: शताब्दियों व सहस्राब्दियो मे नही देखे गए। राजाओं की सत्ता देखते ही देखते धूलि-धूसरित हो गई। आसमानी सिंहासनों पर बैठने वाले राजा व महाराजा आज राहगीरो के साथ हो आए। नाना वाद-प्रवादों का उदय हुआ। आर्थिक और सामाजिक ढांचे बदल गए। इसी युग में विज्ञान आया। विश्व के भौतिक सस्थान का उसने काया पलट ही कर दिया। कहना होगा वाद-प्रवादो ने मानव का मन बदला तो विज्ञान ने शरीर को। भारतवर्ष निकट भूत मे स्वतन्त्र हुआ है। उसे अपना लक्ष्य स्थिर करके ही चरण आगे बढाने है। लगता है उसे पूर्व और पश्चिम दोनो से ही अनुभव लेने होगे। पूर्व का चिन्तन बिन्दु आत्मवाद रहा—वहा क्षमा, मैत्री, सत्य और न्याय का आविष्कार हुआ। पश्चिम का चिन्तन बिन्दु अणुवाद रहा, उससे अणुबम और उदजनबम रूप राक्षस का आविर्भाव हुआ। उन आणविक अस्त्रो की विभीषिकाओ से ऊबकर सारा ससार शान्ति के दर्शन पाने के लिए

आत्मवाद की ओर प्रेरित हुआ है। सचमुच यह पश्चिम पर पूर्व की और अणुवाद पर आत्मवाद की विजय है।

आज विज्ञान व राजनीति के गठबन्धन का युग है। सत्ता—प्रधान राजनीति विज्ञान को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का औजार बना चुकी है। जीवन का सम्बन्ध यदि राजनीति से हटकर दर्शन के साथ हुआ होता तो अवश्य ही विज्ञान आज की तरह मानव-जाति के लिए अभिशाप नही बनता।

(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (नई दिल्ली) के अधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

सामाजिक असंरक्षण ही भ्रष्टाचार का कारण

आज की अर्थ-व्यवस्था शोषण व सग्रह—प्रधान है। इसमे हर एक व्यक्ति को मन चाहा धन एकत्रित करने की छूट है। समाज में व्यापक नैतिक-सुधार तब तक नही आ सकता, जब तक कि आज की अर्थ-व्यवस्था मूल से ही न बदल जाए। सुधार लाने की दशा मे कानून हार खा गए। विज्ञान भी कोई ऐसा यत्र नही दे सका जो बटन दबाते ही मनुष्य का हृदय बदल डाले। समझा बुझाकर हृदय परिवर्तन का एक मात्र साधन व्यापक सुधार लाने वाला है पर आज समाज-व्यवस्था की प्रतिकूलता मे वह भी थोडा ही सफल रहा है। लोग कहते हैं कि धन-सग्रह के बिना समाज की बोझिल गाडी एक कदम भी आगे चल नही सकती। हम बुड्ढे हो गए या किसी आकस्मिक घटना से बेकार हो गए तो पूर्व सचित धन के अतिरिक्त हमारा सरक्षक व जिम्मेदार कौन है ? ऐसी परिस्थिति में भिखमगी के सिवाय है कोई और व्यवस्था समाज मे ? वे कहते हैं—शिक्षा, स्वास्थ्य, रोटी, मकान व प्रतिष्ठा आदि जीवन की सभी अनिवार्यताएं अर्थ-संचालित हैं। इसलिए एक

सामाजिक प्राणी को धर्म-कर्म सब कुछ खोकर भी अर्थ-सग्रह तो करना ही पडता है। अस्तु—इन सब बातो का साराश यही निकलता है कि सामाजिक असरक्षण ही भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण है।

(चरखा क्लब (दिल्ली) के वार्षिक समारोह पर दिए गए भाषण से)

दर्शन का फलित सत्य व अहिसा : विज्ञान का फलित अणुबम व उदजनबम

दर्शन अन्ध—विश्वासों का पुलिन्दा नही है, जैसा कि कुछ लोग समझ बैठे है। वह तो यथार्थता तक पहुंचने के लिए एक तर्क सम्मत मार्ग है। यह भी समुचित नही है कि दर्शन उस विद्या का नाम है जिसमे केवल आत्मा सम्बन्धी विचार किया जाता है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा व अणु दोनो पर समान रूप से विचार किया है। जड़ और चेतन दोनो उनके विषय रहे है।

आज परमाणुवाद का युग है। परमाणु के विषय मे अप्रत्याशित खोजे हो चली है, पर यह जानकर बहुतो को आश्चर्य होगा कि आज की नवीनतम खोजे सहस्रों वर्ष पूर्व के दार्शनिक युग को प्रकाश मे लाने वाली सिद्ध हो रही है। जैन व वैशेषिक दर्शन मे परमाणु पर पर्याप्त विचार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु." परमाणु पदार्थ मात्र का अन्त्य कारण, सूक्ष्म व नित्य है। वह अनन्त धर्मात्मक है। इसलिए स्वर्ण से रजत व अन्य किसी भी पदार्थ स्वरूप मे परिणत हो सकता है। दार्शनिको का यह अभिमत बहुत दिनों तक वैज्ञानिकों को मान्य नही हो सका। पर

आज नवीनतम विज्ञान का विद्यार्थी भी भली भाति जानता है—कोई भी मौलिक तत्त्व ऋणाणु व धनाणुओ के परिवर्तन से किसी भी स्वरूप मे वदला जा सकता है। पारे को सोने मे बदलने के प्रयोग तो प्रयोग-शालाओं मे भी हो चुके है। आवश्यकता इस वात की है कि विद्यार्थी भारतीय दर्शन के मनन मे रस ले। वैसे दर्शन और विज्ञान मे बहुत वडा अन्तर नही है, क्योकि दोनो ही सत्य के पथिक है। अन्तर है तो केवल इतना ही है कि दर्शन का फलित, सत्य व अहिंसा है और विज्ञान का फलित, अणुवम और उदजनवम।

(हिन्दू कालेज (दिल्ली) के छात्र व छात्राओ के बीच दिए गए भाषण से)

मानवता मे चार चाद

विज्ञान का युग है। रूस के वैज्ञानिको ने दो चाद आकाश मे लगा दिए हैं। सम्भव है शीघ्र ही वे चार चाद भी लगा देगे। विज्ञान के इति-हास मे यह एक नया पृष्ठ जुडा है। पर एक ओर मनुष्य भौतिक उन्नति के शिखर पर पैर जमा रहा है और दूसरी ओर स्वार्थ, इर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणो से पराभूत होकर मानवता को ही तिलाञ्जलि दे रहा है। भाई भाई के वीच झगडा है और देश देश के बीच शीत-युद्ध चल रहा है। छोटे छोटे स्वार्थो को लेकर देशीय और अन्तर्देशीय समस्याए उभर आती है। लगता है मनुष्य प्रकाश से तम की ओर जा रहा है, सद् से असद् की ओर जा रहा है और अमृत से मृत्यु की ओर जा रहा है। आज जहा मनुष्य चन्द्रलोक और मगललोक से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है वहा पहले इस छोटे से भगोल पर तो अपने मैत्री-सम्बन्ध बनाए रखे ? अनन्त अन्तरिक्ष मे चार चाद लगा देना कोई वडी बात नही होगी। क्योकि

वहां तो पहले ही असख्य चाद विखरे पड़े है। यह कोई आवश्यक कार्य नही है। आवश्यक तो यह है कि आज का मानव मिटती हुई मानवता के सजीवन मे चार चाद लगाए।

भारतीय अध्यात्म का फलित विश्व-बन्धुता

आज देश मे विभिन्न सकीर्ण मनोवृत्तियो के कारण प्रान्त, जाति, धर्म व भाषा प्रभृति विषयो को लेकर व्यापक तनाव उठते जा रहे है। यहा तक कि लोग दक्षिण व उत्तर के नाम पर, द्रविड सस्कृति व आर्य-संस्कृति के नाम पर नित नये सघर्ष खडे करने लगे है। उन्हे यह पता नही है कि इन छोटी वातो से हम भारतीयता को नीचा कर रहे है। भारतीय लोक जीवन का मेरुदड अध्यात्म रहा है और उस अध्यात्म का फलित अखंड विश्व-वन्धुता है । उसमे तो प्रान्तीयता व राष्ट्रीयता से भी वहुत आगे मानव और पशु तक के सह-अस्तित्व की वात है। छोटे और वडे किसी भी सघर्ष के मूल मे स्वार्थवाद का ही उद्दीपन हुआ करता है। स्वार्थ की विभिन्न सीमाए होती है। व्यक्ति, परिवार, समाज व देश आदि की सीमाओ को लाघ कर मनुष्य जव तक विश्व वन्धुता की सार्व-भौम मञ्जिल तक नही पहुच जाता तब तक वह स्वार्थ मुक्त नही कहला सकता। यह सच है कि वह मञ्जिल आज के मानव धरातल से वहुत दूर है। मनुष्य का चिन्तन अव तक वहा नही पहुच रहा है। फिर भी यह आवश्यक है ही कि वर्तमान स्थितियो मे सन्तुलन रखने के लिए अपने स्वार्थो के हित मे दूसरो के स्वार्थो का हनन न किया जाए। यदि ऐसा भी होगा तो देश के प्रस्तुत तनावो मे अवश्य घटाव होगा।

(नोटी फाइड एरिया कमेटी (दिल्ली) के अधिकारियो व कर्मचारियों के वीच दिए गए भाषण से)

नैतिक उत्थान ही सर्वोत्तम विकास

देश में एक पंचवर्षीय योजना सम्पन्न हो चुकी है और दूसरी कार्यान्वित हो रही है। दोनो योजनाओ मे लगभग २५ अरब व ५० अरब रुपयो के व्यय से देश का काया पलट किया जा रहा है। बड़े बड़े बान्ध, बडी बडी सडके, बड़े बडे भवन व बडे बडे उद्योग धन्धे खड़े किए जा रहे हैं पर यह सब भौतिक विकास है। नैतिक व आध्यात्मिक विकास की कोई पचवर्षीय योजना अब तक सामने नही आ रही है। नैतिक स्तर बहुत नीचा हो चला है और नीचा होने की रफ्तार चालू है। नैतिकता के अभाव मे होने वाला भौतिक विकास आत्मा रहित शरीर के शोथ जैसा हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है इन आर्थिक पंच-वर्षीय योजनाओ के साथ साथ नैतिक उत्थान की पचवर्षीय योजनाएं भी देश मे कार्यान्वित की जाए। अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में सम्यक् प्रयत्न कर रहा है।

(दिल्ली राज्य विक्रीकर अधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

सत्य, अहिंसा और संतोष ही सुख की मञ्जिल

मनुष्य ज्यो ज्यो अपनी आवश्यकताओ और आवश्यकता पूर्ति के साधनो को बढाता गया है त्यो त्यो उसमे असन्तोष और अतृप्ति भी बढ़ती गई है। आज ट्रैक्टरो से खेती होती है, पर अन्न का अभाव है, अठमंजिले मकान बन गए हैं फिर भी लोग बेघरबार है। जब तक मनुष्य की निष्ठा त्याग मे न रह कर भोग मे रहेगी, जीवन का सुख और सन्तोष मृगमारीचिका की तरह दूर ही रहेगा।

आज सत्य और अहिंसा में मानव की मूल श्रद्धा ही विचलित हो चुकी है, इसलिए मानवीय आदर्शों की धुरी हिल चुकी है। जब तक जीवन की प्रत्येक गतिविधि मे नैतिकता के मूलभूत तत्त्व—सत्य और अहिंसा की प्रेरणा नही रहेगी, कोई कार्य यथेष्ठ रूप से सफल नही हो सकेगा। भारतीय आगम, पुराण और अन्यान्य धर्म-ग्रन्थ सत्य और अहिंसा की निष्ठा के उत्कृष्ट उदाहरणो से भरे हुए है।

साधु समुदाय देश के नैतिक पुनरुत्थान में योगदान करें

आज देश के सामने नैतिक पुनरुत्थान का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। जन जन मे व्याप्त अनैतिकताओ के परिणाम स्वरूप देश मे कोई भी योजना पर्याप्त सफल नही हो रही है। आए दिन लाखो व करोडो के गबन सुने जाते है। लगता है आज मनुष्य इतने अर्थ मे ही नैतिक रह गया है कि जिन अनैतिकताओ में उसे पकडे जाने का भय है उन्हें वह न करे। पर धर्म, कर्त्तव्य, मनुष्यता आदि की बातें उसे रोकने में समर्थ नही हैं।

केवल कानून से भ्रष्टाचार के रास्ते बन्द हो जाएंगे ऐसा भी आज विचारको को मान्य नही है। ऐसी स्थिति मे जन जन का हृदय बदल कर उसमें नैतिकता, धार्मिकता एव मानवता के प्रति निष्ठा जागृत करना एक मात्र अपेक्षित होता है। यह कार्य भारतवर्ष मे हमेशा से ही साधु समुदाय का रहा है। वे समाज से स्वल्पतम खाद्य खुराक लेकर अनल्पतम बौद्धिक एवं चारित्रिक खुराक देते रहे है। आज की परिस्थिति में उनका दायित्व और भी बढ़ जाता है। आवश्यकता है आज साधु-समुदाय संकीर्ण साम्प्रदायिकताओ एवं आपसी झगडे-झझटो से ऊपर उठकर समन्वय एवं सहिष्णुता को चरितार्थ करता हुआ देश के नैतिक पुनरुत्थान मे योगदान करे। लाखो साधुओ की सुसंगठित शक्ति देश में नैतिकता की महागंगा बहा सकती है।

दु ख की बात है कि भारतवर्ष जैसे धर्म-प्रधान देश में लोग अकर्मण्य और पेशेवर भिखमगो और भारतीय सस्कृति के उज्वल प्रतीक साधुजनो को एक कोटि मे गिन लेते हैं और आए अवसर पर कह देते हैं देश मे ७५ लाख भिखारी है। उन्हे यह पता नही चलता कि साधु और भिखारी मे कितना आकाश-पाताल का अन्तर है। भिखारी एक एक दाने के लिए तडपता है और साधु होने वालो ने सहस्त्रो व लाखो की सम्पत्ति को ठुकराया है। उसका विवेकपूर्ण त्याग किया है। कहा वह अतृप्त लालसा और कहा यह निरुपम त्याग।

(बम्बई मे वेदान्त सत्सग मडल द्वारा आयोजित सभा मे दिए गए भाषण से)

दान करने वाला किसी पर एहसान नहीं करता

दान शब्द भारतीय सस्कृति मे बहुत प्राचीन है पर आज बदलते हुए जीवन के मूल्यो मे इसकी परिभाषाए बदल रही है। आज भूमि दान या सम्पति दान करने वाले व्यक्ति को यह सोचने की आवश्यकता नही रह गई है कि मैं अपने भाई के लिये कुछ देकर बहुत बडा उपकार या पुण्य कर रहा हूं। सही स्थिति तो यह है कि जिसे आज दान कहा जा रहा है है वह सविभाग है। भगवान् श्री महावीर ने साधु-चर्या के प्रसग मे कहा था "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो" अर्थात्—"असविभागी को मोक्ष नही है।" आज के समाज ने यह स्वीकार किया है—हवा और पानी की तरह भूमि और सम्पत्ति भी सबके अधिकार की वस्तु है। जिसने अपने अधिकार से अधिक उसका सग्रह किया है उसने परिग्रह-वृद्धि के साथ सामाजिक अपराध भी किया है। आज यदि एक भाई दूसरे भाई को हिस्सा देता है तो कोई एहसान व पुण्य नही कर रहा है। क्योकि सम्पत्ति पिता

की है और उसमें दोनों का बराबर अधिकार है। इसी प्रकार आज दान करने वाले अपना अनधिकृत सग्रह ही वितरित कर रहे है। तनिकसा कर्त्तव्य पालन कर वे पुण्य, उपकार व सेवा का अहम् न करें। वह युग चला गया कि आप करोडो का शोषण करते रहे और सैकड़ों व सहस्रों का दान कर उन्ही शोषितो से आशीर्वाद पाते रहे। अब यह कहावत चलने वाली नहीं

एरण की चोरी करी, दियो सूई को दान
ऊंचो चढ कर देखग लागी कितोक दूर विमान

आज अपरिग्रह के सिद्धान्त को जीवन मे उतारते हुए और युग की गति-विधि को ध्यान मे रखते हुए सग्रह से मुह मोडना है। यदि समाज मे सग्रह होना बन्द हो गया तो 'न रहेगा बास न बजेगी बासुरी।' न कोई दीन ही रहेगा और न किसी के पास दान करने जैसी वस्तु।

(दिल्ली में सर्वोदय स्वाध्याय मडल द्वारा आयोजित सभा मे दिए गए भाषण से)

दान के स्थान पर त्याग की प्रतिष्ठा हो

सामाजिक व्यवस्था के कुछ मूलगत दोषो के कारण ही दान का अस्तित्व है। अनैतिक से अनैतिक उपायो द्वारा आर्थिक शोषण करने वाला व्यक्ति भी उसका एक अग मात्र दान कर यह अनुभव करता है कि मैंने अक्षय पुण्य उपार्जित कर लिया है। पर वस्तु स्थिति यह है कि सामाजिक जीवन में पारस्परिक सहयोग का क्रम चलता ही रहता है। इसमें दाता की अह तृप्ति और पुण्य कल्पना के लिए स्थान ही कहा रह जाता है? सामाजिक जीवन की विषमताओ का सही समाधान तो तब होगा जब कि दान के स्थान पर त्याग की प्रतिष्ठा होगी। अगर

मानव की निष्ठा संचय और संग्रह मे न होकर त्याग मे हो तो फिर दान की क्या सम्भावना रहती है? इसलिए हमारा आग्रह त्याग पर है। भारत की सास्कृतिक परम्परानुसार भी त्याग धर्म को ही श्रेष्ठ माना गया है।

आज की न्याय व्यवस्था बोझिल और अमनोवैज्ञानिक

एक युग था जव राजा स्वय न्यायालय मे वैठता था, मामले सुनता था और तत्काल उसका फैसला दे देता था। पर आज न्याय पा लेना उतना सुगम कहा? अव तो छोटी छोटी बातो मे वर्षो का समय लग जाता है और वडे मामलो मे तो पीढिया वदल जाती है। तिस पर भी परेशानियां इतनी कि क्षण भर भी मनुष्य शान्तिपूर्ण अध्यवसाय कठिनता से रख पाता है। अव यह सव प्रकार से स्पष्ट हो चुका है—वर्तमान न्याय-व्यवस्था अत्यन्त वोझिल व अमनोवैज्ञानिक है।

गवाह और सबूत चालू न्याय व्यवस्था के प्रमुख मान-दण्ड है। न्यायाधीश के अन्त करण की अनुभूति का वहा जरा भी स्थान नही है। वहुत वार न्यायाधीश सोचता है कुछ और फैसला देना पडता है कुछ और। मनोविज्ञान की यह उपेक्षा न्याय-प्रणाली की अपूर्णता बताती है। इसमे सत्य को सावित करने लिए असत्य गवाह चाहिए।

(दिल्ली रिकवरी डिपार्टमेंट, रेवेन्यू डिपार्टमेंट और लैण्ड एग्जीविशन के अधिकारियो व कर्मचारियो के वीच दिए गए भाषण से)।

सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है

अनैतिकता की महामारी जिस प्रकार देश में फैल चुकी है और आए दिन बढ़ती जा रही है, उसका शमन यदि नही हुआ तो देश में मानवता

जीवित नही रह सकती। नैतिकता धर्म वक्ष की एक टहनी है; पर आज धर्म वृक्ष ही स्वय जर्जरित सा नजर आ रहा है। साधु वेश बहुत सारे लोगो के लिए एक ठगी का बनाव हो गया है। जहा साधु ससार का सुधार करते थे वहा आज उनके सुधार की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे है। तीर्थ मन शुद्धि के साधन न होकर बहुत सारे अकर्मण्य लोगो के उदर-पूर्ति के साधन हो रहे है। भारतवासी जागत हो। पुराण, उपनिषद् व आगमो के अनुसार सदाचार ही सर्वोत्तम तीर्थ है।

देहली का नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्राधान्य भी आवश्यक

देहली भारतवर्ष का ऐतिहासिक नगर है। सदा से यह दूसरे नगरों पर शासन करता रहा है। आज उसका दायित्व और भी बढ गया है। विदेशी लोगो के सामने यह भारतवर्ष की एक तस्वीर है। देहली के लोगों का जो आचार विचार होगा, वह सारे भारतवर्ष की सस्कृति के रूप मे देखा जाएगा। प्राचीन काल मे ह्वेनत्साग, मैगस्थनीज, फाहियान, आदि जो विदेशी बाहर से आए उन्होने भारतवर्ष के एक एक शहर को देखा हो ऐसी बात नही, पर भारतवर्ष के प्रमुख शहर राजगृही, पाटलीपुत्र आदि मे जो आचार विचार देखा वही उन्होने अपने देशवासियों को बताया। उन कतिपय शहरो के आचार-विचार को ही ससार ने सारे भारत का आचार-व्यवहार समझा। इसलिए आवश्यक है राजनैतिक प्राधान्य की तरह देहली का सास्कृतिक, नैतिक और अध्यात्मिक प्राधान्य भी हो। विगत सात वर्षो से देहली मे अणुव्रत-आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है, और भी सस्थाए इस दिशा मे कार्य कर रही है, पर मुझे लगता है लोगो पर छाए भ्रष्टाचार रूप कर्दम को नैतिक प्रयत्नो की नन्ही नन्ही बूदे मिटा नहीं सकती। इसके लिए अपेक्षा है सामुदायिक महावृष्टि की ताकि गिरी

हुई बूंदो के सूखने से पहिले ही वह नैतिक जल प्रवाह देहलीवासियों के घट घट मे भर जाए।

सुख और शान्ति का स्रोत मानव का अन्तःकरण

भारत ने अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है, तो उसे भावी समाज व्यवस्था का आधार भी अहिंसक भावना को ही बनाना चाहिए। आज धार्मिक विषमता और शोषण के कारण प्रतिहिंसा की भावना जोर पकडती जा रही है। परन्तु वास्तव मे शोषण, अन्याय और उत्पीडन के उन्मूलन का मार्ग विध्वंस और रक्तपात नही, त्याग और अपरिग्रह है। आज के व्यापारी वर्ग को भली भाति अनुभव कर लेना चाहिए कि अगर वह अपनी आवश्यकताओ को सीमित कर त्याग और अपरिग्रह की भावना को नही अपनाता है तो स्वय वह एक हिंसात्मक क्रान्ति को आमंत्रण देता है। अनैतिक उपायों द्वारा अधिक से अधिक अर्थ उपार्जित करने की प्रवृत्ति स्वय व्यापारी वर्ग के लिए अवाछनीय है और इसे दूर करने के लिए व्यापारी समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि सुख और शान्ति भौतिक समद्धि मे है। ज्यों ज्यो भौतिक साधनो की वृद्धि होती गई है त्यो त्यो सुख और शान्ति न्यूनतर होती जा रही है। वास्तव में सुख और शान्ति का स्रोत मानव के अन्त.स्थल में है और उसे आध्यात्मिक अभ्युदय के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(दिल्ली मर्केन्टाइल एशोसिएशन के पदाधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

उपासना और आचार में सामञ्जस्य जरूरी

आज का मानव जीवन साधारणतया तीन भागो में बाटा जा सकता है—पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु आज मानव-जीवन के तीनो ही पहलू समस्याओ के आवरण मे अस्त-व्यस्त से

हो रहे हैं। धर्म जीवन के समस्त पहलुओं को प्रभावित करने वाला जीवन का एक विशिष्ट गुण है। आज की अस्त-व्यस्तता का मूल कारण यह है कि धर्म के सार्वभौम तत्त्व जीवन व्यवहार मे पर्याप्त रूप से नही आ रहे है। धर्म के दो प्रकार हैं—उपासना और आचार। उपासना का तात्पर्य है कि धार्मिक स्थान मे एक निश्चित अवधि तक बैठ कर इष्ट का चिन्तन करना, जिससे केवल वैयक्तिक लाभालाभ का ही प्रसग जुडता है। आचार से मतलब है कि पारिवारिक, सामाजिक,राष्ट्रीय प्रत्येक प्रवृत्ति मे अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, दया, क्षमा, सन्तोष आदि तथ्यो को उतार कर चला जाए। आज के धार्मिको में उपासना का पक्ष प्रबल है,किन्तु आचार का पक्ष नितान्त निर्बल और निष्प्राण हो चुका है। यही आज की समस्याओ का व धर्म के प्रति बढ़ती हुई ग्लानि का एक मात्र कारण है। आज का मनुष्य उपासना गृहों में अत्यन्त धार्मिक और अपने आचार-व्यवहार में एक हिंस्र-पशु है। आज के धार्मिक अपने आपको धार्मिक कहलाने में गौरव मानते हैं, पर धर्म-क्रियाओ से कोसों दूर है। यदि वे अपनी दैनंदिन समस्याओ का समाधान चाहते है तो अपनी उपासना और अपने आचार में अवश्य सामञ्जस्य स्थापित करे।

(जयपुर मे एक सार्वजनिक सभा के बीच दिए गए भाषण से)

सुधार अपने से

प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि सभी नैतिकता से चलें, मगर केवल मुझे छोड कर। यह आत्म-प्रवञ्चना है, नीति का पतन है। सोचना यह चाहिए कि एक व्यक्ति की दूषित भावना का कुप्रभाव निःसन्देह रूप से दूसरों पर पडेगा। अत. औरो के लिए सोचने से पूर्व व्यक्ति स्वय नैतिकता पर चलने का व्रत ले। थोड़े व्यक्ति भी यदि व्रतो की भावना को सही रूप में जीवन में उतार कर चलते है तो इसका सुप्रभाव भविष्य मे व्यापक रूप से समूचे समाज पर पड़ने वाला है।

प्रत्येक व्यक्ति सुधार चाहता है पर इस शर्त पर कि उस सुधार की पहल दूसरा ही व्यक्ति करे ।

युग की मांग समन्वय दृष्टि

परिवर्तन युग की पुकार हे। इस युग मे जितने महान् परिवर्तन हुए उतने सम्भवत. विगत शताब्दियो में भी नही हुए होगे। लोग कहते हैं कि यग का शम्भुनेत्र राजाओ, जमीदारो व उद्योगपतियो के वाद धर्म पर अपना भ्रू-निक्षेप करने वाला है। वास्तव मे आत्मवाद व जडवाद का सघर्ष आज के युग की सबसे सगीन समस्या है। जडवाद का वढता हुआ प्रभाव प्रत्येक धर्माचार्यो के लिए गम्भीर विचार का विषय ह। "धर्म को मानव जाति के लिये अफीम" वताने वाले पश्चिमी भौतिकवादी विचार आज अध्यात्मवादी पूर्व में भी अपनी प्रभाव-वृद्धि कर रहे हैं। अत. सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् के पुजारियो व अहिसा और सत्य के उपासको के लिए आज का युग एक महान् चुनौती वनता जा रहा है। खतरा आनेवाला नही है, आ गया है। इस सक्रान्ति काल मे सर्वधर्म समन्वय की महती आवश्यकता है।

पहल कौन करता है ?

आज के समाज की गतविधि को देख कर ऐसा अनुभव होता है कि ज्यो ज्यो अविकार चेतना वढती जा रही, कर्त्तव्य भावना न्यूनतम होती जा रही है। समाज में अगर सामञ्जस्य नही हो तो उसमे सामाजिकता कहा रहेगी ? सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विकृतियो और अनैतिक प्रवत्तियो का प्रावल्य हे और ऐसा लगता है कि जैसे आज का समाज विकृतियो की ही एक विराट् श्रखला वन गया है। इस श्रृंखला मे अनेक कडिया है और वे सव एक दूसरे से जुड़ी हुई है। आज यह विचार करना

व्यर्थ है कि बुराई के इस दुष्चक्र का आरम्भ कहां से होता है और कौन सी कडी पहली है और कौन सी कडी आखिरी । प्रतीक्षा तो यह है कि कौन इस दुष्चक्र को तोडने के लिए पहला प्रहार करता है ? किस वर्ग मे इतना नैतिक साहस और मनोबल है कि जो अपने आपको सबसे पहले इस दुष्चक्र से अलग कर ले ? इस प्रकार एक के बाद दूसरी कडियें टूटती ही जाएंगी और यह अनैतिकता का दुष्चक्र चकनाचूर हो जाएगा ।

सांस्कृतिक विनिमय में सजगता अपेक्षित

प्रस्तुत युग मे विभिन्न सस्कृतियों का द्वन्द्व हो रहा है । पाश्चात्य संस्कृति, पौर्वात्य सस्कृति को अस्त कर छा जाना चाहती है। भारतीयों को इस स्थिति मे अत्यन्त जागरूकता से काम लेना होगा। जहा भारतीय संस्कृति "मित्ति मे सव्व भूयेसु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श उपस्थित करती है, वहा तथाकथित नवोदित संस्कृतिया टिड्डियों को मारो, बन्दरो को मारो, जो मनुष्य के काम के नही या उसकी सुख सुविधा मे बाधा डालते है उन सबको मारो, यह सिखलाती है। जहा भारतीय संस्कृति "मातृवत् परदारेषु" के आदर्श पर जोर देती है, वहा पाश्चात्य संस्कृति वासनापूर्ति को एक शरीर का धर्म मानती है। भारतीय संस्कृति जहा अपरिग्रह के आदर्श पर चलती है, पाश्चात्य संस्कृति "स्टैण्डर्ड ऑफ लीविग" को ऊंचा करने पर जोर देती है। ऐसी स्थिति मे यदि भारतीय अहिसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के विनिमय मे कुछ भी अपनाएगे तो वे सरासर घाटे के सौदे मे रहेंगे ।

दोष से दोष ही उत्पन्न होता है

समाज में संस्कृति के साथ विकृति सदा मिली रहती है। चोर और साहुकार एक साथ रहते है। समाज पर असंस्कारी तत्त्व अधिक न छा

जाए इसलिए कानून बनाए जाते है। कानून यदि मर्यादित रूप में समाज के सामने आए तो वह समाज सुधार मे सहायक भी हो सकते हैं पर यदि वे समाज पर लाद दिए जाते है तो उनका सुपरिणाम नहीं होता। अतिनियत्रण भी एक दोष है और एक दोष से दूसरा दोप पैदा होता है। अन्न व वस्त्र का नियत्रण आया पर उसके सहारे और कई वुराइयां पैदा हुई। दोप हमेशा दोप पैदा करता है। वैज्ञानिको को अणुवम बनाने से पहिले उदजनवम वनाने का फार्मूला ज्ञात था पर उसके वनाने मे उन्हें दो करोड़ डिग्री तापक्रम की आवश्यकता थी। प्रयोगशालाओ में ४०० डिग्री से अधिक तापक्रम उन्हे उपलब्ध नही था। अणुवम के परीक्षण मे दो करोड डिग्री तापमान पैदा हुआ और उसके सहारे उदजनवम वनाने मे वैज्ञानिक सफल हुए। इस तरह अणुवम जैसे विध्वंसक अस्त्र ने उदजनवम जैसे महाविध्वसक अस्त्र को जन्म दिया।

(अणुव्रत विचार परिषद् (नयी दिल्ली) मे दिए गए भाषण से)

आर्थिक दरिद्रता से भी नैतिक दरिद्रता भयावह

स्वतन्त्र भारत मे जनता की आर्थिक दरिद्रता दूर करने के लिए अनेक आयोजन किए जा रहे हैं, परन्तु आज भारत मे आर्थिक दरिद्रता से अधिक नैतिक दरिद्रता है। किसी भी राष्ट्र का मूल धन उसका भौतिक ऐश्वर्य नही उसका नैतिक चारित्र्य होता है। सबल और निर्मल चारित्र्य के विना अन्य क्षेत्रो मे जनता की प्रगति एक कवि-कल्पना ही रह जाती है। नैतिक संकट के कारण ही अनेक आर्थिक और राजनैतिक संकट हो जाते है। इसलिए आज के जन जीवन की समस्त विकृतियों को दूर करने का मूलभूत उपाय है, जनता का नैतिक नव-जागरण। जनता के हृदय में अनैतिकता के प्रति घृणा और नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

आज भारत जैसे विशाल जनतन्त्रीय देश मे केवल कुछ चोटी के व्यक्तियो का नैतिक दृष्टि से पवित्र हो जाना ही पर्याप्त नही है। प्रत्येक व्यक्ति आज अपने आपमे एक महत्वपूर्ण इकाई है और उसके गुणावगुण का वृहत्तर सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिए आज तो यह अत्यावश्यक हो गया है कि किसी भी राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान् हो और अपने लोक-व्यवहार मे अनैतिक प्रवृत्तियो से सर्वथा दूर रहे।

पापाचार से बचना ही सही सुधार

यह एक सर्वथा भ्रान्त धारणा है कि अनैतिक उपायो से व्यापार की विशेष अभिवृद्धि होती है। इसके प्रतिकूल आज हम देख रहे हैं कि अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण व्यापारी जगत् मे भारत की प्रतिष्ठा मे चिन्तनीय क्षति हुई है। व्यापारी कानून के भय से चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से बचने को बाध्य होते है परन्तु इसमे उनका आत्माभिमान और गौरव कहां रह जाता है? अगर वे अपनी आत्मा के भय से अनैतिक प्रवृत्तियों से बचने का प्रयत्न करें तो कानून की मंशा भी पूरी हो जाती है और उनका आत्मिक अभ्युदय भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य मे अगर अपने आपको पापाचार से बचाने की दृष्टि प्रधान रहे तो अन्य उद्देश्य तो स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

संघर्ष का कारण अर्थवाद

आज के सामाजिक जीवन मे चारो ओर अनैतिकता का बोल बाला है अर्थ का अनर्थकारी प्रभाव जन-जीवन के अंग अंग मे व्याप्त हो गया है। किसी युग मे समाज का कार्य पारस्परिक सहयोग और वस्तु विनमय के द्वारा चल जाया करता था, परन्तु धीरे धीरे रुपया विनिमय का माध्यम बनता गया। रुपये में मूल्य का आरोप मानव ने ही किया था, परन्त आज

रुपया मानवीय आदर्शों और भावनाओ के साथ मनमाना खिलवाड कर रहा हे। इस अर्थवाद के कारण ही समाज मे सहयोग के स्थान पर विरोध और समन्वय के स्थान पर सघर्ष का प्र:धान्य हो गया है।

जव तक समाज मे अर्थवाद का प्रभत्व रहेगा और रुपया ही मानव के सम्मान का मापदण्ड रहेगा नैतिकता का भविष्य सदिग्ध प्रतीत होता है। मनुष्य को रुपये के मायाजाल से निकल कर अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करना है। जितना समय और शक्ति अणु की खोज करने में लगाया गया उमका सहस्राश भी अगर आत्मा की खोज करने मे लगाया जाता तो इस भयंकर विध्वस के स्थान पर नव निर्माण के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो गया होता।

दण्ड व्यवस्थाओं का बढ़ना नैतिक पतन का सूचक

जैन पुराणो मे ऐसा प्रसंग आया है कि एक समय था जव समाज मे शूली, फासी व कारावास की सजाए नही थी। अपराधी को सभा में खड़ा कर, 'हा! तुमने ऐसा किया?' केवल यह कह दिया जाता था। बहुत वर्षो तक 'हाकार नीति' से समाज-व्यवस्था चलती रही। जब मनुष्य इस दण्ड का आदी हो गया तो 'माकार' 'ऐसा मत करना' इस नीति से काम चला। इसे भी जव मनुष्य लाघ गया तो 'धिक्कार नीति का आविर्भाव हुआ। पर इनके वाद तो क्रमश कारावास, शूली, फासी आदि की व्यवस्थाए आती ही गयी। दण्ड व्यवस्थाओ का अधिकाधिक वढना मनुष्य के पतन का सूचक है। मनुष्य अच्छा होता जाएगा दण्ड व्यवस्थाएं अल्प होती जाएंगी। (दिल्ली जिला जेल में दिए गए भाषण से)

वाक् सयम

भारतीय ऋषि-महर्षियो ने तीन प्रकार के सयम वतलाये है—मन:संयम, वाक् संयम, और काय संयम। वाक् सयम तीनो मे वीच का

है। किसी एक का असंयम अवशेष दो असंयमों को पैदा करता है। वाक् संयम का अर्थ केवल इतना ही नही कि मौन रहो। अपितु इस निषेध परक अर्थ के साथ उसका विधिपरक अर्थ भी है। वह है असद्वाच्य क्रिया का निरोध और सद् वाच्य क्रिया की प्रवृत्ति। वाक् संयम का अर्थ यदि मौन ही लिया जाए तो वह कुछ ही व्यक्तियों का कुछ ही समय के लिए रह जाता है किन्तु असत्य का निरोध और सत्य का प्रवर्तन प्रति-व्यक्ति व प्रतिक्षण के लिए है। अतः हर एक विचारक का यह पहला कर्त्तव्य होता है; वह सोचता रहे कि मैं जो कुछ कहने वाला हूं वह कहां तक सत्य की कोटि मे आता है। यदि व्यक्ति का उर्ध्वगामी चिन्तन इस इस दिशा मे आगे बढ़ा तो उसमें वाक् संयम का विकास अपने आप होता रहेगा यह सुनिश्चित है।

आवश्यकता भर सकती है पर आशा नहीं

धर्म वृक्ष है और नैतिकता उसका फल है। पर लगता है धर्म वृक्ष के नैतिकता रूपी फल सारे झड़ चुके है। इसलिए आज धर्म सूखा और नीरस है। भारतवर्ष का बच्चा भी दर्शन, धर्म व आत्मा-परमात्मा की गहरी बाते करता है। पर भारतवासियों के जीवन व्यवहार मे "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" का चरितार्थ रूप देखा जाता है। लाखों करोड़ों मनुष्य चाय पीते है पर क्या उन्हे यह मालूम है कि चाय नकली है, दूध पानी मिला है और चीनी सेक्रिन है। जांच के पश्चात देहली नगरपालिका ने हाल ही मे ऐसे बहुत सारे आंकड़े प्रस्तुत किए है। यह सब क्यों होता है ? इसीलिए न कि मनुष्य का मनोभाव नितान्त अर्थवादी हो चला है। संसार में पदार्थ का अभाव नही है। हर एक की आवश्यकता भर सकती है पर आशाएं नही।

(रिजर्व बैंक आफ इंडिया के उच्चाधिकारियो के बीच दिए गए भाषण से)

अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर हो

आज का मानव अर्थ-पिपासा की चक्की मे बुरी तरह पिस रहा है। धन की सतृष्ण लालसा मानवता के मूलाचारो को ही बुरी तरह से झकझोर रही है। अनर्थो की जड़ यह अर्थ स्वय मानव निर्मित बाधा है जो आज उसके सर पर चढ़ कर बोल रही है। पुरातन इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि स्वय मानव ने अपनी सुख-सुविधा के संचालन के लिए ही मुद्रा का परिचालन किया था। स्वाभाविक तो यह था कि मानव अर्थ का प्रभाव न बढने देता। पर आज तो इससे ठीक विपरीत मानव स्वयं अर्थलिप्सा का क्रीत दास ही बन बंठा है। उसके लिए आवश्यक है कि अर्थ का दास न बन कर "पुनर्मू पिको भव" जैसे किसी मन्त्र द्वारा अर्थ-लालसा का व्यामोह दूर करे। इसका एक मात्र सरल मार्ग है—अर्थ सग्रह की दूषित मनोवृत्ति से आन्तरिक अनासक्ति जिसे दूसरे शब्दो मे "अपरिग्रहवाद" कहा जाता है, को प्रमुख स्थान दिया जाना।

समय व बुद्धि का दुरुपयोग न हो

आज जहां अन्य लोग राजनीति, विज्ञान व व्यवसाय के विकास मे लगे है, वहा भारतवर्ष के बहुत सारे लोग ठगी, मायाचार व धोखादेही के विकास मे लगे है। उनके समय व बुद्धि का उपयोग इन बातों में होता है कि हम कौनसे पदार्थ मे कौनसा विजातीय पदार्थ मिलाकर बाजार मे चला सकते है। आज बाजारो मे सकड़ो गुर मिलावट के आविष्कृत हो चुके है, जो वास्तव में एक से एक अधिक घृणास्पद तथा

आश्चर्यजनक है। इसी प्रकार कही झूठे तोल-माप के तरीके खोजे जा रहे है तो कही रिश्वत लेने के। यह सब बुद्धि व समय का दुरुपयोग है।

मनुष्यत्व का संरक्षण ही मूल पून्जी

मनुष्य की मूल पूजी—मनष्यत्व है। जो मनुष्य अपने मनुष्यत्व को सुरक्षित रखता है वह उस व्यापारी की तरह है जो अपने व्यापार में न तो कुछ कमाता है और न कुछ खोता है। जिस प्रकार कुछ व्यापारी अपनी मल पूजी को सुरक्षित रखते हुए लाखो रुपयो का लाभ कर लेते है उसी प्रकार धार्मिक मनुष्य अपने मनुष्यत्व को कायम रखते हुए अपने आप मे दैवी गुणो का विकास कर लेते है। परन्तु जो लोग अपने मनुष्यत्व की मूल पूजी को ही गवा कर आसुरी प्रवृत्तियो को अपना लेते है, वे उन दिवालिए व्यापारियो की तरह है, जो अपना सर्वस्व लुटा बैठते है।

स्वार्थ ही द:ख का कारण

यह ससार समुद्र के समान है और मनुष्य इसमे यात्रा करने वाला नाविक है। कुशल नाविक अपनी जीवन नौका को भवोदधि मे उठने वाले ज्वार-भाटो और भवरो से पार कर जाता है और असावधान नाविक अपनी जीवन नौका को खतरे मे डाल देता है। मनुष्य अपराध को जानता हुआ भी स्वार्थ के वश मे होकर उसको करता है। वह परवाने की तरह दीपक की भौतिक चकाचौध मे अपने आपको मिटा देता है। वह लालच और स्वार्थ के वश मे इन्सानियत और धर्म का बलिदान कर देता है। इसीलिए स्वार्थ ही दुख का कारण है। समाज मे यदि कुछ व्यक्ति बुरा कार्य करेगे तो दूसरे व्यक्ति उसका विरोध कर सकते है। परन्तु जहा बहुमत ही बुरा कर्म करते हो, वहा दूसरा कौन उन पर अगुली उठा सकता है।

आत्मा ही परम ज्ञेय

आत्मवाद का सिद्धान्त धार्मिक विचारधारा का मूल आधार है । आज आत्मवाद पर इसलिए बार बार प्रहार किया जा रहा है कि इससे आध्यात्मिक और धार्मिक चिन्तन की नीव ही खोखली हो जाए। अगर आत्मा को हम जड द्रव्यो के सघात का परिणाम मान ले और पुनर्जन्म और आत्मा के अमरत्व के सिद्धान्त का परित्याग कर दे तो फिर धर्म साधन का मूल आधार ही खिसक जाता है तथा खाओ, पिओ और मौज करो के सिद्धान्त को खुल कर खेलने का अवसर मिल जाता है ।

भारतीय दार्शनिक परम्परा मे आत्मा को ही परम ज्ञेय और परम प्राप्य माना है । उपनिषद् की कथा मे मत्यु के द्वार पर नचिकेता स्वय यमराज से यही प्रश्न करता है कि "मै कौन हू और आत्मा क्या है ?" क्या यह खेद का विषय नही है कि आज सारे ससार को जानने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु अपने आपको जानने के लिए कोई प्रयत्न ही नही होता। आत्म-विद्या भारत की परम्परागत विद्या है और मानव के लिए और कुछ भी जानने के पूर्व यह जान लेना अत्यावश्यक है कि 'मै कौन हू ?'

सत्य दुराग्रह का विषय नही

विभिन्न धर्मो के लोग आपस मे प्राय लडते देखे जाते है। हर एक यह दावा करता है कि सत्य का साक्षात्कार उसने किया है, दूसरे ने सत्य को नही पहचाना । इस अनुचित पकड का मूल कारण है—ऐकान्तिक आग्रह । यो दावा करने वाले उन्मुक्त मस्तिष्क से सोच नही पाते कि जिस अपेक्षा से वे सत्य को पाने का दावा करते है, उसके अतिरिक्त

और भी कोई अपेक्षा या दृष्टि होगी जिससे किसी दूसरे का देखा हुआ तत्त्व भी सत्य हो सकता है । क्योंकि सत्य खोज का विषय है दुराग्रह का नहीं।

किसी दार्शनिक ने कहा—संसार मे जो कुछ हम देख रहे है वह अनादि काल से चला आ रहा है। इसलिए यह निश्चित है कि संसार नित्य है । दूसरा बोला—संसार मे जिसे हमने अब देखा, दूसरे क्षण वह कहां रह पाता है, वह तो मिट जाता है। तब संसार नित्य कहां ठहरा ? वह तो एका त रूप मे अनित्य है। यह चिन्तन का भेद संघर्ष और वितण्डा वाद की कोटि मे पहुच जाता है। जैन दर्शन ने वहा बताया—प्रत्येक वस्तु में अनेकों धर्म, गुण व स्वभाव रहते है । उसके किसी एक गुण या विशेषता को पकड़ कर उसका एकान्तिक निरूपण ठीक नही होता, अतः संसार नित्य भी है और अनित्य भी। नूल स्वरूप से वह कभी मिटता नही, इसलिए नित्य है। पर उसके पर्याय, उसकी अवस्थाएं बदलती रहती है, इस दृष्टि से वह अनित्य है। इसमे संघर्ष कैसा। दृष्टिभेद से दोनों तथ्य है। अतएव वस्तु की अनेक धर्मात्मकता दृष्टि में रखी जानी आवश्यक है। यही जैन दर्शन का स्याद्वाद है ।

(दिल्ली में भारत जैन महा-मण्डल द्वारा आयोजित सभा मे दिए गए भाषण से)

कर्म के बिना ज्ञान कोरा पाण्डित्य है

जीवन का प्रथम लक्ष्य है ज्ञान प्राप्त करना। भारतीय संस्कृति में ज्ञान को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। ऋषि-महर्षियो ने तो यहां तक कहा है कि उसके बिना जीवन शून्य है। महावीर स्वामी ने कहा था कि ज्ञान जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार धागे वाली सूई

हाथ से गिर जाने पर भी मिल जाती है उसी प्रकार ज्ञानवान् व्यक्ति नाना प्रकार के प्रवाहो मे पड कर भी बह नही जाता। वह अपने हेयोपादेय विवेक से अपनी मञ्जिल की दिशा में अबाध गति से बढ़ता ही जाता है। कर्म के विना ज्ञान कोरा पाण्डित्य है। जिस व्यक्ति मे ज्ञान तो है किन्तु सच्चरित्रता नही है तो उसे कभी भी अच्छा व्यक्ति नही कहा जाता। जिस प्रकार पानी से कमल, कमल से पानी सुशोभित होता है और दोनों के सयोग से तालाब सुशोभित होता है उसी प्रकार ज्ञान से कर्म तथा कर्म से ज्ञान और दोनो के सयोग से जीवन उन्नत और सुन्दर बनता है।

(महिला शिक्षा-सदन हटुण्डी (अजमेर) मे दिए गए भाषण से)

संयम संतति-निरोध का सहज उपाय

सामाजिक कर्णधारो के सामने बढती हुई जन-गणना एक समस्या बन चुकी है। गणित शास्त्री बताते है कि विगत १९५३ मे प्रति दिन ७० हजार और प्रति वर्ष ३० करोड मनुष्यो की वृद्धि हुई। वे कहते है कि यह गणना यदि इसी प्रकार से बढ़ती गई तो अन्न, वस्त्र, स्थान विशेष को लेकर नाना सकट खडे हो जाएगे। इस विषय मे नाना उपाय सोचे जा रहे है। उनमे कुछ उपाय तो प्रकृति से ही बहुत परे रह जाते है और बहुत से अस्वाभाविक और भयानक है। सतति निरोध का सही और मानवीय उपाय सयम ही है। सयम से सतति-निरोध के साथ साथ और भी नैतिक और बौद्धिक शक्तियों का समाज मे विस्तार होगा। सतति-निरोध के कृत्रिम उपायों से मानव की अतृप्त वासनाओ को और भी एक सहारा मिलेगा।

मद्यपान बुराइयों का केन्द्र

भारतीय सस्कृति मे मद्यपान सात दुर्व्यसनो मे से एक दुर्व्यसन माना

गया है। व्यसन का अर्थ है जो एक बार लग जाने पर छूटना दूभर हो जाता है। देखा गया है कि इस व्यसन के कारण इसी जीवन में मनुष्य की भयंकरतम दुर्गति हो जाती है। बहुतो के बच्चे भूख से बिलखते हैं, स्त्रियो के पास तन ढापने को वस्त्र नही है पर उनकी सारी आय मद्यपान मे ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इस एक बुराई के साथ और अनेक बुराइया मनष्य म आ जाती है। बुराइयो मे परस्पर प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से पाला पडा समझ लो दुनिया भर की समस्त बुराइयां छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)

मदिरा सर्वथा त्याज्य है

मदिरा हलाहल से भरी प्याली ह। सुरापान के लिए अपनी जब से पैसे खर्च कर अपने ही दिल और दिमाग को इस तरह विकृत बनाने से अधिक और क्या पागलपन होगा? मदिरा पीने से उसकी प्यास बुझती नही यह तो और भी अधिक बढ़ती ह। इस तरह शराबी अपना स्वास्थ्य, मान, सम्मान सब कुछ खोता चला जाता है। आज स्वतत्र भारत के नैतिक नव-निर्माण की बेला है इसके लिए शराब जैसी घातक वस्तु सर्वथा त्याज्य है।

(दिल्ली सरकार द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध सप्ताह के अवसर पर दिए गए भाषण से)।

मानव समाज आत्मवाद की ओर मुड़े

भारतवर्ष सदा से अध्यात्म विद्याओं का केन्द्र रहा है। यहां ऋषि-

महर्षियो द्वारा आत्मा ही प्रयोग विन्दु रही है । फलत उन्हे सत्, चित्, आनन्द और सत्यं, शिव, सुन्दरम् तथा ज्ञान, दर्शन, चरित्र की उपलब्धि हुई। पाश्चात्यवासियो ने आत्मा के स्थान पर अण और परमात्मा के स्थान पर परमाण को अपना केन्द्र विन्दु माना । दीघकालीन साधना के बाद उन्हे अणवम और उदजनवम के रूप म दत्य दर्शन हुआ । अव भी समय है मानव समाज उनसे हट कर आत्मवाद की ओर मुडे ।

एकत्व भावना का प्रतीक : क्षमा याचना

आज क्रान्ति व चेतना का युग है। हर एक राष्ट्र, समाज, जाति व वर्ग मे क्रान्ति के आसार नजर आ रहे है । दृश्यमान जगत में कोई ही ऐसा समाज होगा जो युग के जागृति मय शखनाद को सुनकर सोया पडा हो। आज छोटे से छोटा वर्ग भी अपने सगठन, अपनी एकता व अपने कर्मण्यभाव से तथाकथित उच्च वर्गो के वरावर ही नही अपितु उनसे भी ऊचे होकर चलना चाहता है। आज मजदूरो, किसानो, हरिजनो, व विद्यार्थियो आदि में सर्वत्र सगठन ही सगठन नजर आता है। सगठन के इस युग मे क्षमा-याचना का दिन मनाना भी एकत्व भावना का पहला चरणान्यास है।

(सन् १९५३, दिल्ली मे क्षमा याचना दिवस पर दिए गए भाषण से)

जीवन की मर्यादा

व्रत जीवन की मर्यादा है। अपनी मर्यादा से ही मनष्य, मनुष्य है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटा व्रत। अण से आरम्भ होकर मनुष्य महा की ओर वढता है। आत्म-सयम की वृद्धि समग्र जीवन व्यवहार से है। अहिसा का जीवन मे उत्तरोत्तर विकास हो यह अहिसा अणुव्रत है। इसी प्रकार सत्य व अपरिग्रह को मानना चाहिए। अहिसा, सत्य आदि का सम्वन्ध जीवन मे पारलौकिक ही है ऐसी वात नही है। इस जीवन मे शान्ति

और सुख देने वाली यही बातें है। व्यक्तिगत से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय समस्याए तक इन्ही आधारो से हल होती है।

व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-उत्थान का आन्दोलन

भारतवर्ष सदा से सन्तो और महन्तो की भूमि रहा है। यही कारण है कि यहा की सस्कृति के अणु अणु मे नैतिकता और आध्यात्मिकता के प्रति एक अभूतपूर्व आकर्षण व्याप्त है। अणव्रत भी कोई नई चीज न होकर हमारी इसी आध्यात्म-परम्परा की एक श्रृखलावद्ध कड़ी है। साधक के लिए जहा महाव्रतो का विधान है वहा साधारण सद्गृहस्थ भी आत्मकल्याण के लिए अपनी जीवन-व्यवहार की मर्यादा के अनुसार इन नियमो को ग्रहण कर सके, इसी पुनीत लक्ष्य से अणुव्रतो की अवतारणा हुई है। इसमे धर्म या सम्प्रदाय की कोई बाधा नही है। यह तो व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन-उत्थान का सर्वजन व्यापी आन्दोलन है।

अणुव्रत की उपयोगिता

अणुव्रत नियमो मे एक ओर जहां मालिक के लिए "श्रमिको से अनुचित श्रम नही लूगा" का विधान है वहा दूसरी ओर मजदूरो के लिए, "किसी भी प्रकार से समय की चोरी नही करूगा व दुर्व्यवहार से दूर रहूगा" की भी व्यवस्था है। अपने वोट की कीमत लेकर न बेचना कितना छोटा मगर कितना उपयोगी नियम है। इस प्रकार की छोटी छोटी बुराइयों ने समूचे समाज व शासन-व्यवस्था को डावाडोल कर रखा है। इसलिए आध्यात्मिकता के साथ समाज और शासन की समुचित व्यवस्था मे व आदर्श नागरिकता के निर्माण मे अणुव्रतो की महान् उपयोगिता है। कोरे कानून बना देने मात्र से समाज से अनैतिकता दूर नही होगी, और तब तक दूर नही होगी जब तक कि व्यक्ति व्यक्ति मे नीति की भावना जागृत न हो जाएगी।

अणुव्रत आन्दोलन का विधेय पक्ष

जव पानी की अस्वच्छता दूर कर दी जाती है तो पानी को स्वच्छ करने का और कोई प्रयत्न विशेष अपेक्षित नही रह जाता। इसी प्रकार समाज से अनैतिक और अमानवीय वृत्तियो का किसी सात्विक उपक्रम से निषेध हो जाता है तो सामाजिक स्वच्छता का विधेयक पक्ष कोई स्वतन्त्र अर्थ नही रखता। अस्वास्थ्य का दूर होना और स्वास्थ्य का लाभ होना दो वात नही होती। अणुव्रत-आन्दोलन अवश्य निषेध प्रधान है पर उससे समाज का विधेयक पक्ष नही सध जाता, ऐसी वात नही है। वह हिसा, शोषण, वैषम्य का निषेध कर मैत्री, समानता व भ्रातृत्व को जन्म देता है। अणुव्रत-आन्दोलन की तीन श्रणिया है। उसके विभिन्न, निषेधात्मक नियम निर्धारित है। इसका अर्थ यह नही कि समग्र अणुव्रत-आन्दोलन इतने से शब्द-विन्यास मे बध गया है। ये नियम तो केवल दिशा निर्देश मात्र करते है। अणुव्रती की मञ्जिल तो हिंसा व शोषण रहित जीवन व्यवस्था को पा लेना है।

आज का मानव कितना ही नैतिक अधोगमन पा चुका हो; फिर भी उसके जीवन मे वहुत अपेक्षाओ से सद् का अश ही अधिक है। इसीलिए तो वह सत्य वोलने का व्रत लेकर तो फिर भी जी सकता है पर असत्य ही वोलने का व्रत लेकर तो एक दिन के लिए भी चल नही सकता। मान ले, एक व्यक्ति दिन मे दस वार असत्य वोलता है और नब्वे वार सत्य तो यह एक स्वय सिद्ध मनोविज्ञान है कि वनिस्पत इसके कि तुम दिन मे यह सत्य वोलो, वह सत्य वोलो, की असीम तालिका बनाकर उसे दी जाए के वदले तुम निम्न दस प्रकार के असत्य न वोलो का व्रत उसे दिया जाए। यही अधिक प्रशस्त और वास्तविक होता है। समाजस्थ प्राणियो के करने के काम असंख्य हो सकते है, इसलिए उनकी सीमा या

प्रशिक्षण इतना मनोवैज्ञानिक नही है जितना कि न करने वाले कामो से उन्हे रोक देना। अणुव्रत-आन्दोलन की व्रत-रचना मे यही एक स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया गया है।

असाम्प्रदायिक

अणुव्रत-आन्दोलन किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रचारार्थ नही चलाया गया है। उसमे तो जाति, धर्म या देश आदि की संकीर्ण मर्यादाओ से दूर मानव मात्र के नैतिक अभ्युदय की पुनीत कल्पना है। आन्दोलन का समग्र विधि-विधान और अब तक का उसका व्यावहारिक रूप इसी तथ्य का पोषक है। आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी इस विषय मे अत्यन्त स्पष्ट एव जागरूक है। देहली की एक सार्वजनिक सभा मे एक जैनेतर व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या अणुव्रती बनने वाले व्यक्ति के लिए आपको अपना धर्मगुरु मान लेना आवश्यक नही रह जाता? आचार्य श्री तुलसी ने कहा—इसकी जरा भी अनिवार्यता नही है। प्रश्नकर्त्ता ने कहा—क्या यह भी आवश्यक नही कि वह आपको प्रणाम करे? आचार्य श्री तुलसी ने कहा—आन्दोलन के विधान में निर्धारित नियमो के पालन की अनिवार्यता है, न कि मुझे प्रणाम करने की। अब तक जो सहस्त्रो लोग अणुव्रती बने है उनमे हिन्दू, जैन, ईसा -, इस्लाम आदि विभिन्न धर्मो व किसान, मजदूर, हरिजन, महाजन आदि विभिन्न वर्गो के लोग है। अणुव्रती होने से न उनकी जाति बदली है और न उनका धर्म।

अणुव्रत साहित्य

क्रम	पुस्तक	लेखक	मूल्य
१.	शान्ति के पथ पर	आचार्य श्री तुलसी	२) रुपया
२.	नव निर्माण की पुकार.. ..	„ „	२) „
३.	ज्योति के कण	„ „	२५ न० पै०
४.	प्रगति की पगडण्डिया	„ ,	२९ „ „
५.	अणव्रत जीवन-दर्शन	मुनि श्री नगराज जी	२) रुपया
६.	अणु से पूर्ण की ओर	„ „	७५ न० पै०
७	अहिंसा के अञ्चल मे.. ..	„ „	प्रेस मे
८.	अणुव्रत-विचार	„ „	७५ न० पै०
९.	अणुव्रत-दृष्टि	„ „	१) रुपया
१०.	प्रेरणा-दीप	„ „	२५ न० पै०
११.	अणुव्रत-क्रान्ति के वढते चरण..	„ „	१५ न० पै०
१२	अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग	„ „	९ „ „
१३.	आचार्य श्री तुलसी	मुनि श्री नथमल जी	१-५०
१४.	अणुव्रत-दर्शन		५० न० पै०
१५.	भौतिक प्रगति और नैतिकता..	„ „	१२ न० पै०
१६.	मानवता का मार्ग अणुव्रत-आन्दोलन :	मुनि श्री वुद्धमलजी	६ न० पै०
१७	जन-जन के वीच	मुनि श्री सुखलाल जी	प्रेस मे
१८.	नैतिकता की ओर	निवन्ध-संग्रह	१) रुपया
१९.	विचारको की दृष्टि में अणुव्रत आन्दोलन:	छगनलाल शास्त्री	१९ न० पैसा
२०.	मैत्री-दिवस	(अंग्रेजी सस्करण)	
२१.	अणुव्रत आन्दोलन	(नियमावली हिन्दी और अग्रेजी)	

प्रकाश की ओर

प्रकाश की ओर

[नैतिक-नव निर्माण के लिए सुरुचिपूर्ण एकांकी]

लेखक

कुन्दनमल सेठिया

प्रकाशक

अ० भा० अणुव्रत समिति

१५३२, चन्द्रावल रोड, सब्जीमण्डी, दिल्ली

प्रथम बार २०००] १९६१ [मूल्य ८० न. पै.

प्रकाशक

अ. भा. अणुव्रत समिति

१५३२, चन्द्रावल रोड

सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली

●

मुद्रक

पुरी प्रिन्टर्स

करौल बाग़, दिल्ली

●

मूल्य

८० नये पैसे

●

मुखपृष्ठ-चित्र

हरिपाल त्यागी

विषय सूची

भूमिका

श्री कुन्दनमल सेठिया अत्यन्त भावुक हृदय के हैं। आरम्भ से ही आप साहित्य की ओर आकर्षित रहे हैं। राजस्थानी भाषा तथा साहित्य के पुनरुद्धार के लिए जो योजनाएँ बनी थी आप उनके संयोजकों मे थे। वास्तव में सेठिया जी लेखक कम हैं विचारक अधिक हैं। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है वह आपकी अधिक नही हो पाई किन्तु अध्ययन और अनुभव ने आपके जीवन मे ऐसी क्रान्ति के बिरवे बोये जिनके फल समाज सुधारक के रूप मे समय-समय पर सामने आते रहे हैं।

आप अणुव्रत प्रवर्त्तक आचार्य श्री तुलसी के अनुयायी है। यह भी कहा जा सकता है कि आप सच्चे रूप मे आचार्य श्री की भावना के सन्देशवाहक है। पिछले कुछ वर्षो से सेठिया जी वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे है। इस समय आप अधिकांश समय या तो अध्ययन चिन्तन और मनन मे लगाते है, अथवा सत्संग मे रहते है। इससे आपकी विचार-धारा मे दिन पर दिन परिमार्जन ही दिखाई देता है।

जब से आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया है तभी से आप इस बात पर विचार करते रहे है कि ऐसे सत्साहित्य का निर्माण किया जाय जिसे जनता पूर्ण रुचि के साथ पढ भी ले और साथ ही साथ नैतिकता का प्रसार भी होता रहे। इसके लिए आपने "अणु-व्रत शिक्षण योजना" पर भी पर्याप्त मनन किया है।

श्री सेठिया जी ने इस योजना के अन्तर्गत बहुत सी पुस्तके तैयार की हैं जिनमे से पहली पुस्तक विविध गोष्ठियाँ है। जिसकी शैली अत्यन्त सुन्दर और सुरुचिपूर्ण है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वह साधारण बोल-चाल की भाषा है। आज आवश्यकता इसी बात की है कि पुस्तकें सादी से सादी बोलचाल की भाषा मे तैयार की जाए जिससे सर्व साधा-

रण को भली-भाँति समझ मे आ जाय। श्री सेठिया जी ने हर ऊँचे से ऊँचे विषय को जिस सादा भाषा में प्रतिपादित किया है, साहित्यिकता की दृष्टि से वह प्रयोग अत्यन्त सफल रहा है।
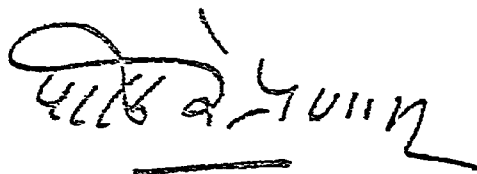
प्रस्तुत पुस्तक 'प्रकाश की ओर' बोलचाल को भाषा में तैयार की गई है इसकी शैली जिसमे गार्हस्थ जीवन, समाज सुधार, मेहमानदारी, शान-शौकत, पंचों के कर्तव्य, दुकानदारी, सेवा धर्म आदि-आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन किया है। सम्वाद दो रूपों में लिखे गए हैं। हर समस्या के दो रूप सामने रखे गए हैं। एक बुरा रूप और दूसरा अच्छा रूप अर्थात् समूची पुस्तक मनुष्य को सच्चे कर्तव्य की ओर प्रेरित करती है। प्रस्तुत पुस्तक को देखकर सेठिया जी से यह आशा सहज रूप मे ही की जा सकती है कि वे भविष्य में और भी अच्छी पुस्तके प्रदान कर सकेंगे। पुस्तक संग्रहणीय है और लेखक बधाई के पात्र हैं।

शुभेच्छु

साधना मन्दिर
बोलारम :
दिनांक : २ अक्तूबर, ६२

[पारस जैन]

अध्यक्ष : अ० भा० अणुव्रत समिति दिल्ली

प्राक्कथन

आज के युग की मांग है कि व्यक्ति समाज और राष्ट्र के गिरते हुए चरित्र को ऊंचा उठाया जाए, इस भावना को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन कर अपने ६५० जीवनदानी साधु साध्वियो को इसके प्रचार प्रसार मे नियोजित किया है और इस नैतिक आन्दोलन की आवाज को वे घर-घर पहुचाना चाहते हैं। अणुव्रत आन्दोलन की विचारधारा जहां भी पहुँची है सभी ने उसका समादर किया है और उसमे सबको एक आशा का आलोक दिखाई दिया है। इसलिए ऐसे युग प्रधान आन्दोलन की शृंखला मे हम लोग भी जुड सके, इस भावना से अणुव्रत शिक्षण योजना के अन्तर्गत गांवों में, बस्तियो मे केन्द्र खोलकर सत्संग के रूप मे नैतिकता की शिक्षा देने का यह अभिनव प्रयास है।

अणुव्रत की भावना का प्रसार करने के लिए साहित्य का सहारा लेकर कहानियो, एकाकियो, निबन्धो, भजनो, संवादो एवं कविताओं के माध्यम द्वारा नवीन शैली मे नए रूप से उठाया गया यह कदम जनता के नैतिक उत्थान मे सबल सहायक सिद्ध होगा। साहित्य-निर्माण की यह नवीन धारा जीवन को ऊर्ध्वमुखी, तथा सुखी बनाने के लिए अपने में एक विशिष्टता रखती है। सारे भारत मे केन्द्रो पर सुनाए जाने योग्य, यह उपदेश पूर्ण, नैतिक निष्ठा से भरा साहित्य जनमानस को उद्बुद्ध करने मे समर्थ होगा।

हम देश के विचारको, समाज सेवियों एवं सुधारकों का आह्वान करते है कि वे इस रचनात्मक कार्य मे अपना सहयोग देकर योजना को सफल बनाएं। अपने अमूल्य सुझावों को प्रेषित कर योजना को और भी सफल एवं पूर्ण बनाने के यश-भागी बने। इस राष्ट्रीय जागरण के संदेश को सुनकर आगे बढ़ें और सामाजिक कार्य की प्रेरणा ले, तभी राष्ट्र निर्माण एवं चरित्र निर्माण का यह पुण्य कार्य सम्भव है।

मेरी पहली पुस्तक विविध गोष्ठियां प्रबुद्ध पाठको मे समादृत हुई है। इस बात की मुझे प्रसन्नता है। दूसरी पुस्तक 'प्रकाश को ओर' पाठको के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस पुस्तक में मैंने सम्वाद शैली में घर-गृहस्थी की समस्याओ का समाधान प्रस्तुत किया है। आशा है पाठक इसे पसन्द करेंगे और यदि मेरी इन पुस्तकों से समाज में नैतिक मूल्यो की वृद्धि हुई तो भविष्य मे भी इस माला के अन्तर्गत मौलिक सूझ, नवीन शैली एवं निर्माण के स्वर गुंजाने वाला ऐसा ही अन्य साहित्य भी जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायेगा।

निवेदक

कुन्दनमल सेठिया

संचालक : अणुव्रत शिक्षण योजना

मेहमानदारी

पात्र | नौकर, चंचला, सेठजी, सुशीला, रामू, व्यापारी

नौकर—सेठानी जी सेठ जी ने कहा है, मेरे परम मित्र आये हैं, उनको भोजन करना है थोडी शीघ्रता करे और अच्छा भोजन बनावे ।

चंचला—कह दो अपने सेठ से किसी होटल में प्रबन्ध करदें, मैं कुछ नही कर सकूंगी । मेरा स्वास्थ्य ठीक नही है ।

सेठजी—माता जी के मरने के बाद बहिन को बुलाया ही नही । कहो तो बहिन को बुला लूँ ।

चंचला—कभी इसको बुलाओ, कभी उसको जिमाओ । यह सब झंझट मुझसे नही होगा । बहिन अकेली तो है नही । साथ में चार बच्चे हैं । उनके पीछे अपनी नीद हराम करूँ, यह मुझसे नही होगा ।

सेठ जी—माता जी के स्वर्गवास के बाद घर में जबसे तुम्हारा हुक्म चला है, तुमने मेरे स्वर्ग-तुल्य घर को नरक-तुल्य बना दिया है । माता जी के रहते दो-चार अतिथि घर में आते जाते ही रहते थे । उन्होने समय असमय आये हुए अतिथियो को कभी भूखा नही भेजा । तुम ऐसी हो कि कोई आ जाता है, तो उसे भी मेरे घर मे स्थान नही है ।

चचला—मेरे पास कौन से नौकर-चाकर बैठे हैं, जो तुम्हारी इच्छाये पूरी होती रहें । क्या इन लोगों के लिए अपने प्राण दे दूँ ?

सेठजी—नौकर-चाकरों की तो मेरे घर में कमी न थी, किन्तु तुम्हारे बुरे स्वभाव के कारण एक-एक करके सब चले गये। न तुम किसी को पेट भर रोटी देती हो, न आदर सत्कार से किसी को रखना चाहती हो। ऐसी दशा में नौकर न रहें, यह दोष किसका है?

चंचला—नौकरों का आदर सत्कार मेरे से नहीं होगा। कोई रहें चाहे न रहें। तुम्हारी तरह नौकरों को मैं सिर पर नहीं चढ़ा सकती।

सेठजी—नौकर-चाकरों की तो बात ही क्या है? मेरा ही कौन सा आदर सत्कार करती हो? कभी-कभी तो जी में आता है, घर में पैर ही नहीं रखूँ।

चंचला—क्यों रखते हो पैर? जब मुझसे इतनी नफरत है, तो दूसरी ले आओ।

सेठजी—करना तो यही चाहिए, किन्तु लोक-लाज से ऐसा नहीं कर सकता।

नौकर—सेठानी जी सख्त बीमार है, शायद बचेंगी नहीं। एक बार देखना है, तो देख लें।

सेठजी—क्या देखना है रामू? मरती है तो मरने दो ऐसी कर्कशा स्त्री से पिण्ड छूट जाय तो नया जन्म पाऊँ।

[दृश्य परिवर्तन]

सुशीला—आप कह कर तो कोई चीज बनवाते ही नहीं। आपकी रुचि का मुझे कैसे पता चले।

सेठजी—कहने का तो तुम अवसर ही कहां देती हो? दोनों समय दूध पिलाती हो। नित नये भोजन खिलाती हो। बीच-बीच में पुष्टिकर पकवान भी चलता है। माता जी

के मरने के बाद इतने प्रेम और आदर के साथ सब कुछ मिल रहा है।

सुशीला—माता का प्रेम और आदर तो दूसरी ही चीज होती है। फिर भी पति का आदर सत्कार करना स्त्री का प्रथम कर्त्तव्य है। वह कहां तक कर पाती हूं, यह आप ही कह सकते हैं। आप इतना परिश्रम करते हैं, थोड़ा पुष्टिकर पदार्थ खाए बिना स्वास्थ्य कैसे टिक सकता है। यही सोचकर जो मुझसे बन पड़ता है, करती हूं। हाँ जी, एक बात तो भूल ही रही हूं कि आप बहिन जी को क्यो नही बुलाते है? न उन्हें कुछ भेजते है। यह क्या बात है?

सेठजी—सच्ची बात तो यह है कि आगे वाली मेरी स्त्री ने उन्हें कभी नही बुलाया। इसलिए उनका मन ही उचट गया। तुम्हारी शादी में वे आई सो नही आई।

सुशीला—मैं उनको अवश्य बुलाऊँगी। बुलाने से पहले सिंजारा भेजूगी: पोशाक भी मेरे पास हैं। बच्चों के लिए कपड़ा मँगाना है और पांच सेर बढिया बादाम के गोटे और एक अच्छा दर्जी। सिजारा तैयार करके परसों रामू के साथ भेजूगी।

सेठजी—तुम्हारी बाते सुन कर तो ऐसा लग रहा है, जैसे मैं स्वप्न देख रहा हूं अपनी बहिन को जिस दिन मै आंगन मे खड़ी देखूगा, उस दिन मुझे अपार आनन्द मिलेगा। तुम्हारी मँगाई हुई सभी वस्तुएं अभी भेजता हूं।

सुशीला—रामू? तुम्हारे सेठ जी का इतना बड़ा व्यापार है। हर जगह से बहुत से व्यापारी भी आते होंगे, किन्तु मेरे आने के बाद कोई अतिथि तो घर पर नही आया।

रामू—कोई आता कैसे सेठानी जी ? आगे वाली सेठानी जी इन बातों से घृणा जो करती थीं ।

सुशीला—रामू ! तुम तो सबको जानते ही हो ! अब से कोई अच्छा व्यक्ति आये तो भोजन के लिये अवश्य ले आया करो । सेठ जी से कहने की आवश्यकता नहीं है ।

रामू—सेठानी जी ! ऐसा करोगी तो सेठ जी बड़े प्रसन्न होंगे, उनकी माता जी के रहते दो चार मेहमान आते ही रहते थे । यह तो बड़ी इज्जत की बात है । आपने यह अच्छा ही सोचा है ।

सेठजी—मैं आज लखनऊ जाऊँगा । दो समय का भोजन एक टिफ़न में सजा देना । दो बजे रामू आयेगा, वह टिफन ले जाएगा ।

रामू—सेठानी जी ! सेठ जी ने टिफन मंगाया है ।

सुशीला—रामू सेठ जी से कह देना कि, टिफन लखनऊ भेज दिया है जिनके यहाँ जायेंगे तैयार मिलेगा । आप लटकाये लटकाये कहां फिरते इसी से भेज दिया है ।

सेठजी—मेरे घर से एक टिफन बक्स आया है आपने तो उसका उपयोग ही नहीं करने दिया, पर खाली टिफन दे दें तो लेता जाऊँ ।

व्यापारी—आप तकलीफ न करें । हम लोग जैसे वह टिफन आया है, वैसे ही भेज देंगे ।

सेठजी—कल लखनऊ वालों ने मेरी बड़ी आवभगत की । दोनों समय इतनी अच्छी तरह खिलाया पिलाया तुम्हें भी मात कर गये । और एक कदम पैदल भी नहीं चलने दिया । उनकी मोटर तथा एक मुनीम भी साथ-साथ रहा । उनके सहयोग से मेरा सारा काम अच्छी

तरह निबट गया। पर तुम्हारे टिफन बक्स के लिए मैंने पूछा, तो कहा कि हम अपने आप पहुँचा देंगे।

सुशीला—क्या आप समझते है कि मैंने कल सचमुच ही टिफन बक्स भेजा था मैंने तो जब वे यहां आये थे, उनका खूब सम्मान किया था। बढ़िया भोजन कराया था। उन्होंने भी आपका आतिथ्य सत्कार मुझसे भी अधिक किया, यह सहयोग की, आत्मीयता, और सामाजिकता की बात थी।

सेठजी—देवी तुमने मेरे नरक तुल्य घर को स्वर्ग के समान बना दिया है। पहिले तो तुमने मेरी बहिन को मना कर बुलाया। उस दिन मेरी प्रसन्नता का पार न था। आज तो तुमने चुपके चुपके ऐसा कमाल कर दिखाया कि जो लोग मुझे पानी तक के लिए नही पूछते थे, वे इतनी आत्मीयता दिखा सके। तभी तो कहा है कि, 'घर तो स्त्रियों का ही होता है।'

[पटाक्षेप]

विद्यार्थी समस्या

पात्र | अध्यापक, विद्यार्थी, निरीक्षक, विद्यार्थी नेता,
| प्रिन्सिपल, दूसरा विद्यार्थी नेता, अगन्तुक।

अध्यापक—विद्यार्थियो ! तुम लोग घर पर तो खेल कूद, राजनीति और मुफ्त सिनेमा तथा रेल यात्रा आदि के चक्कर में घूमते रहते हो, और कालिजों में आकर तरह तरह की शरारत करने में और छात्र यूनियन के चक्कर में फिरते हो। कक्षा में बैठकर ध्यान पूर्वक पढ़ना तो तुम लोगों को सुहाता ही नही। परीक्षा में फेल होगे तो नानी याद आएगी। हमें भी बदनाम करोगे और कालिज की बदनामी भी कराओगे।

विद्यार्थी—चिन्ता न करें प्रोफेसर साहब ! परीक्षा में पास होना हमारा बाँएँ हाथ का खेल है। किसकी मजाल जो हम लोगों को फेल करे। यदि सरलता से पास न होने देंगे तो हम लोग भी अड़ंगा लगाना जानते है।

निरीक्षक—देखो ! विद्यार्थियो ! नकल करोगे तो कापी छीन लूंगा। मेरी देख-रेख में अवैध उपायों से परीक्षा न दे सकोगे। ज्यादा शरारत करोगे तो भवन से बाहर निकाल दूंगा।

विद्यार्थी—क्या सुनते हो बन्धुओ ! इनके यहां रहते पास होने की युक्ति न चल सकेगी। ये हमें क्या निकालेगे ? इन्ही को कक्षा से बाहर निकाल फेंको। ये भी क्या समझेंगे कि किन्ही विद्यार्थियों से पाला पड़ा था। देखते क्या

हो ? जो कुछ करना है, करो। सब कालिजों में धूम मचा दो। मत होने दो परीक्षा। हम भी देखेंगे कैसे पास नही करते है और कैसे कालिज चलाते है ?

अध्यापक—अरे लड़कों ! यह क्या कर रहे हो ? कालिज के फर्नीचर को क्यों व्यर्थ तोड़ रहे हो ? कपाट और आलमारी के कॉच क्यों फोड़ रहे हो। व्यर्थ उत्तेजित होकर गुरुजनो का अपमान कर क्या लाभ उठाओगे ? जरा ठंडे मस्तिष्क से सोचकर काम करो।

विद्यार्थी नेता—बस ! आप इस समय बीच में न पड़िये हमें, उपदेश सुनने का अभी अवकाश नही है। बीच से शीघ्र हट जाएं। आप के प्रति हम लोगों की जो भक्ति है, उसका अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा न करें। हमें जो करना है करने दें।

प्रिन्सिपल—अच्छा शीघ्र पुलिस को बुलाओ ? यह लातों के देव बातों से नही मानेगे। सभी प्रोफेसर और निरीक्षक इधर आ जाये चौकीदार सबको इधर ले आने में मदद करो नही तो ये भूत किसी की जान ले लेगे। सब एक स्थान पर एकत्र हो जाओ, और पुलिस के आने तक अपनी रक्षा करो।

दूसरा विद्यार्थी नेता—भागो ! भागो ! पुलिस आ गई है। एक-एक करके भागो, नही तो पकड़े जाओगे। दल बाँध भागोगे तो गोली चल जायेगी और मारे जाओगे। आगे चल कर दस-दस, बीस-बीस की टुकड़ी मे बँटकर सबको हर कालिज तथा परीक्षा भवन में पहुँचना है, ऊधम मचा कर सभी परीक्षा भवन बन्द कराने है ! नही तो अकेले

मारे जायेंगे। बर्बाद होंगे। खबरदार! खूब सावधानी से सभी काम पूरा करें।

(दृश्य परिवर्त्तन)

आगन्तुक—प्रिन्सिपल साहब! बधाई है आपको। और आपके स्टाफ को। सारे शहर के कालिज बन्द हो गये किन्तु आपका कालिज केवल चालू ही नही रहा, अपितु शान्ति के साथ परीक्षा भी हो गई। आपकी जितनी तारीफ की जाए, उतनी ही थोड़ी है।

प्रिन्सिपल—इस मामले में न तो कुछ श्रेय मुझे है न मेरे स्टाफ को। इसका सारा श्रेय अणुव्रत विद्यार्थी परिषद् को है, जिसके कारण अपनी ली हुई प्रतिज्ञाओं का विद्यार्थियों ने अक्षरश. पालन कर दिखलाया। धन्यवाद है आचार्य श्री तुलसी के उन साधु-साध्वियों को, जिन्होंने विद्यार्थियों को प्रतिज्ञा लेने के लिए प्रेरित कर देश का बड़ा उपकार किया।

आगन्तुक—आपने तो बड़ी मार्मिक बात कही प्रिंसिपल साहब! इस मामले में श्रेय आप ही को नहीं और ऐसा साहस केवल छात्रों ने ही दिखाया, यह सुनकर आश्चर्य हुआ और आनन्द भी हुआ है। अतः यह जानने की भी उत्सुकता होती है कि वे, प्रतिज्ञायें कौन सी है? जिनमे विद्यार्थियों को नियन्त्रित करने की इतनी प्रबल शक्ति है।

प्रिन्सिपल—इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है! त्यागी सन्तों के सामने हृदय से ली हुई प्रतिज्ञाओं में असीम बल होता है। वही आत्मबल हमारे छात्रों को नियन्त्रित रखने में सफल हुआ है। गहराई से सोचा जाय तो इन्ही

विद्यार्थियों के सत्साहस से अन्यान्य कालिजों की हड़तालें भी शीघ्र समाप्त हो सकी है। सारी समस्यायें सुगमता से सुलझ गई है अन्यथा बड़ी परेशानी बढ़ती, और लड़कों के शिक्षण में बाधा पड़ जाती।

अध्यापक—महाशय, प्रतिज्ञायें देखने में तो साधारण भी लगती है किन्तु छात्रों के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। यही कारण है कि हमारे कालिज का परीक्षा फल ९० प्रतिशत रहा है। अच्छी संख्या में छात्रों ने छात्रवृत्ति पाई है। व्यवहार तथा खेलकूद में हमारे कालिज के छात्र सर्व प्रथम रहे है।

आगन्तुक—आपके कालिज के छात्र सव प्रकार से भले है, इसमें सन्देह नही। अणुव्रत प्रतिज्ञा के प्रभाव से ही ऐसा हो सका है, यह तो समझ में आया किन्तु वे प्रतिज्ञाये कैसी हैं ? यह न तो आपने ही अभी तक वतलाया न प्रिन्सिपल साहव ने।

अध्यापक—ओ हो, प्रतिज्ञाये आपको वतलाई नही गईं। तो सुनिए—

१—मै परीक्षा में अवैधानिक तरीकों से उत्तीर्ण होने का प्रयास नही करूँगा।

२—मैं तोड़-फोड मूलक हिसात्मक प्रवृत्तियो में भाग नही लूँगा।

३—मै विवाह प्रसग मे रुपये आदि लेने का ठहरावा नही करूँगा।

४—मै धूम्रपान व मद्यपान नही करूँगा।

५—मैं बिना टिकट रेल आदि में यात्रा नही करूँगा।

इनके अतिरिक्त हमारे कालिज के छात्र सिनेमा भी

प्रोफेसरों के विशेष परामर्श से ही देखते हैं और छुट्टियों के दिन श्रमदान और सेवाकार्य करने में बिताते है या विशेष प्रकार के अध्ययन में।

आगन्तुक—यह प्रतिज्ञा क्या है, विद्यार्थियों के जीवन की कुञ्जी है। हम लोग तो अब अपने लड़कों को इसी कालिज में भेजेंगे। यह दूर तो पड़ेगा किन्तु लड़कों को शुद्ध वातावरण यही मिल सकेगा।

पटाक्षेप]

बहिन

पात्र | पुत्र, मां, मामा, बहू,

[पहला दृश्य]

पुत्र—बहिन को बुलाने के बाद ससुराल वापिस भेजने का तो नाम ही नहीं लेती हो माँ। इतने बाल बच्चों का खाना पहिनना, फिर विदाई के लिए नाना मूल्यवान वस्तुएं तथा वस्त्र बनाते रहना, यह कोई ढङ्ग है? क्या मैं तुम्हारे लिए कोई नही हूँ? जो इस तरह घर नष्ट कर रही हो।

मां—क्या इस घर में बहिन का कोई अधिकार नही है? इसके बाप का कमाया हुआ देती हूँ। अपनी कमाई का मत देना। मैं रहूँगी तब तक यह ऐसे ही आएगी और रहेगी। मेरे मर जाने के बाद मत बुलाना, मत रखना।

पुत्र—रखने का यह कोई ढंग है? जिस दिन जीजा जी परदेश गए है बहिन बस दूसरे दिन ही आ बैठी है। जिस दिन वे आयेंगे, बहिन अपने घर जाएगी। तुम कहती हो बाप का कमाया हुआ देती हूँ। बाप क्या मेरे लिए कुछ नहीं छोडना चाहते थे? बाप का ही क्यों? मेरी ससुराल से आया हुआ निकलस तुम्हारे पास पड़ा था, वह भी तो दे डाला है। तुम्हारी तरह कोई न तो बेटी को देता है, न बुलाता है। दूर क्यों जाएं अपनी बहू को ही देख

कितनी पीहर जाती है और विशेष अवसर के अतिरिक्त क्या लाती है ?

माँ—तुम्हारे ससुराल का निकलस दे दिया तो क्या हो गया ? बेटी को पसन्द था, इसलिए दे दिया। तुम्हारी शादी में बहू को अपने सारे गहने निकाल निकाल कर चढ़ा दिये, उस दिन तो तूमने नहीं कहा, मत दो। और बहू तो कहती ही क्यों ? उसका एक नेकलस दे दिया तो मुँह से बोल तक भी बन्द कर दिया।

पुत्र—बोलेगी कैसे ? मेरे बच्चे तो तुम्हें अच्छे ही नहीं लगते। बार-बार झिड़क देती हो। बहिन के बच्चों पर छत्रछाया करती रहती हो। गत वर्ष गाय बियाई थी। उसको अच्छी तरह खिला-पिला कर तुमने बहिन के घर भेज दिया। दूसरी गाय ने दूध देना बन्द कर दिया, तो मेरे बच्चे बिना दूध के ही रहे। बहिन को गाय भेजते समय तुम्हारे मन में विचार तक नहीं आया। फिर जब उस गाय ने दूध देना बन्द कर दिया तो बहिन ने वापिस उसे यहाँ भेज दिया।

माँ—जब मेरा कोई भी व्यवहार तुम्हें और तुम्हारी स्त्री का अच्छा नहीं लगता तो मेरा निर्वाह इस घर में कैसे हो सकता है ? मैं आज ही अन्य किसी स्थान पर चली जाती हूँ तुम लोग सुखी रहो।

पुत्र—तुम क्यों चली जाओगी ! जाना तो मुझे ही होगा, दुनियाँ तो हसेगी पर इसके अतिरिक्त उपाय नही है। इस प्रकार घर की बर्बादी तो नही देख सकूंगा।

[दूसरा दृश्य]

मामा—बहिन ! क्या करती हो ? दो चार लड़के हैं क्या, जो लड़के को अलग कर रही हो। आंगन में बर्तनों का ढेर, लगाया है। इसका अलग करके कैसे तो तुम्हें सुख होगा, और क्या लड़के का भला होगा ?

माँ—क्या करूं भैया ? लड़का मुझसे कभी कोई बात पूछता ही नही, रोगी होने पर भी पांच मिनट पास में आकर नही बैठता। वहू अवश्य सेवा करती है। बेटा भी जो चीज मांगती हूँ, ला देता है, किन्तु पूछताछ किसी भी प्रकार की नही करता। जब कुछ बोलता है तो उलाहने के रूप मे ही बोलता है। इसलिए बेटी के प्रति मेरा आकर्षण और अधिक हो गया है।

मामा—आकर्षण कहो चाहे मोह कहो, पर यह बेटी का भी जीवन नष्ट कर रहा है। तुम से न बेटी के ससुराल वाले प्रसन्न हैं न जवाईंजी संतुष्ट हैं, लड़के ने अपनी अप्रसन्नता पकट ही कर दी है। अब रही बोलने की बात, आजकल के लड़को का स्वभाव ऐसा बन गया है, कि वे अपने आत्मीय जनों से आत्मीयता से बात नही करते, न किसी के सुख दु.ख में सम्मिलित होते है। होली–दीवाली राम राम करने भी नही जाते। तुम ही बताओ तुम्हारा लड़का मेरे यहाँ कभी जाता है।

माँ—तो बताओ भैया अब मुझे क्या करना चाहिए। जिससे हमारे घर मे सुख शान्ति, फिर से आजाए हमारे मन का अन्तर कम हो। लड़के लड़की सभी का जीवन सुखमय बन सके।

मामा—तुम्हें लड़की के प्रति जो मोह है, उसे कम करना होगा। लड़की को जब तुम्हारा लड़का और बहू बुलाए तभी उसको आना चाहिए, और उनका मन देखकर रहना चाहिए। वे लोग जो दें, उसी में संतोष मानना चाहिए। तुम देखोगी कि, तुम्हें कितना आनन्द मिलता है और लड़के लड़की का जीवन ही इससे बदल जाएगा। लड़की के ससुराल वाले और जवांई जी भी प्रसन्न होंगे।

बहू—माता जी, बहिन जी के लिए सिंजारा तैयार किया है। जरा देख लीजिए ? कोई चीज कम तो नहीं रही है। कमी हो तो बता दीजिए सिंजारा भेजने का मेरा यह पहिला ही अवसर है।

मां—यह सिंजारा भेज रही हो कि खोली। सिजारे में इतनी चीजें भेजने की मेरी सम्मति नहीं है। सब काम सदा निभने वाला ही करना चाहिए।

पुत्र—बहिन के लड़के का विवाह है। जीजा जी का हाथ भी कुछ तंग है। अपने इस वर्ष में तुम्हारी कृपा से व्यापार अच्छा ही है। कहो तो यह विवाह अपनी ओर से कर दूं।

मां—बेटा मैं क्या कहूं ? तुम बहिन के प्रति कितने उदार हो। तुम्हारी बहू उसका कितना मान करती है। यह सब देख मेरा हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो जाता है।

पुत्र—यह सब मामा जी का प्रताप है। उन्होंने ही सबको ऐसी सही सूझ दी कि आज अपना घर सुख शान्ति का केन्द्र बना हुआ है। तुम्हारे आशीर्वाद से हमारे यहां आज किसी प्रकार की कमी नहीं है। घर आदर्श रूप

बना हुआ है। घर के बाल-बच्चों के संस्कार सुधरे है। बच्चों में तुमने विनय और नम्रता के साथ साथ होश्यारी और साहस भर दिया है। हमारे बच्चे न कभी रोते है, न हठ करते है। कोई चीज मिलती है, तो सब बांट कर खाते है। भय क्या वस्तु होती है, वे जानते ही नही अकेले जहा भेजो, अर्द्ध रात्रि में भी वहां चले जायेगे। जहाँ रखो रह जायेगे। यह सब तुम्हारा ही चमत्कार है मा। तुम्ही ने इनके संस्कार तरह-तरह की नैतिक कहानियाँ सुनाकर बनाए है। धन्य हो तुम, माँ हो तो ऐसी हो।

[पटाक्षेप]

शान-शौकत

पात्र | **पत्नी, पति, पड़ौसिन, सुनील, मनोहर, भाभी।**

पत्नी—घरवालों से अलग होकर अलमस्त बन गये। घर की कोई चिन्ता न रही। पड़ौसिन से उधार लाकर दो दिन निकाल दिए पर अब कोई उपाय नही, बच्चे भूखे ही रोते रोते सो गये हैं। सुबह उठते ही खाना मांगेगे। क्या तो उन्हें खिलाऊँगी और क्या हम खायेंगे ?

पति—मैं क्या प्रबन्ध करूं ? पैसा तो पास में है नही ? उधार कोई देता नहीं ? तुम्हारे पास कुछ हो तो कोई प्रबन्ध किया जा सकता है।

पत्नी—मेरे पास क्या रखा है ? सब बेच-बेच कर खा गये। केवल यह सुहाग चिन्ह के रूप में नथ बची है।

पति—तो मैं क्या करूं ! अभी वेतन १०-१५ दिन से पहिले नही मिलेगा।

पत्नी—मैं क्या बताऊँ ? मेरी सुनता भी कौन है ? मैं तो हर-दम कहती रहती हूं कि झूठी बाबूगिरी और शान-शौकत में व्यर्थ का खर्च न करो, पर आप मानते ही नहीं। नौकरी में १०० रुपये मिलते हैं ! पान, बीड़ी, तेल साबुन, टी पार्टी, सिनेमा आदि मे मत उड़ाओ।

पति—मैं कमाता हूं क्या इतना भी न करूं ? तुम्हें तो मेरे कामों से जलन हो रही है। पांच आदमियों की सोसाइटी में बैठता उठता हूं तो तुम जल-भुन जाती हो।

पत्नी—कौन मना करता है ? खूब उठो बैठो घडी, पैण्ट, बुशर्ट, मोजे, बूट सब पहनो। नई-नई डिजाइन के पहनो। साइकिल ही क्यों, मोटर साइकिल ले आओ। वेतन आते ही ५०-६० तो बाजार में ही दे आते हो। मुझे तो ४०-५० पकडाते हो। उनमें से भी १०-१२ वापिस ले लेते हो। आखिर घर का खर्च चले तो कैसे चले ?

पति—तुम जानती हो मुझे सभ्य समाज में रहना पड़ता है। क्या गन्दे और बेढंगे कपड़े पहिन कर नेताओं, अफसरों और बडे-बडे लोगों के पास जा सकता हूँ। आज-कल की सभ्यता के अनुसार अगर न चलूँ तो न उन्नति हो सकती है, न अफसर लोग प्रसन्न रह सकते हैं।

पत्नी—यह भी क्या सभ्यता ? जो ऊपर से फैनिल और भीतर से पंकिल बनाये और घर में बाल-बच्चे भूखे बिलबिलाते रहे। लानत है ऐसे जीवन पर। नौकरी आप ही नही करते है, रफिया, सुखिया बहन के पति भी करते है, वे तो ऐसी बाबूगीरी नही करते। रजाई देखकर पैर फैलाते है पैवन्द लगे कपड़ों से काम चला लेते है, पर बच्चों को कष्ट नही होने देते।

पति—किनकी बात करती हो ! मैं उनकी तरह जीवित नही रह सकता ! तुम जानो, तुम्हारे बच्चे जानें ! मुझे तग मत किया करो।

पत्नी—ऐसे अकड़ के धनी थे, तो माँ-बाप से अलग ही क्यों हुए? मैंने भी भूल की जो बहकावे में आ गई। कहाँ वह गाएे कहा वह दूध-दही। बच्चे खा-पीकर मोटे-ताजे थे, छः महीनें मे सूख कर काँटे हो गए। हा भगवान, अब मैं क्या करूँ ?

पति—अब सुधरवा लो अपनी भूल ! मुझे क्या पता था कि तुम मेरा जीवन ही मिटा देना चाहती हो।

पत्नी—यों जीवन से ऊबकर जाते हो तो चले जाओ। भगवान् ने दो हाथ दिये है। श्रम करके बच्चों का लालन-पालन कर लूँगी। महिला मण्डल में काम करने की कई बार बात चलाई, तब कहते रहे समाज में हमारी नाक कट जायेगी। पुरखों की प्रतिष्ठा पर पानी फिर जायगा और अब ! प्रतिष्ठा बढ़ेगी ! नाक न कटेगी।

पड़ोसिन—बहू तुम किसकी नाक काट रही हो ?

पत्नी—मैं किस की नाक काटूँ भुआजी ? यहाँ तो अपनी नाक ही नहीं रखी जा रही है। आपका भतीजा नाराज होकर चला गया है। कहता है मेरे से बच्चों का लालन पालन नही होता।

भुआ जी—आज के छोकरे झूठी शान-शौकत और बाबूगीरी में पड़कर बिगड़ जाते हैं। बहू, डरना मत, कल मेरे साथ महिला मण्डल में चलना। पेट पालन जितना काम तो मिल ही जाएगा और यह ले पॉच रुपए, खाने का सामान मँगवा ले।

(दृश्य परिवर्तन)

सुनील—अरे मनोहर तुम इतनी रात किधर जा रहे हो ? जरूर तुम घर से झगड़ कर आये हो, इतनी रात गये अकेले नही जाने दूंगा। मित्र ! जीवन संघर्ष में पलायन कायरता की निशानी है।

मनोहर—मित्र ऐसा जीवन भी किस काम का, जिसमें खट-पट चलती रहती है। दिन भर नौकरी में मरो और

शाम को दो रोटियाँ भी सुख से न मिल सकें। मैं तो ऊब गया ऐसे जीवन से।

सुनील—यह तो मानव का धर्म नहीं है। जब तुम्ही घबरा गये तो बेचारी भाभी, अकेली बच्चों को कैसे सम्भाल पायेगी। जब इतनी कायरता थी तो बाप बने ही क्यो ! माँ की ममता अब भी बच्चों को आँचल मे छिपाये सिसक रही होगी। पुरुप पौरुष का प्रतीक होता है दोस्त। वह अगर ऐसा करेगा तो नारी को कौन सम्भालेगा ?

मनोहर—क्षमा करो मित्र रहने दो यह तर्कवाद। सौ रुपये में न नारी सम्भाली जाती है और न बच्चों का पालन हो पाता है।

सुनील—धैर्य से काम लो। १०० रुपये कम नही होते। सादगी से जीवन पालन करने के लिये इतना आधार पर्याप्त हो सकता है। इनके सहारे कुछ तुम और उपार्जन करो। कुछ भाभी उपार्जन करें, फिर देखो जीवन कितना सुखमय हो जाएगा। मुझे देखो न ९०) रुपयों में ही गुजारा कर रहा हूं। मैने अपना जीवन बहुत सरल बना लिया है।

नोहर—बात तो ठीक कह रहे हो। आवेश ने मुझे मिटा देना चाहा। मेरा बसा बसाया घर उजाड़ देना चाहा, पर तुमने अधेरे में प्रकाश की तरह आकर मुझे बचा लिया।

नील—तुम्हें महीने में जितना मिलता है, पत्नी को लाकर दे दो और तुम अणुव्रती बनने की प्रतिज्ञा ले लो। तुम्हारा

घर सचमुच स्वर्ग बन जाएगा। नया मोड़ तुम में संजीवन फूंक देगा।

(दृश्य परिवर्तन)

मनोहर—बिल्लू की माँ, मुझे क्षमा करना, मैंने जीवन से भाग कर बड़ी भूल की पर सुनील ने उसे सुधार कर हमें बर्बाद होने से बचा लिया है। सवेरे साईकिल बेच कर खाने का सामान ले आऊंगा।

सुनील—अब भैया कभी शान-शौकत में कुछ भी न खोयेगा। सारा वेतन तुम्हारे हाथों में आयेगा। भैया को आवश्यकतानुसार खर्च देने में कंजूसी न करना।

पत्नी—मैंने तो महिला मंडल में कार्य करने का निश्चय कर लिया है। अब अभाव और कंजूसी का सवाल नहीं रहेगा।

सुनील—बहुत सुन्दर! दिन भर खाली बैठे रहने से कुछ न कुछ करना ही अच्छा है। अब भैया भी, ताश, चौपड़, सैर-सपाटों और सिनेमा, टी पार्टियों में समय नहीं खोयेंगे। कुछ न कुछ उपार्जन करने का प्रयास करेंगे।

पत्नी—तब तो हमारा भाग्य बदल गया ही समझो लाला जी। शान-शौकत के शनिश्चर की साडसती लगी हुई थी, वह दूर हो गई समझो।

[पटाक्षेप]

समाज-सुधार

पात्र—सहेली, पड़ौसिन

सहेली—आजकल यह क्या समाज सुधार चला कि लोग पहिले वाली औरतों की सराहना करते थकते नही? कहते हैं कि वे घर का कितना काम करती थी, कितने हिसाव से चलती थीं? उनकी श्रमशीलता से समाज कितना उन्नत हुआ, खेतीहर लोग सेठ वन गये। झोंपड़ियों की जगह ऊंची हवेलियां वन गई। सोने चांदी का ढेर लग गया।

पड़ोसिन—सखि वात तो सच्ची कहते है। इसमें नाराज होने की वात नही है। आजकल की स्त्रियों में श्रम के प्रति कोई निष्ठा नही, वल्कि घृणा है। दिन में तीन चार वार खाना-पीना साज-सिगार और गप्प-शप्प मारना ही आज की नारी का काम रह गया है। इसी के परिणाम-स्वरूप आज घर घर में आलस्य का राज्य है। वीमारियों का वोल वाला है।

सहेली—घरो में आज कल काम काज है ही कहां? जव काम काज के नये नये साधन वन गये है, तव हाथों से काम काज करने में धरा ही क्या है। चक्की आटा पीस देती है घी दूध वाजार मे मिल जाती है फिर क्यों चक्की चलाएं और क्यों गाय रखे? पानी, पीसना और दूहना विलोना तो आजकल नौकरानी भी नही करती।

गलियों में सफाई करने वाली भी आटा चक्की से पिसवाती हैं, फिर हम तो सेठों के घरों की बहुएं हैं। ये छोटे छोटे काम करती, क्या अच्छी लगेंगी।

पड़ोसिन—बहिन, काम करने से कोई छोटा नहीं बनता। श्रम मनुष्य को उच्चता की ओर अग्रसर करता है। बिना श्रम के मनुष्य का मन ऊल जलूल बातें सोचने लगता है। खाली दिमाग शैतान का घर होता है। आज अपने समाज में जो स्वार्थ, वृत्ति प्रबल होती जा रही है। फेशनपरस्ती बढ़ती जा रही है, ये सब श्रम विमुखता के कारण है। इसके अतिरिक्त बड़े कहलवाने की भूख इतनी बढ़ गई है कि घर जला कर तीर्थ करने की कहावत घर-घर चरितार्थ होने लग गई है। आखिर अकेला पुरुष कमाए भी तो कितना कमाए? घर का खर्च चले कि, गृहलक्ष्मी की भोग वृत्ति की परितृप्ति हो।

सहेली—तब तो पुरुषों का कहना मिथ्या नहीं है, बहिन! पर वे पुराने ढंग के काम आजकल की स्त्रियों से कैसे हो सकते हैं? और छोड़े हुए काम को हाथ में लेते हुए शर्म भी आती है। समाज में नुकताचीनी होने का डर लगा रहता है। किसी प्रकार अपने हाथो से काम करने भी लग जाएं तो उससे होना जाना भी क्या है? १५-२० की मासिक बचत भले ही कर ली जाएं!

पड़ोसिन—बहिन! १५-२० रुपये की मासिक बचत क्या नहीं होती! बूंद बूंद से घड़ा भर जाता है। कण-कण से पहाड़ बनता है। आप लोगों के लिये ये अधिक

है, फिर भी काम करने से, श्रम रत रहने से मन की वृत्ति बदल जाती है। क्रिया-शील मन हरदम प्रफुल्ल रहता है । विलासिता की भावना दव जाती है। निष्क्रियता के कारण होने वाले रोगों से पिड़ छूट जाता है। व्यर्थ की परेशानियां और चिन्ताएं दूर हो जाती है। घर की गाय का घी-दूध दही, और वाजार का घी दूध दही एक रस नही होते। अपने श्रम मे जो मिठास है, वह पराए श्रम में नही है। पर निर्भरता की जगह स्वावलम्वन और आत्म निर्भरता आ जाती है। स्वावलम्वन जीवन का निर्माता माना जाता है ।

सहेली—तो फिर पुरुष समाज सुधार की वातों में स्त्रियों को ही आगे क्यों रखते है ? हम तो थोडा वहुत सीना पिरोना, काढना आदि काम करती ही रहती है, मर्द तो कुछ भी नही करते ! ताश पीटना या तेरा मेरा करना ही उनके जिम्मे है क्या ?

पड़ोसिन—यह ईर्ष्या भाव ही तो हम महिलाओं मे दोष उत्पन्न कर रहा है। दूसरे पुरुष घर के काम मे हाथ वटाएं ऐसा अवसर ही हम उन्हे नही देती है। घर तो गृहिणी का होता है। वह लक्ष्मी कहलाती है । वच्चों पर जितना प्रभाव माता का पड़ता है, उतना पिता का नही। यदि गृह लक्ष्मियां घर का कार्य अपने हाथों से करने लग जाएं, तो उनके लड़के लड़कियां भी श्रम से प्यार करने लग जाएगें। जव से गृह लक्ष्मियो ने घर का काम-काज करना छोड दिया है, तव से वच्चो में भी काम-चोर वनने की प्रवृत्ति आ गई। वे खाऊं उड़ाऊं वनकर भारभूत हो जाते है। यह सव गृह

लक्ष्मियों के सोचने की बाते है। समाज के पीछे नष्ट होना उचित नही है।

सहेली—बहिन, तुमने मेरी अज्ञानता दूर कर दी, समाज में कोई स्त्री, गृह कार्यों में हाथ बंटाएं या न बटावे, मैं तो आज से ही अपने घर के हर कार्य को पहले हाथों से ही करने लगूंगी। समाज चाहे कुछ भी कहे मै अपने हाथों से ही अपनी सन्तानों को नष्ट न करूंगी। देखना कल ही गाय मंगवा कर न बंधवा लूं तो! सेठ जी मना करेंगे तो भी न मानूंगी। देखते हुए मक्खी अब न निगली जाएगी। कल सार सम्भाल तो ले लेना। बहिन! आज से तुम मेरी सहेली ही नही; गुरुआनी भी हो।

[पटाक्षेप]

मुर्दा दिली बनाम जिन्दा दिली

पात्र | जनसेवक, सेठजी, सेठ का लड़का, सेठानी, पहला सेठ, दूसरा सेठ

जनसेवक—सेठ जी ! अब तो आप चौथे आश्रम में प्रवेश कर रहे हैं। गृहस्थ जीवन के झंझटों को छोडकर कुछ जनसेवा का कार्य करे तो, अच्छा रहे। जब सब प्रकार से सुखी आप जैसे व्यक्ति जनसेवा का कार्य नही करेगे तो झझटों में फसे व्यक्ति क्या कर सकेंगे।

सेठजी—अरे भाई ! तुम मुझे सुखी मानते हो ! मै तो हर तरह से दु.खी हूँ। स्त्री ऐसी मिली है कि हर वक्त खाऊ खाऊं करती रहती है, बेटा भी महानालायक है कोई काम ही नही करता। अगर दो घडी काम न देखूं तो सब चौपट हो जाएगा।

जनसेवक—आप है तो सुखी, पर आप का कोमल मन यह स्वीकार नही कर पाता है। मुर्दादिली कभी भी जीवन मे जिन्दादिली नही रखने देती। यदि आप शरीर से जन सेवा नही कर सकते तो, धन के माध्यम से अवश्य कर सकते है। परमात्मा ने धन तो खूब दिया है आपको।

सेठजी—अरे भले भाई ! मुर्दादिली और जिन्दादिली को तो मैने देखा ही नही। रही धन की बात ! मेरे पास धन है ही कहाँ ? जो थोड़ा बहुत धन जीवन को चलाने के लिए है वह यों उड़ा देने के लिए थोड़ा ही

है। जन सेवा तो तुम जैसे जन सेवक ही कर सकते है। मेरे जैसे झंझटों में फसा व्यक्ति थोड़े ही कर सकता है।

जनसेवक—सेठजी ! मुझ जैसा गरीब व्यक्ति क्या जन-सेवा कर सकता है। न भूखों को भोजन दे सकता है न नंगों को वस्त्र । मै जो कुछ तन-मन से जनता की सेवा कर रहा हूँ, आप लोनों के आशीर्वाद से करता रहता हूँ। कुंवर साहब ! क्या बूढे बाबा को जीवन भर घसीटोगे। अब तो इन्हें कमाने से छुट्टी दे दो, ताकि संसार के प्रति अपने कर्त्तव्य भी पूरे कर जाएं।

सेठ का लड़का—तुम भी खूब हो ! अभी तो सेठजी के कमाने के दिन हैं: लम्बे जीवन का अनुभव दो पैसों की कमाई का मार्ग खोजने में सदा सफल रहता है। मै नया क्या हूँ, क्या कमाऊंगा ? मेरे तो ये दिन मौज उड़ाने के है। मै अभी पिताजी के बैठे मौज नही उड़ाऊं तो फिर कब उड़ाउंगा ? मुझे तो काम काज के झंझट में फंसना ही अच्छा नही लगता । चार दिन जीवन का रस ले लूं । झझट में तो आखिर फंसना ही है।

सेठानी—बाप के रहते बेटा मौज न उड़ाए तो क्या बूढा बाप मौज उड़ाए ?

जनसेवक—तो माताजी ! आप तो कुछ जनसेवा की बात सोच सकती हैं। काम काज के लिये घर में बहू है। घर का कार्य बहू पर छोड़कर आप जन सेवा तथा समाज सेवा के कार्यो में कुछ भाग लें तो

समाज में फैली कुरीतियाँ मिट सकती है। आजकल तो बडी बूढ़ी महिलाएं ही पर्दा, दहेज, आदि रूढियों के विरुद्ध प्रचार कर सकती हैं। इस नगर में आपके आगे आने से समाज का वहुत बड़ा भला हो सकता है।

सेठानी—मैं पर्दा छोड़ने वाली स्त्रियों को घृणा से देखती रही हूँ। मेरी बहू थोड़ा पर्दा उठाये तो सही। आखें न निकाल लूं। और तुम्हें आग लगाने के लिए मेरा ही घर मिला यहां घर के काम से ही अवकाश नही ! तुम्हे पड़ी है जन सेवा की, और हम ही मिले इसके लिये निकम्मे

(दृश्य परिवर्तन)

पहला सेठ—सेठजी, आपने तो घर-दूकान सभी से छुट्टी ले ली। अब आराम करने का समय आया तो, जन सेवा का फंदा गले मे डालकर यों भटकने लगे।

दूसरा सेठ—जव चौथे आश्रम में आ गया हूँ ! घर दूकानों की चिन्ताओं से मुक्त होने में ही भलाई है। पत्नी क्या मिली है। लक्ष्मी है और बेटा भी ऐसा योग्य निकला कि उसने सारा व्यापार सभालकर मुक्त कर दिया है आवश्यकता अनुसार व्यय के लिए धन देते हुये कभी माथे पर वल नही डालता। जवानी में खूब कमाया, खूब आनन्द लूटा पर अव तो कुछ धर्म ध्यान कर सकूं। जन सेवा कर सकूं, यही प्रयास रहता है।

पहला सेठ—अरे भई ! आप जन सेवा करते है, करे, पर धन का अपव्यय तो न किया करे न जाने कब क्या हो जाए ?

वाले बच्चेदार आदमी हो। संचित धन का अपव्यय करना समझदारी नहीं है

दूसरा सेठ—वाह भैया ! धन जैसे नित्यनाशवान् वस्तु से ममत्व कैसा ? उसका उपयोग तो यही है कि वह दुखी और आवश्यकता रखने वालों के काम आवे पेटमें दो रोटियां और पहनने को दो हाथ खादी चाहिए इनको कोई कमी नहीं और धन संचय भी क्यों किया जाय ? पूत कपूत तो क्यों धन संचय पूत सपूत तो क्यों धन संचय ? और मेरा विश्वास तो यह है कि अगर धन का सद् व्यय होता रहे तो वह घटेगा नहीं कमाई में उत्साह रहेगा धन बढ़ता ही रहेगा अन्यथा धन की तीन गतियां हैं त्याग, भोग, और नाश।

सेठानी—लाला जी ! धन आदमी को थोड़े ही कमाता है, उसे तो आदमी ही कमाता है वह हाथ का मैल है किसी भले काम में दो चार रुपये व्यय हो जाएं तो इसे धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति का सौभाग्य ही समझना चाहिए।

पहला सेठ—बड़ी समझदारी से बात कर रही हो भौजी ! सेठ जी को अच्छी कमाई के मार्ग पर लगा कर, स्वयं मीरा बाई बनकर घर घर पर्दा, दहेज, आदि के विरोध में प्रचार करने लगी हो। महिला मंडल के कामों में भाग लेना और गृह-गृह द्वार-द्वार आंचल फैलाकर भीख मांगना आप जैसी सुशील धनी ग्रहिणी को तो बिल्कुल ही शोभा नहीं देता। भाभी, तुमने तो सारी लाज ही खूंटी पर टांग दी। पुरुषों से बोलते बतलाते तनिक भी शर्म नहीं

आती ! आपको अच्छा लगता होगा यह सब, पर हमें तो अच्छा नही लगता ।

सेठानी—क्या कहते हो लाला ! इस अवस्था में मेरे लिये लाज शर्म क्या ? समाज के पुरुष पिता, भाई एवं पुत्र तुल्य है । उनसे बोलने में बुरा क्यों लगे । पर्दा रखना तो नारी के लिये कलंक है । उसका शोषण है । आप जैसे पुरुषों के गहनों के लोभ में नारी को फसा कर उसे पर्दे मे बांध दिया है । शक्ति को कायर बना दिया है । जो नारी पुरुप को जीवन सगिनी बनकर सहायता दे सकती थी वह जीवन पर भार बन कर रह गई है और उनके बच्चे बच्चियाँ कमजोर, मूर्ख और कायर बनने लगे है ।

रामजीवन—चाचा जी, आप भी किस युग की बात ले बैठे ! मानव को सदा हैवान नही बने रहना है उसे मानव भी तो बनना है ।

पहला सेठ—अरे रामजीवन तुम तो बिल्कुल भोंदू निकले । मौज करने के दिनों में गृहस्थी का सारा जंजाल गले डाल बैठे । भाई जी और भौजाई जी ने घर गृहस्थी से हाथ खीच कर जन सेवा का ऐसा काम हाथ में ले लिया है कि दिन भर मौज रहती है इनको, और तुम यह रोग ले बैठे, जवानी के दिनो में ।

रामजीवन—चाचा जी ! यही दिन तो कुछ सीख लेने के है ! आज का सीखा हुआ जीवन भर काम आएगा, कभी धोखा और चिन्ता का कारण न बनेगा । यदि चाचा गृहस्थों के कार्यों को आप जंजाल समझते है, तो छोड क्यों नही देते ! बुढ़ापे में ही ऐसे लगे रहे तो आराम और जन सेवा कब कर पायेगे परिश्रम करने का काम

तो जवानों का है। जवानी मौज उड़ाने के लिये नही मिलती। कठिन कर्म करने के लिये मिलती है। आप बड़ी गलती कर रहे हैं जो भैया को काम धंधे में न डालकर उसे विनाश की ओर लेजा रहे है। आपके बाद वह बिना अनुभव के कैसे कारोबार संभाल पाएगा। जैसे ही एक साथ उस पर बोझ पड़ा कि वह घबरा जायेगा और भ्रष्ट लोगों के परामर्श पर स्वयं को मिटा लेगा। उस पतन के समय कौन उसकी रक्षा करेगा ?

पहला सेठ—तो रामजीवन नन्दू को अपने जीते जी ही काम धन्धे में न डाल कर मैं बड़ी भारी भूल कर रहा हूँ। भाई जी आपके जैसा सखी परिवार देख कर मेरे मन में भी ईर्ष्या होती है कि, मै भी कुछ समाज सेवा का कार्य करने लगू।

दूसरा सेठ—अब तुम्हारा जीवन जन सेवा के कार्यो में लगना चाहिए प्रयास करो। धीरे धीरे इस ओर प्रवृत्ति हो जाने से जीवन में आनन्द आने लगेगा। जिन लोगों का धन सद् व्यय में नही लगता, उनके घरो में कलह वैमनस्य का राज्य रहता है। धन होते हुये भी घर में शान्ति नही रहती ! सब में मुर्दादिली छाई रहती है।

पहला सेठ—रामजीवन की चाची तो मौसी जैसी नही बन पाएगी।

सेठानी—लाला जी ! एक दिन में यह सब नही होगा। धीरे-धीरे सब हो जाएगा। अगर बहन माने तो एक दिन आचार्य श्री तुलसी के "दर्शनों के बहाने उसे मेरे पास ले आना फिर देखना कि, वह तुम से भी दो पग आगे चलने वाली बनती है कि नहीं।"

[पटाक्षेप]

आपसी बरताव

पात्र | छोटी वहू, वड़ी वहू, छोटा भाई, पंच,
| वड़ा भाई, वहू रानी, वड़ी माता जी

छोटी वहू—आपने अपने आंगन का कूड़ा, मेरी तरफ कैसे फेंक दिया ? क्या यह अच्छी बात है ?

वड़ी वहू—यह अच्छी वात नहीं, तो तुम जो मेरी हद में गन्दा पानी गिराती हो, वह तो शायद अच्छी बात होगी ।

छोटी वहू—जव आगन की नाली ही एक है, तो पानी भी वहीं गिराया जाएगा, और कहां जाएगा ?

वड़ी वहू—जाएगा क्यों नहीं ? वाल्टी में भरकर रखो और वाहर गिराओ या नाली दूसरी वनवा लो। मै अपनी सीमा में गन्दा पानी नहीं गिराने दूंगी ।

छोटी वहू—आप नहीं गिराने दोगी तो मैं भी वारी का रास्ता वन्द कर दूंगी । मेरी सीमा से नोहरे में नहीं जा सकागी। आप भी दूसरा रास्ता वनवा लें ।

वड़ी वहू—रास्ता वन्द करके देखो तो सही, क्या भाव विकती है ?

छोटी वहू—मै भी देखूंगी आप भी नाली कैसे वन्द करती हो ?

छोटा भाई—आपस में लड़ाई किस बात की है ?

छोटी वहू—अव इस घर में कैसे रहा जाएगा ? रात-दिन वक-वक, झक-झक सुननी और करनी पड़ती है । तुम तो पांच दिन बाद विदा हो जाओगे । मै इनसे झगड़ा करूंगी या घर का काम करूंगी । जैसे हो इस बात को निपटाकर जाओ, नहीं तो मैं विदा न होने दूंगी ।

छोटा भाई—बिदा नहीं होने दोगी, तो खाओगी क्या ? घर छोड़कर दूसरे घर में जाऊँगा तो अपने को रखेगा कौन और किस आज्ञा से रखेगा ? अब बताओ क्या करूँ ?

छोटी बहू—पंचों के पास जाओ, उनको सभी बात समझाकर कहो। और साफ-साफ कह दो कि, चल कर समझा दें। नही तो किसी समय बात बिगड़ जाएगी।

पंच—हम लोगों ने आप दोनों की बात अच्छी तरह सुन ली है, समझ ली है। अब कहना यही है कि सिर्फ साझे के घर मे आप अकेले ही नही रहते है और भी रहते हैं, किन्तु आप लोगों की तरह लडते झगड़ते नही।

बड़ा भाई—भाई साहब। हम सब समझते है, किन्तु हमारे छोटे भाई की बहू ऐसे बुरे घराने की है कि वह राड़ झगड़ा किए बिना मानने वाली नही। मैने सरकार से आदेश प्राप्त कर लिया है। अब आंगन के बीचो-बीच दीवार बनाकर अपना रास्ता अलग अलग बना लेगे अन्यथा हमारी लड़ाई मिटने वाली नहीं है।

पंच—यह तो आपको शोभा नही देता। शादी-विवाह के अवसर पर तो इससे बड़ी असुविधा रहेगी।

बड़ा भाई—जो कुछ भी हो अब तो ऐसा ही होगा।

पंच—करिये आप लोगों को जैसा जचे पर यह मत कहिए कि अकेली छोटे भाई की बहू ही खराब है, बुरे घराने की है, लड़ाई झगड़ा बढ़ाने में तो सब एक ही जैसे हैं।

बड़ा भाई—एक से कैसे है ? पूछिये उससे; कभी दुःख-सुख में हाथ बंटाया है उसने ? यहाँ तक कि मां की कभी सेवा सुश्रुषा उसने नही की है।

छोटी बहू—उनसे भी पूछिये कि पांच रुपये की भी सहायता दी है, उन्होंने। माता जी का सारा का सारा धन खा गए। एक पैसा भी दिया है उन्होने, क्या क्या गिनाऊँ ? मुझ भोली के साथ इन लोगो ने जो व्यवहार किए है, मैं जानती हूँ, तिस पर भी मुझे बुरे घराने की कहते है। और तो सव कर लिया। अव दीवार बनवाना शेष है। वनाएँ दीवार हमारा ही इसमें क्या जाता है ?

पंच—अपने पडौसी के घर की तरफ भी थोडा देखो। देवर के लड़के की वहू होकर वड़ी माता जी का कितना सम्मान रखती है। और वडी माता वहू का कितना आदर करता है। यह उन्ही के शब्दो मे सुनो।

[दृश्य-परिवर्तन]

बहूरानी—वड़ी माता जी ! दूसरे घर में मै विवाह नहीं करने दूँगो। विवाह तो इसी घर मे होगा तभी मुझे प्रसन्नता प्राप्त होगी।

बड़ी माता जी—वहूरानी वात तो तेरी ठीक ही है, अपने घर में विवाह होने से ही शोभा की वात है, किन्तु अपना घर वहुत छोटा है। तुम्हारे वाल वच्चे अधिक है। वहू और वेटा भी आए हुए है। सवको कष्ट होगा यह समझ दूसरे घर पर विवाह करने को सोच रही थी।

बहूरानी—आप कष्ट की वाते कर रही है। मै जब एक मास तक वीमार रही आपने कितनी मेरे लिये सही। रात दिन एक कर दिया, यह तो चार दिन की वात है सब हो जाएगा। आप तनिक भी चिन्ता न करें। विवाह निश्चय ही इसी घर में होना चाहिये।

बड़ी माता जी—बहूरानी ! मैंने तुम्हारी ऐसी क्या सेवा की है ? मुझे तो कभी-कभी ही अवसर मिलता है, पर तुम तो बारह मास सेवा करती रहती हो, केवल मेरी ही नहीं, सारे परिवार की ।

बहूरानी—बड़ी माता जी ! अपना घर विवाह का घर है । आप कहें तो लिपाई पुताई करवा दूँ । थोड़ा देखने में अच्छा लगेगा । आप को तो विवाह का व्यय ही बहुत है । इतना सा काम करने की मुझे आज्ञा दें तो अच्छा होगा । और एक बात मैं अपनी ओर से देना चाहती हूँ । दुल्हन के लिये एक गले का हार और चूड़ियाँ मैंने बनवा ली हैं । आप बनवाने का कष्ट न उठायें ।

बड़ी माता जी—बहूरानी तुम कितनी उदार हो सारे परिवार के प्रति तुम में कितनी ममता है, कितना ध्यान रखती हो ? सहायता करती हो । जैसा तुम्हारा मन है, वैसा ही भाग्य फलता फूलता रहे, यह मेरा आशीर्वाद है ।

बहूरानी—आप सरीखे, बड़े बूढों के आशीर्वाद का ही तो यह फल है । नहीं तो मैं किस गिनती में थी ? आप सब कुछ जानती है, तिस पर भी मेरी प्रशंसा करती हैं । यदि आपको मेरी प्रशंसा ही करनी है तो पहले मैं विवाह के कामों से अच्छी तरह निपट लूँ । बारात और ननद को अच्छी तरह विदा कर दूँ, फिर जी भर कर प्रशंसा करती रहना ।

पंच—सुना आप लोगों ने, कहां तो यह आदर्श व्यवहार ? जिससे समाज का मस्तक ऊँचा हो जाता है, कहाँ आप लोगों का नीच व्यवहार ? जिससे समाज का मस्तक नीचा हो जाता है, और इस अशान्ति के वातावरण मे

नीच कर्म का वन्धन जीवन को समाप्त करने में अग्रसर होता है।

बड़ा भाई—वस पचों ! अब आप हमें अधिक लज्जित न करे। हमें अपने नीच व्यवहार से घृणा है, पश्चात्ताप है। अपने छोटे भाई तथा वहू से अपने अपराधो के लिये मैं क्षमा चाहता हूँ। माता जी के पास से जो कुछ मुझे मिला है, आज ही आधा वाट देता हूँ।

छोटा भाई—हम लोग भी आपसे क्षमा चाहते है। आप वड़े है इसलिये हमारे अपराधो को क्षमा करेगे। हम लोग आपकी आज्ञा का कभी उल्लघन नही करेगे।

[पटाक्षेप]

जहाँ स्नेह वहां सम्पदा

पात्र | पति, पत्नी, पुत्र, पिता, छोटा भाई, बड़ा भाई।

पति—अब तो इस घर में निर्वाह नहीं हो सकेगा, पिता जी तथा भाई जी बात बात में मेरी भर्त्सना करते रहते हैं। दो चार खर्च कर देता हूँ तो कहते नहीं सकुचाते कि इस तरह ऊल-जलूल खर्च करते हो तो अलग हो जाओ, कमा कर खाना तुमने सीखा ही नहीं है। मेरा पान बीड़ी सिगरेट पीना, समय के अनुसार कपड़े बनवाना, और यदा कदा सिनेमा देखना, तनिक भी नहीं सुहाता उनको। यों धौंस सहकर या दबकर जीना तो मुझे अच्छा नहीं लगता है। सोचता हूँ कल ही अलग हो जाऊं।

पत्नी—आप समझदार हैं, जैसा ठीक समझें, वैसा करें, मैं तो आपकी अनुगामिनी हूं, पर अलग होने में मुझे तो किसी प्रकार का लाभ दिखाई नहीं देता। मैं तो नारी हूं आपकी तरह नहीं सोच सकती हूँ, फिर भी आप जिस प्रकार खर्च कर रहे हैं, वह व्यर्थ का खर्च है। पिता जी अथवा भाई जी जो कहते हैं, ठीक कहते है, उन्होंने दुनियाँ देखी है, उनका अनुभव है। दूसरे उनके कहने को बुरा भी नहीं मानना चाहिए। अभी इन दिनों में कमाना नहीं सीखेंगे तो, फिर कब सीखेंगे ? बुढ़ापे में कमाया थोड़े ही जा सकेगा।

पति—तुम जो कुछ भी कहो, मैं अब घरवालों के साथ नही रह सकता। जो कुछ होगा, देखा जाएगा। मुझसे अब ताने न्ही सहे जाते। आखिर मै मिट्टी का तो हूँ नहीं मेरे भी कुछ मानापमान है। कल से ही अपना सब कुछ अलग होगा। अभी जाकर पिता जी तथा भाई जी को कहे देता हूँ, जो भी मेरा हिस्सा हो, मुझे दे दें।

पत्नी—मैने आपको कितना समझाया कि अलग होने में कोई लाभ नही है, पर आप जिद् करके अलग हो ही गये। आज उसका परिणाम आँखों के सामने आ गया। मेरे सारे गहने एक-एक करके बिक गये। अपने हिस्से की पूंजी का पता ही नही, कहाँ गई। घर वालों का वैसा ही ठाठ है, दो चार-नौकर, चाकर पलते है, पर आपको तो दर-दर नौकरी के लिये भटकना पड़ता है, बैठने के लिए घर का मकान भी नही है। घर-घर बर्तन-बासन-फोड़ने पड़ते है। बीमारी जापे के समय कितनी तकलीफ उठानी पड़ती है यह मैं ही जानती हूँ। उधर सास सुसर दु.खी है तो इधर माँ बाप दुखी है। कहूँ तो किससे कहूँ। आप मानते नही और सुना है आप इधर जुआ भी खेलने लगे हैं। जुए का व्यसन तो कूआ है, इससे बड़े बडे बर्बाद हो गये। आप तो किस खेत की मूली है ?

पति—तुमने पहिले भी ठीक कहा और अब भी ठीक कह रही हो। मुझे भी अलग होने के बाद एक पल भी शान्ति नहीं मिली। जुआरियों की संगत में पड़कर मैं बर्बाद होता जा रहा हूँ पर कोई उपाय नहीं दीख रहा है। कुछ सोच भी नही पाता हूँ कि करूं तो क्या करूं। घरवाले

अब भी चाहते हैं कि मैं क्षमा माँगकर साथ में रहने लगूं पर उनसे कहूँ तो किस मुँह से। लज्जा कुछ कहने नही देती।

पत्नी—मेरे से भी कितनी बार कह चुकी है सासु जी और बच्चों को अधनंगा, अधभूखा देखकर रोने लगती हैं। मेरी मानें तो आप माता-पिता तथा भाई जी के सामने झूठा अभिमान छोड़कर क्षमा मांग ले। आज हमारी दशा देखकर दुनियां कितनी बाते बनाती है? जब हम दुनियाँ की तानाकसी सह सकते है तो माँ बाप की क्यों नही सह सकते?

पति—उस समय तेरी बात नही मानी बड़ा दुख उठाया, अब तो तेरी राय से ही काम करूंगा। अभी कुछ सवेरा पडते ही पिता जी तथा भाई जी से क्षमा माँगने चला जाऊँगा।

[दृश्य परिवर्तन]

पुत्र—पिता जो, मैंने नादानो के कारण झूठा जिद्द को। आपकी तथा भाई जी की बात नहीं मानी, बडी गलती की अब क्षमा माँगता हूं और भविष्य में आप की आज्ञा में चलने की शपथ लेता हूं। पिताजी, मैंने आपकी सीख न मान बड़ा अनर्थ किया, पूंजी और गहने सब खोकर चारों ओर से असहाय हो गया हूं। आपकी दया से अभी घर की इज्जत नहीं खोई है। यदि अब आप मुझे अपने चरणो में वापिस न लेगे तो स्यात् वह भी खो दूगा।

पिता—अरे सुरेश, सुबह का भूला शाम को घर आ जाता है, तो भूला नही कहलाता तू कपूत बन गया तो मैं कुमायत

थोड़े ही बन जाऊंगा। तुझे, [बहू को और बच्चों को
बिलखते देखता हूँ तो वड़ा दुखी हो जाता हूँ, सोचता
हूँ सुरेश ने गलती की है, बहू और बच्चों ने तो कोई
गलती नही की, पर विवश था। जा, अब बहू को
लिवा ला, पर अपने बडे भैया से भी पूछ ले। उसका
मन भी हरा हो जाए।

छोटा भाई—भैया मै तुम्हारे पैरों पडता हूँ, मेरी नादानी माफ
कर दो। मै आपसे अलग होकर बहुत दुखी हो गया।
मेरी तरफ न देखो तो न सही, पर अपनी बहू और
बच्चों की ओर तो देखो। फूल से बच्चे आज दाने-दाने
को तरस रहे है। आपके घर से दसों व्यक्ति पलते है, हम
भी चार पाँच पल जाएगे।

बड़ा भाई—सुरेश, तुम इतने कैसे बदल गये ? पगले, तू दूसरा
थोड़ा ही है आखिर मेरे जूठे चूघने वाला है तू। भाई
को दुखी देखकर भीतर ही भीतर दुःखी था, पर उपाय
नही था, बहू भी सौ टंच खरी है, उसे सहायता देने की
वात कही तो वह ना कर गई। बोली; मै अपने पति
से छिपाकर कुछ भी न लगी। उठ, दिल छोटा न कर
अभी जा, बच्चों को ले आ घर दूसरा थोड़ा ही है, तेरा
ही है। पिता जी से मिल लेना।

छोटा भाई—पिता जी से तो मिल लिया।

बड़ा भाई—तो तुम्हें पिता जी ने भेजा है मेरे पास। हमारे
पिताजी क्या है, देवता है। वे चाहते हैं कि हम दोनों
भाई राम-लक्ष्मण की तरह रहें। दूध-पानी की तरह
हमारा प्यार रहे। मिल कर कमाये, मिल कर खायें।

फिजूल खर्ची बिलकुल न करें अच्छे कामों में खर्च करें। जिससे परिवार की सुनामी रहे।

छोटा भाई—अब भैया तुम्हारी आज्ञा में चलूंगा। तुम जो हाथ उठा कर खर्च के लिए दोगे वह कभी बुरे कामों में खर्च नही करूँगा।

बड़ा भाई—बहुत ठीक, जल्दी जा बहू और बच्चों को ले आ। आज सुबह का भोजन सभी साथ बैठ कर करेंगे। प्यार में भगवान रहता है। भोले जहाँ प्यार रहता है सब सुख शान्ति वहां विराजमान रहती है। कलह शैतान का घर है, जहां इसके पैर पड़े सब बर्बाद हो जाता है।

[**पटाक्षेप**]

वकालत

पात्र | वकील साहब, रामनाथ, लामूखाँ,
| पत्नी, खूबराम, माधोसिंह ।

वकील साहब—अरे ! भाई रामनाथ आजकल तो तुमने मुकद्मे लाना ही बन्द कर दिया। क्यों ऐसी क्या खता हुई जो मुझ से नाराज हो गये ?

रामनाथ—क्या करूँ वकील साहब ? आपको लोभ बहुत बढ गया है। मुसकिल से पूरे रुपये दिलाने पर भी आप मेरा कमीशन पूरा नही देते।

वकील साहब—नही भाई ! रामनाथ कोई भूल हुई हो तो माफ करना। आगे ऐसा नही होगा। अब कोई अच्छी सी चिड़िया फँसा कर लाना। आगे पीछे की सब कसर निकाल दूंगा। जरा लामूखाँ को भेजना। वह भी आजकल दिखाई नहीं दे रहा है।

लामूखां—क्यों वकील साहब कैसे याद फरमाया ? रामनाथ कहता था वकील साहब हम पुराने लोगों को याद तो करते है, पर पटरी बैठनी कठिन है। वकील साहब। मेहनताना लेते हैं, वह तो लेते ही है। उनका मुहर्रिर स्टाम्प में खा जाता है। मुकद्मा जीतने पर सब लाओ-लाओ करने लग जाते है।

वकील साहब—नहीं लामूखाँ ! ऐसा नहीं होने दिया जाएगा। अब से जो काम होगा, पूरे विश्वास के साथ होगा।

लामूखाँ—कैसे विश्वास किया जाए वकील साहब ! आपको

हमने पुजवाया और आपने हमारे ही साथ धोखा करके, हमारी विरुद्ध पार्टी से मोटी रकम खाकर हमारे दोस्त को कैसे खराब कर दिया। अब हम लोग किस मुंह से आप के लिये मामले ला सकते हैं।

वकील साहब—प्रीतन की माँ ! रामनाथ और लामूखां को बुलवाया था। उन्होने साफ-साफ कह दिया, है कि, हम लोग अब आपके लिए चेष्टा नहीं करेंगे। आपने अपना विश्वास खो दिया है। यही दशा अधिकारियों की है, वे भी हमारी बात पर सहसा विश्वास करना नहीं चाहते दिन पर दिन आय भी घटती जा रही है। अब तुम ही बताओ क्या करना चाहिए ?

पत्नी—मैंने तो आपसे पहिले ही कहा था। आप ईमानदारी से काम करें। धोखाघड़ी का काम अधिक दिन नहीं चलेगा। किन्तु आप नहीं माने। मैं तो अब भी कहती हूँ, कि जब थोड़े में ही काम चलाना है, तो अन्याय से कमाने की क्या आवश्यकता है ? न्याय नीति से काम करिये, जीवन में शान्ति भी रहेगी, प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। सरलता से जीवन बिताने में आनन्द आएगा और झंझट भी कम हो जायेंगे।

वकील साहब—बस ! तो आज से ही करूंगा। ठाठ-बाट के सब खर्च कम किए देता हूं। तुम भी जितना संकोच हो कर लेना। सब काम अपने हाथों करेंगे तो सारी समस्या समाप्त हो जाएगी। थोड़ा स्वभाव बदलने से जीवन को भी बदल सकेंगे।

(दृश्य परिवर्तन)

खूबराम—भाई माधोसिंह ! कोई अच्छा सा वकील तो बताओ।

ऐसे जटिल मामले में फंसा हूं, कि सारा गांव तो एक तरफ है और मै एक तरफ हूं। इसलिए साधारण वकील से तो काम चलेगा नही। मामला तो मेरा सच्चा है, किन्तु कानून का पक्का जानकार वकील हुए बिना काम नही चलेगा और न जीत सकूंगा।

माधोसिह—भाई खूबराम ! मामला जब तुम्हारा सच्चा है और ईमानदार तथा कानून का जानकार वकील करना चाहते हो तो, लाला नेकीराम को वकील कर लो। जहाँ तक हो सकेगा, आपस मे सुलह कराने की ही चेष्टा करेगे मुकद्दमा यदि लडना भी पड़ेगा तो शीघ्र निपटारा करा देगे। अधिकारी वर्ग भी आजकल उनका बड़ा विश्वास करते है, किन्तु मामला सच्चा होना चाहिये, नहीं तो झूंठे मामले आजकल वे नही लेते।

खूबराम—भाई माधोसिह ! इनका तो मै जानता हूं। यह कानून के तो जानकार है, पुराने भी है लेकिन बडे लोभी और बेईमान भी है दोनों तरफ से खाने वाले है। इसलिए जज लोग भी इनका विश्वास नही करते। कोई दूसरा ही वकील बताओ, इनके ऊपर तो मै विश्वास नही कर सकता।

माधोराम—जो तुम कहते हो, यह कभी सही था, किन्तु अब नेकीराम जी वैसे नही रहे है। जब से वे अणुव्रती बने है, अपना जीवन ही उन्होने बदल लिया है। सादगी, सादगी, सेवा और परोपकार ही उनके जीवन के व्रत हो गए है। आय अब उनके लिए एक गौण सी बात हो गई है। उनसे मिलोगे तो देखोगे कि, उनमें कितनी सज्जनता है ? कितनी सरलता है, और आत्मीयता है ? इसलिए

बल पूर्वक कहता हूँ कि, तुम दूसरे के फेर में नहीं पड़ना। सीधे उनके ही पास चले जाओ।

खूबाराम—भाई नावोंसिंह ! तुम्हारी सलाह मानकर मैं लाला जी के पास चला गया उन्होंने मेरा सारा काम आपस में सुलझा दिया। गाँव वालों से भी मेरी राम राम ही रह गई। पहिले से अधिक मेल हो गया है। जब उनको सौ रुपया पारिश्रमिक देने लगा, तो उन्होंने कहा कि, सौ रुपये यदि भारी पड़ते हों, तो पचास दे दो। यह सुन मैं दंग रह गया कैसा निस्पृह व्यक्ति है ? आखिर बलात् उनको सौ रुपये देकर आया हूँ, अगर तुम्हारी सम्मति पर न चल कर किसी दूसरे के फेर में पड़ जाता तो नष्ट ही नही होता शायद अपना गाँव भी छूट ही जाता।

[पटाक्षेप]

बीमारी

पात्र—पत्नी, पति ।

पत्नी—मैं घर में कब से बीमार हूं ? क्या तुमने कभी सुध बुध ली ?

पति—सुध-बुध और क्या लूं ? तुम्हारे लिये प्रतिदिन दवा लाता हूं । रात में तुम्हारी खाँसी से कभी जागना भी पड़ता है । तुम्हें कहते जोर क्या लगता है ? सारे दिन खटिया पर लेटी रहती हो ? मैं श्रम से चूर होकर घर मे आता हूँ, तब शान्ति से बात करना तो दूर, प्रत्युत मुंह में जो आया वही दो चार कह सुनाती हो ।

पत्नी—मेरा लेटे रहना भी तुम्हारी आँखो में तिनके की तरह खटकता है, पर यह दुःख तुम्हें है, कि मैं किस प्रकार मर मर कर जी रही हूं । आखिर मेरे रोग पर कोई भी दवा क्यों नही लग रही है ?

पति—किसी को साथ में लेकर अस्पताल चली जाओ । आज ही निदान करालो, कौन इकार करता है ?

पत्नी—मै ही वहाँ चली जाऊँ ! मेरे पैरों में इतनी शक्ति होती तो फिर तुम्हारे आगे रोती ही क्यों ? क्यों बिछौने पर लेटी रहती ? और क्यो तुम्हारे से इतना सुनने को मिलता ?

पति—खुद तुम हजार सुना देती हो, उसकी चिन्ता नही, मेरा एक शब्द भी महाभारत बन जाता है ।

पत्नी—महाभारत की बात ही क्या है ? क्यों नही किसी डाक्टर को लाकर मेरा निदान करवा देते ?

पति—कहना सरल है, पर क्या तुम जानती नही कि, यहाँ घर पर डाक्टर को लाने में कितनी फीस लगती है ? जितना मैं कमाता हूं उससे उदर-पूर्ति भी कठिनाई से हो पाती है ? डाक्टरों की फीस में रुपये उड़ा दूं, तो भूखों मरने लगे।

पत्नी—मैने तो तुम्हारे घर आकर कभी वाँछित वस्तु नही पाई। आज तो जो मेरी स्थिति है, सम्भव है किसी पशु की भी न हो।

पति—कैसी स्त्री हो तुम ? मेरे घर की रोटी खाती हो औ मुझे ही बदनाम करती हो। निकल जाओ यहाँ से।

पत्नी—मै इस घर से नहीं जाऊँगी, पहिले हाथ पकड़ कर क्यों लाए थे ?

पति—हे भगवान तुम्हारी माला फेरूंगा। इस कलह कारिणी स्त्री से मेरा पल्ला छुड़ा दो।

पत्नी—राम ! मैंने तुम्हारा क्या अपराघ किया है कि, तूने मेरा सम्बन्ध ऐसे पति से जोड़ा ? बतादे नरक यही है या दूसरा ?

[हृश्य परिवर्तन]

पति—देवी ! तुम कितने दिनों से रुग्ण हो। मैं दूकान पर व्यस्त रहने के कारण तुम्हारी कुछ भी परिचर्या नही कर सकता।

पत्नी—स्वामिन् ! तुम प्रतिदिन दवा लाकर देते हो। मेरे दुःख में दुःख और सुख में सुख का अनुभव करते हो। इससे अधिक परिचर्या मेरी क्या हो सकती है ?

पति—देवी ! तुम अपने पीहर मे कितने आराम से रहती थी ? यहाँ तुम्हे कुछ न कुछ काम करना पडता है। मै तो तुम्हारे काम मे कुछ भी हाथ नही बटा पाता।

पत्नी—स्वामिन् ! मै क्या काम करती हू ? जिस दिन से मै तुम्हारे घर में आई हू, रुग्ण ही रहती हू आपको मेरे लिये कितना परिश्रम करना पड़ता है ?

पति—श्रम मुझे क्या करना पड़ता है ? तुम अस्वस्थता के कारण कितनी वेदना का अनुभव कर रही हो ? कितनी दवा ले चुकी हो फिर भी ठीक नही हो रही हो। कल मै डाक्टर को लाऊगा और ठीक निदान कराऊँगा, कि रोग क्या है ?

पत्नी—डॉक्टर को लाने मे व्यर्थ ही फीस लगेगी, यदि निदान कराना ही है, तो मैं स्वयं ही वहाँ चली जाऊंगी। अच्छा ही होगा। मेरा वहाँ इतनी दूर घूमना हो जाएगा।

पति—देवी ! तुम्हे और कोई वस्तु तो नही चाहिए ? कहो।

पत्नी—स्वामिन ! मुझे आप जैसे पति मिले, इससे बढकर और वस्तु क्या चाहिये ?

पति—देवी ! मैं तो तुम्हारे भाग्य मे ऐसा बदा हूँ कि, तुम्हारी भी साध पूरी न कर सका।

पत्नी—मेरी साधना तो पूर्ण है। मेरे जीवन में सबसे बडी यही कामना थी कि मै अपने पति को समुन्नत के आदर्श पर

चलता देखूं। मेरे इस अन्तर मन साधना को तुमने पूर्ण किया है। तुम्हारे साथी जब तुम्हें राम कहते हैं, तब मुझे अत्यन्त तृप्ति मिलती है।

पति—राम तो मुझे कहते है ? पर तुम्हे तृप्ति किस बात की ?

पत्नी—आप राम बनते हैं, तो सीता बनने का सौभाग्य मुझे ही मिलता है।

[पटाक्षेप]

बच्चों की मिठाई

पात्र—लाला जी, सावित्री, गंगादेवी, चंचल ।

लाला जी—कही वच्चो को ऐसे पीटा जाता है

सावित्री—यह वड़ा वदमाश हो गया है। अभी इसे खिलाया था। पर भोजन देखते ही फिर हठ कर वैठा। और घी गिरवा दिया ।

लाला जी—वच्चा आखिर वच्चा ही होता है। वह हठ करता है तो पहिले उसे समझाया जाय यदि जिद्द उचित है तो अवश्य पूरी की जाएगा। यदि छोटी छोटी बातों में बच्चों को पीटा जाएगा तो वे आगे चलकर पूरे हठी और चरित्र-हीन वन जाएगे।

गंगादेवी—वहू को मैं भी खूव समझाती हूँ, पर बहू मानती नही ! और वहू का भी क्या कसूर यह मुन्ना भी ऐसा ही वनता जा रहा है। कल इसने वेवी को भी पीट दिया ।

लाला जी—यह प्रवृत्ति तो और भी वढ़ेगी मां ! जिस बच्चे को पीटा जाता है, वह अपना प्रतिशोध लेने के लिये घर के या वाहर के किसी भी छोटे वच्चे को पीटेगा।

सावित्री—विना पीटे, यह शैतानी भी नही मिट सकेगी ! पीटने से वच्चे सुधर जाते है। मार के आगे भूत भी भाग जाता है।

लाला जी—मार से भूत भाग सकता है पर बच्चों का सुधार नहीं हो सकता। वच्चों का सुधार तो प्यार और सम-

झाने से ही हो सकता है। जेलों में बदमाशों को कैसे पीटा जाता है, पर उनकी अपराध-वृत्ति नष्ट नहीं होती, अधिक बढती है।

सावित्री—मैं क्या करूं ? यह तंग करने से बाज नही आता ! अभी अभी लड्डू दिया था। पर अब लड्डू देखते ही फिर मांग बैठा।

लाला जी—तो क्या मारने पीटने से यह लड्डू की मांग छोड़ देगा। अगर घर में········लड्डू हों तो, बच्चों को खिलाकर तृप्त कर दो। तृप्ति के बाद बच्चा अपने आप चुप हो जाएगा। अरे चंचल ! बोल तुझे कितने लड्डू चाहियें।

चंचल—बस, एक लड्डू ! मां ने कहा था—पिता जी भोजन करेगें तब एक लड्डू दूंगी।

लाला जी—सुन रही हो न, तुमने यही भूल की ! यदि तुम इसे कह देती कि आज लड्डू नही मिलेगा, तो यह लड्डू के लिये हठ नहीं करता। और यदि तुमने बच्चे को कह दिया तो उसे समय पर पालो। जिससे बच्चे में भी अपने कहे का पालन करने की भावना जागृत होती रहे।

सावित्री—उस समय यह माना ही नही।

लाला जी—बच्चों के सामने कभी ऐसी बात न कहो जो केवल उसे प्रसन्न करने के लिये ही कही जाए ! जो कहा स्पष्ट कहो, और उसे पूर्ण कर देने का आदर्श उसके सामने रखो।

सावित्री—अपने लाड़ले की भूलें नहीं दीखेंगी, मेरी भूल आप भी देख लेगें और माता जी भी ! दो दिन पहिले चंचल

का कितना पेट दुखा था। डाक्टर ने कहा था कि इसे मीठा कम दिया करो।

लाला जी—तो इसे यह बात समझा देती। झूठा झांसा तो न देती! यह तो बहुत बुरा है सावित्री, चचल बिल्कुल बिगड़ जाएगा।

सावित्री—बिगडेगा तो ज्यादा मार खाएगा। राम! ऐसा हठी लडका, किसी को न दे। मुझे तो इसने बहुत तग कर दिया है। बांझ रहती तो सुख पाती!

गंगादेवी—बहू, थूको अपने मुँह से। एक बच्चा होते ही ऊब गई! नारी जाति तो सहिष्णुता की मूर्ति बतलाई जाती है। यदि वह असहिष्णु बन जाएगी तो ससार मे सहिष्णुता को कहां स्थान मिलेगा?

सावित्री—आप कुछ भी कहें, इसका सुधारना मेरी सामर्थ्य से बाहर है।

(दृश्य परिवर्तन)

लाला जी—सावित्री! अभी इस पॉच वर्ष के बच्चे का स्वभाव इतना नहीं बिगडा है प्यार के बल पर बड़े बड़े अपराधी भी सुधर जाते है। इसके लिये एक व्यवस्था कर दो। सात दिनों के लिये सात वस्तुए निश्चित कर दो। बोल चंचल! सातों दिन लड्डू खायेगा या केले अंगूर, मौसम्बी।

चंचल—सभी खाऊंगा पिता जी।

लाला जी—एक दिन में एक ही मिलेगा! बोल तुझे लड्डू पसन्द है या केला अनार।

चंचल—लड्डू और केला ! पर, नित्य एक केला, एक अनार और एक सेब मिल जाएगा तो लड्डू नहीं खाऊंगा।

लाला जी—तो सदा अपनी दादी जी से ले लिया कर, मां को अधिक तंग न करना, मां के पास क्या है ? घर की मालकिन तो तेरी दादी जी हैं।

चंचल—मां मुझे चुपके चुपके बुला कर दे देती है।

लाला जी—अब नही देगी वह। अब बच्चे को जो भी तुम्हें देना हो माता जी को दे दिया करो, वह चंचल को दे देंगी।

सावित्री—बहुत अच्छी बात है। मै अपने चंचल को मारना थोड़े ही चाहती हूँ, पर यह बदमाशी करता है, तो पीट देती हूँ।

लाला जी—समझदार लड़के बड़ों की आज्ञा मानते हैं। तू भी अपनी मां की आज्ञा मानेगा ?

चंचल—क्यों नही। मां की हर बात मानूँगा, और दादी जी की भी !

[पटाक्षेप]

सौतेली माँ

पात्र—सौतेली मां, नत्थू, कुमुद, रमा, कुमुद का पिता।

सौतेली माँ—अरे नथिया, कहाँ मर गया। अभी से पढने बैठ गया। घर के काम काज की ओर भी तो ध्यान दिया कर।

नत्थू—माँ! परीक्षा आ रही है।

सौतेली मां—परीक्षा आ रही है तो क्या घर का काम काज छोड़ देगा। वता घर का काम काज कौन करेगा?

नत्थू—तुम करो और कौन करेगा। १० दिन काम नहीं करूंगा तो क्या होगा। वाकी दिनों तो तेरी धोतियाँ तक धोने तक का काम करता रहा हूं। परीक्षा आ गई तो दस दिन भी मुझे नहीं छोड़ सकती।

सौतेली मां—वदनाम ही करना है तो थोड़ा क्यों खूब कर।

नत्थू—इसमें वदनामी की क्या बात है। मैं तो सच सच कह रहा हूं।

सौतेली मां—तू ही सच बोल रहा है, और तो सब झूठ बोल रहे हैं। आप तो मर गई पर मेरी छाती पर पत्थर छोड़ गई। सुवह शाम जव देखो तव लड़ाई करने को तैयार रहता है।

नत्थू—मौंसी! मुझे चाहे जो कह लो, पर मेरी माँ तक न जाओ। वेचारी मरी हुई को क्यों याद करो। तुम्हारे लिए तो भरा पूरा घर छोड कर गई है।

सौतेली मां—बड़ा आया माँ वाला। मरते समय माँ से कहा क्यों

नहीं कि सब कुछ छाती पर ले जाती । तुम्हें भी साथ ले जाती ।

नत्थू—देखें ! तुम क्या २ छाती पर ले जाती हो, अपने कौन से बेटे को ले जाती हो। मेरी माँ ने गलती की पर तुम तो ऐसी गलती न करना।

सौतेली माँ—ठहर तो जरा ! मुंह फट होने का फल तो चखाऊं । हाय राम । घर क्या मिला है, साक्षात नरक मिला है।

नत्थू—बस मौसी ! इतना दुःख दर्द है तो यह लो, मैं अभी घर छोड़ कर चला जाता हूँ, तुम यहां मौज करो।

(दृश्य परिवर्तन)

कुमुद—कहो! नत्थू भैया, आज कैसे आना हुआ ?

नत्थू—क्या कहूं कुमुद , मौसी से तंग आकर मैं स्वयं ही घर छोड़कर आया हूं, जब देखो तब गाली गलोंच । कभी प्यार के दो बोल नही ।

कुमुद—मुझे तो मौसी ऐसी मिली है कि मैं माँ के प्यार को ही भूल गया। ऐसा प्रेम करती है जैसा कि अपने मुन्ने से भी नही करती।

नत्थू—रमा मौसी के प्यार ने ही तो मुझे यहाँ आने को विवश कर दिया।

रमा—कुमुद बेटा, दूसरा कौन बोल रहा है ?

कुमुद—नत्थू भैया ! मौसी से तंग आकर तेरे पास आया है।

रमा—अरे नत्थू बहुत दुबला हो गया। कोई बात नही, वहाँ न सही, यहाँ रहो, अपने कुमुद भैया के साथ ही पढ़ो लिखो और खेलो तुम और कुमुद दो थोड़े ही हो। तुम भी मेरी

माजाई वहिन के बेटे और वह भी मेरी बड़ी बहिन का वेटा ।

कुमुद—मौसी, सोचता हूं, तुम इस घर में आ गई, घर स्वर्ग बन गया है। नत्थू की मौसी जैसी आती तो, मुझे भी घर छोड़ना पड़ता ।

रमा—सभी एक जैसी थोड़े ही होती हैं। पीहर में जिन लड़कियों का शोषण होता है वे ही आगे चलकर शोषण पर उतारू हो जाती है। जो लड़किया प्यार और समता से पलती है वे सब को प्यार और समता ही देती है।

कुमुद—मेरी प्यारी मां, तुम्हे दलीलों में कौन जीत सकता है, पिता जो भी तेरे तर्कों के सामने हार खा जाते है।

रमा—हाँ रे कुमुद वेटा ! आज तीज का मेला देखने नही जाएगा। अपने नत्थू भैया को तो यहां की तीज का मेला दिखा लाओ न।

कुमुद—मेले मे जाना तो नही चाहता था, पर अब तो जाना ही पडेगा।

रमा—जरा कपड़े सलीके के पहनाना, नत्थू भैया को भी अच्छे कपड़े पहनाना न भूलना ! जाने से पहिले मेरे पास आना न भूलना।

कुमुद—माँ ओ माँ ! देख नत्थू भैया मेरे कपड़ों मे कितना अच्छा लगता है।

रमा—और तुम ही कौन से भद्दे लग रहे हो, मेरे राजा बेटे आओ दोनों को जरा प्यार तो कर लूँ । लो मेले के लिये हाथ खर्च ।

कुमुद का पिता—आज तो पूरी यशोदा बन रही हो। बलराम और कृष्ण को अपने आंचल में छिपाकर।

रमा—मैं और यशोदा?

कुमुद का पिता—हाँ रमा! यशोदा ने देवकी के लड़को का लालन पालन अपना सम्पूर्ण प्यार देकर किया था। कभी उन्हें अनुभव नहीं होने दिया कि वे पराये हैं।

रमा—बच्चे प्यार के भूखे होते हैं। जहाँ उन्हें प्यार मिलता है वहाँ वे हिल मिल जाते हैं।

कुमुद का पिता—और प्यार बाँटने में तुम से बढ़कर और होगा ही कौन?

[पटाक्षेप]

देखा देखी का परिणाम

पात्र | पति, पत्नी एक स्त्री, रामू की बहू, दूसरी स्त्री, तीसरी स्त्री, चौथी स्त्री, सासू, रामू की बहिन, रामू की मां।

पत्नी—कितनी वार कहा है कि मुझे भी एक घड़ी ला दो, पर आप के कानो पर जूँ भी नही रगती।

पति—क्या करूँ, तुम्हारी माँग है तो ठीक, घड़ी तो समय आदि देखने के लिए वहुत आवश्यक है। पर तुमने तो ऐसी घड़ी की मांग की है जो २०० रु० से कम में नही आती।

पत्नी—मनोहर ने अपनी वहू को लाकर दी है। सुशीला भी तो घड़ी वांधकर भाषण सुनने जाती है। मूलचन्द की बहू भी कह रही है, मैंने भी ऐसी ही घडी मँगवाई है?

पति—दुनियां देखा देखी में ही तो डूवती है। घड़ी समय के लिए चाहिये, चाहे वह हो कैसी ही। मेरी घडी ले लो।

पत्नी—मैं आपकी घड़ी क्यो ले लूँ। मुझे घड़ी लाकर दो तो मनोहर की वहू जैसी ही लाकर दो, नही तो न सही। विना घड़ी के ही रह जाऊँगी।

पति—तुम तो वहुत जल्दी नाराज हो जाती हो। अपनी स्थिति भी तो देखा करो। कहां मै और कहां मनोहर। ३०० रु० मासिक पर नौकरी करने वाला किसी व्यापारी की वरावरी कैसे कर सकेगा।

पत्नी—बातों में तो आपको कौन जीते? मैंने घड़ी की एक माँग

क्या करली, जैसे कोई कोहिनूर हीरे की माँग करली। जीवन में एक बार तो माँग की है वह भी पूरी न होगी तो समझ लूँगी कि मेरा इस घर में कोई हक ही नहीं है।

पति—बड़ी विकट समस्या है। २०० रु की घड़ी कैसे खरीदी जाये। और न खरीदी जाये, तो श्रीमती जी का मुँह बराबर फूला रहेगा। नाराज क्यों होती हो ? अब घड़ी लेता आऊँगा।

पत्नी—मुझे नही चाहिये घड़ी। मैं कौन होती हूँ। अपनी मां, बहिन के लिए चाहे जितना खर्च करदो। मैने एक मांग करदी तो आफत आ गई। दूसरी स्त्रियों को घड़ी बांधते देखती हूँ, तो मेरी भी इच्छा हो गई।

पति—इस बार आते जरूर तुम्हारी घड़ी लेता आऊँगा।

(दृश्य परिवर्तन)

एक स्त्री—देखे रामू की बहू, तुम्हारी घड़ी ! कितने की आई।

रामू की बहू—पूरी २०० की है। इसमें चाबी देने की भी जरूरत नहीं है। सदा तारीख भी बताती है।

दूसरी स्त्री—बड़ी अच्छी घड़ी है। चाबी भी नही दो और समय तथा तारीख बराबर बताती रहे।

तीसरी स्त्री—मैं भी ऐसी ही घड़ी मंगवाऊँगी। बड़ी अच्छी घड़ी है।

सासू—बहू, घड़ी क्या आ गई। नाज नखराब बहुत बढ़ गया है। घर का काम काज ही समय पर न हो पाता है। दिन भर प्रदर्शनी लगी रहती है।

रामू की बहिन—हां मां भाभी ने घड़ी क्या बांधली दुनियां को

सिर पर उठा लिया, जब देखो घडी दिखाई जा रही है।

रामू की बहू—मेरी घड़ी क्या आ गई, आपको जलन हो गई। अगर मै ऐसा जानती तो घड़ी मंगवाती ही क्यो ?

रामू की बहिन—भाभी तुम तो बड़ी जल्दी नाराज हो जाती हो। घड़ी आ गई तो अच्छी बात है, पर घर का काम तो ठीक समय पर होना चाहिये।

रामू की बहू—अगर रसोई में एक आध घड़ी की देर हो गई तो क्या हुआ। अब बन जायेगी।

सासू— बच्चे तो तग करने लगे न। अब रामू आयेगा तो वह क्या कहेगा ? उसे परदेश मे तो समय पर रोटी नहीं मिलती पर यहां तो ठीक समय पर मिल जानी चाहिए।

रामू—मां, अभी रसोई नही तैयार हुई, मुझे तो कल ही कलकत्ता जाना पड़ेगा। कम्पनी का तार आया है।

रामू की माँ—क्यों ऐसी क्या बात हुई ? अभी आये तो १५ दिन भी नही हुए।

रामू—मां जब बुलाया है, तो जाना ही पड़ेगा।

रामू की बहिन—लो भाभी जी, तुम घड़ी बॉध कर इतराओ भैया तो गिरफ्तार हो गया है।

रामू की माँ—है मेरे रामू को क्या हुआ ?

रामू की बहिन—मां भाभी ने घडी के लिए बार-बार तग करना शुरू किया, तो भैया ने भ्रष्टाचार का सहारा लिया। किसी आदमी से २०० रुपये लेकर भैया ने नाजायज काम कर दिया। घूँस लेने की बात साहब के सामने आई। साहब ने मामला पुलिस मे दे दिया।

रामू की मां—अब किसे भेजूं कलकत्ता ! मेरी तो अकल कुछ काम नही करती।

रामू की बहिन—महेश, भैया को बुलाओ, वह दो चार दिन में कलकत्ता जायेगा।

महेश की माँ—महेश, इस बार बहू को भी एक घड़ी ला देना। आजकल देखती हूँ कि सभी औरतें घड़ी बांधने लगी हैं।

मदन की माँ—माजी, जीवन को चाहे जितना खर्चीला बनालो, कोई सीमा थोड़े ही है, पर खर्चीला जीवन एक दिन भार बन जाता है। जीवन की महत्ता सादगी में है। सरलता में है। जीवन जितना हल्का होगा, उतना ही स्वस्थ तथा सुन्दर होगा। घड़ी मेरे पास हैं। वह बहुत है। समय तो उसमें भी देखा जा सकता है।

रामू की बहिन—महेश, भैया, तुम कलकत्ता कब जा रहे हो? रामू भैया को घूँस लेने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया है।

महेश—क्या बात हुई बहिन! रामू तो ऐसा नही था।

रामू की बहिन—भैया क्या कहूँ। भाभी ने एक घड़ी मंगवाने की जिद्द करली। भैया की तनख्वाह में से इतना बचता नही कि वह २०० रु० की घडी खरीद सकें। इसलिए उसने किसी आदमी से २०० रु० घूँस के लेकर भाभी की जिद्द पूरी की, पर घूँस लेने के अपराध में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

मदन की माँ—देखा माँ जी, जीवन को भारी बनाने का परिणाम।

रामू की बहू—लालाजी, यह घड़ी ले जाइये, मुझे घड़ी नहीं चाहिये। मुझे क्या मालूम था कि घड़ी इतनी आफत ढाह देगी। और भी पांच पच्चीस खर्च हों तो कर देना,

कोई विचार नही करना, पर उनको छुड़ा लेना। आपके पैसे कोई गहना बेच कर चुका दूँगी।

महेश की मां—बहू, रामू कोई दूसरा थोड़ा ही है। महेश अगर रामू को छुड़ाने की कोशिश नही करेगा, तो इसका अपना कौन है फिर।

महेश—भौजी, निश्चित रहो। भैया को छुडाने के लिए पूरी कोशिश करूंगा।

रामू की बहिन—पूरी कोशिश करना भैया, नही तो हमारा परिवार बर्बाद हो जायेगा। १० आदमियों को रोटी खिलाने वाला जब कैद मे चला जाये तो, पिछल आदमियों का क्या होगा ?

महेश—निश्चित रहो बहिन, महेश के कलकत्ता पहुँचते ही सारा मामला रफा दफा हो जायेगा।

रामू की बहू—आग लगे इस घड़ी में। मुझे कया मालूम था, ऐसा हो जायेगा।

[पटाक्षेप]

विनयशालीनता

पात्र—सासू, पड़ोसिन बहू, कुन्तल की माँ, कमल की मां।

सासू—आजकल बहुओं का क्या कहना ! न उनमें शर्म, न न शालीनता। नखरा इतना कि किसी को कुछ समझती भी नही।

पड़ौसिन—उनकी बात मत पूछो बहिन ! नाम को तो हाथ भर का घूँघट रखती हैं पर सास-सुसर और जेठ-जिटानी के सामने भी नखरे दिखाती निकलती हैं। फेरी वालों, मणिहारों और चूड़ी बेचने वालों से बिना घूँघट बातें करते तनिक भी नहीं शर्मातीं।

सासू—सारा दिन शृंगार में लगा देती हैं। मुंह पर लीपना-पोतना तेल मलना, फिर कपड़ों का पहनना, उस पर ऐसा ओढ़णा ओढ़ना कि आँखों की पलकों के बाल गिन लो।

पड़ौसिन—घूँघट निकालना तो एक रिवाज बन गया है, नायलोन के ओढ़ने में क्या घूँघट, बेशर्मी की तो हद हो गई।

सासू—अरी बहिन ! घूँघट में से ऐसी बोलती है कि सुनने वालों के कानों के कीड़े झड़ जाते हैं। न सास की कदर रखती है न सुसर की शर्म। बेचारी शालीनता शरमा जाती है।

बहू—शालीनता तो आप लोगों में ही है। घूंघट नकालें तो मौत ! न निकाले तो मौत ! इन सासुओं ने तो बहुओं

को तंग कर रखा है। न बहू का इन्हें पहिनना अच्छा लगता न साज शृंगार करना।

पड़ौसिन—बहू, बात तो ठीक है। पर दिन में शृंगार करके किसे रिझाना है ? हम भी तो कभी तुम जैसी बहुएँ थी।

बहू—किसे रिझाना है। सुसर को, जेठ को, देवर को और आस पड़ौस का और कोई आदमी है ही नही।

सासू—बहू, मुंह से ऐसे गन्दे शब्द निकाल कर घूँघट को तो वदनाम न किया करो। क्या ऐसे बोल सुनने के लिए ही बेटे को पाल पोस कर वड़ा किया था। क्या ऐसे ताने सुनने के लिए बेटे की शादी की थी। ऐसा क्या मुँह जो मन में आये वकदे। मन में तो ऐसा आता है कि ऐसी बहू का मुँह भी न देखूँ।

बहू—आग लगे इस मुँह को। आग लगे ऐसे शृंगार मे। और आग लगे ऐसी सासू को, जो बहू को हरदम खाने को तैयार रहती हो।

सासू—तेरा वश चले तो तू सबके आग लगा दे बहू। कौन सा दिन जाता है जिस दिन तू आग नही लगाती। कभी ससुर से लड़कर आग लगाती है तो कभी मुझ से। कभी खसम से लड़कर तो कभी ननद से लड़कर। तू दिन में दसों बार आग लगाती है। कौवो के श्राप से कभी ऊँट नही मरा करते है बहू रानी।

बहू—हाय दैया ! कैसे घर से पाला पड़ा ? सभी मुझे ही खाने को दौड़ते है।

(दृश्य परिवर्तन)

कुन्तल की माँ—आओ कमल की माँ, आज कैसे आना हुआ ?

कमल की मां—क्या कहूँ बहिन, जब कमल को बहू से तंग आ जाती हूँ मन में शान्ति के लिए बाहर निकल जाती हूँ।

कुन्तल की मां—मेरे तो बहिन, बहू क्या आई है स्वयम् लक्ष्मी आई है। बोलती है तो फूल झडते हैं और हँसती है तो कमल खिलते हैं। अकेली ने ही सारा घर का बोझ सम्भाल लिया है ।

कमल की मां—तो बहू खुले मुँह रहती है ?

बहू—माँजो ! घूँघट लज्जा और विनय की निशानी माना गया था। पर क्या लज्जा और विनय आँखों से नही रखी जा सकती। राधा चाची की बहू, हाथ भर का घूँघट रखती है, पर बोलती है तो आग बरसती है। ऐसा घूँघट क्या काम का। और घूँघट निकालूँ भी किससे ? माँ और चाची के सामने घूँघट निकालूँ। ससुर जो पिताजी के समान हैं और जेठ बड़े भाई के, फिर माँ-बापों से ही घूँघट निकाला जाय। यह ढोंग है। इस ढोंग ने नारी को निर्लज्ज बना दिया है।

कमल की मां—बहू रानी बात तो ठीक कहती हो। सच्ची शर्म तो आँखों की है, बोली की है, इसी शालीनता से तो घर स्वर्ग बना रहता है। जहाँ झूठा दिखावा है, दिन रात कलह का चक्र चलता रहता है।

कमल की मां—बहू तो साज-श्रृंगार किये बिना ही बड़ी भली लगती है।

बहू—माँजी, साज-श्रृंगार हरदम के लिए थोड़े ही किया जाता है। वह समय पर किया जाता है। ज्यादा साज-श्रृंगार भी स्त्री को बेहया और नखरे वाली बना देता है।

कुन्तल की मां—बहिन, मेरी बेटी तो साधारण श्रृंगार से खुश

हो जाती है। यह कभी श्रृंगारिक चीजों के लिए लाख कहो, माँग नही करेगी। थोड़ी बहुत श्रृंगार की चीजें मै ही कुन्तल से कहकर मंगवा देती हूँ।

कमल की मां—तुम बड़भागिन हो बहिन! चाद सी प्यारी, गुलाव सी मधुर और कोयल सी मीठी वोली वोलने वाली वहू तुम्हें मिली है।

बहू—मांजी, ज्यादा तारीफ न करे, नही तो मै फूल कर ढोल बन जाऊँगी, अभिमान कही घर कर लेगा। यह तो सासू जी की उदारता है कि मुझे बेटी की तरह पुचकार दे रही हैं, प्यार दे रही है। ससुराल जैसा अनुभव ही नही होने देती।

[पटाक्षेप]

गृह लक्ष्मी

पात्र | सास, बहू, देवर, भाभी, ननद, रमेश, बाप, दिनेश, राकेश, सेठजी, सेठानी, सुशीला ।

सास—बड़ी बहू ! तुम्हें शर्म नही आती, बक-बक करते । सबेरे-सबेरे तो जरा मौन रखा करो । यह बेचारी नई बहू क्या समझेगी ? क्या हो गया छोटी बहू ने कुछ कह दिया । तुझे तो गम खाना था । विवाह का घर है । सगे सम्बन्धी आये हुए है । इन लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा । तीन ननदें ब्याहने योग्य है और पांच बच्चियाँ तुम्हारे सामने भी है । कौन रिश्ता करेगा इस कलहकारी घर से ?

बहू—बच्चियाँ किसके नही होतीं ? सब अपना-अपना भाग्य लेकर आई है । देवरानी के भरोसे नहीं है । भूल करे कोई, और दण्ड भोगे कोई । आप उसे पूजिये, मेरे से ताने नही सहे जाते ।

सास—तुम दोनों देवरानी-जिठानी हो । वह बच्ची है, मन बहलाने के लिए हँसी मजाक करे तो क्या बिगड़ गया तुम्हारा ? तुम्हें कोई गाली तो नही दी ।

बहू—गाली न दी तो क्या ? वह कहती है मेरे बाप ने ४० हजार दिया है किन्तु तुम्हारे पिता २० हजार कह कर भी १० हजार दे सके । क्या अपने पिता के लिए ऐसी गालियाँ सुनलूँ ।

देवर—भाभी ! क्यो झूँठी इधर उधर की भिड़ाती हो । मै कमरे में बैठे-बैठे सब सुन रहा था । किसी निर्बल पर दोष

लगाना तुम्हारा पहिले से ही स्वभाव है। अपनी भूल नही सूझती। इस घर का सत्यानाश कर दिया है। तुममें प्रतिदिन ही चक-चक होती रहती है।

भाभी—भूल तो कहाँ सूझती है देवर जी ! एक मै तो २० वर्ष से हूँ, पर इनके पग फिरे कि लडाई की ज्योति जागी। माताजी तीसों दिन बीमार रहती है। इन की सेवा, इतने बच्चों का काम समेटने वाली मै ही बुरी हूँ। मैने कितने देवर ननदों को पाला ?

ननद—पाला है, वेचारी ने ? अगर घर का काम न करे तो बहू क्यो लाए ?

भाभी—किसी नौकरानी को खरीद लाओ बहिन जी ! सासू जी चुपके से तुम्हें मिठाई पकवान गहने आदि देती रहती है। यह नेकलैस तो मेरे पीहर का है। सारे घर को खाकर बात बनाती हो।

रमेश—माँ बताओ ! यह मेरी ससुराल का नेकलैस कमला के गले में कहाँ से आया ? मैंने आपको कितनी बार हाथ जोड़कर समझाया कि बहिन को दो, पर छिपा कर नही। यही एक थोड़े ही है। पूरे पौन दर्जन लड़कियां है।

बाप—रमेश चुप ? मेरे जीते जी तुम अपनी माँ को मनमानी सुनाने लगे। मरने के बाद तो घर से ही निकाल दोगे। बांधो बिस्तर और निकलो घर से। कुछ कमाया होता तो कहने का अधिकार भी होता। अभी तो रोटी कपड़ा मैं देता हूँ, समझे। चालीस का हो गया, पर बोलने की तमीज अभी तक नही आई।

रमेश—निकल जाओ। बीस वर्ष से मर खप रहा हूँ। कमाता

नहीं तो आता कहाँ से है ? प्रति वर्ष विवाह, सगाई, लेन-देन करते हैं। दोनों बच्चों की पढ़ाई। कपड़े रोटी अन्य खर्चा कहाँ से गड़ा निकालते हैं। बही खाते निकाल कर लाओ। क्या कितने कमाया ?

दिनेश—भाई साहब ! अधिक न बढ़ो। सोचते होंगे कि शेष पांच भाई बहिनों की लागत आती है। इससे पूर्व ही अलग हो जाऊँ। किस मुँह से बही खाते माँगते हो ? हम किसी से नहीं दबते ? अभी कितने कमाया ? स्वयम् पिताजी काम देखते हैं और मैं तथा राकेश भी कमाते हैं।

रमेश—रहने दे बराबरी ! ससुराल से आने वाला ४० हजार का माल चुपके से तेरे कमरे में पहुँच गया। तेरी छाती ठंडी है। राकेश की शादी में मुझ से पूरा जेवर ले लिया, तुम्हारी तरफ मां थी, रहने दो छोटी बहू जरा पहिनने को भी चाहिये। जितना मैंने नमक खाया है, उतना तुमने अनाज भी न खाया होगा। चाहे न बोलूं, पर मेरी आँखों में धूल न झोंकी, जा सकेगी।

राकेश—जेवर देकर कौन सा अहसान किया ? तुम्हारी शादी में माँ ने पूरा जेवर चढ़ाया। तुमने तो ४ ही टूम दी हैं। सब भाई बहिनों का उस पर बराबर का अधिकार है, निकालो बाहर।

भाभी—जेवर कहाँ पड़ा है ? २० छोटी मोटी टूम तो दिनेश की बहू को चढ़ा दीं, शेष बची वह तुम्हारी बहू को दीं। मैं क्या इस खाली डिब्बे से सिर फोड़ूँ, यह लो तोड़ कर बांट लो।

(दृश्य परिवर्तन)

सुशीला—पिताजी उस घर में मेरा निर्वाह कैसे होगा ? यह आपने कैसा घर ढूँढा ? तीन दिन मैं वहाँ रही कि अनेक वार महाभारत मचा। कुजड़ो जैसी चिल्लाहट मारपीट, गाली गलौज, घर है या नरक। मै वहा मर जाऊँगी। आते-आते मुझे भी नही छोडा, वहाँ न अनुष्ठान है, न क्रिया काड। तीन दिन में ही जी भर गया, मुझे नही चाहिये ऐसी ससुराल।

पिताजी—वेटो ! भूलती हो। सयम का व्यवहार ही जगत का वशीकरण है। तुम जिस परिवार मे पली हो, उसी की अणुव्रती भावना और सस्कारों का प्रभाव वहाँ कितना पडता है यही देखना है। और अपने उत्तम आचरण से नरक को स्वर्ग बनाना है। अपने सास ससुर से कह देना घर के काम का वटवारा करदे। अपनी जिम्मेवारी का काम अपने आप करे। किसी का काम न मिले तो सहयोग दे। अन्यथा हस्तक्षेप न करे। न मन-मानी करे। इस वात पर सवको राजी करके फिर तुम सवको सदुपयोग करता देखोगी, घर का वातावरण ही वदल जायेगा और सव आपस मे प्रेम करने लगेगे। घर स्वर्ग वन जाएगा।

सेठजी—घर का वातावरण सुधारना है। नई वहू का सुझाव मानकर काम का वटवारा करलो और सव अपना काम करो। हस्तक्षेप तथा मनमानी कोई मत करो। मन मिले तो कोई सहयोग दो, अन्यथा अपना अपना काम खुद ही समेटो।

सेठानी—सुशीला कूड़ा उठाने की बारी तो मेरी थी, मेरे से पूर्व ही तूने सब साफ कर दिया।

सुशीला—आपने तो जन्म भर काम किया है। बुढ़ापे में शरीर विश्राम माँगता है। मैं क्या काम करने से घिस थोड़ा ही जाऊँगी।

सेठानी—बहू क्या है हीरा है। काम को हाथ ही नही लगाने देती है, बड़े सबेरे उठकर चाय दूध नाश्ता तैयार रखती है।

बड़ी बहू—बहुत देर हो गई। कपड़े धोते-धोते पसीना निकलने लगा है। उठ मुझे बैठने दे।

सुशीला—जिठानी जी! आप तो दिन भर छोटे बड़े बाल बच्चों का काम करती हो।

छोटी बहू—सुशीला, तुम्हें मेरे सिर की कसम! आज मुझे रसोई बनाने दो। दो महीने हो गये. रोज-रोज पूरे पचास आदमियों का खाना पकाती हो। मैं महलों में बैठे देखा करती हूँ। तुम्हारे मृदु स्वभाव और कठिन परिश्रम ने मेरी आँखों को खोल दिया है। एक छोटी सी लड़की में कितना साहस होता है। आश्चर्य है, तुम काम करते-करते थकती नहीं हो।

सुशीला—नही बहिन जी तुम क्या नीद थोड़े हो लेती हो। ऊपर का सारा काम तुम्हें ही तो सम्भालना होता है। मैने किया या तुमने इसमें क्या फर्क पड़ता है एक ही बात है।

छोटी बहू—बड़ी बहिन जी आप जाइये। मुन्ने को दूध पिला दें, भूखा रोता होगा। मै आपके हाथ के काम को समेटे देती हूँ। सुशीला तो सदा करती ही है। कभी मुझे भी सेवा का मौका दें।

बड़ी बहू—छोटी बहू मेरे बच्चो को नहलाना, कपड़े धोना, खाना खिलाना ये सब तुम्ही तो करती हो। मैंने तो एक महीने से कभी सम्भाला ही नही कि बच्चे कहाँ सोते है, उठते है ?

सेठानी—सुशीला ने घर की काया पलट दी। तीनों बहुओं मे जब काम करने के लिए मनुहारें होती है, तो उसे देखकर मेरा चित्त इतना प्रसन्न होता है कि कहने की बात नही। मेरे घर से बढकर स्वर्ग क्या होगा ? काम को हाथ लगाना तो दूर, मुझे कहने की भी जरूरत नही पड़ती। समय से दो मिनट पहिले ही सब काम तैयार, मानो मशीन से पूरा हुआ।

सेठजी—सुशीला तो इस घर की लक्ष्मी है रमेश की माँ ! धन्य है, इसके जनक जननी को, बेटी सुशीला तुमने इस घर का गौरव बढ़ाया है। तुमने नरक को स्वर्ग मे बदलकर चमत्कार किया है। तुमने यह व्यवहार कहाँ सीखा ? जरा बताओ तो सही।

सुशीला—पिताजी यह सब आपकी तथा माताजी को कृपा है। बुजुर्गो का आशीर्वाद ही है। मैने अपने पीहर की तरह ही व्यवहार किया है। जो पिताजी ने मार्ग दिखाया, उसी पर चली। मेरे पीहर का परिवार अणुव्रती है। अणुव्रत जीवन व्यवहार को सफल बनाना सिखता है। उसका आधार आत्म सयम है। अपने आप पर सयम रखना अणुव्रत का लक्षण है। सह-अस्तित्व की भावना ही अणुव्रत का मूल मंत्र है।

[पटाक्षेप]

मिलावट

पात्र—ग्राहक, सेठ, चौधरी, भगवाना, दूकानदार ।

चौधरी—सेठ जी, काली मिर्च और चाय मिलेगी ?

सेठ—ला रे भगवानिया, काली मिर्च और चाय ! एक नम्बर वाली लाना, चौधरी कब-कब अपनी दूकान आता है ।

चौधरी—सेठ जी, ये कैसी काली मिर्च ! किसी दाने में चरचराहट है और किसी मे नही ! सारे दाने एक जैसे भी नही दीखते ।

सेठ—अरे, चौधरी, तू भोला है । आजकल काली मिर्च के दाम बहुत बढ़े हुए है । इसलिए कच्ची पक्की सभी तोड़ लेते है । भाव भी तो क्या है ? ७) सेर । पर हमारी तो पहिले की खरीदी हुई हैं । औरों से सस्ती दे दूगा । कितनी चाहिये ? ५) सेर के दाम लगा लूंगा ।

चौधरी—इतने तो बहुत दाम है । ४) सेर तो पिछली दुकान पर भी देता था ।

सेठ—अरे नकली माल होगा । बैठ- बैठ चौधरी ! दूसरा माल दिखाऊँ । जा रे स्पेशल माल ला चौधरी के लिए ! ले चौधरी बीड़ी पी । चौधरी तेरे लिए इसके ४) के दाम लगा लूगा ।

चौधरी—इनमे तो बिल्कुल ही चरचराहट नही ।

सेठ—जितना गुड़ डालोगे चौधरी उतना ही मीठा होगा । माल के तो दाम लगेंगे ।

चौधरो—तो आगे वाली का दाम क्या लगाओगे ?

सेठ—चौधरी तू घर का आदमी है, तेरे से क्या मुनाफा ले ? ४) के दाम लगा लेंगे।

चौधरी—सेर भर दे दो और चाय भी दिखादो।

सेठ—अरे चाय का क्या देखेगा ? विश्वास रख, खराव थोड़े ही दूँगा, है तो ८ रुपये सेर की पर तुम्हारें से तो ७।।) का दाम लगाऊँगा।

चौधरी—इसके ठीक दाम लगाओ सेठजी ! सेर भर चाय ले लूगा।

सेठ—तेरे से झूठ मोल-तोल थोडा ही करेंगे। दूसरो स इसके दाम ९ के लेते है तू घरका है, इसलिए पहिले ही १।।) कम बताये हैं। तू आना, दो पैसा कम दे देना।

सेठ—चौधरी नई सूंठ और हल्दी धनिया आया है। चाहिये क्या ?

चौधरी—थोडी सूँठ तो चाहिये. पाव भर। ज्यादा की जरूरत तो नही है।

सेठ—चाय कौन सी दी और काली मिर्च किस मेल की दी ?

भगवाना—आधी उवाली हुई और आधी दो के मेल वाली और काली मिर्च दो के थोक वाली।

सेठ—अव पपीते के वीजो वाली काली मिर्च कितनी है ?

भगवाना—एक पीपा पपीते के बीज बाकी वचे है। १० सेर के करीव तो निकल चुके है। कूटी हुई हल्दी और पिसी हुई मिर्च, अच्छा मुनाफा देती है। त्यारी माल मे मुनाफा रहता ही है।

सेठ—अपने भी हल्दी, मिर्च और-और चीजे तैयार करवालो। आजकल जमाना मिलावट का है। बिना मिलावट वाजार में बैठ ही नही सकते है। लेते डांडी मारना और

देते डांडी मारना। तभी काम चलता है। घड़े से घड़ा नही भरा जाता।

भगवाना—ठीक मुनाफा और माल असली देने वाला थोडा ही कमा सकता है बापूजी, पर छोटा भैया, इन सब बातों का विरोध करता है वह आचार्य श्री के व्याख्यानों में जाता है, कहता है अणुव्रत की शपथ लूंगा। उसे समझा देवें नही तो वह भडा फोड़ कर देगा।

सेठ—है ? उसे समझाऊँगा। दूकान का ध्यान रखना, जरा बाजार में जाता हूं।

(दृश्य परिवर्तन)

दूकानदार—आओ सेठ जी, बहुत दिनों बाद आये। क्या कही बाहर चले गये थे ?

सेठ—क्यों भाई कैसी चल रही है दूकानदारी ? आजकल तो चारों ओर बेईमानी, मिलावट धोकादेही चलती है। पर मुझ से तो बेईमानी नही होती है।

दूकानदार—सेठ जी, बेईमानी, मिलावट धोखादेही मे क्या रखा है। पैसा तो किस्मत से मिलेगा। बिना किस्मत पाप भले ही कमालो। आखिर दूध का दूध पानी का पानी होकर रहेगा। पाप की कमाई पाच रुपयों से, धर्म की कमाई का एक रुपया अच्छा। इसलिए सेठजी मैं न तो मिलावट करता हूँ, न बेईमानी, न धोखादेही। उचित मुनाफा लेकर संतोष की जिन्दगी बसर कर रहा हूँ।

सेठ—ऐसा ही चाहिये भाई। पर हर दूकानदार के लिए सम्भव नहीं है।

दूकानदार—सम्भव क्यों नही है ? पर मन पर काबू चाहिये

अन्यथा सेठ जी, नाना चिन्ताएँ सताती रहती है। दो-दो बहियां रखनी पड़ती है। टेक्स वालों को घूँस देनी पड़ती हैं। दुकान निरीक्षकों को खिलाना पिलाना पड़ता है। कितना आत्म पतन होता है। देश, धर्म और जनता के साथ गद्दारी करो। कितना पाप, कितना अनर्थ।

ग्राहक—सेठ जी, काली मिर्च मिलेगी ?

दूकानदार—क्यों नही मिलेगी ? यह चार रुपये सेर की है और यह ४॥) सेर की है। कहो कौन सी दूँ ?

ग्राहक—सच कह रहे हो या मजाक कर रहे हो, सेठजी ? बाजार मे बहुत ऊँचे दाम बोल रहे है।

दूकानदार—मजाक क्यों करूंगा भैया ? सही दाम बता रहा हूँ। यहाँ बच्चा आये या बूढ़ा आये, एक दाम ? कम मुनाफा व अच्छा माल। मिलावट करके, बेचने की शपथ ले रखी है। ये मोटे दानों की और यह छोटे दानों की बस इतना ही फर्क है माल दोनों एक है।

ग्राहक—मेरे गांव के एक चौधरी ने किसी दूकानदार से काली मिर्च ली थी, उस हरामखोर दूकानदार ने दाम भी पूरे लगाये और काली मिर्चो का जगह न जाने किस के बीज दे दिये। दूकानदार की नाम कालू बतला रहा था।

सेठ—क्या कहा कालूराम की दूकान से ले गया था वह ?

ग्राहक—मै क्या जानूँ ? वह पुलिस मे रिपोर्ट देने की कह रहा था।

दूकानदार—सेठ जी, सौ दो सौ का जूत आ गया। आप तो कह रहे थे मैं मिलावट नहीं करता। यह क्या हुआ ? खोटा माल दो, गालिया सुनो और मौका पड़ने पर

घूँस दो। अपने से यह काम नही होता। कहो कितनी मिर्चे दूँ ?

ग्राहक—आध सेर दे दो। सेठ जी आपकी दूकान का क्या नाम पड़ता है ?

दूकानदार—अणुव्रत स्टोर, सब तरह की चीजें यहाँ मिलती है। शुद्ध अच्छी बिना मिलावट की चीजें यहाँ उचित मुनाफे में, एक दाम में दी जाती है। न यहाँ बेईमानी है और न धोखादेही है।

ग्राहक—सेठ जी, सारे ही आप जैसे दूकानदार हों, तो देश मे राम राज्य आ जाये, अच्छा जयरामजी की सेठ साहब।

दूकानदार—जैरामजी की भाई जयरामजी की।

[पटाक्षेप]

झिलमिली की साद

पात्र | पत्नी, पति, चम्पालाल, मांगीलाल,
| मांगी की बहू, चम्पा की बहू ।

पत्नी—झिलमिली की साद पुरानी है। उसके साथ ८-१० बच्चे आयेंगे। ससुराल और नाना ससुराल वालो को भी थाल भेजना होगा।

पति—तुम कह रही हो, यह तो ठीक है, पर इतने रुपये कहाँ से लाऊँ। कोई उधार भी तो नही देता। उधार दे भी किस पर ! नौकरी से जितने मिलते है उनसे बड़ी मुश्किल से घर का काम काज ही चल पाता है। झिलमिलों के विवाह पर लिया कर्ज अभी तक ज्यों का त्यो पड़ा है। बड़ी समस्या है, उसे कैसे चुकाया जाए।

पत्नी—कहाँ का रोना ले बैठे। यो रोने से काम थोड़ा ही चलेगा। समाज में रहते है, तो समाज की देखा देखी करना भी पड़ता है।

पति—समाज की इस देखा देखी ने ही हमे बर्बाद कर दिया है, आज सिजारा, कल गोलरिया, परसों विवाह की पोशाक तो तरसों गमी का वेश जीने भी दे। आये दिन व्यर्थ का खर्च लगा रहता है।

पत्नी—व्यर्थ का खर्च आप के ही पीछे थोडी लगा है, यह तो सभी के पीछे लगा हुआ है। गरीब से गरीब भी फूल की जगह पाखुड करता है पर करता जरूर है। जब पहिले कोई कमाई नही थी, तब भी तो लोग देते थे, वे कहाँ से देते थे ?

पति—तब न समाज ऐसा था और न स्त्रियाँ भी ऐसी थी। आज तो स्त्रियों ने फिजूल के खर्चे इतने बढा लिए है, कि पुरुष की कमर टूट जाती है, कमाते कमाते।

पत्नी—हाँ, स्त्रियाँ ही बुराई की जड़ हैं। पुरुष तो दूध के धोये है न। जैसे पुरुषों ने कोई खर्च बढ़ाया ही नही हो।

पति—नाराज न होओ तो एक बात कहूँ ?

पत्नी—एक क्यों, चार बात कहो, मैं क्यों नाराज होऊंगी।

पति—नौकर चाकरों का वर्ष भर का कितना खर्च होता है, बाल बच्चों को बहलाने के लिए डावड़ी का खर्च भी तो होता ही होगा। पहिले कमाई कम थी, घर पर औरतें मन लगाकर काम करतीं, सब से पहिले उठती और सब से बाद में सोती। बड़े चाव से रसोई बनातीं, खिलाती। घर की स्वच्छता, सजावट दुहना-बिलोवना गाय बाछी को चराना, सब अपने हाथों से करती। आज तो बच्चे को जन्म दिया, भूख लगने पर स्तन दे दिया। बस, हो गया गृहिणी धर्म का पालन।

पत्नी—हम औरतों के सिर ही यह सारा दोष है। झिलमिली की साद पुराने की बात चला दी, तो इधर-उधर के बहाने आरम्भ कर दिये। पुरुष भी तो हाथ लगायें घर के कामो को। फली तो फूटती ही नही उनसे।

पति—यह भी माता का ही प्रताप है-जब बच्चे माँ को कामचोर देखते हैं तो वे भी काम चोर बन जाते है। स्त्रियाँ ही बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षिकाए होती हैं। एक माँ बच्चे के मानसिक धरातल का जैसा निर्माण कर सकती है, वैसा हजार शिक्षक भी नहीं कर सकते है।

पत्नी—तो झिलमिली को कहलादूं कि बाई, हम तो तुम्हारी साद नही पुरा सकेंगे।

पति—न ! न ऐसा न करना। समाज में आलोचना होने लगेगी और सम्बन्धियो में रही सही नाक भी कट जायेगी। कोई छोटा मोटा गहना बचा हो तो ले आ, बाजार से सामान ले आऊं।

पत्नी—मेरे पास बचा ही क्या है, दो चूड़ियाँ थी जिनमें एक पोते के जन्म पर चली गई पर एक चूड़ी को सुहाग चिन्ह के रूप मे रखना चाहती हू इसे रहन रखकर जल्दी ही छुडाने का वादा करो तो ला देती हू।

(दृश्य परिवर्तन)

चम्पालाल—पहले समाचार करते तो, सवारी भिजवा देता। साथ यह कौन है ?

मांगीलाल—यह तो तेरी भौजाई है। क्यों यह इस रूप मे अच्छी नही लगती क्या ? तुम्हारी माली हालत तो अच्छी थी पर अब तो देखता हूँ वह बात नही है।

चम्पालाल—क्या बताऊं भैया। जब हम साथ साथ पढते थे, दादी, माँ बाप सब जिन्दा थे। बीमार की मृत्यु होते ही मुझे पढाई छोड़कर घर जाना पड़ा और उसके बाद दादी चल बसी, माँ बीमार पडी, तीनो के औसर मौसर के नाम पर जमीन जायदाद उठ गई। और उसके बाद जन्म विवाहो की रूढियो का नाच होने लगा। बडेरों को अर्जित समस्त सम्पत्ति ठिकाने लग गई। अब जितना कमा पाता हू। घर का आगा पीछा चल पाता है। तीन लड़कियो को ब्याह चुका हूँ ही। बाकी है उनकी चिन्ता मे रात दिन घुलता हूँ।

मांगीलाल—अपने राम ने तो अभी लड़के का विवाह ही नही किया है। बडी लड़की को तो पिछले महीने में ब्याहा है। लड़का इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ता है। लडकी बी० ए० पास कर चुकी है। २०० रु० माहवार कमाता हूँ। घर का सारा काम काज तुम्हारी भाभी कर लेती है। जो कुछ बचा पाते हैं, लड़के लड़कियों की शिक्षा पर खर्च कर देते है। इस पर भी यदि बच जाय तो जेवर मकान आदि की व्यवस्था मे व्यय कर देते है। बड़े आराम का जीवन बीत रहा है।

चम्पालाल—और यहाँ २५० महावार कमाता हूं तो भी जिन्दगी लंगड़े कुत्ते की तरह भार बन रही है। सामाजिक रूढ़िया सांस ही नही लेने देती।

माँगीलाल—तो तुम अभी तक नई मोड़ के समर्थक नही बने। मैने वर्षो पहिले ही समाज की समस्त रूढ़ियो को तिलॉ-जली दे दी। दो चार दिन तो समाज के लोगों ने नुकता-चीनी की, पर अब तो सभी सराहना करने लगे हैं। सुन रही हो। तुम्हारे लालाजी २५० माहवार कमा करके भी आज सुखी नही है।

मांगी की बहू—क्या लाला जी, पुरुष होकर इतने कायर निकले! जूती में पैर कटवाते रहो, और उसे छोड़ भी न सको।

चम्पालाल—भौजी, मेरे मन में तो कई बार आती है कि समाज की इन नाशकारिणी रूढियों को छोड़ दूं परन्तु तुम्हारी बहू नही मानती। न घर का कोई काम करती है।

मांगी की बहू—बस, अनर्थ की जड़ यही देखा-देखी है। बहू, यह कहाँ का न्याय है कि देखा देखी हम भी कुंए में पड़ते

रहे । जब तक हम समाज की परवाह करते है, समाज हमे सुखी नही रहने देता, और जब समाज की परवाह करनी छोड देते है, तो समाज हमें कुछ समझने लगता है । रजाई देखकर पैर फैलाने वाला कभी दुःखी नही होता ।

चम्पा की बहू—तो क्या ? माथरा, साता, सुपारी, माँग, गोलरिया. सिजारा, साद, कुछ भी न करें ।

माँगी की बहू—क्यों नही करे । पर सब सादगी पूर्ण हो । वास्तविकता को लिये हुयेहो । दिखावा और शान शौकत नही । क्यो बिना बैंड के विवाह नही होता । क्या मिश्री बतासों के बिना माँगलिक कार्य नही हो सकते । साद पुराने के लिए अकेली लड़की को नहीं बुलाया जा सकता । एक दिन लड़की को मन चाहा भोजन खिलाने के लिए ६०-७० रुपयो पर पानी फेर देना कहाँ की समझदारी है ?

चम्पा की बहू—तो झिलमिली की साद तुम्हारी देख-रेख मे ही पूरी कर दूँ ?

माँगी की बहू—क्यो नही ! शाम को आचार्य श्री की सेवा मे चलना । नया मोड के नियम पालन की प्रतिज्ञा कर लेना सारे झंझट कम हो जायेंगे ।

चम्पालाल—बडा उपकार मानूँगा ! भौजी, बर्बाद होते घर को उबारने का प्रयास कर रही हो । हम तो समाज की रूढियों के पालन मे ही बर्बाद हो गये ।

माँगीलाल—और हमें देखा न ! हम समाज की परवाह न कर सुखी जीवन बिता रहे है ।

चम्पालाल—मैं भी कहता हूँ, भैया! तुम्हारी तरह चलकर अपना जीवन सुखी बनाऊं। लो यह चूड़ी वापिस रखो नया मोड़ की याद। आज से कभी किसी सामाजिक रीति रिवाज पर अपव्यय नही करेंगे।

[पटाक्षेप]

समझौते का रास्ता

पात्र | चाचा, भतीजा, मिस्त्री, सेठ जी, पुत्र, पिता, फूफा जी, चाचा का बेटा ।

चाचा—तुम क्या धन शक्ति दिखा रहे हो। यह मार्ग सैकड़ों वर्षों का है। इसे तुम नही रोक सकते ?

भतीजा—रोक क्यों नही सकते ? रोक दिया। कल सवेरे तक दीवार लगा कर बता दूँगा। आपने औरों को धमकाया है। घोड़े की लात से घोडा नही मर सकता।

चाचा—उतावले न बनो ! जरा ठंडे होकर सोचो, न्याय क्या कहता है ? किसी के घर का मार्ग रोका जाए यह सरासर अन्याय है, अन्याय।

भतीजा—न्याय अन्याय मुझे बताने की आवश्यकता नही है। नगरपालिका ने गली बेची है और मैंने इसकी रजिस्ट्री करवाई है। मुफ्त मे नही ली है, खासी रकम दी है। यदि आपको कोई आपत्ति है, तो कहिये नगरपालिका से। मैं अपनी भूमि मे दीवार बनाता हूँ। आपको जो करना है करे। किसी के बाप की हिम्मत नही जो मेरी भूमि में कुछ करने से मुझे रोक सके।

चाचा—बनाओ देखो दीवार। किसी के मकान का मार्ग बिका है। बेचदी भूमि नगरपालिका ने। सब के सब चार सौ बीस, भिखमंगे, खाऊ पीर। कौन है बेचने वाला ? किसी के बाप की भूमि है जो बेचदी। मकान वाला आएगा कैसे ? आकाश मे उड कर, अन्धे कही के। देने

वाले की फूटी सो फूटी, पर लेने वाले को तो सोचना था। पड़ोसी से बैर बाँध कर सुख से कहाँ रहोगे ?

भतीजा—कुछ चिन्ता नहीं चाचाजी यह बन्दर की घुडकिया किसी और को दिखाना।

चाचा—घर तो चाहे घोसियों का ही जलेगा, पर सुख चूहे भी नहीं पायेंगें। रुपये मेरे कुछ अधिक लगेंगे पर परेशानी तुम्हें भी उठानी होगी। या तो बाड़ हटालो मार्ग खोलदो, वरना दोनों घरों को खतरा है।

भतीजा—आप डराते किसे है ? आपका रास्ता उस पीछे खाली गली से है। तुम्हारे पट्टे में वही रास्ता लिखा है। इस पड़ी हुई सरकारी जगह में तो आपने बलात् रास्ता निकाल लिया है। बहुत दिन ठेकेदारी चल चुकी है। अब वो दिन लद गये। सामन्त शाही युग पीछे गया।

मिस्त्री—सेठ जी कोतवाली से नोटिस आया है। जब तक कोई समझौता न हो जाए, तब तक आप आगे दीवार न बढ़ायें। उन्हें अपने आने जाने का मार्ग रोकने पर आपत्ति है!

सेठजी—मिस्त्री जी मैंने क्या कहा था ? पाँच सात आदमी लग कर रात भर में दीवार खड़ी कर दो। पर तुम्हारी तो नीद ही नही उड़ती। चाचा जी की क्या पुरानी पार्टी है। जान पहचान पैसे से भी पहिले काम निकालती है। खैर ज़ो होगा देखा जाएगा। लाख रुपया लग जाए, पर रास्ता बन्द करके ही छोड़ूंगा।

पुत्र—काम तो ठीक नहीं हुआ पिताजी ! यदि कोर्ट में चढ गये तो दोनों घर नष्ट हो जाएँगे। हम तो कमाने खाने से गये। रोज-रोज की पेशियां, वकीलों की खुशामद,

हाकिमो की हाजिरी। घर का पैसा नष्ट करो और कष्ट उठाओ सो अलग।

पिता—सुख वह भी नही पाएगा, खर्च हमे भी करना होगा, यह जानता हूँ सामने कठिनाइयाँ है पर साहस से सामना करना होगा। मै किसी पर आक्रान्ता नही बनता, पर आए हुए आक्रमण का सामना न करना कायरता है।

पुत्र—आखिर आप उस भूमि का क्या करेगे? अपने तो ऐसे ही पडी है। उसके वह पडौस में है। उपयोगी है। इस जमीन के झगड़े से सदा के लिए विरोध पैदा हो जायेगा। आप उस भूमि का क्या मूल्य आँकते है?

पिता—मूल्य कुछ नही। प्रश्न बात का है। जब उसने ही सम्बन्ध न माना, तो मै क्यों मानूं? लखपति है तो अपने घर का। कल से ही बना है, पर अपने पहिले से ही ठकुराई भोगी है। वे दिन उसे सात जन्म भी नसीब नहीं होगें, मैं जमीन न आज दूगा न कल।

पुत्र—आप देते नही यह ठीक है। मानलो कोई खरीदने आए तो आप कितना मूल्य लेकर दे सकते हैं।

पिता—दस हजार से एक फूटी कौडी भी कम नही।

[दृश्य परिवर्तन]

सेठजी—कहिए भाई साहब! कब आए? आनन्द में तो हो।

चाचा का बेटा—हां भाई साहब! कल ही आया हूँ। दिल्ली तार पहुँचा था। आखिर आप तो सयाने आदमी हैं। पिताजी पुराने युग के है। उन्हे हठ हो सकता है पर आपको तो अपने बडे बूढो की ओर देखना था। अब आप क्या सोचते है?

सेठजी—भाई जी ! जो कुछ हुआ, हो गया। मेरे मकान का काम बीच में लटका हुआ है। आप जो कुछ कहें करने को तैयार हूँ।

चाचा का बेटा—आप इस पिछली भूमि को ही क्यों नही खरीद लेते ? आपके काम की है। कल कौन जाने कोर्ट मे क्या हो, फिर वहाँ भी तो कोई आदमी ही समझौता बैठाएगा। तो फिर क्या हम आपस में नही सुलझा सकते।

सेठजी—सत्य-सत्य कयों नहीं कह सकते ? रुपये सात हजार दूँगा। इससे एक छदाम भी ऊपर नहीं। पूछ लो चाचा जी से। यदि ऐसा हो जाता है, तो प्रेम और सम्बन्ध सदैव के लिए बना रह सकता है।

चचेरा भाई—फूफाजी आप कृपा करके थोडी चेष्टा करे तो दोनो घर बच सकते है, नहीं तो पिताजी दूसरे किसी की नही मानेंगे। भाई साहब सात हजार देना चाहते है, पिताजी दस पर अड़े हुए हैं।

फूफाजी—वे सात देते हैं। आप दस कहते हैं। थोड नीचे उतरिये वे ऊपर चढेगे दोनों का समन्वय हो जायगा। विनाश की रेखा पर आये दोनों घर बच जायेंगे।

चाचाजी—मै बचन का पक्का हू कह दिया सो कह दिय। अब टस से मस नही होऊँगा।

फूफाजी—यह कोई हठ की बात नहीं है। दोनों घरों की इसमें हानि है उनकी हानि और आपकी जीत दो थोडी ही हैं। अकड़ने से काम न बनेगा। कोई समझौते का रास्ता निकालिये।

पुत्र—अच्छा फूफाजी, जाइये मैं कहता हूं आप जो कर आयेंगे वह पिताजी को मान्य होगा।

फूफाजी—यह लो ८५७० रुपये में जमीन बेच दी है।

सेठजी—चाचाजी आप को मैंने आवेश में आकर उस दिन बहुत अंट संट कहा था आप बड़े हैं। मेरे पिताजी के बराबर हैं। मेरे बचपने को क्षमा करिये।

चाचाजी—नहीं भाई। तुमने ही क्या कहा? कहने में तो मैंने भी कसर न छोडी। हठ चढने पर अपना पराया नहीं सूझता। मुझे तो आवेश आता भी शीघ्र है। मैं तुम्हें अन्त करण से क्षमा करता हूँ। खैर हुआ सो हुआ। बहुत थोड़े में टला। मुकद्दमे में पड़कर दोनों का सर्वनाश हो जाता। भली सूझी भंवर को, जिसने समझौते का मार्ग निकाला।

[पटाक्षेप]

सेवा-धर्म

पात्र—वृद्ध, प्रताप, सुमनेश ।

वृद्ध—आह ! मौत भी नही आती । प्रताप ओ प्रताप ! दुर्दैव. ऐसा नालायक बेटा दुश्मन को भी न दे। आज २० दिन से बीमारी में उलझ रहा हूं, पर दो घड़ी भी सेवा शुश्रुषा नही करता । बहू ! अभी प्रताप नही आया। क्या दुनिया इसीलिए पुत्र चाहती है । इससे तो अपुत्र ही अच्छे । किसी तरह से संतोष तो कर सकते हैं ।

प्रताप—आप भी तो सँतोष कर सकते हैं। चिल्लाया क्यों करते है ।

वृद्ध—बेटा दुःख में तुम्हे याद करता हूँ, इसे तुम चिल्लाना कहते हो । आखिर पुत्र होता किसलिए है ।

प्रताप—क्या पुत्र इसलिए होता है कि मां-बाप की सेवा अपना सुख मनो-विनोद भी भुला दें । दो घड़ी दोस्तों के साथ सैर सपाटे को चला जाता हूँ तो आप को अखर जाता है ।

वृद्ध—बेटा जरा सोचो तो सही, आज बीस दिन से खटिया सेवन करता हूँ, तुम निःशक सैर सपाटे में मस्त रहते हो । आखिर तुम्हें इसीलिए पाल-पोस कर बडा बनाया है ।

प्रताप—पिता जी ! मुझे तो अपने पाल-पोस कर बड़ा बनाया, पर इन पेड़-पौधों को कौन पाल-पोस कर बड़ा बनाता है ।

वृद्ध—तो क्या तुम भी पेड़ पौधों जैसे ही हो ! तुम इतने हृदय-

हीन बन गये। वह दिन याद करो जब तुम्हे मुँह की कौर निकालकर दिया करता था। गोद मे लेकर खिलाया करता था। तेरी छोटी से छोटी जरूरत पूरी करने को तैयार रहता था। तेरी मां, बेचारी तुम्हे सूखे पर सुलाती और स्वयं तेरे मूत्र पर सोती रहती। तू कभी बीमार पड जाता तो हम रात-रात भर आंखो मे नीद न लाते। खाना पीना हराम हो जाता। चूल्हा तक न जलता और आज तू कहता है पेड पौधों को कौन पालता है।

प्रताप—आपकी तो साठी बुद्धि नाठी हो गई। दवाई आपके लिए लाई पड़ी है दोनों वक्त रोटियाँ खिचडी जो चाहते हैं बना दी जाती है। पानी चाय दूध तैयार मिलता है। इस पर भी क्या बेटे को घोड़ी बनाना चाहते हो।

वृद्ध—अरे प्रताप ! कुछ तो कर्मो से डरो। सरासर अन्याय तो न बोलो। कहाँ है दवाई। धर्मार्थ औषधालय से दो चार पुडिया लाकर रख दी होंगी, हो गई दवाई। कभी रोटियाँ जली मिलती है तो खिचड़ी दाह जी हुई। पानी गर्म चाहिये तो ठडा और ठडा चाहिये तो गर्म मिलता है। दस बार चिल्लाता हूँ तो बहू उठती है, तू ही बता इस बीस दिनो मे तूने मुझे कितनी बार सम्भाला। आखिर मे तुम्हारा पिता हूँ तो पिता के प्रति तेरे कोई कर्तव्य नहीं।

प्रताप—कर्तव्य क्या ! आपने सुखों व भोग के लिए मुझे पैदा किया, और मैं अपने सुखों व भोगों में रत हूँ।

वृद्ध—आखिर यही सुनने के लिए तो अब तक जिन्दा रहा हूँ। अच्छा हुआ वह मर गई, नही तो सिर पीट लेती। आह

मरी ! खाँसी दम लेकर छोड़ेगी। जल्दी ही मर जाऊँ तो आराम पाऊं।

प्रताप—पिता जी आप जरा भी नहीं सोचते, हर कही थूक देते है। थूकना ही था तो पास पड़े बर्तन में थूकते ! कैसे फर्श गन्दा कर दिया ?

वृद्ध—लो साफ किये देता हू, तुम्हें मै नही, फर्श प्यारा है।

[**दृश्य परिवर्तन**]

सुमनेश—अरे ! प्रताप खड़ा क्या देखता है तुम पिता जी को सम्भालो में अभी सब साफ किये देता हूं।

प्रताप—रहने दो सुमनेश ! सुबह कपड़े बदल देंगे।

सुमनेश—प्रताप ! क्या सुबह तक पिता जी गन्दे में ही रहेंगे। गन्दगी से तो बीमारी बढती है न।

प्रताप—यह गन्दगी तो हरदम ही रहती है सुमन ! पिता जी की आदत ही ऐसी पड गई है। लाख कहो मानते ही नहीं।

वृद्ध—रहने दो सुमन बेटा, अपने हाथ क्या गन्दे करते हो ? मैं तो आज बीस दिनों से यह गन्दगी भुगत रहा हूं। तुम्हारे हाथ अपावन हो जायेंगें।

प्रताप—बस भी करो सुमन।

सुमनेश—अरे प्रताप ! मां-बाप की सेवा करने का सौभाग्य बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है। माता-पिता के उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकते है।

प्रताप—काहे के उपकार ! यह तो दुनियांदारी है। यौन की तृप्ति और प्रजनन यह भी कोई उपकार है ?

सुमनेश—यह यूरोप नही है प्रताप। भारत भूमि है। ऋषि मुनियों का देश है ! यहाँ माता-पिता को परमपूज्य माना जाता है। मां का ममत्व और पिता की उदारता ही पुत्र के जीवन का निर्माण करती है जिस माँ ने नौ महीनो तक पेट मे ढोया, मौत की शैया पर भूल कर जिसे पाया, जिसकी एक मुस्कान पर पुलक उठती और चीख पर शोक विव्हल हो जाती। अपने स्तनों का दूध पिला पिला कर पाला और जिस बाप ने अपनी खुशी को खुशी नही समझा। बेटे को सुखी शिक्षित बनाने के लिए रात दिन पचता रहा। उस माँ की, उस बाप की बुढापे में सेवा नही की जाए, कितनी बडी कृतघ्नता है। बाप कफ मे सना पड़ा रहे और बेटा तेल साबुन इत्र लगाये मौजे मारता रहे। धिक्कार है ऐसे बेटे को।

वृद्ध—बेटा सुमन······जरा पानी।

सुमनेश—प्रताप ! इतना गन्दा पानी। ऐसा पानी तो अपने पशु को भी नही पिलाते, आखिर ये तो पिता जी है। ताजा पानी लाता हू पिता जी। प्रताप, माँ-बाप, पुत्र से क्या चाहते हैं। उसे पालते है। पोसते है। पढाते है। लिखाते है, विवाह शादी करते है, आखिर, किस लिए, इसोलिए न कि बेटा बुढापे मे सेवा करेगा। जीवन का आधार बनेगा।

क्या तुम अपनी सतान से यह नही चाहोगे। काश, तुम्हारा बेटा भी बुढापे मे तुम्हारे साथ ऐसा ही व्यवहार करें, तुम्हे कैसा नागवार मालूम देगा।

प्रताप—भैया, सुमन, तुम ठीक कहते हो ! हर इन्सान अपने उप-

कारों का बदला चाहता है। मैं अब तक गलत राह पर था, तुमने मुझे ठीक समय पर सम्भाल लिया। पिता जी, मुझे माफी दो, बचपन की तरह इन अपराधों को भी क्षमा कर दो। अब गलती न होगी। चाय तैयार है पिता जी और क्या लाऊँ।

वृद्ध—बेटा सुमन, आज मेरा सौभाग्य जागा है। दुर्भाग्य के पिछले बीस दिन नरक के काटे हैं। आज कुछ-कुछ स्वर्ग की अनुभूति होती है।

[पटाक्षेप]

नौकर

पात्र—पैंपा, काना, खींवा, सेठानी, भौजू

पैंपा—कान्हा, लो ! तुम्हे तो सेठानी बारबार बुला रही है। जाओ कोई जरूरी काम होगा।

काना—पैंपा, यह तो रात दिन का काम है। यो ही बुलाती रहती है, दो घडी आराम करता हूं तो जल-भुन जाती है।

पैंपा—बिचारा सेठ, तनख्वाह देता है, ठीक तरह से काम किया करो। आ खीवा चले। काना को काम करने दो।

काना—ऐसी क्या बात है, चला जाऊगा। तुम कई दिनों में मिले हो, थोड़ी देर बात कर लूँ। कभी लडका बीमार पडता है कभी लडकी ! यहाँ तो सुबह से शाम तक मरने की भी फुरसत नही मिलती।

सेठानी—अरे कान्हा जी, अभी यही खडे हो मुन्ना बुखार में छटपटा रहा है। तुम्हे थोडी भी चिन्ता नही।

काना—जाता हू सेठानी जी, अभी यदि सेठ जी नही मिले तो ?

सेठानी—इधर उधर पूछताछ कर लेना। गॉव छोडकर तो कही गये नही है।

काना—बिना पते ठिकाने मे कहॉ खोजता फिरूँगा ? मै तो बाजार में देख आऊँगा। आओ भाई इस कर्कसा ने दो मिनट बात भी नही करने दी।

पैंपा—तुम तो यार बडे चन्ट हो। यों मुफ्त मे ही टरका कर पैसे लेते होगे।

काना—मरना थोड़े ही है भैया। अपने तो महीनो के रुपयों से जरूरत है, सबको हा सेठ जी, हाँ सेठानी जी कह कह खुश करता रहता हूँ। सभी बच्चों को झूठी सच्ची कहानियाँ सुना सुनाकर बिलमाये रहता हू बच्चों से ५-४ रुपये हर महीने एठ लेता हूं।

पैपा—यदि सेठ जी बाजार में नही मिला तो ?

काना—घड़ी आधी घड़ी चाय की दुकान पर तुम्हारे साथ बैठ कर चला जाऊँगा। कह दूगा सेठजी मिले नहीं।

पैपा—हमें चाय वाय की जरूरत नही। जल्दी ही गाँव लौटना है। मौजू से भी मिलना है। कहो, घर कोई समाचार भेज रहे हो क्या ?

काना—कह देना, राजी खुशी है। एक कटोरी और एक चम्मच घर दे देना।

(दृश्य परिवर्तन)

पैपा—राम राम ! भैया ! सोचा गाँव जाते समय मौजू से भी मिल ले।

मौजू—बहुत अच्छा किया। भैया बैठो मैं अभी आया ! सेठानी जी बुला रही हैं।

खोवा—कहाँ काना ! और कहाँ मौजू ! वह कई आवाजो पर भीतर नहीं गया और यह एक ही आवाज पर चला गया। सेठानी ने किस लिये बुलाया था।

मौजू—पोते को दूध पिलाना था। जन्म तो इसकी माँ ने दिया है, पर यह दिन भर मेरे पास ही रहता है।

भैया दो मिनट और बैठना मैं चौबारे से पलग ले आऊँ। सेठ जी आयेंगे तो बैठेंगे।

सेठानी—मौजू जी के गाँव के आये हो क्या ? कलेवा करके जाना।

मौजू—और माँ ने कुछ कहा है क्या ?

पैपा—तेरी सेठानी तो तुझे खूब चाहती है, जीकारा देकर बतलाती है। अभी बाहर आई थी, हमे कलेवा करवाने की कहकर गई है।

मौजू—भैया, चाम प्यारा नही, काम प्यारा है। हर काम नाक पर सलवट डाले बिना करता हू। एक काम के लिये कहा जाता है दो काम करता हूँ। पलँग भी खीचूँगा और सेठ जी के पोते को भी खिलाऊँगा।

खीवा—काना तो बडा काम चोर है। उसे दस बार बुलाओ तो जाता है। सेठ के बेटे को बड़ा जोर का बुखार चढ रहा है और बाजार में बैठा तफरी कर रहा है।

मौजू—तभी तो एक वर्ष से अधिक कही टिक नही पाता। मै तो यहाँ चार वर्ष से बराबर काम कर रहा हू। सेठ सेठानी और सेठ के बेटे की बहू बेटे सब मेरे से खुश है।

पैपा—भैया काम करोगे तो खुश क्यो नही रहेगे ?

मौजू—परसों की ही बात है कि सेठ का बडा पोता जीने से फिसल गया, घर में सिवाय सेठ के बेटे की बहू के और कोई नही था मुझे पता चला तो गोदी में उठाकर सीधा अस्पताल ले गया। मरहम पट्टी करवा कर घर लाया तो सेठ, सेठानी मेरे काम से बडे खुश हुए, मुझे ग्यारह रुपये इनाम के दिये।

सेठानी—लो थोड़ा थोडा कलेवा कर लो। सुबह घर से रोटी खाकर आये हो, भूख लग गई होगी। और मौजू जी यह थोड़ी सी मिठाई अपने बच्चो के लिये भिजवा देना।

पैपा—यार सेठानी क्या है, देवी है। हमे भी इतनी मिठाई खाने को दे दी और २-२॥ सेर मिठाई तेरे बच्चों के लिए बांध दी।

मौजू—इसीइिए मै भी रात दिन खटता रहता हूं कि मत पूछो-चार-चार गाये दुहना, उन्हे चराना, पिलाना, दही मथना, दिन भर हवेली की निगरानी रखना, वच्चों को खिलाना, बाजार मुहल्ले का काम करना, और भी जो काम हो विना कहे करना। और मेरा काम देखकर कई सेठ ६० रुपये महीना देने का लालच देते है पर पुराने जाने-पहचाने मालिक को छोडकर १० रुपये ज्यादा मे दूसरा मालिक क्यों करूँ। वर्ष भर में १००–१२५ रुपये यों ही रीझ बकशीष के मिल जाते है।

सेठानी—मौजी जी तुम्हारे भाई यही है न। लो ये दो चार कपडे है, वच्चों के लिए भिजवा दो। शादी आ रही है, काम आयेंगे।

[पटाक्षेप]

सरपंच

पात्र | सरपंच, सुक्खा, लक्ष्मण, बजरंग, भूरा, हरू, हरिसिंह, शिवचन्द

सरपंच—सुक्खा, सीधा ही जा रहा है। क्यों, कल क्या बात हुई।

सुक्खा—राम ! राम !! सरपंच साहब, मैने देखा—अभी सरपंच साहब आये नही होंगे, इसलिये मै तो आपके घर की ओर ही जा रहा था। कल की बात बहुत ठीक रही ।

सरपंच—कैसें ! जरा नजदीक आकर, बता तो सही, क्या बात हुई ?

सुक्खा—मैंने परसो भूरा के बड़े लड़के से उसकी जूतियाँ सुसराल जाने के लिये माँगी। रात में वे ही जूतियाँ पहने लक्ष-मण के खेत से कस्सी गंड़ासी एक-आध और चीज उठाकर चुपके से भूरा के खेत में रख दी। लक्षमण ने चोरी का हो हल्ला मचाया, आखिर, पद-चिन्ह देखकर भीवा बावरी ने भूरा के बड़े लड़के के खोज बताये। मैं सुबह ही उसकी जूतियाँ दे आया—बोला काटती हैं यार, तेरी ये जूतियाँ तो।

सरपंच—शाबाश ! बहुत अच्छा किया। अब मुकद्दमा पंचायत में आया कि सारे विरोध की कसर निकाल दूँगा।

सुक्खा—मैंने तो अपना काम कर दिया, अब आप जानें और

आपका काम जाने। पर मेरे पड़ौसी को किसी मामले में फंसाकर शिक्षा देनी न भूलें।

सरपच—अब तू जा, मौका पड़े तो भूरा के विरोध में दो तीन गवाहिवाँ जुटाकर रखना। तू जब मेरे लिये इतना करता है तो मैं तुम्हारे लिये कैसे नहीं करूँगा। तेरे पड़ोसी को तो ऐसा फंसाऊँगा बच्चू याद रखेगा।

लक्षमरण—सरपंच साहब मेरी एक दरख्वास्त लिखवा दो। कल रात भूरा चौधरी का बडा बेटा मेरे खेत में से जेली, गंड़ासी, छारी चुराकर ले गया। सुबह खोज लेकर गये तो सारी चीजें भूरा की झोंपड़ी में मिली।

बजरंग—साथ में कौन कौन गये थे ?

लक्षमण—खोजी तो भीवा बावरी था। और साथ में पैपा, मेमा सूरजा थे।

सरपंच—देख, लक्षमरण, राजीनामा करना है, तो पचायत के कागद ही काले क्यों करवाता है ?

लक्षमरण—चोर से राजीनामा कैसा ? उसे तो सजा मिलनी ही चाहिये। लाख समझाओ मैं आखिर तक राजीनामा नहीं करूँगा। साले भूरा के बच्चे ने मेरे खेत की शान मिटा दी। साँसी बावरी भी मेरे से डरते है। मै तो भूरा के छोकरे को सजा दिलवाकर ही छोड़ूँगा।

सरपंच—क्लर्क साहब, आज की प्रोसीडिग रजिस्टर, मुकद्दमे की फाईल, और जरूरी दरख्वास्तें ले आओ और पहिले मुकदमों की फाइल निकालो।

क्लर्क—एक तो मुद्दमा बनाम माँगी है।

बजरंग—माँगी सुसराल गया हुआ है। इसे चार दिन की मोहलत दी जावे।

क्लर्क—कुम्भा बनाम किशना।

सरपंच—किशना को चार बार सूचना दे दी, तो भी वह नही आया। वह तो पंचायत की तोहीन है। अब पँच सोचें क्या करना चाहिये ?

कई पंच—जुर्माना कर देना चाहिये।

सरपंच—भूरा जी, तुम्हारे खिलाफ एक शिकायत आई है।

भूरा—आई होगी, चुनाव में मैंने आपका विरोध किया था। आपके विरोधी उम्मीदवार को वोट दिलवाये थे। इस लिए शिकायतें तो होंगी ही !

सरपंच—पंचों, सुना आप लोगों ने ! पचायत में मेरी तोहीन कर रहा है, यह तोहीन मेरी नही पंचायत की है। पंच इस पर विचार करें।

भूरा—पच क्यो विचार करें। आप ही विचार कर लें। खुद चोरी करवा दे और मेरे नाम मंढ दें। मैं और मेरा बेटा चोरी करें ? हरगिज नहीं। सब बदमाशी है।

सरपंच—देखा उल्टा चोर कोतवाल को डाँटता है। जब मैं यहाँ सरपंच की हैसियत से बैठा हूँ, मेरा अपमान, पंचायत का अपमान है। इसलिये इस पर पंचायत का अपमान करने के अपराध में २१ रुपये जुर्माना किया जाता है।

भूरा—यह लो २१)। भूरा इतने से मरता नही, पर अपील करके जुर्माना वापिस न ले लूँ तो मेरा नाम भूरा नहीं। यहाँ अन्याय हो सकता है, पर अदालत तो सुनेगी। (बाहर आकर) लो हो गया गाँव का उद्धार, गाँव के छटे बदमाश सरपंच, पंच बनकर बैठे हैं।

(दृश्य परिवर्तन)

सरपंच—हरू जी अच्छे मौके पर आये ! आये हो तो बैठो, हमे भी कोई राय दो। क्लर्क साहब की आज बैठक का एजेण्डा क्या है।

क्लर्क—तकाबी के रुपयों का वितरण। और गाँवों में लालटेने लगवाना।

सरपंच—तकाबी के लिये किन किन की अर्जियाँ आई हुई हैं ?

क्लर्क—खूमा, शीशराम, श्यामलाल, कान्हा, माना, केशर, हरीसिंह, बालचन्द। कुल आठ आदमियों की दरख्वास्तें हैं।

सरपंच—कहो भाई पंचो, तकाबी के ७०० रुपये किस किस को कितने कितने दिये जायें ?

कुछ पंच—हरिसिंह को नहीं दिया जाये तो क्या हर्ज है। बाकी को १००-१०० दे दिये जायें।

हरू—सरपंच साहब, हरिसिंह ने तो अपका खूब तकड़ा विरोध किया था, पचास वोटों का धोखा देकर वोट डालने ही नहीं दिये थे। आपके विरोध में भी एक लिखित शिकायत की थी न ?

सरपंच—हरू जी, यह सब तो चुनाव में होता है। पर पंच सरपंच का भी तो कोई फर्ज होता है। पंच परमेश्वर कहलाते हैं। फिर हम परमेश्वर की गद्दी पर बैठकर बेईमानी, पक्षपात, अन्याय करेंगे, तो न्याय कहाँ रहेगा। अगर मेरी बात मानी जाय तो, मैं पंचों से निवेदन

करूँगा कि हरीसिंह की स्थिति बहुत खराब है, घर में पर्दानशीन औरत, चार-चार बच्चे, खेती का कोई जुगाड़ नही, अगर खेती न कर सका तो गरीब मार हो जायेगो। उसे १५० रुपये तकावी के लिए दिये जायें। बाकी सब में बराबर बांट दिये जायें।

कई पंच—जैसी सरपंच साहब की राय।

क्लर्क—लो हरिसिह जी आपके १५० रुपये मंजूर हुए हैं।

हरिसिह—है, मजाक करते हो क्लर्क जी! मैं तो चुनाव में सरपंच का तगडा विरोधी था। मुझे यह उम्मीद नही थी सरपच साहब से।

सरपच—हरिसिह जी, कभी ना-उम्मीद उम्मीद भी बन जाती है। न्याय के सिहासन पर बैठकर अन्याय थोडा ही करूँगा। वह तो अपनी राजनीति की लड़ाई है। यहाँ पच परमेश्वर के बराबर है।

हरिसिह—जय हो पंच परमेश्वर की।

सरपंच—हाँ, लालटेन कितनी मंजूर हुई हैं ऊपर से ?

क्लर्क—अपने यहाँ वोर्ड हैं और लालटेन सात ही मंजूर हुई हैं। एक लालटेन की कमी रह गई। लिखा तो है, एक लालटेन के लिए।

सरपंच—हां तो पंचो सोचकर निर्णय करलो।

हरू—चमारों के वास मे लालटेन की क्या जरूरत है ?

सरपंच—ज्यादा जरूरत तो हरू जी उनको ही है। बेचारे गरीब है। उनके बास में तो सबसे पहले लालटेन लगनी चाहिये।

हरू—तो कौन सा बास खाली रखेंगे ?

सरपंच—मेरा वास खाली रहेगा । मंजूर होकर आ गई तो वहां लगवा दूंगा, नही तो अपने पैसों से अपने बास में लगवा दूगा ।

शिवचन्द—नहीं सरपंच साहब, आपके पास कौन से पैसे हैं ? मेरा बास खाली छोड़ दें, मैं अपने बास में लालटेन लगवा लूगा ।

हरू—आख़िर सेठ का बेटा है न ।

सरपंच—बात तो बेजा ही है । पच पैसे खर्च करें, और सरपंच नहीं, पर लिख लो क्लर्क जी बाणियाँ के बास को छोड़ कर सातों बासों में लालटेन लगवा दी जावें ।

हरू—सरपंच साहब, आपका न्याय, ईमानदारी और निष्पक्षता को देखकर सोचता हूँ। अब तक मैंने तो कोई न्याय का काम नही किया । अब आपको देखकर मन में आती है मैं भी आपकी तरह सच्चा सरपंच बनू ।

[पटाक्षेप]

सेठजी

पात्र | चौधरी, सेठजी, रामलाल, भैरू, संचियालाल।

चौधरी—सेठजी आप तो गीता पाठ कर रहे हैं, मेरा अनाज कौन तोलेगा और कौन मुझे सौदा देगा और कौन मेरा पुराना हिसाब करेगा ? कई दिनों का लेन देन बाकी है।

सेठजी—रामलाल तोल दे चौधरी का अनाज। चौधरी बड़ा भला आदमी है हमारी दूकान के सिवाय और कहीं जाता ही नही है, कई वर्षो से अपने से ही लेन देन करता है। चौधरी का हिसाब बडी बही में है। पहिले हिसाब करले फिर सौदा तोल देना।

रामलाल—पिताजी वडी वही के हिसाब में चौधरी की एक सौ नकदी और चीजों के ५७ रुपये है, उयन्ती में ६॥) और उनका ब्याज १० रुपये समझिये। मोट एक सौ साढ़े तिहत्तर हुए उसमें चौधरी के गुवार का १६ के भाव से १६० मे काटा। तुलाई, आढ़त, चुंगी, धर्मादा पीजरा पोल वाद देकर १५०) बचे। काट छांट कर २३॥) अपना पावना है।

सेठजी—क्यो चौधरी ठीक है न ? हिसाब में एक पैसे का फर्क नहीं पड़ेगा।

चौधरी—मुझे क्या याद है सेठजी ! बही तो आपके पास है। मैं पढा लिखा तो हूँ नहीं, जो लिख लेता। किन्तु आपने ब्याज तो वहुत कड़ा लगाया है। और गुवार में भी बहुत

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

काट छांट की है और लेन देन की बात तो आप ही जाने।

सेठजी—अरे चौधरी तू बड़ा भोला है। हमने हिसाब के ही लगाये है तू ज्यादा समझता है तो ऊपर के पैसे मत देना।

रामलाल—ऊपर के तो पैसे बहुत होते है पिताजी।

सेठजी-अरे तू बीच मे मत बोल। चौधरी का पुराना सम्बन्ध है। घी ढुलता है तो मुंगी मेरी बिखरती है। ले चौधरी आगे के २३ रहे और आज के १७, सब ४० रहे।

भैरू नाई—सेठजी मेरा भी हिसाब करदें। आज कुछ रुपयों की जरूरत है।

सेठजी—क्या हिसाब है तेरा ? २० तो एक बार ले गया था।

भैरू नाई—तो क्या सेठजी २० रुपये में ही टालना चाहते है। लाली का विवाह और पोते के दसोटन में जो काम किया उसका २० रुपये ही दोगे। वाजिब देने को आपने कहा था क्या यह वाजिब है ?

सेठजी—तो ले ५० और ले ले। नेग नुक्ते भी तो आये थे।

भैरू नाई—सेठजी खैरात नहीं मांग रहा हूँ। तीनों मौकों पर चार-चार व्यक्ति १०-१२ दिन तक खटे थे, पूरे २००) लूंगा।

सेठजी—बीस आगे के और ८० पहले बस सौ रुपये बहुत है। नेग नुक्ता, कपडा, लत्ता, जीमन, जूठन सब मिलाने से दो सौ हो जायेंगे।

भैरू नाई—बड़े सयाने हो सेठजी। गरीबों के गले पर छुरा चलाना खूब आता है। आपने बेचारे चौधरी को उल्टा सीधा समझाकर लूट लिया किन्तु मेरा नाम भैरू नाई है, मैं ऐसे चिकनी चुपड़ी बातों से समझने वाला नहीं हूँ। पूरी मजदूरी लेकर जाऊँगा।

सेठजी—ले यह १११ रुपये। अब तो पिण्ड छोड़। इससे ज्यादा एक पैसा भी नही दूँगा।

भैरू नाई—कोई बात नही सेठजी ! अब आगे से दूसरे नाई का प्रबन्ध कर लेना, सेठ कहलाते शर्म नही आती। बगुला भक्त कही का। मुँह में राम बगल में छुरी। गरीबो का गला काटते शर्म भी तो नही आती।

(दृश्य-परिवर्तन)

सेठ संचियालाल—कई दिनों से आया भी नही और न अपनी मजदूरी तथा बिदाई भी ले गया।

भैरू नाई—सेठ जी आपके यहाँ से तो जब चाहूँ तभी मिल जाएगी इसीलिए नही आया। पर आज तो आना ही पडा। कुछ रुपयो की जरूरत आ पड़ी आप जो देना चाहें वो दे दे।

सेठ संचियालाल—बताओ क्या दूँ ? कितने देने से प्रसन्न हो।

भैरू नाई—मैं क्या जानूँ सेठजी वैसे तो सवा भर सोना आ गया है। नेग नुक्ते के भी १०० रुपये करीब आये है, कपड़ा भी आया है।

सेठ संचियालाल--आगये तो अच्छा ही हुआ। दोनों मौकों की बिदाई तुम्हे मिलनी ही चाहिए। अपने घर का काम छोड़कर रात दिन खटे हो, मेरा काम सुधारा है, महमानों की खातिरदारी में कोई कमी नही आने दी। यह लो १०१ रुपया बिदा के।

भैरू नाई—सेठाई इसका नाम है। सेठजी भगवान् आपको बनाये रखे।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

सेठ संचियालाल—इसमें आशीर्वाद देने की क्या बात है भैरू ! तुमने तो जी जान से सेवा बजाई है उसके सामने ये कुछ भी नहीं है।

भैरू नाई—आजकल यह कौन देखता है सेठजी । आप जैसे थोड़े ही हैं जो यह सब सोचते हैं। आजकल तो गरीब का गला काटने वाले ही ज्यादातर मिलेंगे।

चौधरी—सेठजी जय राम जी की।

सेठ संचियालाल—जयराम जी की, कहो चौधरी, बहुत दिन में आए।

चौधरी—सेठ जी, फुरसत ही नहीं मिली। खेती के काम धन्धों में लग गया था, अब फुरसत मिली है, सोचा, चलो सेठजी से घी के दाम भी लेता आऊँ।

सेठ संचियालाल—कोई बात नहीं। कितना घी आया है ? क्यों भैरू घी में सेर भर के करीब छछेरू निकल गया था न ?

भैरू—घी तो अच्छा और ताजा था पर छछेरू सेर से ज्यादा ही निकला था।

चौधरी—सेर भर घी के दाम काट लो। सवा मन घी था। ताजा घी में इतना छछेरू निकलना कोई बड़ी बात नहीं सेठ जी।

सेठजी—चौधरी, कहीं कहकर मंगवाई हुई चीज में कुछ कमी बेशी हो जाये तो लाने वाले को थोड़ा ही डण्डा जाये। ठहरकर ५० रुपये तो पिछले वर्ष के भी बाकी है न ?

चौधरी—हां है। वे और उनका ब्याज काट लें। बाकी दाम दिलवा दें।

सेठ संचियालाल—ब्याज काहे का चौधरी ?

भैरू—वर्ष भर का ब्याज तो वाजिब है सेठजी।

सेठसचियालाल—अरे भैरू, ५० रुपये उचंती माँगले जाये, उसका काहे का ब्याज ! चौधरी का हाथ नही सरका, वर्ष भर ही रह गये । यो तो दो महीनों से चौधरी के दाम मेरे पास में भी तो पड़े रहे । ब्याज ब्याज बराबर ।

चौधरी—आपकी जैसी मर्जी ।

सेठ संचियालाल—जा भैरू, चौधरी को हवेली में ले जाकर भोजन करवा दे । चौधरी जा भोजन करले । भोजन करके जाते समय दाम लेते जाना, हिसाब करके दाम तैयार मिलेगे ।

भैरू—आ चौधरी, देख सेठाई इसे कहते हैं । सेठ जी चाहते तो १०-१५ रुपये का चरका लगा सकते थे ।

सेठ सचियालाल—बड़ी बातें बनाता है भैरू, कहीं बाल नोचने से मुर्दे हल्के थोड़े ही होते है । चौधरी को भोजन अच्छी तरह करवाना ।

चौधरी—ठीक ही तो कह रहा है सेठ जी भैरू भाई, कहाँ तो ब्याज का पड ब्याज लगाने वाला और काटे पैर को काटकर खुश होने वाला सेठ भूरामल और कहाँ अपने हक को खिलाकर खुश होने वाला सेठ सचियालाल जी आप है ।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

संयम की देवी

पात्र | रमेश, महेश, माँ, पिता, सुशीला, एक औरत, रमेश की बहू।

रमेश—माँ, मेरे बिस्तर वापिस मंगवालो, सुशीला ने सामने आकर अपशकुन कर दिया ! उस दुष्ट को आज ही सामने आने का मौका मिला ! विधवा का अपशकुन लेकर कैसे परदेश जाऊँ, माँ।

माँ—क्या करें बेटा, इसे लाख मना करो, पर यह मानती ही नही !

पिता—क्यों रमेश, बिस्तर वापिस क्यों मंगवा लिये ?

रमेश—क्या कहूँ, पिता जी ? सुशीला ने सामने आकर अपशकुन कर दिया।

पिता—यह दुष्ट मरती भी नही ! परसो मै भी शहर जा रहा था, तो सामने से निकलकर अपशकुन करने से न चूकी। हजार बार इसे कहा जाता है कि घर में हँसी खुशी के मौके पर, यात्रा के अवसर पर इधर उधर न फिरा कर। पर यह चांडालिन, मानती ही नहीं। सुशीला जरा इधर आना ! तुझे हजार बार कहा है—विदा के मौके पर सामने आकर अपना दुर्भाग्य तो मत दिखाया कर। अब रमेश कैसे बिदा हो ! सामने आकर तूने अपकुशन कर दिया। मर जाए तो तेरे से पीछा छूट जाए।

सुशीला—मर कैसे जाऊँ पिता जी, मौत आती ही नहीं ! क्या आत्मघात करके मर जाऊँ ?

मां—इतना ही बाकी है वेटी, आत्मघात करके खानदान को वदनाम करदे। हमारी नाक कटवादे।

सुशीला—पिता जी, मैं तो सुवह की दुवकी बैठी थी पर अब पेशाव करने निकली कि भैया के सामने पड़ गई! इस में क्या कसूर मेरा?

पिता—कसूर पूछती है! अपशकुन करके रमेश की यात्रा रोक दी। अव वह २० दिन वाद कलकत्ता जा पायेगा। सारा काम चौपट हो जायेगा।

एक औरत—जिठानी जी सुशीला को आपने कहा नही था कि वह विवाह के मौके पर इधर उधर न निकला करे।

सुशीला की मां—ओ री सुशीला की वच्ची तू मर क्यों न गई। आज ही तो कमला का वान बैठाया जा रहा है और तू इसके सामने आकर खड़ी हो गई। हजार वार तुझसे मना किया है। पर तू तो मानती ही नही।

सुशीला की भौजाई—यह ननद सवको पार लगाकर छोड़ेगी। कलमुंही को हजार वार कहा, एक भी नही सुनती! हर कही देखो, अपशकुन करने को तैयार रहती है।

सुशीला—भौजाई जी, दुर्दैव ने मुझे वर्वाद कर दिया है, तुम भी कसर न करो। माँ वाप ने ये काले और नीले कपडे पहना कर मुझे पिशाचिनी सी वना दिया है। माँ, तुम भी कोई कसर न रहने दो, थोड़ी सी गलती हो जाए तो मेरी व्यथा को और उकसा दिया करो।

महेश—वहिन तुम रो रही हो।

सुशीला—हाँ रे! भाग्य में दुःख दे दिया तो किसी तरह काटना ही पड़ेगा?

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

महेश—बहिन, पुरुष तो विधुर होने पर तीन तीन विवाह कर लेता है, और नारी एक बार विधवा बनते ही जीवन भर उसके नाम पर रोने को विवश कर दी जाती है। ऐसा क्यों होता है ?

सुशीला—तुम पुरुष हो भैया, यह जानकर क्या करोगे ? नारी पुरुष की संपत्ति जो ठहरी।

एक स्वर—अरे महेश ! कहाँ गया ! विदाई के लिये थाली लिये खडी हूँ।

[दृश्य परिवर्तन]

महेश—माँ तुम रहने दो, सुशीला बहन को बुलाओ। आज तो विदा तिलक वह निकालेगी। आज के दिन त्याग संयम और पावनता की मूर्ति सुशीला से तिलक निकलवाने की इच्छा हो रही है।

पिता—पागल तो नहीं हो गये हो, महेश बेटा, वह काले नीले वस्त्र पहने सम्मुख आयेगी तो अपशकुन नही हो जाएगा ?

महेश—रहने दो पिता जी, ये रूढिवादिता की बातें हैं, रात दिन विषय-भोगों में लिप्त रहने वाली नारियाँ माँगलिक कार्यों के लिए शकुन, और वासनाओं के घेरे से दूर रहने वाली संयम की साक्षात् देवी अपशकुन ! यह अन्याय क्यों क्या ? यह विषमता वांछनीय है।

पिता—वांछनीय तो नहीं पर किया क्या जाय ?

महेश—किया क्या जाय ? बेचारी नारी को देव ने विधवा बना दिया, जीवन भर दुःखों के गर्त में ढकेल दिया, उसे पुचकार नहीं, दुःख सहने में साथ नहीं, दुःखों को

भुलाने के लिये कोई सहयोग नही उल्टे उसे काले नीले वस्त्र पहनाकर उसके दु:खो को और उभार दिया जाए। मागलिक अवसरों पर उसे दुत्कार कर एक कोने में दुवक जाने को विवश किया जाए। कितना दु:ख होता होगा बेचारी विधवा नारी को, अहिसा को परम धर्म मानने वाले समाज में इतनी दारुण हिसा।

महेश की मां—वेटा महेश, यात्रा के आरम्भ मे काले नीले कपड़े पहने किसी का मिलना अपशकुन होता है।

महेश—तो सुशीला वहिन को सफेद साडी पहना देवे।

रमेश की बहू—(मद स्वर) पागलपन न करो देवर जी, कहू विधवा भी विदा तिलक निकालेगी?

महेश—सुशीला वहिन, अपशकुन नही, शकुन देती है भौजाई। मैं तो सुशीला वहिन से ही तिलक निकलवाऊँगा। मै दो वर्ष के लिये यूरोप जाऊँ और अपनी वहिन का मुँह भी न देखूँ। उसके हाथ से तिलक निकलवा कर मुँह जूँठा भी न करूँ। समाज ने अब तक विधवाओ का खूब शोषण किया है, पर अब यह शोषण अधिक न चलेगा। युग नई मोड़ ले रहा है। पुरानी परम्पराएँ वह रही है। नये दिशा संकेत उभर रहे है, आचार्य श्री की वाणी ने शोषिता नारी के अस्थान का सन्देश दिया है।

महेश के पिता—तो तुम सुशीला से ही तिलक करवाओगे?

महेश—हाँ, मै उन लोगो मे नही हूँ पिता जी जो भोग की पुतलिकाओं को पवित्र मानकर चलते हैं। मैं त्याग संयम की प्रतीक सुशीला बहन जैसी नारियों को पवित्र और शुभ मानता हूं।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

महेश के पिता—महेश जब निश्चय कर चुका है तो सुशीला को श्वेत साड़ी पहनवा कर लाया जाए।

सुशीला—भैया तुम कितने महान् हो ?

महेश—महान् तो तुम हो सुशीला ! यावत् जीवन सयम का व्रत लेकर तुम कितनी महान् और पावन बन् चुकी हो ! मेरे विदा तिलक करो और मुँह मीठा कराओ।

महेश के पिता—महेश बेटा, तुमने हमारी युग-युग की अंधी आँखें खोल दी है।

महेश की मां—महेश बेटा आज मेरा हृदय शीतल हो गया है। मेरी सुशीला। आज इस नये रूप में मेरे घर की मालकिन बनेगी। ले सुशीला ये चाबियाँ, अब घर का सारा काम तुम्हें पूछकर ही होगा।

रमेश की बहू—ननद बहिन, आज मुझे सच्चा ज्ञान मिल गया है ! मैंने आपका अपमान कर बड़ी गल्ती खाई। तुम पूज्य हो, पावन हो, महान् हो।

[पटाक्षेप]

बँटवारा

पात्र | पिता, बड़ा पुत्र, छोटी बहू, छोटा पुत्र, सेठानी, सेठजी, बड़ी बहू,

पिता—दोनो भाइयों की जब आपस में खटपट चलती है, तो दोनों को मैं अपने रहते-रहते अलग कर दू इसी में भलाई है, नही तो आपस में झगड़ोगे, और बड़े बूढ़ों के नाम पर धब्बा लगाओगे।

बड़ा पुत्र—आपकी ऐसी ही इच्छा है तो कर दीजिए अलग। कैसे करेंगे ? यह भी वतलादे। मैं सारी आयु खपा हूँ। घर में जो कुछ है सब मेरा कमाया हुआ है। और मेरे बाल बच्चे भी अधिक हैं। सब को पढाना है। विवाह शादी भी करनी है। यह भी विचार लें।

पिता—इसमें विचारने की क्या वात है। एक रोटी के दो टुकडे होंगे और एक भाग मैं अपने लिए रखूंगा। घर में दो कमरे हम लोगों के लिए रहेंगे। मेरी इच्छा जिसको होगी, उसको दूंगा। तेरी माँ भी अपनी वस्तुएं जिस को चाहे दे सकेगी। हम लोग छोटे लड़के के साथ रहेगे !

बड़ा पुत्र—इसका अर्थ हुआ घर और दूकान छोटे लड़के की होगी। और मैं भिखारी बनकर घर से निकाल दिया जाऊंगा। क्योंकि सम्मिलित रहते हुए भी आपने मेरी बडी लड़की और लड़के के विवाह का व्यय मेरे नाम लिख रखा है'।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

पिता—इसमें मै क्या कह सकता हूँ ? कानून की बात है। जो होगा, कानून से होगा।

बड़ा पुत्र—आपको ऐसा ही करना था तो पहिले ही कर देते। मैंने तो सोचा था, भाई बड़ा होकर कमाने लगेगा, तो लड़के और भाई को काम सौप कर अवसर ग्रहण कर समाज सेवा और धर्म ध्यान में जीवन विताऊँगा। किन्तु अब तो देखता हूं कि इस पचासी को भुला कर वीस वर्ष का बनना पड़ेगा या, घुल-घुल कर बेमौत मरना पड़ेगा।

पिता—मरने की इसमें क्या बात है। जितने भाई उतने घर होते ही आए है। मैने ऐसी क्या अनहोनी बात कह दी, जो इतना दुःख मान रहे हो। मैं छोटे लड़के के साथ न रहूं तो छोटी वहू घर को अकेली कैसे सम्भाल सकेगी। मैं अपने लिए कुछ न रखूँ तो मेरा निर्वाह कैसे होगा।

बड़ा पुत्र—आपने न्यायानुसार अपने निर्वाह का हिसाव बैठा लिया। छोटा भाई भी कानून के अनुसार बिना कमाए धन का मालिक हो जाएगा। मेरे बड़े लड़के की बहू को आपने मेरी बहू के बड़े-वड़े गहने चढ़ा दिए। अब लड़का बहू भी मेरे साथ किस स्वार्थ से रहेंगे। अब मुझे यह बात बतलाइये कि खून पसीना एक करके सारी उमर इस घर को वनाने वाला मैं और मेरे बच्चे कैसे निर्वाह करेंगे।

(दृश्य परिवर्तन)

छोटी बहू—पिता जी जेठ जी को किस प्रकार अलग करना चाहते हो वह कानून की दृष्टि तथा प्रचलित प्रथा के

अनुसार कितना भी न्याय संगत माना जाए किन्तु उनके प्रति तो यह घोर अन्याय ही होगा जिन्होंने सारी उम्र खून पसीना एक करके घर को सींचा। घर की प्रतिष्ठा बढ़ाई। वे इस बंटवारे के कारण घोर विपत्ति में पड़ जायेंगे। उनके बाल बच्चे दूसरों के मुखापेक्षी बनेंगे और हम लोग उनके कमाए धन के मालिक बन सुख-भोग करेंगे। क्या यह न्याय है ?

छोटा भाई—तुम्हारे कहने के अनुसार न्याय तो मुझे भी नही दीखता। है तो यह अन्याय ही, किन्तु पिता जी के सामने मै क्या कर सकता हू ?

छोटी बहू—मेरी मानो तो पिता जी को साफ कह दो। भाई साहब को दु:खी करके मुझे धन नही चाहिए। आप मेरे जन्म के पिता हैं। वे मेरे कर्म क्षेत्र के पिता है। उन्होने मेरे लिए क्या नही किया है ? घर के लिए क्या नही किया है ? घर की सारी मान-मर्यादा उन्ही की देन है। इस लिए मै थोड़े से स्वार्थ के लिए भाई साहब को दु:खी नहीं देख सकती।

छोटा भाई—बात तो तुम्हारी ठीक है किन्तु पिता जी के सामने इस प्रकार कहना मेरे लिए कठिन है। इतना साहस मैं नही कर सकूँगा। कोई सरल उपाय बतलाओ। जिससे सारी बात भी उन तक पहुँच जाए, और उनकी अप्रसन्नता का कारण भी मुझे न बनना पड़े।

छोटी बहू—तो फिर यह सारी बातें माता जी से कह दो। साथ ही यह भी कह देना कि भाई साहब से मुझे कोई नाराजगी नहीं है। न आप लोगों के जीवनकाल में अलग होने की

मेरी इच्छा है। यदि पिता जी को अलग ही करना अभीष्ट हो तो सीर खाते का खर्च सीर खाते भुगता दें। व्यापार सीर में रखें। भाई साहब का दो भाग और हमारा एक भाग क्योंकि उनके व्यय अधिक है।

सेठानी—छोटा लडका कल कह रहा था, आप लोगों के जीवन काल में अलग होने की मेरी तो इच्छा नही है। न भाई साहब से मेरी कोई अनबन है। इस पर भी पिता जी अलग करना चाहेंगे तो सीर खाते का खर्च सीर में भुगता दे, कारोबार हमारा सीर में रहेगा। भाई साहब का दो भाग रहेगा क्योंकि उनके परिवार का व्यय अधिक है।

सेठजी—ऐसी समझ छोटे लड़के में तो नही है। छोटी बहू ने ही उसे समझाया है, क्यों न समझायेगी? उसके दोनों भाई भी समाज की प्रचलित प्रथा को भग करके इसी प्रकार व्यापार सीर में रखकर और बड़े भाई को दो हिस्सा और छोटे भाई को एक हिस्सा ले देकर अलग हुये है। वही चाल वह यहाँ चलाना चाहती है।

सेठानी—इसमें आप बुरा क्यों मानते है। मेरी समझ मे तो बहू की बात अच्छी है। न्याय संगत है।

बड़ी बहू—सुनी तुमने छोटी बहू की बात। कितनी समझदार और उदार है वह। लाला जी को माता जी से कहलाया है। मैं तो भाई साहब से अलग होना नही चाहती, अगर पिता जी करना ही चाहें तो व्यापार साथ ही रहेगा। भाई साहब का दो हिस्सा और हमारा एक। सीर का खर्च सीर खाते भुगताना होगा।

बड़ा भाई—सुन तो सभी रहा हूं किन्तु पिता जी मानें तब न। पिता जी को ही क्या दोष दूं? मिताक्षरा क़ानून तथा

समाज के लोग ऐसा करने दें तब न। पिता जी समाज की प्रथा के विरुद्ध कुछ कर सकेंगे, ऐसा भरोसा मुझे नही है।

बड़ी बहू—भरोसा क्यों नहीं है ? जब भाई और भाई की बहू इस प्रकार के बँटवारे को अन्याय समझते है और स्वीकार नही करते हैं, तो समाज क्या करेगा। कानून कैसे इसमें बाधक बनेगा ?

बड़ा भाई—कानून और समाज तो बाधक न बनेगे किन्तु पिता जी को अप्रसन्न करके तो मुझे कुछ करना नही है। चाहे निर्धन बन कर ही रहना पड़े।

छोटा भाई—भाई साहब। आप क्या बाते करते है। मैंने जो निश्चय कर लिया है, वह हो कर रहेगा। आप निर्धन बने, और मै धनवान बनू, ऐसा कभी न होगा। चलिए पिता जी को हम दोनो समझायेंगे। वे अवश्य दया करेंगे। हमारी भावना को अवश्य समर्थन मिलेगा।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

आडम्बर बनाम सादगी

पात्र | पत्नी, पति, पुत्री, सखी, माता।

पत्नी—दुनियां भर की चिन्ता करते फिरते हो। घर में २० वर्ष की बेटी क्वारी बैठी है। क्या इसकी चिन्ता करना आवश्यक नही समझते हो ?

पति—मै इसके लिए सदैव सचेष्ट हूँ, किन्तु शीघ्रता करके हर किसी के गले तो पुत्री को बाँध नही सकता। फिर विवाह के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है मैं जब लड़की का विवाह करूंगा तो सादगी से करूंगा। बिना पर्दे नई मोड से करूंगा। मै लड़की के लिए ऐसे ही होनहार युवक की खोज में हूँ।

पत्नी—सुनली तुम्हारी सादगी और आदर्श की बातें, यह तो धन बचाने का एक बहाना है। मै ऐसा विवाह अपनी लड़की का नही करने दूगी। मै तो अपनी पुत्री का विवाह धूम-धाम से करना चाहती हूँ। इतनी बड़ी बारात बुलाना चाहती हूँ, जिसमें मेरा आँगन भर जाए। बेटी को मोटर, रेडियो, सोफासेट, अलमारी तथा दस बीस पेटियां कपडे तथा अन्य सामान से भर कर देना चाहती हूँ। पाँच सौ तोला चाँदी और सौ तोले सोना देना चाहती हूँ। अगर पहली लड़की की शादी इस प्रकार ठाट-बाट से न करोगे तो दूसरे लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध योग्य घर में नही हो पायेंगे।

पति—तुम्हे तो चिन्ता लगी है लड़की की शादी आडम्बर से करूँ और तीनों लड़कों के अच्छे सम्बन्ध जुटा धन से घर भरलू। और मुझे चिन्ता है, कि इस प्रकार की होड ने सौ वर्षो के सम्बन्धो में प्रेम के स्थान पर शत्रुता उत्पन्न की है, और कही-कही तो इस ठहराव और दहेज की प्रथा के कारण नववधुओं को मृत्यु का आलिगन भी करना पडा है, या उन्हे मौत के घाट उतार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समाज मे नाना प्रकार से अनैतिकता और भ्रष्टाचार वढता जा रहा है। यह सब देख सुन कर मेरा मन न तो आडम्बर करने को चाहता है और न अन्याय से पैसा कमाना चाहता है।

पत्नी—मुझे तुम्हारी यह जिद्द काम की नही लगती। व्यर्थ मे लड़की के जीवन को नष्ट कर रहे हो। योग्य घर वर तो पैसा खर्च करने से ही मिलेगा। नही तो लड़की विना ब्याही रह जाएगी। इसलिए इस लडकी का विवाह जैसा मै चाहती हूँ, कर दो। लडको का विवाह, तुम्हारे जचे जैसा करना। मै भी देखूगी धन लाते हो या ठुकरा कर आते हो।

पति—तुम जो कुछ भी कहो। मैं अपने घर मे आडम्बर से कोई काम नही करूँगा, न होने दूगा। आडम्बर और देखा-देखी करना समाज को हर प्रकार से रसातल को पहुचाना है। अनैतिकता को प्रश्रय देना है। मै अणुव्रती होकर ऐसा काम कभी नही करूँगा।

पत्नी—यह तो लडकी के जीवन के साथ खिलवाड है। मैं अब भी कहती हूँ कि हठ मत करो। लडकी का हित सोचो।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

थोड़े रुपये लड़की के लिए खर्च हो जाएँगे, तो उससे कुछ नही बिगड़ेगा। फिर कमा लेना।

पति—तुम समझती होगी, मैं रुपयों के लिए ऐसा सोच रहा हूँ। मैं तो सबकी भलाई के लिए ही अपने घर से ऐसा आदर्श उपस्थित करना चाहता हूँ। अधीर मत होओ। लड़की के भाग्य में होगा, तो घर वर भी जैसा तुम चाहती हो, उससे अच्छा ही मिलेगा। जैसे मेरे विचार है, ऐसे विचार के और भी बहुत से लोग समाज में नई मोड़ के विचार से पैदा हो गये है। जरा धैर्य से काम लो।

पत्नी—धीरज की भी सीमा होती है। बीस वर्ष की लडकी घर में क्वारी बैठी है, और तुम दो वर्ष से केवल धीरज ही बंधा रहे हो। करना हो तो करो, नहीं तो मुझे कुछ और सोचना पड़ेगा।

(दृश्य परिवर्तन)

पुत्री—सखी माताजी के धैर्य का बाध टूट चुका है। पिताजी के विचार मुझे हर प्रकार से उपयुक्त लगते है। बार-बार मन में आता है साफ़-साफ़ कह दू कि जिस आडम्बर में समाज व देश का अहित होता है, कुरूढियां पलती हैं, ऐसे आडम्बर से मैं विवाह कदापि नही करूँगी, पर कहते संकोच होता है बताओ क्या करूँ।

सखी—पिताजी के समक्ष नही कह सकती हो, तो पत्र लिखकर सारी बात कह सकती हो।

पति—पुत्री का पत्र आया है, इसमें लिखा है, पिताजी मै आपके विचारों से सहमत हूं। मुझे ऐसा विवाह करना ही नहीं

है, जिससे मेरी प्रतिष्ठा बढाने के लिए आप ऋणी बने, मेरे भाई अशिक्षित रहे, समाज का अहित हो। मै विवाह करूँगा तो सादगी से ही, योग्य वर मिलने पर करूँगी।

पत्नी—जब तुम और तुम्हारी पुत्री का एक मत हो तब मैं दो मत कैसे हो सकती हूं। मैने तो पुत्री के प्रेम के वश होकर दहेज जसी भयकर कुरूढि को निभाने का आग्रह किया था।

पति—लो खोजते-खोजते पुत्री के भाग्य मे सुयोग्य पढ़ा लिखा वर मिल गया, जोकि किसी प्रकार के आडम्बर को, अपव्यय को पसन्द नही करता। वह तो दहेज के बदले सत् साहित्य चाहता है। गण्यमान्य व्यक्तियो के समक्ष मालाबदल कर और युगानुकूल, उपयोगी प्रतिज्ञाओ स'हत पाणिग्रहण करना चाहता है। स्वल्पाहार मे सूखा मेवा और पेय पदार्थ के सिवाय कुछ नही चाहता।

पत्नी—लडकी की शादी तो तुमने पाँच हजार का चेक, एक हजार की किताबो से ही करके दिखाई। अब लडकी को सावन की सीख और छूछक देना है। उसको कैसे करोगे बता दो तो तैयारी करूँ।

पति—इस विषय मे अब मुझे कुछ नही कहना है, लडकी से पूछ लो जैसा वह कहे वैसा ही करो।

माता—बेटी सावन की सीख और छूछक मे क्या करना होगा? तुम्हारे पिताजी से पूछा तो कहा कि बेटी से पूछ लो, वह जैसा कहे, करो।

पुत्री—पूछना क्या है? रूढि के नाम पर तो मै कुछ ले नहीं सकती। छ पोशाक से अधिक मुझे रखना नही है। बच्चे के लिए एक झूगा, टोपी, कुछ खिलौने, झूलना

भेज सकती हो । इसमें तुम्हे संतोष न हो तो वच्चे के हाथ में कुछ दे सकती हो। मेरी तरफ से पांच सिलाई की मशीनें महिला मण्डल मे भेज सकती हो।

माता—तुम्हारे लिए कुछ भी नही भेजूगी, तो पहनोगी क्या ?

पुत्री—मैं तो अपने ससुराल का ही पहनूगी, कारण पीहर का लेने से बड़ी बर्बादी होती है और ससुराल वालों से प्रेम कम हो जाता है। अधिक पाने वाली स्त्री के मन में अभिमान और कम पाने वाली के मन मे हीनता रहती है, आपस में ईर्ष्या, द्वेष बढ़ता है। इसीलिए मेरे पतिदेव का कहना है, तुम्हारे पीहर से जो आयेगा तुम्हारे नाम बैंक में जमा करा दूगा। तुम अपनी इच्छानुसार समाज व देश के काम में लगा देना, विवाह में जो पांच हजार का चैक दिगा वह माताजी के नाम महिला मण्डल का भवन वनाने में लगेगा। मैं अपने निज के लिए, पतिदेव का दिया ही खर्च करूंगी, पीहर का नहीं।

[पटाक्षेप]

सास-बहू

पात्र | सास, बहू, श्याम की बहू

सास—बहू, कितना दिन चढ गया । दोपहर होने को आया अभी बच्चों को नहलाया तक नही ।

बहू—ये निगोड़े नहाते ही नही, जब नहाने की कहो ठनकने लग जाते हैं। आप भी तो ठाली बैठी थी, नहला देती तो क्या हो जाता।

सास—मैं ठाली कव बैठी रही वहू। सुबह नहा धोकर मन्दिर गई, घन्टे भर सत्सग में बैठ गई। दो तीन माला फेरी, इसे ही तुम ठाली बैठी बतलाती हो।

बहू—यह भी कोई काम है। काम में तो मैं पच रही हूँ। घड़ी भर आराम करने की फुरसत ही नही मिलती। आपसे पहले उठती हू झाड़ू लगाती हू। पानी भरती हूं, दम आदमियों की रसोई बनाती हूं। तब कही १२ बजे खाना मिलता है। बर्तन मलो गेहूं चावल, दाल बीनो, और शाम की रसोई में जुट जाओ। अगर सुबह शाक सब्जी दाल चावल बीन दिया करो तो भक्ति मे भंग थोडे ही पड़ जायेगी।

सास—बहू, दो ढ़ाई घड़ी धर्म ध्यान करती हूँ तो तुम्हें क्या खलता है। दिन भर तो तुम्हारे नन्हों मुन्नों को खिलाये रहती हूं।

बहू—बस, अहसान लाद दिया। एक-आध घड़ी बच्चे को रख

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

लिया तो कौन सा सुमेर उठा लिया। बनी बनाई रोटिया मिल जाती हैं तभी बड़बड़ाहट सूझती है। एक दिन भी चूल्हा न जलाऊँ तो पता चले। सबके आँखों आँखें चार हो जाये।

सास—बहू, यह किरावर किस पर है। रोटी बनाकर खिलाती है तेरे खसम और जायेडों को, फालतू है तो हम तीन हैं। मै नन्दू और गजू। वे बेचारे बच्चे है। पढ़ते हैं, और मैं बूढी हो चुकी हूं, नही तो तेरे जैसी बहू के हाथ का बना भोजन भी न खाती।

बहू—मै इतनी नीच हूँ। मुझ रांड़ के हाथ में इतना जहर है। आज मेरे हाथ का बना भोजन खाया तो गोबर खाओगी।

सास—बहू, नीचे पडकर नही जन्मी हूं। रांडा चूँडा करने की जरूरत नही। तेरे चार-चार बच्चों को बहलाये रहती हूँ, तभी मालूम नही होता, तो एक ही दिन में चार आँखें हो जाएं। मुझे रोटियों का डर मत दिला, मैं तो श्याम के यहां चली जाऊँगी। मुझे तो दो रोटियाँ और दो धोतियाँ वह भी देगा। तू सम्भाल अपना घर।

(दृश्य परिवर्तन)

श्याम की बहू—आओ माँ जी, हमें तो आपने छोड़ ही दिया। मैंने सोचा था कि माँ जी की सेवा चाकरी का मौका मिलेगा पर आप तो छोटे बेटे के ही साथ रहीं।

सास—क्या कहूँ बहू, उस समय वह छोटी थी, घर द्वार समझ नही पाती। १० वर्ष उसके साथ रह गई। पर अब नहीं

रहा जाता। नन्दू और गजू तो अभी अलग होने को तैयार बैठे है। मै थी तो वे थे, अब वे भी साथ नही रहेंगे।

श्याम की बहू—बहुत कृपा की माँ जी, यह घर कोई पराया थोडे ही है, आप ही का है। आपका बेटा तो सदा आपको याद करता रहता है, सुबह शाम धर्म ध्यान करो, दिन भर बैठी माला फेरो। दो रोटियाँ तो मिल ही जायेगी। दो रोटियों में घर की देख भाल, महगी नही है माँजी। बच्चों को मुझे दे दें यह हैरान करेंगे।

सास—यह भी कोई काम है बहू ! बच्चों को खिलाना, अपना दिल बहलाना है। देखती हूं, काम तो तेरा है, काँच सा साफ घर। शीशे जैसे चमचमाते बर्तन। खूब चमकदार धुले हुए वस्त्र। ऋषि मुनियो का मन मोह लेता है।

श्याम की बहू—यह भी क्या काम है माँ जी ! इतना ही न कर सके, वह क्या गृहिणी जहाँ गृहिणी नही, वहाँ घर नही, शमशान है। जो कुछ भी है, वह आपकी दया का फल है, माँ जी, छोटी बहू आपको बुलाने आई है। कहती है मैं अपने कसूरों के लिए माँफी माँगती हूँ घर मुझे खाने को आता हैं। बच्चों ने नाक में दम कर दिया है मारने से भी नही मानते।

सास—बहू बच्चे मार से नही प्यार से पलते है। प्यार ही उन्हे बिगडने से बचाता है। जब बच्चों को प्यार नही मिलता तो वे शरारती हो जाते है। रही मेरे जाने की बात सो यो बारबार इधर-उधर आने जाने से मेरी बदनामी होगी। लोग कहेंगे बुढ़िया किसी से बना कर नही रख सकती। इसलिए अभी नही जाऊंगी।

छोटी बहू—जाना तो आपको होगा। नही तो हम सब यहाँ

आ जायेंगे। आपके विना न तो बच्चे रह सकेंगे न मैं ही रह सकूंगी, न नन्दू, बाबू, गजू रहेंगे।

बड़ी बहू—बस सब यहाँ ही आ जाये बड़ी अच्छी बात होगी दोनों मिलकर माँ जी की खूब सेवा करेंगी। इनको भी शान्ति मिलेगी। लोग हमारे घर की सराहना करेंगे। बस अब तो ऐसा ही करना है।

[पटाक्षेप]

पति-पत्नी

पात्र | पत्नी, पति, मोहिनी, मधुकर, भाभी।

पत्नी—मौत भी नहीं आती, एक आध को ! हरामखोरो ने तग कर रखा है।

पति—सुवह-सुवह ही मुँह से आग उगलने लगी। कभी फूल भी वरसा दिया करो।

पत्नी—कौन वरसाता है, यहाँ फूल ! सासूजी खाये बिना नही रहती, हरदम राड विना वतलाती ही नही। ननदे हरदम हुकुम चलाती है, घर के काम काज में हाथ बँटाना पाप समझती है। उन्हें कुछ कह देती हूँ तो सारे घर में तूफान आ जाता है। आप भी तो माँ वहिनों का पक्ष लेकर मुझे ही डांटने लगते है।

पति—इसीलिए, यह गुस्सा बच्चों पर उतारा जा रहा है। औरों से जैसा व्यवहार करोगी वैसा ही व्यवहार मिलेगा।

पत्नी—तो मैं ही हूँ बुरा व्यवहार करने वाली। अपनी माँ वहिनों के सामने भीगी बिल्ली बन जाते हो। वे गाली पर गाली वकती रहती हैं, मैं ही ऐसी हूँ कि सब को खारी लगती हूँ।

पति—खारी और मीठी का क्या सवाल ? तुम भी तो गाली के वदले गालियों की भाषा वोलने लगती हो।

पत्नी—मुझे कोई एक सुनाये तो मैं तो उसे दस सुनाऊँगी। मैं छोटे वाप की नही जो सवकी सुनती रहूँ।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

पति—बड़ी अच्छी शिक्षा दी है, माँ बापो ने।

पत्नी—बस, मेरे माँ बाप तक जाने की जरूरत नही। उन्होने तो भला ही काम किया, जो तुम्हारा घर बसा दिया।

पति—मुझे जैसा निहाल कर रही हो, वैसा ही और किसी को निहाल करती ?

पत्नी—तुम्हे क्या निहाल करती हूँ ? सब से पहिले उठती हूँ और सबसे बाद में सोती हूँ। दिन भर बैल की तरह पचती हूँ तो भी कोई कदर नही। सासू और ननदें मिली तो कर्कशाएँ। हरदम खाऊ खाऊं, फाड़ूँ करती है।

पति—मुह संभाल कर बात कर, न तू दूध की धोई है और पानी की पौछी हुई है।

पत्नी—पानी की पौछी हुई तो मै ही हूँ ? घर के हर आदमी को अटखावणी लगती हूँ। धिक्कार है मेरा जीना। मौत भी नहीं आती, मर जाऊं तो इस नरक से छुट-कारा मिले।

(दृश्य परिवर्त्तन)

पति—फल खाये महीनों बीत गये। दो पैसे जेब में हैं, क्या आयेगा इनका ? लेते भी शर्म आयेगी। ओ हो, गाजर सस्ती है, एक आने सेर। आधा सेर आ जाएगी।

पत्नी—थक गये मालूम होते हो। गर्म पानी लाये देती हूँ, हाथ पैर धोलें। थकावट दूर हो जाएगी।

पति—बहुत फुरती की। गाजर भी बनाकर ले आई।

पत्नी—आप थके हुये थे, कुछ नाश्ता तो चाहिये। घर में कुछ था नहीं, आप बहुत सोच समझ कर गाजर ले आये। फल के फल और सब्जी की सब्जी।

पति—रानो, तुम मानवी, नही, देवी हो, इस अधेरे घर को आ कर तुमने उज्ज्वल कर दिया ! सात वर्षों मे न तुम्हे पूरा खाना मिला, न पहिनने के लिये कपडे। और न नये नये फैशन की चीजे ही मिली। बच्चों को भी ऐसा सुशील बना रखा है कि कभी किसी चीज के लिये जिद नही करते है।

पत्नी—क्या पचडा ले बैठे। आज दिन मैं जितनी खुश हूँ, शायद ही और नारी होगी। आप जैसा स्वस्थ, सदाचारी, और सरल पति मिला है। बच्चे भी राम-लक्ष्मण से समझदार। सब हृष्ट पुष्ट। चारो ओर प्यार और वात्सल्य। मैं तो कभी कभी आत्म विभोर हो जाती हूं।

मोहिनी— क्या हो रहा है मधुकर भैया। अरे दोनो गाजर खा रहे हो।

मधुकर—बहिन आओ, तुम भी गाजर खाओ। ये गाजर क्या हैं ? प्रेम के मिठास से इतने रसीले है कि इनके सामने अगूर, सेब और अनार भी तुच्छ है। आओ थोड़ा सा चखो।

मोहिनी—मैं तो ससुराल से तग आ गई भैया। सब कुछ छोड कर चली आई। आये कितने दिन हुए कोई समाचार नही आया। भाभी तुम गाजर खाकर इतनी खुश हो, और मैं आम, अगूर, अनार खाकर भी सदा क्षुब्ध रहती हू। यह विपर्य क्यो है ?

भाभी—ननद जीजो, जहाँ जीवन मे सरलता सादगी, और जीवन कला आ जाती है, वहाँ चारो ओर सुख की वर्षा होने

लगती है और जहाँ तड़क भड़क कुटिलता और जीवन कला का अभाव हो, वहाँ सदा कलह का नर्तन होता रहता है।

मधुकर—हाँ बहिन, लालसायें रबड़ की तरह हैं, उन्हें जितना बढ़ाओ बढ़ जाती हैं, और जितना घटाओ घट जाती हैं। आवश्यकताओं की सीमा नही होती पर एक सीमा रेखा बांध कर जीवन उसमें ढाल लिया जाए तो कहीं टकराव संघर्ष कलह की गुंजायश नहीं होती।

मोहिनी—तो हमारे कलह का यही कारण है।

भाभी—ननद बहिन ! पारिवारिक संघर्ष का एक कारण और भी होता है। जहाँ मैं-मैं तू-तू का रोना रहता है, वहां कलह का राज रहता है और जहाँ तू—मैं और मैं तू का गाना रहता है वहाँ प्यार छलछलाता रहता है।

मोहिनी—बहुत दिनों तक जीवन की विकृतियां देखलीं। अब तो मधुरिमा देखने का प्रयास करूंगी।

पति—जीवन को भार समझने का परिणाम देखा। पति और बच्चों को छोड़कर मोहिनी बाई पीहर भाग आई है, पर पीहर में कितने दिन टिक पायेगी। आखिर, नारी की गति तो ससुराल ही है। उसे नरक क्यों समझे, स्वर्ग समझे।

[पटाक्षेप]

देवरानी-जेठानी

पात्र—जेठानी, देवरानी।

जेठानी—ओ हो, जब देखो, बहूरानी साज श्रृंगार, ऐश-आराम करती हो मिलेगी। न घर में झाड़ू बुहारी, न बच्चों की देख भाल। आँगन में जूँठे बर्तन पडे है, मक्खियाँ भिन-भिना रही है, और आप लग गई, बनाव टनाव में।

देवरानी—मेरी उम्र की थी तब आप जैसे बनाव-श्रृंगार करती ही नही थी। मै नौकरानी नही हूँ, जो जेठानी साहिबा के हुक्मों की तामील करती रहू। बच्चे मैंने थोड़े ही जन्मे हैं। जिसने जन्मे हों, वह सम्भाले, बच्चो की चिन्ता है तो कोई नौकरानी रख लो। मेरे से ये सब नहीं होता।

जेठानी—यह भी क्या निगोडी जीभ! जब देखो तब बक बक! काले तो मैंने चबाये तेरे जो तेलो के बैल की तरह जुती रहूँ बर्तन मलते बहू के हाथ गन्दे होते है तो चूल्हा सम्भालो। घर भर के कामो का ठेका मैंने ही लिया है क्या ?

देवरानी—तो मैंने ही लिया है! दिन भर छोटे-मोटे सैकडो काम करती हू उनकी गिनती ही नही।

जेठानी—बड़ी आई काम करने वाली! सुबह उठाती हूँ तो उठती हो। और दिन छिपते ही चौबारे मैं जा बैठती हो।

देवरानी—जेठानी हो इसलिए मुँह में जो आता है, बक देती हो। नही तो चौबारे मे बैठाने वाली की जीभ खींच लूँ मै जिस दिन चौबारे मे बैठी हूँगी सारे खानदान की नाक कट जायेगी, रानी साहेबा।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

जेठानी—खींच लो न जीभ, यह कमी भी पूरी कर लो। थोड़े से काम के लिये कह दिया, तुनुक उठी। मै ही ऐसी हूँ जो घर में नुकसान होते नही देख सकती।

देवरानी—तो यह ठसका मेरे पर क्या? मै भी बराबर हक रखती हूँ, कोई लौंडी नही हूँ। धौस जमानी हो तो जेठ साहेब पर जमाओ, वे ही धौस सह सकते है। मै नही। अगर मै सुहाती नही हूँ तो मुझे अलग कर दो। कभी काम की सहायता के लिये पास नही आऊँगी।

जेठानी—हॉ इसीलिये देवर का विवाह किया था। मेरे सारे गहने लेकर अलग हो जाओ।

देवरानी—तुम्हें देवर प्यारा था, गहने देकर मुझ पर कोई अहसान नही किया। मेरे तो गहने और कोई बनिया का बेटा चढ़ाता। कुवारी तो रहने से रही। तुम अलग न करोगी तो मैं अलग हो जाऊँगी। इस घर मे अब घडी भर नही रहूँगी।

(दृश्य परिवर्तन)

देवरानी—यह क्या करती हो जीजी, मेरे होते तुम बर्तन मलो! यदि तुम बर्तन मलोगी तो मै क्या गद्दी खूद्दूंगी।

जेठानी—बर्तन मलने से हाथ गन्दे थोड़े ही हो जाएंगे बहिन! आदमी तो काम से प्यारा होता है। तुम मेरे बच्चे खिला रही हो, घण्टे भर से। मैं बर्तन मलूंगी तो घिस थोडे ही जाऊंगी।

देवरानी—तुम्हें तर्क में जीते कौन जीजी, लो तुम थोड़ी देर बच्चों को खिला लो मै अभी बर्तन मल डालती हूँ। जीजी, तुम हाड चाम से नहीं बनी हो फौलाद से बनी

हो दिन भर काम मे लगी रहती हो, थकावट का नाम तक नही लेता। मै काम करने लगता हूँ तो हाथ बटाने साथ आ बैठती हो।

जेठानी—बहिन! बड़ी बहिन ही छोटी बहिन के काम मे हाथ न बटायेगी तो कोई पास गली की हाथ बटाने थोडे ही आयेगी। रही बच्चे की देख भाल! बच्चा मेरे पास फटकता भी नही! स्नान भर आते है तो बच्चे को दूध पिला देती हूँ बाकी बच्चा तेरे से ही चिपटा रहता है, वह तुम्हे ही मा समझता है। मै तो धाय की तरह हू।

देवरानी—कितनी देर लगी जीजी, बर्तन मलते! घर का भी कोई काम है, यह तो खेल है, खेल खेलते कोई थकता नही, काम हो तो थकावट भी आये। मै अभी तुम्हारे सामने बच्ची हू, तुम्हारा देखरेख मे खेल खेलना सीख लूँगी ना, आगे कभी बाजी हार न पाऊंगी, पर तुम तो मुझे गिनने ही नही देती हो। मै बार बार कहती रहती हू जीजी तुम आराम करो हुक्म चलाओ। सारा भार मुझ पर छोड दो।

जेठानी—पर यह तो जानती हो मै भी तुम्हारी बडी बहिन हूँ। जब तक मेरे हाथ पाव काम कर रहे है, छोटी बहिन पर सारा भार थोडे ही टाल दूंगी। लोग मुझे क्या कहेंगे।

देवरानी—जीजी, तुम मेरी बडी बहिन ही नही, सासू की जगह मां भी हो। कितनी भाग्यशाली हूँ मै, तुम जैसी मुझे जीजी और मा दोनो के रूप में मिली। 'हँस कर' मुन्ना आ रे मॉ की प्रार्थना करे।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

पथ्यापथ्य

पात्र—पति, पत्नी, डाक्टर, पंडित जी, डाक्टर, रोगी।

पति—आज तो शरीर भारी-भारी हो रहा है। शायद जुकाम हो गई है। भोजन की रुचि तो है। थोडा सा दही है या नही ?

पत्नी—है, पर आपको तो जुकाम हो रहा है न।

पति—थोडा सा ही लेऊँगा, थोड़ा नमक मिर्च डाल कर दो। दही तो बड़ी स्वादिष्ट है, खट्टा खट्टा ! एक चम्मच और दे दो। थोड़ा मीठा भी है क्या ?

पत्नी—ताजा तो नही है। पिछले दिनो अजय की ससुराल से आया, उसमे से थोडा बहुत पडा है। पर तबियत कैसी है ?

पति—वैसी ही है। कुछ-कुछ हरारत सी हो रही है ! पेट भी भारी हो रहा है। कब्ज की भी शिकायत है।

पत्नी—शाम को आपके लिए रसोई क्या बनाऊ ? हमने तो चरके और मीठे चिल्ले बनाये है।

पति—कोई बात नही। विशेष भूख नही है, जो बना है उसी में से थोडा ले लूंगा। दो एक फुलके बना देना।

पत्नी—सब्जी क्या बनाऊँ ? कोई पत्तियो की सब्जी मंगवा लेऊँ क्या ?

पति—इतना झझट किसलिए ? थोड़ा सा अचार ले लूँगा। आज तो गाजर के अचार की इच्छा हो रही है।

पत्नी—जैसी इच्छा हो, पर आपके जुकाम् जो हो रहा है।

पति—अरी, मैं कोई ज्यादा थोड़े लूगा, थोडे से क्या नुकसान होगा ? थोड़े से बीकानेर वाले भुजियें तो होंगे। बस थोड़े से ही देना, दुकान पर चार पैसे के दही बड़े भी खाये थे। बड़े स्वादिष्ट लगे। एक बेसन का चिल्ला बना दो न।

डाक्टर—कहो क्या हुआ पंडित जी ? बुखार भी तो हो रही है। दो चार दिन दवाई लो, ठीक हो जाओगे मलेरिया है। पथ्य परहेज रखना।

पण्डित जी—ला, दवाई तो ले ले ! थोड़ा पानी ले आ। डाक्टर साहब ने कुनैन दिया है। मूंह खराव हो गया। थोड़ा खाटा सुपारी तो ला दे। आज मैं खाना नही खाऊँगा। अभी अजय ककडी और मतीरे लाया है। थोड़ी सी ककडी मुझे भी दे देना, मतीरा तो रहने दे। ककडी पर नमक, काली मिर्च लगा देना।

डाक्टर—क्या, क्या हुआ पडित जी ?

पडित जी—जरा सी ककडी ले ली कि बुखार तेज हो गया।

डाक्टर—पडित जी, आप समझदार होकर भी कुपथ्य कर लेते हैं। पडित जी यह थोडी सी ही वहुत होती है। खान पान मे सयम न रखने से अधिकाँश बीमारियाँ होती है। थोड़ा-थोडा कुपथ्य भी वीमारी को उग्र बना देता है, थोड़े से असयम से ही मामूली बीमारी बड़ा रूप धारण कर लेती है। अब यह आपका बुखार दस पन्द्रह दिन मे ठीक होगा, और टाईफाइड का भी रूप धारण करले तो कोई बड़ी वात नही।

पंडित जी—असंयम करके मैंने अपने आपको बीमार बना लिया।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

खान-पान में असंयम किया कि साधारण जुकाम से ही टाईफाइड हो गया।

डाक्टर—हाँ आसार तो ऐसे ही लगते है; दवाई अस्पताल से मँगवा लेना। अभी तो ये पुडिया दे रहा हूं उन्हे लेकर सो रहे; अब कुपथ्य कर लिया तो जीवन संकट में पड़ जाऐगा;

(दृश्य परिवर्तन)

पति—टी० बी० की बीमारी बतलाई है। दवाई भी दी है, और कहा है कि पथ्य रखना! सोचता हूं, बकरी का दूध पीना आरम्भ कर दूं और खेत में ही जहाँ भेड़ बकरियाँ बैठती है, अपने रहने के लिए व्यवस्था कर लूं।

पत्नी—ठीक ही है, दोनों वक्त भोजन वहीं पहुँचा दूंगी। खिचड़ी के सिवाय और कुछ नई चीज बने तो थोड़ी सी भेज दिया करूँ क्या?

पति—यह थोडी सी ही तो बीमारी में पेट में जाकर जहर बन जाती है, इस थोड़े से जुकाम से टाईफाइड और टाई-फाइड से टी० बी० की नौबत ला दी है।

पत्नी—तो थोडा सा इतना बुरा होता है?

पति—थोड़ा सा ही पतन का रास्ता खोल देता है, और थोड़ा सा ही उत्थान का पथ विशद कर देता है। एक-एक बूंद से घड़ा भर जाता है और एक-एक बूंद से रिक्त हो जाता है। एक-एक अक्षर पढने वाला एक दिन विद्वान बन जाता है, और एक-एक पैसा व्यर्थ में अपव्यय करके एक दिन कंगाल बन जाता है। थोड़ा सा ग्रहण असंयम

का प्रतीक है और थोडा सा त्याग सँयम का सोपान है। सँयम ही जीवन है। असँयमित जीवन विनाश का द्वार खोल देता है।

पत्नी—जैसा आप चाहोगे वैसा ही हो जावेगा।

डाक्टर—अब तो टी० बी० का अदेशा मिट गया है। काफी ठीक हो गये हो।

रोगी—डाक्टर साहेब, आप से टी० वी० की बीमारी सुनकर सम्भल गया। मैंने जीवन को बहुत ही सादा बनाने का प्रयास किया। खान पान और रहन सहन सब मे संयम का पालन किया, सयम ने मुझे बचा लिया। अब तो यावज्जीवन सयम का पालन करूँगा।

डाक्टर—तुम ठीक समय पर सम्भल गये नही तो·····

रोगी—जीवन मे हाथ धो बैठता!

डाक्टर—हॉ, आज चारो ओर असयमित जीवन के कारण ही नाना बुराइयॉ, नाना बीमारियॉ, नाना खराबियाँ चल रही है। जिस ने जीवन मे सयम को स्थान दिया, वह सुखी बन गया और जिसने असयम को अपनाया वह दुखो की ओर बढ चला। 'सयम खलु जीवनम्' इसीलिए तो अणुव्रत आन्दोलन का नारा है।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

उधार

पात्र | सेठ जी की बैठक, सब्जी वाला, सेठ,
| मनोहर, भगवानदास, पंडित जी।

सब्जी वाला—सेठ साहब, बड़ी आशा लेकर आया हूँ। गरीब आदमी हूँ, सब्जी बेचकर किसी तरह अपना पेट पालता हूँ। कुछ रुपयों की जरूरत है।

सेठ—भई, मैंने तो इन दिनों उधार देना बन्द कर रखा है। यह धंधा बहुत बुरा है। उधार दो और लोगों को अपना निंदक और दुश्मन बनालो। उधार लेते समय तो बेटे बन कर आते हैं और लौटाते समय बाप बन जाते है।

सब्जी वाला—सेठ साहब, पाँचों उँगलियाँ एक समान नहीं होती। मुझे देखो न पठान से ५० रुपये उधार लेकर काम कर रहा हूँ, हर रोज पैसा रुपये का ब्याज देता हूँ। पर मै चाहता हूँ कि आप मुझे ५० रुपये उधार दे दें तो पठान से पीछा छुड़ा लू।

सेठ—उधार और उपकार। मैंने उपकार के लिए उधार देकर पचासों दुश्मन और विरोधी बना लिये है।

सब्जी वाला—तब तो सेठजी, हम गरीबों का काम नही चलेगा। पैसे वाले सेठ किसी को उधार नही देगे, तो मर गये बेचारे गरीब।

सेठ—अरे तुम तो एक अनजान शरणार्थी हो। मै तो जान पहचान वालों को उधार देकर भी पछताया हूँ। एक गृहस्थी को उसकी बेटी के विवाह पर ५०० रुपये उधार

दिये। उसने कुछ जेवर रहन रखे थे। पर कुछ समय बाद ४०० दे गया। और लल्लो चप्पो करके गहना भी ले गया, बाकी १०० रुपये आज आते है। मांगो तो गालियाँ बकने लगता है।

सब्जी वाला—पैसे वाले उधार में धोखादेही कर सकते हैं, पर हम गरीब तो सदा ईमानदारी का बर्ताव पसन्द करते हैं।

भगवानदास—गरीव बडे ईमानदार होते हैं। मैंने तेरे जैसे ईमानदारी की दुहाई देने वालो को एक बैल लेकर दिया था, पर मियाद खत्म होते ही शेर हो गया। मूल तो गया ही, साथ व्याज भी गया।

मनोहर—आजकल तो सव कूओ में भाँग पड़ी हुई है, क्या गरीव, क्या धनवान सभी उधार लेकर वापिस लौटाना ही नहीं चाहते। दूसरो की बात ही क्या? अपने सगे सम्बन्धी भी उधार लेकर हडप जाना चाहते है। मैने अपने एक सम्बन्धी को ८०० रुपये उधार दिये थे, और ऐसी मुसीवत के समय कि उसका घर नीलाम हो रहा था, पर वापिस आज चुकाता है। दो चार बार माँगे, बेटी को तंग करना शुरू कर दिया।

भगवानदास—अरे भाई, मेरे प्रेस मे एक प्रोफेसर साहब ने कुछ कागज छपवाये थे, २० रुपये बाकी रह गये, सो आज तक आते है। दो चार बार तकाजा किया, अब तो हर जगह प्रेस की बदनामी करने लगे। उधार के मामले मे यह हाल है हमारे देश के गुरुओं का। औरों की बात ही क्या कहूँ? क्यों पडित जी आप चुप कैसे हैं?

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

पण्डित जी—क्या कहूँ, आप सब लोग उधार के विरोधी है, और मै उधार देना बुरा नही समझता।

भगवानदास—क्या अभी आपको लेन-देन सम्बन्धी कटु अनुभव नही हुए ?

पण्डित जी—इसमे कटु अनुभवो को बात नही। ये तो जीवन मे होते ही रहते है, पर अभी ईमानदारी मरी नही है। यह जरूर है कि आजकल स्वार्थी तत्व बहुत ज्यादा बढ गये है। पर यह नही मान सकता कि अच्छे और ईमानदार व्यक्ति रहे ही नही।

सब्जी वाला—पडित जी, ठीक कह रहे है। बेईमानी का अधेरा दुनियाँ को ढक देना चाहता है, पर ईमानदारी की ज्योति इने गिने नक्षत्रों की तरह उसे रोशन करती रहती है।

पण्डित जी—सेठ जी, उधार का एक पहलू यह भी है, कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज में पारस्परिक सहयोग की नितान्त आवश्यकता रहती है। उपकार और प्रत्युपकार के बिना समाज का काम भी नही चल सकता।

सेठ—आप कह तो ठीक रहे है पण्डित जी, पर दूध का जला क्या करे ? उसे छाछ भी फूक-फूक कर पोनी पडती है।

पंडित जी—फूक-फूक कर पोने और विवेक से काम लेने को हर समझदार बुरा नही समझेगा, किन्तु जरूरत मन्द को आर्थिक सहयोग न देने का नियम बना लेना उचित नही है।

भगवानदास—अभी उधार देकर किसी को दुश्मन नहीं बनाया है, पडित जी! अन्यथा आप भी हमारे विचारों का समर्थन करते।

पण्डित जी—ऐसी बात नही है भगवानदास, मैंने ऐसे सेठ देखे है जिन्होने बीस वर्ष पुराना अपने बाप का कर्जा चुकाया है। ऐसे व्यक्ति भी देखे है जो रुपया कर्ज लेकर नौकर बनकर चुकाते रहे हैं। ऐसे मजदूर देखे है जिन्होने २० रुपये के कर्ज के व्याज में वर्षो पानी भरा है।

सेठ—बीस रुपयो के व्याज मे बडा शोषण हुआ बेचारे का।

पण्डित जी—सेठ जी, इसे आप कुछ भी कहे, जरूरत मन्द हर शर्त मे बाँधा जा सकता है और बिना शर्त और बिना लिखत लिखाये लाखो रुपयो का उधार लेन-देन मैंने देखा है।

सब्जी वाला—सेठ जी, आप लोगो मे तो उधार लेन-देन पर कई बडे बड़े फर्म चलते है।

सेठ जी—चलते है, पर आखिरी नतीजा बुरा ही होता है, उधार लेन देन वालों को अदालतो मे ६५ प्रतिशत मामले मुकद्दमे उधार को लेकर चलते है।

पण्डित जी—उधार की स्वस्थ परम्परा को स्वार्थी लोगो ने कड़ा व्याज और काटा ले लेकर दूपित बना दिया है। इस निद्यप्रवृति के कारण लोगो मे बेईमानी आ गई है।

मनोहरदास—क्या कडे व्याज और काटे ने ही लोगो को बेईमान किया ?

पण्डित जी—नही मनोहरदास, इसमे विकृत और विकृत सामाजिकता भी प्रमुख कारण है। न्यायालयो मे झूठी साक्षी पर सफल होने वाले न्याय ने, सब को झूठ और झूठ को सच करने मे निपुण वकीलो ने, धन के झूठे महत्व ने, बुद्धि विकास के साथ सुसस्कृति के अभाव ने, ओछे तर्क स्तर ने, लोभ की उग्रता ने, राजनीति मे बेईमानी के आक-

र्पक चित्रण ने, व्यापार में राज्य के अधूरे हस्तक्षेप ने, ईमानदारी के प्रति जनता की उदासीनता और अश्रद्धा ने लोगों को वेईमान वना दिया है।

भगवानदास—उधार लेने वालों ने विश्वासघात, कृतघ्नता और निन्दा करके उधार देने वालों को कठोर वना दिया है। नही तो वेचारे इस सब्जी वाले को ५० रुपये के लिए आपकी इतनी मनुहार न करनी पड़ती।

सेठ—पण्डित जी, वैसे मैंने इन दिनों उधार देना बन्द कर दिया था। पर आज आपके कारण इसे ५० रुपये ॥) आने व्याज पर उधार दे रहा हूँ।

सब्जी वाला—सेठ जी, आपका यह उपकार जीवन भर नही भूलूगा। प्रति माह २ रुपया किस्त देकर चुका दूगा। पठान की गालियों से पीछा छुडाकर आपने मुझे वचा लिया है।

[पटाक्षेप]

दूकानदारी

प त्र—दूकानदार, ग्राहक, रामलाल, श्याम, लालाजी ।

दूकानदार—आइये लाला जी, क्या लेना है आपको ? यह आपही की दूकान है ।

ग्राहक—शादी के लिए कुछ कपडा खरीदना है, किसी अच्छी दूकान की खोज कर रहा था ।

दूकानदार—वाह जी लालाजी ! खूब कही आपने आप भी बूढ़े आदमी है । मै भी दूकानदारी करते-करते बूढा हो गया । अच्छा नही होता तो इतने दिन टिकता कैसे ? आइये ! आप वढिया से वढिया कपड़ा और सस्ते दाम । देखने मे तो कोई दोष ही नही है । आपको जचे तो लेना नही वाजार सामने है ही ।

ग्राहक—लो भाई ! इतना कहते हो तो दिखाओ, अपना माल, ईमानदारी से सौदा देना ।

दूकानदार—शादी पर्दे से होगी या नई मोड के मुताबिक विना पर्दे की होगी ।

ग्राहक—आजकल तो लड़के-लडकियाँ नई मोड़ से ही शादी करना पसन्द करते है पर्दे का तो नाम ही उन्हे नही सुहाता । वनारस की अच्छी साड़ी, नई फैशन की दिखाओ, आर उसके साथ खपने वाली सब चीजे दे दो । दाम वाजिव लगाना ।

दूकानदार—वस, वस लाला जी यह लीजिए सब चीजे आपके

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

सामने है चीज हमारी दाम तुम्हारे। जचे सो लगा दो, मैं नही बोलूगा।

ग्राहक—कैसे दूकानदार हो तुम। चिकनी चुपडी बातें बनाकर हमें ठग लिया। दाम तो अच्छी चीज के ले लिए। चीज बदलकर दूसरी दे दी। माप जोख में भी चीजे पूरी नही उतरतीं। बूढे आदमी होकर ऐसा भी धोखा कोई करता है। अपनी चीजें सम्भालो और मेरे रुपये वापिस करो।

दूकानदार—चीजें वापिस लेने के लिए नही बेची थी, लालाजी मैं आपके बाप का नौकर था, जो मुफ्त में खटा लिया, और चीजे वापिस करदीं। दाम भी पूरा नही देना चाहते। और चीज भी बढ़िया चाहिये। जाइये फालतू बकवास न बढ़ाइये।

ग्राहक—जाऊँगा कैसे? अपने रुपए वापिस लेकर जाऊँगा। यह लो अपना माल, और भले आदमी की तरह रुपए वापिस करदो, नही तो पुलिस बुलाऊँगा।

दूकानदार—जाओ बुलाओ पुलिस, मेरा माल ही नहीं है। है कोई रसीद, तुम्हारे पास मेरी दी हुई, कि मेरा माल साबित करोगे। ठीक से जाओ तो जाओ नही तो धक्के देकर निकलवा दूगा।

ग्राहक—रसीद तो तुमसे माँगी थी, तब तो तुमने उल्टा सीधा समझाकर कह दिया कि फिर रसीद की क्या जरूरत है। अब कहते हो कि मेरा माल नही है। अच्छे धोखेबाज हो। याद रखो काठ की हाँडी एक बार ही चढ़ती है। अब तुम्हारी दूकान पर कभी नही आऊँगा, और मेरी जान पहचान का भी कोई नहीं आयेगा।

दूकानदार—संसार की औरतें बाँझ नही हैं। तुम्हारे जैसे बहुत जन्मे हैं। तुम जैसा एक-एक व्यक्ति एक-एक बार आयेगा तो, भी मेरी जिन्दगी तो पार हो जायेगी।

ग्राहक—जिदगी तो पार हो जायेगी, किन्तु इस पाप कर्म से छुटकारा कैसे होगा। इस काया का निस्तार कैसे होगा। ऐसे कुकर्म से नरक भुगतना ही पडेगा।

दूकानदार—किसने देखा है स्वर्ग नरक ? जाओ-जाओ अपना रास्ता पकड़ो।

(दृश्य परिवर्तन)

रामलाल—भाई श्यामलाल लडके की शादी है, कुछ कपडा, खाने-पीने की चीजे लेनी है। कोई विश्वासी दूकान तो वतलाओ, जिससे निश्चितता से सौदा ले सकू।

श्यामलाल—भाई रामलाल, सीधे लालाकिशनलाल की दूकान पर चले जाओ। जैसी चाहोगे वैसी चीज मिलेगी। दाम भी वाजिव लगेगे। कोई चीज पसन्द न होगी तो, वापिस भी कर सकोगे, वदल भी सकोगे। वडा नेक दूकानदार है। ग्राहको की सुविधा के लिए कपडा और किराना दोनों चीजों क अलग-अलग विभाग खोल रखा है।

रामलाल—वस भाई, ऐसी दूकान पर ही भेजो, जहाँ ठगाई का करोवार नही हो कम माप तोल नही हो। मिलावट नही हो। तुम्हें समय हो तो जरा वाजार तक चलो सौदा दिला दो।

श्याम—उस दूकान पर साथ जाने की जरूरत तो नही है, क्योंकि चाहे वच्चा जाये, चाहे बूढा जाये, अनजान जाये चाहे होशियार सवके साथ एक सा व्यवहार है, पर तुम कहते

हो, तो चलता हूँ। दूकानदार का व्यवहार देखोगे तो खुश हो जाओगे।

रामलाल—ऐसे ईमानदार और नेक दूकानदार को पाकर भला कौन खुश नही होगा। साथ हो झंझट से और समय की बचत भी हो जायेगी।

श्याम—लाला जी मेरे दोस्त के लड़के की शादी है। इसे सारी चीजे अपनी पसन्द की दे दो। आप तो हम लोगों की सारी रीति रस्मों से जानकार है। चीज अच्छी टिकने वाली देना। शादी बिना पर्दे के नई मोड़ से होगी।

लालाजी—बस-बस कहने की जरूरत नही है। सिर्फ इतना बतादो कि लडकी गोरी है या श्याम वर्ण। जीमनवार में क्या बनाओगे। नई मोड में जीमनवार तो दो सौ व्यक्तियों से ज्यादा तो होगो ही नही। कम से कम करना हो तो वह भी बतादो।

रामलाल—आगे तो पांच मिठाई से सारा गाँव जिमाया था, पर अब तो हलवाई पूड़ी की जीमनवार होगी और दो सौ की जगह डेढ सौ ही करना है।

लालाजी—गोरी लड़की के लिए फिरोजी या हल्की आसमानी रंग की बेलदार, साड़ी सुन्दर रहेगी। दाम सब पर पडे हुए हैं, जो पसन्द हो ले सकते हो। अगर किसी कारण से घर की औरतें नापसन्द करे तो बदल सकते हो। वापिस कर सकते हो। सारे कपड़े फडदी सूरत दे दिये है। किराने की चीजों की फड़दी बना दी है। दूकान से ले लें।

रामलाल—भाई श्यामलाल तुमने बड़ी अच्छी दूकान बतायी। नही तो हैरान हो जाता। सारी चीजे सबने पसन्द कीं

और ऐसे हिसाब से दी गई थी कि न तो बड़ी और न कम ही हुई सब गाँव वाले कह रहे थे कि अब तो इस दूकान को छोडकर दूसरी दूकान पर सौदा लेने कभी नही जायेगे बडा नेक दूकानदार है ।

श्यामलाल—नेकी रख कर दूकानदारी करता है तभी तो लाला किशनलाल का सारे शहर में नाम है। दिन दूना रात चौगुना बढ रहा है । नेक नीयती से जो कारबार नही करते है वे एक बार मन की राजी भले ही करले । आखिर बेईमान का घोडा मैदान में हार जाता है ।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

ऑफिसर

पात्र—प्रद्युम्न, रमेश, सुरेश, साहब।

प्रद्युम्न—अबके तो साहब बहुत कड़े आए हैं। दिन भर डाट डपट चलती है।

सुरेश—घर पर बीवी से लड़कर आते होंगे! अफसर बन जाते है तो पारा सातवें आसमान पर चढ़ जाता है।

रमेश—कल रमेश को ऐसा डाँटा कि उसकी घिग्घी बँध गई, बेचारा चार मिनट लेट आया था। घर में बच्चा बीमार था, पर यह कौन सोचे।

प्रद्युम्न—न सोचे तो न सही! हमारे से कौन सा काम लेगे? आखिर, हम इन्सान है, पशु तो नही। हमारे भी घर परिवार है। हर काम तो हमारे हाथों से ही होता है। साहब अकेला क्या कर लेगा?

रमेश—कल मुझे भी बुला कर कहा कि मिलके खेती सम्बन्धी सभी आकड़े इकट्ठे करके लाओ, जिलाधीश का डी० ओ० आया है। पर जानते हो, मैंने क्या कहा? मैंने कहा, साहब, अभी दो तीन तहसीलों के आँकड़े आये नही है। उनसे मगवा रहा हूँ, आने पर सभी आँकड़े इकट्ठे कर दूंगा। चलो सप्ताह भर की छुट्टी तो हुई।

सुरेश—दो दिन से मेरे पीछे पड़ा हुआ है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कहाँ, क्या क्या हुआ? सारे जिले के आँकड़े इकट्ठे करके लाओ।

प्रद्युम्न—लो भाई, कल नया फरमान आने वाला है। रजिस्टर मेरे सामने रखा जावे। एक मिनट भी लेट आये तो रैड निशान किए जाएँ, बीड़ी, सिगरेट, चाय दफ्तर में न मंगवाई जाए। विना मतलब इधर-उधर न बैठे, काम की डायरी रखी जाए, बिना इजाजत किसी से सीधा न मिला जाए।

सुरेश—और केजुअल भी ली जाए तो पिछली ली जाए। कल मेरा सिर इतना दर्द करने लगा कि दफ्तर न आ सका, घर से दरख्वास्त लिख दी, ठीक १०॥ वजे साहब की मेज पर पहुँच गई, पर साहव ने छुट्टी स्वीकार न की और रिमार्क लगा दिया कि १२ घन्टे पूर्व दरख्वास्त आनी चाहिए।

साहब—यह क्या खुराफात? अरे पहले से ही कैसे मालूम हो गया, कल पेट दुखेगा और सुरेश को तो यह भी मालूम हो गया, कल नकसीर छूटेगी।

सुरेश—साहव, पहिले पता न चले तो छुट्टी कैसे मिले? आखिर पता चलाना ही होगा। एक्सीडेन्ट तक की पहिल से भविष्यवाणी करनी होगी। आकस्मिक घटना के लिए लिया जाने वाला अवकाश १२ घण्टे पूर्व लिया जाएगा, यह सब लिखना पड़ेगा।

साहव—तो यह मेरे आदेश की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप है।

रमेश—नही साहव! आपके आदेश के विरुद्ध कैसे चल सकते है? आप ऑफीसर, जो ठहरे।

साहब—मै सब समझता हूँ! यह सवकी मिली जुली खुराफात है। जानते हो, इस खुराफात का परिणाम क्या हो सकता है? सर्विस बुक खराब करा सकता हूँ, इंक्री-

मेंट बन्द करवा सकता हूँ। चाहूं तो डिसमिस भी करवा सकता हूँ। गंदा रिमार्क लगा सकता हूं। ट्राँसफर करा सकता हूँ। छुट्टियाँ ग्रान्ट नहीं करता हूँ। देखें कल तुम कैसे नहीं आते हो।

प्रद्युम्न और सुरेश—साहब आकस्मिक अवकाश तो देना ही होगा आपको, इसे आप कैसे रोक सकते है? अच्छा नमस्ते कल नहीं आ सकेंगे।

(दृश्य परिवर्तन)

साहब—मै इस दफ्तर में कल ही आया हूं। मैंने देखा है आप लोगों में अजीब सा भय छाया हुआ है,। हम नाम के अफसर हैं, सच्चे अफसर तो आप लोग ही हैं। आपके बल पर ही हमारा काम चलता है। घड़ी की सूई समय बताती हैं, पर उसे चलाने में कितने पुर्जो का सहयोग रहता है। एक भी पुर्जा यदि असहयोग करदे, वह ठीक तरीके से काम न करे तो क्या घड़ी चल सकती है? आप अपना काम करें। ईमानदारी और लगन से काम करें। मेरे में और अपने में कोई अन्तर न समझें। हर एक साथ अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व समझें। काम जितना भी हो अपटूडेट हो।

प्रद्युम्न—साहब, कैजुअल।

साहब—आपकी इच्छा हो तब ले। पर दफ्तर में आते ही मुझे यह जानकारी मिल जाए कि आज फलाँ साहब नही आएंगे। प्रार्थना-पत्र तो कभी दे सकते हैं, जाने से पहिले या आने के बाद।

सुरेश—और साहब! चाय

साहब—वह भी मगवा सकते है ! जब चाय पीने की इच्छा हो गई तो, चाय तो पीनी ही पड़ेगी ।

रमेश—साहब, आप यो उदार रहे तो हमारा काम भी आपको हरदम तैयार मिलेगा । कभी भी लापरवाही की शिकायत सुनने को नही मिलेगी ।

साहब—अच्छा तो आज की चाय सभी मेरी ओर से पीये । जिलाधीश ने कुछ सूचनाएँ चाही है । मै आप लोगो के पास भिजवा रहा हूँ कल तक तैयार हो जाए ।

रमेश—साहब क्या आया है सवका मित्र आया है । बड़ा जिन्दादिल व्यक्ति है ।

प्रद्युम्न—काम लेने का तरीका भी खूब जानता है । एक चाय में कितनी सूचनाएँ तैयार करवाली है ।

सुरेश—वात तो ठीक कहते हो, वह साहब ६ महीनो में जो आँकड़े तैयार न करवा सके, वह दो दिन मे ही तैयार करवा लिया ।

साहब—आज रमेश क्यों नही आए ?

प्रद्युम्न—साहव, वह वीमार हो गया । अचानक ही बुखार हो गई ।

साहब—शाम को चलो तो मुझे भी साथ ले लेना । रमेश के यहा चलेगे । पता चला आए कि बुखार उतरी या नही ।

प्रद्युम्न—भाई ऐसा अफसर आज तक नही आया जो अपने अधीनस्थ लोगों की इतनी आत्मीयता के साथ खोज खबर रखे और इस तरह उनके सुख दुख में हाथ वटाए तथा उनकी तरक्की में शरीक हो ।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

मुनीमजी

पात्र—सेठ जी, मुनीम जी, निरंजन ।

सेठ जी—मुनीम जी ! आप पुराने आदमी है । आपकी यह क्या आदत है कि शाक तरकारी जो भी लाते है, उसमें से कुछ अपने घर भेज देते है । बिना पूछे छोटी-छोटी चीजें घर ले जाते है । यह अच्छी आदत नही है, अपनी आदत सुधारिये, नही तो ठीक नहीं रहेगा ।

मुनीम जी—नही सेठजी ऐसा अब नही करूँगा । उस दिन जरा जल्दी थी, इसलिये थोड़ा शाक भेज दिया । गल्ती माफ करें ।

सेठ जी—मुनीम जी, आपके घर निरंजन गया था । कहता था, दो छोटी कटोरी, और एक थाल आपके यहां पड़ा है । आपको पहिले भी कहा था, बिना माँगे आप कोई भी चीज न ले जावें ।

मुनीम जी—हाँ कहा तो था, भूल से चली गई होंगी, ला दूगा ।

सेठ जी—अरे निरजन कल जो मेहमान आये थे मुनीम जी उन से क्या बातें कर रहे थे । सुनता हूं, उन्होने अपना परिचय अपना भतीजा होने का दिया था, इस घर के मालिकों में अपनी गिनती कराई थी, क्या यह ठीक है ?

निरंजन—मालिक में अब अपने मुंह से क्या बताऊँ, बात तो आप तक पहुँच ही गई है । बात तो कुछ ऐसी ही कर रहे थे ।

सेठ जी—निरंजन यह समझाने से तो मानते नही । क्या करूँ,

कुछ समझ में नही आता आदमी सब तरह से होशियार है, मेहनती है, किन्तु आदत इतनी बिगड़ी हुई है कि कि घर मे रखने लायक नही है।' पर पिताजी के जमाने का आदमी है। यह समझ छोड़ा भी नही जाता। मेरी मन्शा कुछ तरक्की करने की थी, पर अब तो तरक्की इनाम सब रोकने पड़ेगे। इतने पर भी मुनीम जी अपनी आदत को नही सुधारेगे तो नौकरी छोड़नी पड़ेगी, सारी बात समझा देना।

निरंजन—मुनीम जी ! सेठ साहब बड़े नाराज होते थे। कहते थे आप यदि अपनी आदत नही सुधारोगे तो छोड़ना पडेगा। इस ओछी वृत्ति के कारण आपकी तरक्की भी नही होगी। न इस वर्ष का इनाम मिलने वाला है। मैने आपको कितनी बार समझाया। आप यह दो चार रुपयों का लालच छोड़ दें, सेठ साहेब ने भी टोका किन्तु आप बार-बार यही हरकत करते है। अब भोगो नतीजा।

(दृश्य परिवर्तन)

सेठ जी—मुनीम जी ! यह क्या मैने आपको एक लाख रुपए दिए थे, आपने दो लाख तीस हजार कैसे सौपे ?

मुनीम जी—सेठ जी मैं रुपए लेकर जिस काम से गया था, वह सौदा तो अभी तक बाकी है। किन्तु आते समय एक जहाज लोहे का मिल गया, उसे सत्तर हजार मे खरीदा ही था इतने मै एक अग्रेज व्यापारी आ पहुँचा। उसने दो लाख मे वह माल खरीद लिया। यह एक लाख तीस हजार नफे के है। नफे खाते जमा हो जाएगे।

सेठ जी—आपके लड़के की शादी है। अभी-अभी आपके हाथ से

थोक व्यापार हुआ है, वहू के सारे गहने कपड़े मैं अपनी पसन्द के भेजना चाहता हूं। आपकी क्या राय है?

मुनीम जी—कमाई होना न होना आपकी तकदीर की बात है। मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। लड़के को शादी में देने की बात यह है कि सब काम फर्म के नियमानुसार होने चाहिएँ। मेरे लिए अलग या विशेष नियम नहीं चलेंगे और न मैं अपनी हैसियत से अधिक खर्च करूँगा। आपकी मेरे पर क्या दृष्टि है, यह क्या कम है?

सेठ जी—मुनीम जी पौत्र की बँधाई में सब ग्राहकों का सम्मान करना है। पहिले नम्बर के व्यापारियों को २५ मोहर बड़ा सीरोपा, दूसरे नम्बर के व्यापारियों को दस मोहर और छोटा सीरोपा और तीसरे नम्बर के व्यापारियों को दो मोहर और एक साफा देना है।

मुनीम जी—जैसी आपकी इच्छा है, सब को बाँट दिया जाएगा।

सेठ जी—यह क्या मुनीम जी अपने लड़के को देते समय हाथ क्यों खींच लिया? वह भी तो दुकान का व्यापारी है।

मुनीम जी—मैं कब कहता हूँ, व्यापारी नहीं है, किन्तु पहले नम्बर की भेंट पाने का तो हकदार नहीं है। उसे तो तीसरे नम्बर की भेंट ही मिल सकती है। लड़का है तो क्या हुआ, काम तो नियम से ही होगा।

सेठ जी—सारे मुनीम, गुमाश्तों तथा नौकर, ठाकुरों को भी बँधाई देनी है, किसको क्या दिया जाएगा, कहें?

मुनीम जी—बड़े कुंवर साहब के पुत्र हुआ था, उस समय जो दिया था वही में लिखा हुआ है, उसी हिसाब से देवें तो कैसा रहेगा?

श्रमनिष्ठा

पात्र—सास, कमला, चम्पालाल, विमला, रामलाल।

सास—बहू, तुम तो काम से जी चुराती हो। छोटा-मोटा, काम भी कह कर कराना पड़ता है और बड़ा काम तो जब तक मैं साथ नही जुटती तब तक पड़ा ही रहता है।

कमला—नौकर की तरह खटती हूँ, फिर भी आपको सन्तोष नही होता। आपकी बराबरी मैं कैसे कर सकती हूँ मेरे जैसी बहुएं काम से हाथ भी न लगाती होंगी।

सास—तुम्हारी तरह मै भी एक दिन इस घर में आई थी। मैंने अपनी सास को काम से हाथ भी नही लगाने दिया था। पानी, पीसना, चराना, दूहना, बिलोना, झाड़ना, रसोई, दोनों समय का पूरा काम था ही, इसके अतिरिक्त सीना, पिरोना, साफ-सफाई का काम करना पड़ता था। यह सब कठिन काम तो मै तुम्हें बताती ही नही साधारण कामों के भी जब तक मै साथ न दू, तुम नही करती हो। तुम तो मालिक नौकर का भेद लिए बैठी हो।

कमला—पतिदेव ! नौकर की तरह खटती हूं, फिर भी सास जी की आंखों में शूल बनी हुई हूँ। इस घर में मुझे एक क्षण भी शान्ति नही मिल रही है। आप इसका कुछ विचार करें, नही तो इस प्रकार खटने से तो मैं बच नही सकूगी।

चम्पालाल—बहू को इतना क्यों खटती हो माँ ? वह बेचारी तुम्हारी तरह कैसे खट पायेगी ? सारा दिन नौकर की

तरह खटाना ठीक नहीं है। बीमार पड़ जाएगी तो कौन उसकी सेवा करेगी ?

माता—बेटा, खटने से कोई बीमार नही होता, बीमार तो बैठे रहने से होता है। मै बहू से कठिन काम तो कराती नही हू क्योकि वह कोई भी काम बिना मेरी सहायता के नही कर पाती। मै बुढापे मे कब तक ऐसा करती रहूँगी। आखिर तो घर इसे ही सम्भालना है। तुम बहू के बहकावे मे कैसे आये कि मुझे उलाहना देते हो। मै तो तुम्हारे और उसके भले के लिए ही कहा करती हूँ। समझा देना बहू को।

चम्पालाल—माता जी से मैने तुम्हारी बात कह तो ली पर कड़ी फटकार सुननी पड़ी। अब मै तो तुम्हारी बात के बीच मे न पड़ूँगा।

कमला—तुम नही पड़ोगे तो मै अपने आप सुलट लूँगी। कल से मै कोई भी काम न करूँगी, देखूँ कोई कैसे मुझ से काम कराता है।

चम्पालाल—काम नही करोगी तो भूखों मरना पड़ेगा। इस घर मे स्थान नही होगा और न माता पिता एक पैसा देंगे। दुनियाँ को लुटा देंगे पर हमारे पल्ले कुछ न पड़ेगा, सोच लेना।

कमला—चाहे कुछ भी हो मेरे से काम नहीं होगा। मैं इतनी धौंस नही सहूगी। तुम चलो तो ठीक है, नहीं तो मुझे कल पीहर पहुँचा आओ।

(दृश्य परिवर्तन)

विमला—माता जी आप सारे दिन मुझे किसी भी काम में हाथ

नही लगाने देते। मै बैठी-बैठी आलसी बन जाऊँगी। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए कुछ न कछ तो करना आवश्यक है। इस बुढ़ापे में आप तो काम करें और मैं ताकती रहूँ यह शोभा की बात नहीं है।

सास—धन्य हो, बहू ! पर मै ही खाली रहकर दिन कैसे काट सकती हूँ। तुम तो फिर भा कुछ न कुछ करती ही रहती हो। कशीदा, बुनना, सीना आदि क्या ये काम नही है ? दो दिन हँसी खुशी से काट लो, फिर ता इस गृहस्थी के जंजाल में फँसने पर दम मारने को फुरसत तक न मिलेगी।

विमला—क्या अपनी बहू बेटी को लाड़, चाव में इतना बिगाड़ दे कि वह फिर किसी काम के करने लायक ही न रह जाए। मै ऐसे प्यार को हितकर नही मानती, काम करने से ही हौसला बढ़ता है।

विमला की सास—ठीक है। मै तुम जैसी सुशील, सुन्दरी, गुण-वती बहू को पाकर धन्य हूं। मैं ही नहीं तुम से पारिवारिक जन तथा पड़ौसी तक सभी प्रसन्न है। तुम्हारे मधुर व्यवहार से ही तुम सबकी ही प्रशसा पात्र हो।

विमला—पतिदेव ! आप कुछ भी मुझ से नखरा कर खुद अपने काम स्वयं ही पूरे कर लेते हो। हम क्या सजावट की वस्तु है कि अलमारी की शोभा बढ़ायें। देखिये मैं आपको कुछ न करने दूंगी। सब काम मुझसे ही कराना होगा।

रामलाल—ठीक है, पर अपना काम खुद करना चाहिए। यह तुमने ही तो मुझे सिखाया है। शिक्षक अपने उपदेश के विपरीत चले तो उसे क्या कहें ?

विमला—आप तो शर्मिन्दा करते है, मेरा विश्वास है हम स्त्रियाँ

काम करने के लिए ही पैदा हुई है। पर यहाँ कुछ करने देती है सास जी ? सब खुद ही करती रहती है।

रामलाल—और वह ही रास्ता आप अपना रही है। धन्य हो तुम, तुम जैसी श्रमनिष्ठ नारी को पाकर मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझता हूँ।

[पटाक्षेप]

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

सह-अस्तित्व

पात्र | फातिमा, रमजान, खुदावक्ष,
| नारायण, सरपंच, सुक्खा आदि।

फातिमा—क्या खिलाऊँ अब्बा, आज दो दिन से घर में कुछ नहीं है। पड़ोसियों के यहाँ भी गई, पर किसी ने दो रोटियों का आटा नही दिया। मैं तो मतीरे के बीजों पर ही गुजारा कर रही हूँ।

रमजान—विटिया, यह गाँव क्या है? शमशान है। किसी के दुख दर्द में मैं भले ही पहुँच जाऊँ, पर मेरे यहाँ काम पड़ने पर कोई नहीं आता।

फातिमा—अब्बा, इस गाँव में हमें क्या सुख है? तुम्हें अभी झपकी आई तो मैं पानी का घड़ा लेकर कुएं पर गई, किसी ने भी एक डोल पानी नही दिया। राजूराम, मानमल सभी पानी निकालते रहे, मैंने हर एक से गिड़-गिड़ाकर एक डोल पानी मांगा, पर किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी।

रमजान—क्या गाँव है? सभी अपने में ही मस्त है! कोई मरे या जीए, किसी को चिन्ता नही। विचारा वैल भी कई दिन का भूखा है। जा मैं तो भूखा मर रहा हूं तू क्यों मरे? हाय! अल्लाह, मैं मर गया तो फातिमा का क्या होगा?

खुदावक्ष—रमजान मामा घर में हो क्या? सुना है वीमार हो।

रमजान—क्या पूछते हो खुदावक्ष, पूरे पूरे एक महीने से खाट सेवन कर रहा हूँ।

खुदावक्ष—तो मामा जी कैसे गुजारा चलता है ?

रमज़ान—क्या कहूँ भानजे, बड़ी मुशीवत में हूँ ! इस गाव में तो अल्लाह किसी को जन्म भी न दे। पूरा दोजख है, दोजख कोई किसी की कटी अंगुली पर भी मूतना नही चाहता।

फातिमा—तो अब्बा, क्या करूँ, मै भी दो दिन से भूखी ही हूँ।

रमजान—ले यह लोटा लेजा और रहन रखकर खाने का सामान ले आ !

फातिमा—तीन चार ही वर्तन वचे है, अब्बा यह भी उठ जाएँगे तो काम कैसे चलेगा।

नारायण—रमजान ! ओ रमजान ! घर में हो क्या ? सरपंच साहव ने वुलाया है।

रमजान—चल भाई, चला तो नही जाता है, पर चलूँगा, उठ खुदावक्ष।

सरपँच—रमजान, तेरे वैल ने सुक्खा के खेत में वहुत नुकसान किया है। सुक्खा ने पचायत मे शिकायत की है। कहो, तुम क्या कहते हो ?

रमजान—मै क्या कहूं सरपंच साहव ? मै एक महीने से बीमार पड़ा हूँ। वेचारे वैल का क्या कसूर ? आखिर भूखा कितने दिन रहता ?

सरपंच—तो मैं क्या करूँ, अगर सुक्खा मान जाए तो पंचायत मामला वापिस दे देगी, नही तो कुछ कार्यवाही करनी ही पड़ेगी।

रमजान—सुक्खा से, भाई सुक्खा इस वार माफी दो, मेरी बीमारी की वजह से यह सव हो गया, आइन्दा वैल को वाँध कर रखूँगा।

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

सुक्खा— मैं माफी नहीं दे सकता, मैं तो हरजाना लेकर ही रहूँगा, मेरा जो नुकसान हुआ है, उसकी पूर्ति होनी ही चाहिए।

सरपँच—तो रमजान काका, मेरे पास तो एक ही न्याय है। सुक्खा ने ५० रुपयों का नुकसान लिखवाया है, या तो ५० रुपये दे दो, नहीं तो बैल नीलाम करके हरजाने के रुपये वसूल कर लिए जाएँगे।

रमजान—ठीक है, सरपंच साहब! यह बैल तो झंझट था। अब रास्ता साफ हो गया। चल उठ खुदाबक्ष घर चलें, बैल गया तो मेरा गाँव भी गया।

(दृश्य परिवर्तन)

फातिमा—लो अब्बा खाना तैयार है।

रमजान—रहने दे बेटी! खाना साथ ले ले, अब तो इस गाँव की सीमा के बाहर ही चलकर खाना खायेंगे! खुदाबक्ष से अरे खड़ा क्या देखता है जो कुछ बचा है, जल्दी २ समेट लो।

एक आदमी—अरे रमजान काका कहाँ चले?

रमजान—गाँव छोड़कर जा रहा हूँ। जहाँ हैवानों की बस्ती हो वहाँ रहने में मजा नही।

दूसरा आदमी—तो हमारी बस्ती में रह जाओ। हमें तुम्हारे जैसे बुजुर्ग आदमी की जरूरत है रमजान बाबा।

रमजान—नहीं रे! मैंने इस गाँव को छोड़कर कहीं दूर जाने की ठान ली है।

तीसरा आदमी—नही ऐसा तो नहीं करने देंगे, रमजान काका। तुम हमें छोड़कर नहीं जा सकोगे। तुम्हें हमारी बस्ती में ही रहना होगा।

रमजान—मै बीमार आदमी हूँ ।

पहला आदमी—तो क्या हम सेवा नही कर सकते है ।

रमजान—मै गरीब हूँ, बीमारी में सब बर्तन भाजन बेच बेच कर खा गया ।

दूसरा आदमी—कोई बात नही बाबा ! चार घरों से एक एक बर्तन भाजन ला देंगे । जब नये बर्तन भाजन ले आओ तो लौटा देना ।

रमजान—अरे आज भी खाने पीने की व्यवस्था नही है ।

तीसरा आदमी—इतनी बड़ी वस्ती में दो आदमी भूखे थोड़े ही रहेगे । हमें खाने को मिलेगा, तो तुम्हे भी मिलेगा । रमजान काका चिन्ता न करो, हमारा सारा जीवन सह-अस्तित्व पर आधारित है, हम पारस्परिक सहयोग के बल पर ही अपनी बस्ती का संचालन कर रहे है । परस्पर में एक दूसरे के पूरक बन कर बड़े सुखी है ।

रमजान—लो तुम चाहते हो तो रह जाऊँगा ।

एक आदमी—अभी अतिथि घर मे चलो, कल तुम्हारे लिए झोपड़ी बना देगे रमजान चाचा ।

[**पटाक्षेप**]

नवनिर्माण की पुकार

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक सन्त प्रवर आचार्य श्री तुलसी गणी का दिसम्बर १९५६ की दिल्ली यात्रा, प्रेरणाप्रद सन्देशों, दार्शनिक प्रवचनों और देश-विदेश के लब्धप्रतिष्ठ विचारको, पत्रकारो, धार्मिक नेताओं, राजनीतिज्ञो तथा कूटनीतिज्ञो के साथ जीवन निर्माण संबन्धी गम्भीर मन्त्रणा एवँ चर्चावार्ता का ब्यौरेवार सँक्षिप्त विवरण।

सम्पादक

सत्यदेव विद्यालंकार

सहसम्पादक

प्रेमचन्द भारद्वाज

(मूल्य दो रुपया डाकखर्च अलग)

प्रकाशक
श्री जयचन्द लाल दफ्तरी
व्यवस्थापक
आदर्श साहित्य संघ
सरदार शहर (राजस्थान)

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

प्रथम सँस्करण
अक्तूबर १६५७
आश्विन २०१४ वि०

पुस्तक मिलने का पता
(१) आदर्श साहित्य संघ, सरदार शहर, (राजस्थान)
(२) सत्यदेव विद्यालंकार ४० ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

हम निराश क्यों हों ?

पूजनीय मुनिवर आचार्य-श्री तुलसी भारतीय साधु-सन्त-ऋषि-परम्परा के पुनीत प्रतीक हैं। उनका उज्वल चरित्र, उनका तपश्चरण, उनका सन्त स्वाध्याय, सेवा-निरत जीवन, उनका निरलसकर्मयोग सहस्रावधि व्यक्तियो को सत्प्रेरणा प्रदान करता है। बाल्यकाल से ही वे तप, स्वाध्याय और व्रत मे अपना पवित्र जीवन बिता रहे है। मेरी दृष्टि मे वे महान् सन्त है। संस्कृत, प्राकृत और पाली के वे उद्भट विद्वान है। उच्च कोटि के दर्शन शास्त्री है। उनकी वाणी एक द्रष्टा की वाणी है। उनके शब्द तप. पूत है। उनका शरीर, मन और हृदय निष्ठामय साधना के अनल से सुस्नात है।

उनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन भारतीय समाज को शान्ति-मय क्रान्ति का कल्याणकारी सन्देश दे रहा है। अनेक नगरों, गाँवों और जनपदो मे आचार्य-श्री के द्वारा उत्प्राणित मुनिजन भारतीय मानव को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर रहे है। हमारे देश को आज परमपूजार्ह ऋषिवर सन्त विनोवाभावे और श्रद्धास्पद मुनि श्री तुलसी गणी के द्वारा एक अभिनव सन्देश मिल रहा है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे बीच आज भी ऐसी विभूतियाँ विद्यमान है।

हम निराश क्यों हो ? हमारा भविष्य उज्वल है; क्योंकि हमारे बीच ऐसे सन्तगण है और वे हमे उद्बुद्ध होने का सन्देश दे रहे है। आचार्य श्री की तृतीय दिल्ली यात्रा का यह विवरण जनता के लिये प्रेरणा-प्रद सिद्ध होगा,—ऐसा मेरा विश्वास है। मै श्रद्धा युक्त हृदय से आचार्य-श्री के सन्तत चरणशील, तपस्तप्त, दृढ़ श्रीचरणो मे अपने विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूँ।

५, विंडसर प्लेस, नई दिल्ली
१० अक्तूबर १९५७

—बालकृष्ण शर्मा

प्राक्कथन

ईसा से २०० वर्ष पहले, की लगभग २२०० वर्ष पुरानी एक ऐतिहासिक घटना है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर मिस्र विजय करने गये। वहाँ से लौट कर सीनेट में उनको अपनी विजय यात्रा की रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी। उन दिनों में सेनापति और सम्राट सीनेट में स्वयं उपस्थित होकर अपनी विजययात्राओं का विवरण उपस्थित किया करते थे। सम्राट् खड़े हो गये और केवल छोटे छोटे तीन वाक्य बोल कर बैठ गये। उन का भावार्थ यह था कि "मै गया, मैंने देखा और मैंने जीत लिया।" संक्षिप्त विवरण पर सभी सदस्य स्तम्भित रह गये; क्योंकि किसी को भी यह आशा नहीं थी कि बिना किसी युद्ध, संघर्ष अथवा प्रतिरोध के मिस्र पर इतनी सरलता से विजय प्राप्त कर ली जायगी।

इतिहास अपने को दोहराता है और ऐतिहासिक घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रहती है। वे घटनायें सर्वांश में एक दूसरे से चाहे न मिलती हों, फिर भी उन मे पर्याप्त समता रहती है। उनका क्षेत्र भी बदलता रहता है; परन्तु परिणाम उनका एक सा ही होता है। २२०० वर्ष पुरानी उस घटना के प्रकाश में अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की राजधानी की यात्राओं पर यदि कुछ विचार किया जाय तो उनका विवरण सहज में जूलियस सीजर के शब्दों मे दिया जा सकता है। भेद केवल इतना करना होगा कि जूलियस सीजर के उत्तम पुरुष के वाक्यों का प्रयोग प्रथम पुरुष में करना होगा।

आचार्य श्री साम्राज्यवादी राजनीतिक नेता नहीं हैं। जूलियस सीजर की आकांक्षायें उनके हृदय में विद्यमान नहीं हैं। वे किसी साम्राज्य

के प्रतिनिधि अथवा प्रतीक नहीं है। वे एक धार्मिक, आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक महापुरुष अथवा धर्मगुरु हैं। सांस्कृतिक चेतना को जागृत कर मानव के नवनिर्माण का बीड़ा उन्होंने उठाया है। उनके पास न कोई सेना है, न सैन्य सामग्री है और न युद्ध के किसी प्रक.र के आयुध। उनके पीछे कानून या शासन की भी किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं है। तन ढकने मात्र के वस्त्र, काष्ठ के कुछ पात्र और स्वयं अपने कन्धों पर सम्हाल सकने योग्य स्वाध्याय सामग्री के अतिरिक्त उनके पास कोई और सांसारिक संग्रह रह नही सकता। अपने भोजन की आवश्यकता गोचरी द्वारा इस ढंग से पूरी की जाती है कि उसका अतिरिक्त भार किसी भी गृहस्थ पर नहीं पड़ना चाहिये। अपनी मर्यादा के अनुसार किसी भी गृहस्थ के यहाँ उसकी प्रस्तुत भोजन सामग्री में से कुछ थोड़ा सा लेकर अपनी क्षुधा निवृत्ति कर ली जाती है। सायंकाल सूर्यास्त के बाद खाने या पीने का कोई भी सामान अपने पास रक्खा नही जाता। यात्रा भी बिना किसी वाहन व साधन के सर्वथा पैदल की जाती है। सांसारिक दृष्टि से ऐसे बाह्य साधन सामग्री रहित व्यक्ति "सैनिक आक्रमण" की कल्पना तो क्या करेगा, वह किसी से कोई जोर जबर-दस्ती अथवा आग्रह भी नहीं कर सकता। उपदेश करना उसकी अन्तिम सीमा है। उसको पार कर कोई आदेश देना भी उसका काम नहीं है। ऐसे महान् व्यक्ति की जूलियस सीजर के साथ तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी उनकी धर्म यात्रा किसी भी सेनापति अथवा सम्राट् को दिग्विजय करने वाली विजययात्राओं से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसीलिए जूलियस सीजर के शब्दों को कुछ बदल कर हम आचार्य श्री की धर्मयात्राओं का विवरण इन शब्दों में देने का साहस कर रहे है—

"वे आये, उन्होंने देखा और उन्होंने जीतलिया"

आचार्य श्री की सात वर्ष पहले की गयी दिल्ली यात्र की तुलना यदि तीसरी बार १९५६ के दिसम्बर मास में की गयी यात्रा के साथ

की जा सके तो सहज में पता चल सकता है कि तब और अब में कितना अन्तर है। तब अणुव्रत आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, निन्दा और प्रचंड विरोध का सामना करना पड़ा था। उस के प्रति तरह तरह के सन्देह एवं आशंकायें प्रकट की गयीं। उस पर साम्प्रदायिक संकीर्णता, धार्मिक गुटबन्दी और पूँजीपतियों का राजनीतिक स्टन्ट होने के आरोप लगाये गये। परन्तु अब १९५६ में उसका कैसा आशातीत स्वागत और कल्पनातीत समर्थन किया गया। तब भी कुछ समय बाद उसकी सफलता पर लोगों की आँखें चौंधिया गयी थी। बड़े विस्मय के साथ लोगों ने देखा था कि अत्यन्त प्रबल रूप मे फैले हुए भ्रष्टाचार, अनाचार तथा अनैतिकता के विरोध में उठायी गयी आवाज़ में कैसी शक्ति है और उसके पीछे कितनी बड़ी साधना है। आचार्य श्री की तपःपूत वाणी ने तब भी राजधानी को झकझोर दिया था और भूकम्प आने पर जैसे पृथ्वी दूर-दूर तक डोल जाती है वैसे ही दिल्ली को झकझोरने से पैदा हुई हलचल की लहरें न केवल हमारे देश के छोटे बड़े नगरो तक सीमित रहीं; किन्तु विदेशो तक में उनका प्रभाव दीख पड़ा। लेकिन अब १९५६ की यात्रा के ४० दिनों में व्यापक नैतिक क्रान्ति की जो प्रचंड लहरें पैदा हुईं, उनसे यह सिद्ध हो गया कि अणुव्रतो में संसार को हिला देने वाली वह दिव्य अणुशक्ति विद्यमान है, जो अणु आयुधों के अभिशाप को वरदान में परिणत कर सकती है। अणुव्रतों के इस दिव्य रूप की जो छाप राजधानी के माध्यम से देश विदेश के विचारकों के मस्तिष्क पर पड़ी, वह आचार्य श्री की इस यात्रा की सबसे बड़ी सफलता है। इसको सभी ने एक मत से स्वीकार किया है। यह अवसर भी कुछ ऐसा था कि यूनेस्को, बौद्ध गौष्ठी तथा जैन गौष्ठी आदि के सांस्कृतिक समारोहो के कारण देशविदेश के कुछ विशिष्ट विचारक राजधानी में पहले से ही उपस्थित थे और आचार्य श्री के सन्देश को उन तक पहुँचाने के लिए अनायास ही अनुकूलता उपस्थित हो गयी।

आचार्य श्री का यह तीसरी बार का दिल्ली-आगमन यों ही नहीं हो

गया था। उसके पीछे यदि कोई आन्तरिक प्रेरणा थी तो बाहरी प्रेरणा भी कुछ कम न थी। अणुव्रत आन्दोलन के व्यापक नैतिक महत्व को राजनीतिक क्षेत्रों में भी स्वीकार किया जाने लग गया था। भले ही पहली पंचवर्षीय योजना के निर्माण काल में नैतिक निर्माण के महत्व को ठीक ठीक न आँका जा सका हो; परन्तु दूसरी योजना के निर्माण काल में उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकी। समाजव्यवस्था के लिए समाजवादी आदर्श को स्वीकार करने के बाद राजनीतिक नेताओं का भी ध्यान देश की अस्तव्यस्त सामाजिक स्थिति की ओर आकर्षित होना सहज और स्वाभाविक था। उन्हें यह अनुभव होने में विलम्ब नहीं लगा कि समस्त सामाजिक बुराइयों का मूलभूत कारण वह अनैतिकता है, जो हमारे सामाजिक जीवन को भीतर ही भीतर घुन की तरह खाती जा रही है। उन्होंने यह भी जान लिया कि व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के बिना राष्ट्र निर्माण के महान् स्वप्न और महान् योजनायें पूरी नहीं की जा सकतीं। उनके लिए स्वयं राजनीतिक हलचलो से इस महान् कार्य के लिए समय निकाल सकना सम्भव न था। इसी कारण उनका ध्यान उन विशिष्ट व्यक्तियों की ओर आकृष्ट हुआ, जो नैतिक उत्थान अथवा नैतिक निर्माण के कार्य में संलग्न थे। आचार्य-श्री ने पिछले सात आठ वर्षों में दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, खानदेश, गुजरात, बम्बई, पूना तथा मध्यभारत आदि की लगभग बारह पन्द्रहहजार मील लम्बी शंकर दिग्विजय की सी जो धर्मयात्राएं की थीं उसमें अणुव्रत का अमर सन्देश उन्होंने घर-घर पहुँचा दिया। उसकी गूँज निरन्तर राजधानी में भी सुनी जाती रही और यह ऊँचे राजनीतिक क्षेत्रों में भी स्वीकार किया गया कि अणुव्रत आन्दोलन राष्ट्र निर्माण की सुदृढ़ नींव तैयार करने के लिए एक अमोघ साधन है। सम्भवतः इसी कारण हमारे महान् नेता प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने भी आचार्य-श्री को दिल्ली आ कर उन से मिलने का सन्देश मुनि श्री नगराज जी से एक मुलाकात में निवेदन किया था। आचार्य-श्री के दिल्ली में हुए प्रथम पदार्पण के बाद से ही राज-

धानी में उनके सुयोग्य शिष्य मुनि श्री बुद्धमलजी और उनके बाद उनके विद्वान् शिष्य एवं प्रखर प्रवक्ता मुनि नगराज जी तथा मुनि महेन्द्र जी आदि अणुव्रत के सतत् प्रसार में लगे हुए थे। उनके ही कारण राजधानी में आन्दोलन के लिए निरन्तर अनुकूलता पैदा होती जा रही थी। उन्होंने अणुव्रतों के सन्देश को राष्ट्रपति भवन और मन्त्रियों की कोठियों से सामान्य जनों तक पहुँचाने का निरन्तर प्रयत्न किया था। अणुव्रत आन्दोलन के अन्य समर्थको और कार्यकर्ताओं की भी यह प्रबल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को इस महत्वपूर्ण अवसर पर राजधानी पधारना ही चाहिये; क्योकि वे यहाँ आयोजित सांस्कृतिक आयोजनों का लाभ अपने इस महान् आन्दोलन के लिए प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखते थे। उनकी इच्छा यह थी कि आचार्य-श्री को उजैन से सीधे दिल्ली आकर १६५६ का चातुर्मास राजधानी में ही करना चाहिये। राजधानी के विशिष्ट नेता और कार्यकर्ता भी इसी मत के थे। कांग्रेस महासमिति के महा मन्त्री श्री श्री मन्नारायण, श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री मती सुचेता कृपलानी, डा० सुशीला नैयर, श्री-मती सावित्री देवी निगम डा० युद्धवीर सिह तथा ऐसे ही अन्य महानुभाव भी समय समय पर अपना आग्रह तथा अनुरोध प्रकट करते रहते थे। आचार्य-श्री ने दिल्ली न आ कर सरदारशहर मे चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया। अनेक सज्जनों ने, जिनमे श्री श्री मन्नारायण प्रमुख थे, सरदराशहर पहुँच कर सार्वजनिक रूप से भी दिल्ली पधारने के लिए अनुरोध किया था। चातुर्मास पूरा होने से पहले आचार्य-श्री दिल्ली के लिए प्रस्थान नही कर सकते थे। फिर भी दिल्ली प्रस्थान के सम्बन्ध मे आचार्य श्री ने अन्य सन्तो से विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया और अन्त में यह निश्चय प्रकट कर दिया कि चातुर्मास पूरा करके दिल्ली को प्रस्थान किया जायगा।

आचार्य-श्री ने एक प्रवचन मे अपनी दिल्ली यात्रा के सम्बन्ध में ठीक ही कहा था कि मेरी दिल्ली यात्रा को लेकर कई लोग भिन्न भिन्न

अनुमान लगाते है, कई लोगों ने अपनी कल्पना में इसे अत्यधिक महत्व दिया है और वे शायद आपस में बातें करते होंगे कि राष्ट्रपति, पंडित नेहरू आदि बड़े बड़े नेताओं ने मुझे वहाँ आने का निमन्त्रण दिया है। पर मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मेरे पास उनका कोई निमन्त्रण नही है। हाँ, उनकी इस सम्बन्ध में रुचि अवश्य है। मेरा वहाँ जाने का उद्देश्य देश-विदेश से आये लोगों से सम्पर्क कायम करना और देहली-वासियों की प्रार्थना को पूरा करना है। देहली आजकल अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का केन्द्र बना हुआ है। वहाँ हम अपने शासन की बात को प्रभावशाली ढंग से रख सकते है, सुना सकते है। वहाँ के नेताओ का भी खयाल है कि मेरा वहाँ जाना उपकारक हो सकता है। लोगों का स्वभाव होता है कि पहले वे बड़ी-बड़ी कल्पनाएं कर लेते है। यह आवश्यक नहीं है कि सारी कल्पनाएँ सही निकलें। फिर अगर कोई बात उनकी कल्पना के अनुकूल नही निकलती तो वे बड़े हताश हो जाते है और उतनी ही अधिक हीन आलोचना कर डालते हैं। ये दोनों बातें अच्छी नहीं हैं। लोगों को न तो पहले अधिक कल्पना ही करनी चाहिए और न फिर अधिक हताश ही होना चाहिये। मेरी देहली यात्रा के सम्बन्ध में भी, मै समझता हूँ सबका दृष्टिकोण संतुलित रहना चाहिये।

कार्तिक पूर्णिमा (१८ नवम्बर) को चातुर्मास पूरा होने पर दूसरे दिन १९ नवम्बर को आचार्य श्री ने २३ साधु और सात साध्वियो के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया और पहले ही दिन १६ मील का विहार किया गया। २०० मील का मार्ग तय कर के ३० नवम्बर को दिल्ली पहुँचना था क्योंकि उस दिन यहाँ जैन सेमिनार में प्रवचन की व्यवस्था की जा चुकी थी। प्रतिदिन इतना लम्बा विहार किये विना लम्बा मार्ग नियत अवधि में पूरा नही किया जा सकता था। सुजानगढ़ से मुनि श्री सुमेरमल जी तथा छापर से मुनि श्री दुलहराज जी को भी ३० नवम्बर को दिल्ली पहुँचने का आदेश दे दिया गया था। वे भी नियत दिन पर यहाँ आ पहुँचे।

विहार की आपबीती कहानी के लिए मुनि श्री सुखलाल जी के शब्दो से अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिल सकते। उन्होंने उसका वर्णन इस प्रकार किया है कि "हमारा सारा समय प्रायः चलने में ही बीतता। कभी दो विहार होते, कभी तीन विहार होते। आराम पूरा कर पाते या नही कि शब्द हो जाता "संतो तैयार हो जाओ" फिर भी जादू यह कि किसी को इसकी शिकायत नही थी। रात्रि को बैठकर अपने पैर अपने आप ही दवा लेते और सो जाते। सुबह तक थकान मिट जाती। फिर सुबह विहार के लिये तैयार हो जाते। कई दिनों तक यह क्रम चला। आखिर औदारिक शरीर पर इसका असर तो आया ही। बहुतों के पैर दुखने लगे। कोई बोलता तो गरम पानी लाकर पैर धो लेता और कोई नहीं बोलता तो चुपचाप अपनी बहादुरी को छिपाये रहता। पर तो भी मानसिक उत्साह मे कोई कमी नही आई। रास्ते मे आचार्य श्री के पैरो मे भी दर्द हो गया। दो तीन दिन तो बोले नही। पर आखिर वह कोई सुई नहीं थी, जो छुपाई जा सके। गति की मन्थरता ने यह प्रकट कर दिया कि "आचार्य श्री के पैरो मे भी दर्द है" और उनके जिम्मे और भी बहुत कार्य थे। आये लोगो से मिलना, व्याख्यान देना, चर्चा-वार्ता करना आदि। हम चाहते थे कि आचार्य श्री विश्राम करें, पर उन्हें रात को भी देर तक विश्राम मिलना मुश्किल था। हम लोग तो कभी-कभी दूसरे कमरे मे जाकर आराम भी कर लेते थे, पर आचार्य श्री के पास सोने वाले संतों को तो पूरी तपस्या ही करनी पडती थी।

तारानगर, राजगढ़ से भिवानी तक बालू का कच्चा रास्ता था। सोचा करते—यहाँ चलने में दिक्कत होती है। आगे (भिवानी से दिल्ली तक) पक्की सड़क आ जायेगी। चलने में सुगमता रहेगी। कच्चे रास्ते में जगह-जगह काँटे आते हैं, रेत बहुत है। जगह-जगह रास्ता पूछना पड़ता है, फिर भी कभी-कभी तो चक्कर खा ही लेते थे। ये सब दुविधाएँ भिवानी से आगे टल जायेंगी। पर बात और ही निकली।

सर्दी की मौसम थी। सुबह ही सुबह जब पैरों का खून जम जाता और सड़क पर चलते तो पैर कट जाते। आसपास की पगडंडियाँ कँकरीली और कंटीली होने के कारण काम में नही आतीं। अतः दिल्ली पहुँचते पहुँचते पैर लहूलुहान हो गये। उपचार भी करते, कपड़ा भी बाँधते पर २०-२० मील चलने तक उनका क्या पता चलता था, प्रायः फट जाता। साथ-साथ सड़कों पर मोटरों की भरमार रहती। मोटर की आवाज सुनकर सड़क छोड़कर नीचे चलते। मोटर निकल जाने के बाद फिर सड़क पर आते। एक मोटर जाती कि दूसरी मोटर की आवाज सुनाई देती। यही क्रम रहता।

रास्ते में ग्रामीण लोग खेतो में काम करते हुये पूछते—कहाँ जाते हो ?

हम कहते—दिल्ली।

"वहाँ क्या कोई मेला है ?"

"हाँ, वहाँ सत्संग होगा। दूसरे देशों के बड़े-बड़े विचारक अभी दिल्ली आये हुए है, उनका मेला है, अतः हम भी उनसे मिलने दिल्ली जा रहे है।"

बहुत से लोग कहते—तुम मोटर मे क्यो नही बैठ जाते ? तुम अपना बोझ खुद क्यों ढोते हो ? तुम्हारे साथ इतनी मोटरे चलती है, सर्विस भी चलती है, फिर भी तुम इतना दुःख क्यों पाते हो ? कई कहते—देखो ये बेचारे इतनी कड़कड़ाती सर्दी में नंगे पैर, नंगे सिर, अपने कंधो पर बोझा लिये क्यों घूमते है ? वे हमारे पास आते और कहते—अभी सर्दी बहुत है। चलो गाँव में हम तुम्हे रोटी देंगे। धूप निकलने पर आगे जाना।

बड़े मनोरंजक प्रश्न होते। हम उनको सस्मित उत्तर देते हुए आगे बढ़ जाते। कई गाँव तो बीच में ऐसे आये, जहां शायद जैन साधुओं ने कभी पैर भी नही रखे थे। हमारा वेष और इतना बड़ा काफिला देखकर आश्चर्य करते, सकुचाते और कही-कही अपमान भी करते।

पर हमे इनकी क्या परवाह थी, अपने रास्ते पर चलते रहते ।

मार्ग में न जाने कितने दृश्य आते थे । निरा एकान्त स्थान, शुद्ध हवा, दोनों तरफ लहलहाते खेत, भोले-भाले ग्रामीणों के झुँड । जहाँ जाते वहाँ मेला सा लग जाता । ग्रामीण बच्चे तो आहार भी मुश्किल से करने देते । रात को सोने के लिये मकान भी कच्चे मिलते । कही स्कूलों में ठहरते तो ऊपर के रोशनदान प्रायः फूटे मिलते । नींद कम आती थी । कपड़े कम थे और नीचे से फर्श टूटा-फूटा होता । दरवाजों के किवाड़ भी टूटे रखे रहते । पर इतना होने पर भी कभी मन में विषाद नहीं आया । सबका लक्ष्य था दिल्ली पहुंचना और परवशता तो थी नही । स्वेच्छा से सब लोगों ने इसे झेला था । अतः विषाद की बात ही क्या थी ।"

कुछ भाई बहिन भी इस पैदल यात्रा में साथ थे । कुछ श्रावक मोटरों पर भी सारी यात्रा मे साथ रहे, परन्तु जो एक बार पैदल चल लेता था, वह फिर मोटर पर सवार होना पसन्द नही करता था । इस प्रकार एक बड़ी अच्छी टोली बन गई थी । आचार्य श्री का विनोदपूर्ण हास्य सभी को निरन्तर स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान करता रहता था । किसी भी व्यक्ति से जब आचार्य श्री यह पूछते कि कहो भाई, थकान का क्या हाल है तो सहसा ही सारी थकान दूर हो जाती और नयी स्फूर्ति से अगले विहार के लिए तैयार हो जाते । मार्ग मे अनेक गाँवो में श्रद्धालु लोगों ने आचार्य श्री से अपने यहाँ कुछ समय रुकने का आग्रह किया; किन्तु निश्चित दिन निश्चित ध्येय पर पहुँचने का संकल्प निरन्तर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता रहा और ऐसा कोई आग्रह स्वीकार नही किया जा सका । अनुरोध करने वाले दिल्ली पहुँचने का महत्व जानकर स्वयं भी उसके लिए विशेष आग्रह नहीं करते थे । दिल्ली में अणुव्रत आन्दोलन तथा आचार्य श्री की अन्य सांस्कृतिक प्रवृत्तियो मे दिलचस्पी रखनेवाले अनेक श्रावक श्राविकायें राजधानी के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से दिल्ली आ पहुँचे थे ।

आचार्य श्री के दिल्ली के अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रमों, आयोजनों, प्रवचनों तथा मुलाकातों का विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है। पाठक स्वयं उनके सम्बन्ध में सम्मति कायम करेंगे तो अच्छा होगा। फिर भी संक्षेप में यह बताना आवश्यक है कि आचार्य श्री ने अपने इस प्रवास में एक भी समय ऐसा नहीं जाने दिया जब कि कोई न कोई कार्यक्रम नहीं होता था और जिज्ञासु अथवा मुमुक्षु लोग आचार्य श्री को घेरे न रहते थे। पैदल परिभ्रमण करते हुए भी सारी राजधानी का मन्थन अथवा विलोडन कर लिया गया। राष्ट्रपति भवन, मन्त्रियों के निवास स्थान, संसद सदस्यों के निवासगृह, सार्वजनिक सभास्थल, राजघाट, बन्दीगृह, हरिजन बस्ती, दिल्ली सचिवालय, न्यायालय, विद्यालय तथा ऐसे ही अन्य सब स्थान आचार्य श्री के शुभ पदार्पण से पवित्र हो गये और चारों ही ओर कोने-कोने में आचार्य श्री का जन-जीवन के नव-निर्माण का सन्देश गूँज उठा। उसकी प्रतिध्वनि से कितने ही देश-विदेश के विद्वान्, मुमुक्षु यात्री, विचारक, लेखक, पत्रकार, अनेक नैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनो में लगे हुये प्रचारक, बौद्ध भिक्षु, यूनेस्को के प्रतिनिधि, राजनीतिज्ञ आचार्य श्री के दर्शन प्राप्त करने और उनसे विचार-विनिमय करने के लिये आते रहे। अंग्रेज, अमेरिकन, फ्रांसीसी, जर्मन, जापानी, तथा श्रीलंकावासी विदेशी अच्छी संख्या में आचार्य श्री के सान्निध्य मे उपस्थित होते और चर्चावार्ता के बाद अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटते। इन मुलाकातों में विचारों का मन्थन बड़ा ही समाधानकारक रहा। पैदल यात्रा के कारण आचार्य श्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने संघ के साथ जब विहार करते थे तब जनता श्रद्धा-भरी आँखों से स्वागत करती हुई सम्मान के साथ नतमस्तक हो जाती थी। चारों ओर राजधानी में आचार्य श्री के नाम की धूम मच गई थी। दिल्ली को झकझोर कर आचार्य श्री ने उसमें नैतिक नवनिर्माण की जो नवचेतना पैदा की, उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैल गया।

राजधानी के इन दिनों के कार्यक्रमों में अणुव्रत सेमिनार, अणुव्रत

सप्ताह, चुनाव शुद्धि के लिए प्रेरणा और मैत्री-दिवस का आयोजन प्रमुख थे। अणुव्रत आन्दोलन आचार्य-श्री की प्रमुख देन है, जिसका लक्ष्य जन-जीवन का नैतिक नवनिर्माण करना है। आचार्य-श्री के नव-निर्माण के अनुसार राष्ट्रनिर्माण का भव्यभवन व्यक्तिगत जीवननिर्माण की ठोस एवं सुदृढ नींव के बिना खड़ा नहीं किया जा सकता। यह आन्दोलन उसी नींव का निर्माण कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से यह आन्दोलन मानव को सर्वथा निर्भय बना कर वह अभयदान देना चाहता है, जिससे अणुआयुधों के निर्माण की होड़ निरर्थक सिद्ध होकर हिंसा-प्रतिहिंसा तथा घात-प्रतिघात की समस्त दुर्भावनाओं का स्वतः अन्त हो जायगा और अत्यन्त दुःसाध्य प्रतीत होने वाली निःशस्त्रीकरण तथा विश्वमैत्री आदि की समस्त समस्यायें सहज में हल हो जायेगी। इसी हेतु आचार्य-श्री के दिल्ली प्रवास का शुभ श्री गणेश अणुव्रत सेमिनार से किया गया और दूसरा मुख्य आयोजन राष्ट्रीय-चरित्र निर्याण मूलक अणुव्रत चरित्र-निर्माण सप्ताह का रक्खा गया, जिसका उद्घाटन सप्रू भवन मे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था।

चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार और नैतिक पतन हमारे राष्ट्र की प्रमुख समस्या बन गये है। उनमे जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद का बोलबाला है, उससे राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता भी चिन्ता में पड़ गये है। उनके कारण पैदा हुई गुट्टबाजी ने कांग्रेस सरीखी शक्तिशाली संस्था की भी जड़ें हिला दी हैं। आचार्य-श्री ने इन सब अनर्थो के निवारण के लिए चुनाव शुद्धि के आन्दोलन को रामबाण औषध के रूप में उपस्थित किया। उसकी उपयोगिता को चुनाव आयुक्त श्री सुकुमार सेन तथा सभी दलों के राजनीतिक नेताओं ने भी स्वीकार किया। उसके सम्बन्ध में तैयार की गयी प्रतिज्ञायें यदि कुछ समय पहले उपस्थित की गयी होतीं, तो उनका निश्चित प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहता। फिर भी जो विचारात्मक क्रान्तिकारी प्रेरणा उससे प्राप्त हुई, वह व्यर्थ नहीं गयी और भविष्य मे उसके और भी अधिक शुभ परिणाम प्रकट होने

निश्चित है ।

"मैत्री दिवस" का आयोजन राष्ट्रीय की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व अधिक रखता है। महात्मागाँधी की एक पथभ्रष्ट युवक द्वारा की गई निर्मम हत्या मानव समाज के प्रति किया गया एक बहुत बड़ा अपराध है। इसी कारण पारस्परिक भूलों एवं अपराधों की आन्तरिक प्रेरणा से क्षमा याचना करने के उद्देश्य से आयोजित इस दिवस के कार्यक्रम के लिए राजघाट से अधिक उपयुक्त दूसरा स्थान नहीं हो सकता था, और राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से अधिक सात्विक दूसरा कोई राजनीतिज्ञ उसके उद्घाटन के लिये मिलना कठिन था। इस दिवस का शुभ आरम्भ इस भावना से किया गया कि प्रतिवर्ष किसी नियत दिवस पर यदि शुद्ध अन्तःकरण से सब लोग एक दूसरे के प्रति किये गये ज्ञात-अज्ञात अपराधों एवं भूलों के लिये क्षमायाचना करेंगे तो विश्व का वातावरण इस पवित्र भावना से प्रभावित हुए बिना न रहेगा और प्रत्येकव्यक्ति-व्यक्ति के रूप में विश्वमैत्रीके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार यह सबसे बड़ी और सबसे अधिक पवित्र भावनामय भेंट दे सकता है। इसी कारण राष्ट्रपति ने इस आयोजन का स्वागत करते हुए उसको स्थायी बनाने पर जोर दिया।

आचार्य-श्री के प्रवचनों में इस बार एक अद्भुत और अलौकिक प्रेरणा निहित थी। उनके उद्गारों मे विस्मयजनक आकर्षण पाया गया। उनकी तपःपूत साधना में दिव्य शक्ति विद्युत् शक्ति के समान विद्यमान थी। इसी कारण उनके प्रति बिना किसी प्रयास के अनायास ही छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में स्वाभाविक आत्मीयता पैदा हो गयी। हर किसी ने उनको अपना पथ प्रदर्शक मान लिया। आचार्य श्री का व्यक्तित्व धर्मगुरु के साथ-साथ जन-नेता के रूप में भी निखर उठा और अणुव्रत आन्दोलन यथार्थ में जीवन, जागृति, ज्योति, प्रेरणा स्फूर्ति एवं क्रियाशीलता का स्रोत बन गया। समाचारपत्रों और रेडियो विभाग के सहयोग से उसको जो समर्थन मिला, उससे उस के महत्व

एवं उपयोगिता में चार चाँद और लग गये।

चालीस दिन के अत्यन्त व्यस्त एवं व्यग्र कार्यक्रम से भी आचार्य श्री—दिल्ली की जनता की नैतिक भूख को पूरा नही कर सके। लोगों की प्रबल इच्छा थी कि आचार्य-श्री को अभी दिल्ली में ही कुछ दिन और रहना चाहिये और अपने प्रवचनोंके लाभ से उसको वंचित नहीं करना चाहिये। पिलानी के उदार-नेता सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने भी आचार्य-श्री से दिल्ली में कुछ स्थायी रूप से रहने का अनुरोध किया था। उस अनुरोध में दिल्ली की जनता की आकाँक्षा एवं आग्रह प्रतिध्वनित होता था, परन्तु सरदार शहर में माघ महोत्सव के आयोजन के कारण आचार्य-श्री का राजधानी में अधिक दिन रहना संभव न हो सका और दिल्लीवासियों को अतृप्त छोड़कर आचार्य श्री ७ जनवरी को सरदारशहर के लिए बिदा हो गये। लौटते हुए आने की अपेक्षा विहार में कठोरता कहीं अधिक उग्र हो गयी। वर्षा और कुहरे की प्राकृतिक अड़चनों से अधिक बड़ी अड़चन स्थान-स्थान पर रुकने के लिए किया गया लोगों का आग्रह था। आग्रह टाला जा सकता था; किन्तु वर्षा और कुहरे को कौन टालता? इस कारण होनेवाली देरी को विहार की गति बढ़ाकर ही पूरा किया जा सकता था। रास्ते मे सर्दी का प्रकोप भी कुछ कम न था। आचार्य-श्री ने अपने जीवनकाल मे पहली बार नांगलोई में सर्दी के प्रकोप की शिकायत की। प्रातः-काल उन्होंने कहा—"आज तो इतनी सर्दी लगी है कि इसके कारण रातभर जागरण करना पड़ा। यह पहला ही अवसर है कि इतने लम्बे समय तक सर्दी के कारण जागना पड़ा हो। पर यह खेद की बात नही है। खूब एकान्त का समय मिला। मनन, चिन्तन और स्वाध्याय में खूब जी लगा। ऐसा एकान्त समय मुझे कभी ही मिला करता है, क्योंकि सारे साधु तो गहरी नींद में सोये हुये थे।"

चिन्तन, मनन और साधना की यह कैसी ऊँची भावना है?

लौटते हुए पिलानी में जो चार दिन का प्रवास हुआ उसका विवरण

भी इस ग्रन्थ में दिया गया है। पिलानी शिक्षा का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण ही नहीं; किन्तु वहाँ जो कार्यक्रम हुए, उनके कारण भी पिलानी के प्रवास का विशेष महत्व है। आचार्य-श्री ने वहाँ अपने पहले ही प्रवचन मेंयह महत्वपूर्ण घोषणा की थी कि हमारा देश केवल कृषि प्रधान नही, किन्तु ऋषि प्रधान है और उस के ऋषियों की अमर वाणी ने सदा ही मानव को सुख शान्ति का आत्मिक सन्देश प्रदान किया है।

माघ कृष्णा ११ (२६ जनवरी, १९५७) को आचार्य-श्री संघ सहित सानन्द सकुशल सरदारशहर वापिस पधार गये। अपनी इस धर्मयात्रा के सम्बन्ध में आचार्य-श्री ने सरदारशहर में एक प्रवचन में स्वयं यह कहा—मेरी यह यात्रा अत्यन्त आनन्दायिनी रही। इसका एक मात्र कारण था—संकल्प की दृढ़ता, और इसी दृढ़ता के कारण अनेक बाधाओं के आने पर मै भी समझता हूँ कि मेरा प्रत्येक कार्य बिल्कुल नियत समय पर हो पाया। मैंने यहाँ से चलते वक्त संकल्प किया था कि मुझे देहली ३० तारीख को पहुँचना है और ठीक उसी दिन वहाँ पहुँच गया। आने का भी मेरा निश्चय इसी प्रकार बिल्कुल पूरा हुआ। आप समझिये कि इतनी लम्बी यात्रा में घंटों की भी देरी नहीं हुई है और यदि ऐसा होता तो सम्भव है मेरे कार्यक्रम में बाधा आ सकती। पर मुझे इसको खुशी है कि मेरी यात्रा बड़ी आनन्ददायी रही।

इस सफल और आनन्ददायी यात्रा का यह विवरण भी पाठकों के लिए वैसा ही प्रेरणादायक एवं स्फूर्तिदायक होना चाहिए जैसी कि आचार्य-श्री की वह यात्रा प्रत्यक्ष में थी। आचार्य-श्री के इस दिल्ली प्रवास से असंदिग्ध रूप में यह प्रमाणित हो गया कि अणुव्रत आन्दोलन समय की एक प्रबल माँग है और आचार्य-श्री ने उसको पूरा करने का बीड़ा उठाकर एक महान् कार्य का सम्पादन किया है। "नहि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति" की गीता की वाणी अणुव्रत

आन्दोलन पर सवा सोलह आने चरितार्थ हुई है । उपेक्षा, उपहास, निन्दा एवं विरोध की घनी घटा को भेद कर अणुव्रत आन्दोलन एक निश्चित् तथ्य के रूप में सूर्य के समान प्रकट हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अणुव्रत आन्दोलन में अणुआयुधों के प्रतिकार की शक्ति एवं सामर्थ्य अनुभव की जाने लगी है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य में अपने सहयोगी श्री प्रेमचन्द भारद्वाज (संयुक्त सम्पादक—"योजना"), श्री बाबू लाल जी शास्त्री, श्री सिद्ध-गोपाल जी काव्यतीर्थ और श्री प्रभात कुमार जी जोशी का जो अमूल्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ उसके लिए मै उनका हृदय से आभारी हूँ।

४० ए. हनुमान रोड
नई दिल्ली
१० अक्तूबर ५७

सत्यदेव विद्यालंकार

आभार प्रदर्शन

"नवनिर्माण की पुकार" अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की दिल्ली-यात्रा का संक्षिप्त विवरण है, जो आचार्य श्री के प्रेरणादायी संदेशों, दार्शनिक प्रवचनो, देश-विदेश के लब्ध प्रतिष्ठ जननेताओं और विचारकों के साथ जीवन-निर्माणात्मक तात्विक विषयों पर हुए वार्तालापो द्वारा मानव मात्र को चरित्र-निर्माण और अध्यात्म-जागृति का सृजनात्मक मार्ग देता है।

यह विवरण बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। लगभग चालीस दिन के नई दिल्ली के प्रवास मे आचार्य श्री के पुण्य प्रभाव से राजधानी का कोना कोना प्रभावित हो उठा। इस प्रेरणादायक और महत्वपूर्ण विवरण के सम्पादन और प्रकाशन मे सुप्रसिद्ध हिंदी पत्रकार और यशस्वी लेखक भाई श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार ने अपना अमूल्य सहयोग देकर आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति और अणुव्रत आन्दोलन के प्रति अपनी अनुरक्ति का एक और सहज व स्वाभाविक परिचय दिया है। उनका सहयोग आन्दोलन के साथ उसके प्रारम्भ से ही रहा है। हिन्दी के दार्शनिक कवि आदरणीय श्री बालकृष्ण शर्मा ने उपोद्घात लिखने की कृपा की है। मैं दोनो विद्वानो के प्रति सविनय आभार प्रदर्शित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के सुशृंखलित प्रकाशन मे चुरु के सहृदय साहित्य प्रेमी श्री हिम्मतमल जी, हंसराजजी, अभयसिंहजी सुराणा ने स्वर्गीय पूज्य श्री तिलोकचन्दजी सुराणा की पुण्य स्मृति मे नैतिक सहयोग के साथ आर्थिक सहयोग देकर अपनी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सुरुचि का परिचय दिया है, यह सबके लिए अनुकरणीय है। मैं आदर्श साहित्य संघ की ओर से सादर आभार प्रकट करता हूँ।

—जयचन्दलाल दफ्तरी

व्यवस्थापक, आदर्श साहित्य संघ

कहाँ — क्या

पहला प्रकरण

दूसरा प्रकरण

तीसरा प्रकरण

पहला प्रकरण

आयोजन (१) बौद्धगोष्ठ।

श्रमरा संस्कृति का मूल—अहिंसा

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसीगणी अपने ३१ शिष्यों तथा अनेक श्रावक श्राविकाओ के साथ २६ नवम्बर सन् १६५६ को नई दिल्ली के यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल में पधारे जहाँ कि बौद्धगोष्ठी का विशेष आयोजन किया गया था। आचार्य श्री के सरदार शहर से दो सौ मील का पैदल प्रवास करने के बाद नई दिल्ली पधारने पर यह पहला आयोजन था, जिसमें वे यात्रा से सीधे सम्मिलित हुए। स्वागत समारोह एवं अभिनन्दन का आयोजन नहीं किया गया था, क्योंकि आचार्य श्री कामकाज के सम्मुख उसको कुछ भी महत्व नहीं देते। लम्बी यात्रा के बाद विश्राम करने का प्रश्न भी काम में जुटने में बाधक नहीं हो सकता था। फिर भी उपस्थित श्रावक श्राविकाओं ने अभिनन्दनपरक नारों से आचार्य श्री का स्वागत किया और वे नारे शीघ्र ही अत्यन्त शान्त एवं गम्भीर वातावरण में विलीन हो गये। आयोजन के उपयुक्त वातावरण पहिले से ही बना हुआ था। आचार्य श्री का पदार्पण जमुना में गंगा के संगम की तरह हुआ, जिसमें इतनी बड़ी संख्या में जैन साधु और बौद्ध भिक्षु सम्भवतः पहिली ही बार सम्मिलित हुए। काषाय (पीताम्बर) वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षुओं के साथ शुभ्रवस्त्रधारी जैन मुनियों का समागम अत्यन्त भव्य, दिव्य, सात्विक एवं मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित कर रहा था।

आचार्य श्री के द्वार पर पहुँचते ही जर्मन विद्वान प्रो० हर्मन जैकोबी के दो शिष्य प्रो० ह्रासनोथ और प्रो० हॉफमैन स्वागत के लिये आगे आये। वे बहुत देर से बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भवन में सामने काषाय वस्त्रधारी संसार के विभिन्न भागों से समागत अनेक बौद्ध भिक्षु बैठे थे। पीछे राजधानी के सम्माननीय लोगों, विदेशी राजदूतों, यूनेस्को कांफ्रेन्स में समागत प्रतिनिधियों, पत्रकारो तथा श्रावक श्राविकाओं से हॉल खचाखच भर गया। नम्मोक्कार मंत्र का उच्चारण होते ही समस्त लोग खड़े हो गये।

सुमधुर ध्वनि में अति श्रद्धालीन उपस्थिति मे नमस्कार मंत्र का उच्चारण हुआ। अति शांत वातावरण में प्रो० एम० कृष्ण मूर्ति द्वारा आयोजन का उद्देश्य बताये जाने के बाद आचार्य श्री ने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा :—

बौद्ध सेमिनार के सदस्यो ! भाइयो और बहिनो ! आज मैं अभी अभी जो राजस्थान से दो सौ मील पैदल चलकर आया हूँ, इसका उद्देश्य यही है कि राजधानी में दूर दूर के देशों से आये हुये विद्वानों से विचार विनिमय कर सकूँ। आज यहाँ जो बौद्ध गोष्ठी का आयोजन किया गया है, इसका लक्ष्य भी आपस में विचारो का आदान प्रदान करना ही है अतः उचित है कि मै आपको अपने जैन मुनियों और जैन धर्म का परिचय दूँ।

जैन मुनियों का यह नियम होता है कि वे जीवन भर पैदल यात्रा करते है। किसी भी अवस्था में अपना बोझ आप ही उठाते हैं। वे मधुकरी वृत्ति से घर घर भिक्षा मॉगते है। वे उद्दिष्ट यानी अपने लिये बनाया हुआ भोजन नही लेते। जैन साधुओं के लिये मांस खाना सर्वथा वर्ज्य है। भगवान महावीर ने इसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया है, क्योंकि इससे वृत्तियाँ बिगड़ती हैं। जैन साधु पॉच महाव्रतों का पालन करते हुये जीवन यापन करते है, जैसा कि भगवान महावीर ने कहा है :—

अहिंस सच्चं च अतेणमं च,
ततो य बम्भं य परि गाइं च।
पडिवज्जिया पंच महत्व याइं
चरेज्ज धम्मं जिणदेसियं विड॥

यह पद्य उत्तराध्ययन सूत्र का है, जिसका उपदेश भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के अन्तिम समय दिया था।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में एक संस्कृति का विकास हुआ था, जिसका नाम था 'श्रमण संस्कृति'। जैन और बौद्ध उसी एक संस्कृति की दो धारायें है। यद्यपि आजीवक आदि और भी धाराएँ श्रमण सस्कृति की थी, पर आज जैन और बौद्ध ये दो ही धाराएँ वच पाई हैं। श्रमण संस्कृति का मतलव है अपने अहिसक श्रम द्वारा जीवन यापन करना। इस दृष्टि से मुझे दोनो धाराओ मे वड़ा साम्य मालूम होता है। जिस प्रकार अहिसा का नाम लेते ही उसके साथ जैन और बौद्ध दोनो का नाम याद हो आता है उसी प्रकार भगवान महावीर और वुद्ध का नाम अपने आप आ जाता है। धम्मपद मे भगवान वुद्ध ने कहा है :—

"अहिसा सत्व पाणाना अरि योति पवुच्चति।"

इसी तरह भगवान महावीर ने कहा है—

"अहिंसा सत्व भूएसु संजमो।"

यह ठीक है कि भगवान महावीर ने अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहा है—"स्थूल दृष्टि से अहिंसा का मतलव प्राणी रक्षा से लिया जाता है पर सूक्ष्म दृष्टि से अपनी आत्मा को वुराइयों से वचाना ही अहिंसा है। जो लोग जीवन रक्षा के लिये हिंसा करते है, वे तथ्य को नही जानते। जैसे अन्न वचाने की दृष्टि से किया जाने वाला उपवास यथार्थ दृष्टि से उच्च नहीं है, उसी प्रकार प्राणी रक्षा के लिये की जाने वाली अहिंसा भी उच्च नहीं है। उपवास करने पर अन्न तो अपने आप वच ही जाता है उसी प्रकार जीवन रक्षा तो अहिंसा का प्रासंगिक फल है। अतएव भगवान महावीर ने संयम और अहिंसा को एक ही कहा है।

जातिवाद के विषय में दोनों ही धाराओ मे वड़ा साम्य है। जैसे महात्मा वुद्ध ने कहा है :—

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होइ, कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥

उसी प्रकार भगवान महावीर ने कहा है—

"कम्मुणा बह्मणो होइ, कम्मुणा होई खत्तिश्रो ।
वहसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवई कम्मुणा ॥"

इसी प्रकार पुनर्जन्म, कर्मवाद आदि में भी दोनों में बड़ी समानता है। इसके सिवाय इन दोनो में भेद भी है। जैन धर्म जहाँ कठिन चर्या को स्थान देता है, वहाँ बौद्ध धर्म मध्यम प्रतिपदा को मानता है। भगवान महावीर ने केवल कठिन चर्या पर ही जोर नही दिया है, ध्यान को भी बड़ा महत्व दिया है। उन्होंने कहा है—दो दिनो में होने वाली शारीरिक तपस्या से जितने कर्म कटते है, उतने चार मिनट के ध्यान से कट जाते है। अतः उन्होंने ध्यान पर बड़ा जोर दिया है। मेरी दृष्टि में जैन धर्म आचार और विचार दोनों ही दृष्टियो से मध्यम प्रतिपदा है।

विचार की दृष्टि से जैन धर्म अनेकांत में विश्वास करता है और आचार की दृष्टि से अणुव्रत का मार्ग भी बताता है, क्योंकि महाव्रतों को सब पाल नहीं सकते। यद्यपि विवेचन तो अन्तर दृष्टि से होना चाहिये पर आज हमें समन्वय की बात अधिक देखनी चाहिये। इस प्रकार यदि हम समन्वय की तरफ ध्यान रखेंगे तो हमारे पास अहिंसा एक ऐसा तत्त्व है जिससे हम संसार का बहुत भला कर सकते है।"

प्रो० एम० कृष्णमूर्ति साथ साथ आचार्य श्री के भाषण का अंग्रेजी में अनुवाद करते जाते थे।

प्रवचन के बाद प्रो० ग्लासनीय ने अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने बताया कि किस प्रकार उनकी जैन दर्शन में रुचि पैदा हुई। अपने द्वारा जैन दर्शन पर लिखी गई पुस्तक की भी उन्होंने चर्चा की। आज आचार्य श्री के गुरु कालुगणी और अपने गुरु डा० हर्मन जैकोबी के मिलन को याद कर वे अत्यन्त आनन्दविभोर हो रहे थे कि उन दोनों गुरुओं के दोनों शिष्य आज फिर मिल रहे है।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

इसके बाद जापान के बौद्ध भिक्षु फ्यूजी ने जापानी भाषा में अपनी प्रसन्नता प्रगट की, जिसका हिन्दी अनुवाद उनके ही साथी एक भिक्षु कर रहे थे। अपने भाषण के अन्त में उन्होने एक प्रश्न आचार्य श्री के सामने रखा "जब बौद्ध और जैन धर्म बहुत कुछ समान है तो फिर बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी व्यापक पैमाने पर तथा भारत से बाहर क्यों नही फैला ?

आचार्य श्री ने उत्तर देते हुए कहा—पहले बौद्ध धर्म और जैन धर्म भारत मे बहुत फैले थे, यह बात इतिहास सिद्ध है। पर समय के प्रभाव से बौद्ध धर्म विदेशो में बहुत फैल गया। इसका कारण है कि बौद्ध भिक्षु स्वय विदेशो मे गये और अपने धर्म का प्रचार किया। जैन मुनि एसा नही कर सके। जिस धर्म के साधु स्वयं उसका प्रचार नही करते वह धर्म फैल नहीं सकता। यही कारण है कि जैन धर्म अपने प्रभाव क्षेत्र भारत वर्ष में ही रहा। अत्यधिक विरोधो के बावजूद भी वह भारत में टिका रहा—यह उसकी विशेषता है।

जैन धर्म विदेशो मे नही फैल सका, इसका दूसरा कारण है—बौद्ध धर्म ने मध्यम मार्ग अंगीकार किया अतः वह जन साधारण के अनुकूल था और लोगो ने उसे स्वीकार कर लिया।

जैन धर्म मे भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन है, फिर भी तात्कालिक साधुओं द्वारा स्थापित मर्यादाओं के कारण वह इतना कठोर बन गया कि हर एक आदमी के लिये उसका पालन करना कठिन हो गया और बहुत कम लोग जैन धर्म को अपना सके। फिर भी मुझे खुशी है कि श्रमण संस्कृति के ही एक अंग बौद्ध धर्म का विदेशो मे प्रचार हुआ। दोनों ने जातिवाद और ईश्वर कर्तृत्व के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। दोनो ही कर्मवाद और पुरुषार्थवाद को प्रश्रय देते है। यह उनमें बड़ी समानता है और यही मेरी खुशी का कारण है।

इस अवसर पर मै एक प्रश्न बौद्ध भिक्षुओं से भी कर लेता हूँ कि भारत में प्रवर्तित होकर भी बौद्ध धर्म भारत मे अपना अस्तित्व क्यो नही रख सका ?

इसका उत्तर भारत के एक बौद्ध भिक्षु महेन्द्र ने दिया। उन्होंने कहा—"मुझसे यह प्रश्न बहुधा पूछा जाता है और इसका उत्तर मै यह दिया करता हूँ कि बौद्ध धर्म का अनुयायी हम उसे मानते हैं, जिसके हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा हो और यह भी सही है कि कोई भी भारतीय ऐसा न होगा. जिसके हृदय मे भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा न हो। अतः हमारी दृष्टि से प्रत्येक भारतीय बौद्ध है। आचरण की बात तो यह है कि लोग जितना सदाचरण करते हैं. वह बौद्ध धर्म की शिक्षा के विपरीत तो है नही अतः हम उसी को बौद्ध धर्म का आचरण व अस्तित्व मान लेते है।

आचार्य श्री ने कहा—हां, मुझे भी लोग बहुधा पूछते है कि जैन धर्म के अनुयायी इतने थोड़े क्यो है ? मै उन्हें यह उत्तर दिया करता हूँ कि जो व्यक्ति सदाचारी और अहिसा में विश्वास रखने वाले हैं वे सारे जैन हैं तो आप जैनो की संख्या थोड़ी क्यो मान लेते हे, वे बहुत है।"

मुनि श्री नगराज जी ने आचार्य श्री के दिल्ली आगमन पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"भगीरथ ने इतनी बड़ी तपस्या की तो वह गंगा को धरती पर लाने में समर्थ हुआ किन्तु हमारे लिये कितनी सौभाग्य की बात है कि विना परिश्रम किये ही तपस्या की यह गंगा स्वयं चलकर हमारे घर आ गई। आज मै आचार्य श्री का जितना भी आभार मानूँ, उतना थोड़ा है। हम आचार्य श्री का स्वागत क्यों करें ? उनकी स्वयं की दृष्टि यह रहती है कि वे स्वागत नही, काम चाहते है। इसलिये हमने आज स्वागत समारोह नही रखा। हमें आचार्य श्री ने यहाँ की रखवाली के लिये भेजा था। आज आचार्य श्री स्वयं ही पधार गये हैं, वे देख लें कि हमने अपना कर्त्तव्य कैसे कितना निभाया है।

अणुअस्त्र बनाम अणुव्रत

१ दिसंबर १६५६ को प्रेस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आंदोलन तथा उसके प्रवर्तक आचार्य श्री का परिचय दिया। फिर आचार्य प्रवर ने अणुव्रत आंदोलन की नैतिक क्रांतिमूलक भावना का विश्लेषण करते हुए उसकी आज तक की गतिविधि एवं बहुमुखी कार्यक्रमों से प्रेस प्रतिनिधियों को अवगत कराते हुए कहा—

आज का जन-जीवन समस्याओ से आक्रांत है। अमीरी और गरीबी की समस्या है। शोषक और शोषितो की समस्या है, तिस पर भी विश्व क्षितिज पर आज अणु-अस्त्रो की विभीषिका मंडरा रही है। विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक तनाव बढ़ते जा रहे हैं। यह महा समस्या है। अणु अस्त्रों के निर्माण और उनके प्रयोगों ने समग्र विश्व को एकाएक मौत के मुँह पर खड़ा कर दिया है। यह सब क्यों ? यह इसलिये कि आज का विश्व भौतिक विकास के शिखर पर चढ़ा है। आज उसके जीवन का भौतिक पक्ष परम पुष्ट है। परन्तु आध्यात्मिक और नैतिक विकास के अभाव में उसकी स्थिति पक्षाघात के बोमार सी होती जा रही है। मानवता मरती जा रही है और दानवता पुष्ट होती जा रही है। जीवन के वरदान भी अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। भारतीय चिन्तकों ने अध्यात्म और नैतिक सामर्थ्य को बढ़ावा दिया है, परिणाम स्वरूप विश्व को दैवी सम्पदा मिली। पाश्चात्यों, विशेषतः वैज्ञानिकों ने भूतवाद को बढ़ावा दिया। उसके परिणाम हैं—अणुबम और उद्‌जनबम। आज की सारी समस्याओं और विभीषिकाओं का समाधान मानव के नैतिक उदय में अंतर्निहित है। अणुव्रत आंदोलन नैतिक जागृति का एक क्रांतिकारी कदम है। वह विश्व में सुषुप्त नैतिकता को पुनर्जीवित करना

चाहता है। यदि ऐसा हुआ तो उद्योगपति मजदूरों का शोषण नहीं करेंगे, भूमिपति किसानों पर बेरहम नहीं होंगे, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर बम बरसाने की बात नहीं सोचेगा और उस नैतिक उदय के नवप्रभात में "आत्मवत्सर्वभूतेषु—प्राणीमात्र को अपने जैसा समझो" "वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते—धन संग्रह से मनुष्य को त्राण नहीं मिल सकता"—ये भावनाएँ घट घट में घर कर जायेंगी।

अणुव्रत आंदोलन को प्रारंभ हुये लगभग ७ वर्ष हो गये। प्रारंभ में वह लोगों को स्फुलिंग मात्र लगता था किन्तु अब उसके ज्योतिपुंज होने में विश्वास जमने लगा है। आंदोलन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन सात वर्ष पूर्व देहली में हुआ था। ६२१ व्यक्तियों ने चोर बाजारी न करना, रिश्वत न लेना, मिलावट न करना, झूठा तौल माप न करना आदि समग्र प्रतिज्ञायें ली थी। पत्रकार जगत् ने 'कलियुग में सतयुग का अवतरण' कहकर उस संवाद को अपने मुख पृष्ठ पर स्थान दिया था पर साथ साथ यह भी व्यक्त किया गया था कि किसी सतयुग का मूल्यांकन तभी होगा, जब वह अपना स्थायित्व बना लेगा। आज मुझे आप पत्रकारो के बीच यह बताते हुये प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आंदोलन तब से आज तक विकासोन्मुख है। आज समग्र भारतवर्ष में मेरे सहित लगभग ६५० शिष्य साधुजन, सैकड़ो कार्यकर्त्ता व अनेकों संस्थाये नैतिक जागरण की पुनीत भावनाओं को आगे बढ़ाने में दत्तचित्त है। आये दिन नये नये उन्मेष इस दिशा में होते जा रहे है। समग्र नियम लेने वाले अणु व्रतियों की संख्या लगभग ४००० है और प्रारंभिक नियम लेने वाले सदस्यों की संख्या १ लाख से भी अधिक है विगत दो वर्ष में मैंने विद्यार्थी वर्ग के चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। लगभग २ लाख विद्यार्थियों ने साक्षात् संपर्क में आकर नैतिक प्रेरणा प्राप्त की है। सहस्रों छात्रों ने निर्धारित प्रतिज्ञायें भी ली है। इसी प्रकार हमारा यह वर्गीय कार्यक्रम मजदूरों, व्यापारियों, कर्मचारियों, कैदियों, पुलिस आदि विभिन्न वर्गों में सफलता से चल रहा

है। आंदोलन के तथा प्रचार के और भी विभिन्न कार्यक्रम है।

अभी मै कुछ विशेष लक्ष्य से ही देहली आया हूं। भारतवर्ष सदा से नैतिक व आध्यात्मिक ज्योति का प्रसारक रहा है। भगवान महावीर और बुद्ध का शिक्षा आलोक दूर दूर तक समुद्रो पार पहुँचा। अभी देहली में नया अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ है। यह बहुत सुन्दर होगा कि बाहर से आने वाले लोग भारतवर्ष के नैतिक सदेशो को विदेशो मे ले जायें। यह निर्यात सब के लिये हितकर होगा। लगता है भारतवर्ष में नैतिक उपदेशों की बहुलता होने के कारण उनका भाव मंदा सा होता जा रहा है। अन्य पदार्थो के निर्यात से जैसे भावों की तेजी आ जाती है, मै सोचता हूँ इस नैतिक निर्यात से देश मे भी उसका मूल्य बढ़ेगा। इसी हेतु ता० २-३-४ दिसंबर को यहां अणुव्रत सेमीनार आयोजित किया गया है। आशा है भारतवर्ष का यह देश व्यापी आंदोलन विदेश मे भी गति पायेगा, जो कि समस्त मानव जाति के लिये हितकर है।

प्रवचन के पश्चात् प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में श्री छगनलाल शास्त्री नें आभार प्रदर्शन किया।

आयोजन (३) अणुव्रत गोष्ठी का प्रारम्भ

नवनिर्माण का महान अनुष्ठान

२ दिसम्बर १९५६ के प्रातःकाल यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल मे अणुव्रत गोष्ठी का आयोजन किया गया था। आचार्य श्री पंचमी समिति से निवृत्त होकर सीधे वहाँ पधारे।

एक तरफ स्टेज पर गृहस्थ कार्यकर्ता बैठे थे। दूसरी ओर काष्ठ पट्टों पर आचार्य श्री तथा उनसे नीचे साधु साध्वीगण बैठे थे। सामने

देश विदेश के विद्वान्, विचारक; यूनेस्को कान्फ्रेन्स में आये प्रतिनिधि, पत्रकार, आंदोलन में निष्ठा रखनेवाले नागरिकों का विशाल जन-समूह उपस्थित था। वातावरण बड़ा गंभीर और आकर्षक था।

सर्वप्रथम ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली की म्यूजिक डायरैक्टर श्रीमती मुटाटकर ने मंगलगान किया।

आज की समस्यायें

स्वागताध्यक्ष प्रो० एम० कृष्णमूर्ति के ओजस्वी स्वागत भाषण के बाद अंतरराष्ट्रीय ख्यात नामा विद्वान् यूनेस्को के डाइरैक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने गोष्ठी का उद्घाटन किया।

उन्होंने अपने भाषण में कहा—

संसार आज समस्याओं में उलझा है। अनेक प्रकार की समस्यायें उसके सामने है। पर आश्चर्य है कि उन्हें जानते हुए भी हम उन्हें सुलझा नहीं पा रहे है। सरकारे भी चाहती है कि उनके पारस्परिक संबंध कटु न हों, कोई भी आक्रमण न करे, पर वे उन्हे सफल करने का कोई हल प्रस्तुत नहीं कर सकी है। मनुष्य एक प्रयत्नशील प्राणी है। वह हमेशा से प्रयत्न करता रहा है। हम लोग यूनेस्को के द्वारा शांति के अनुकूल वातावरण बनाने की चेष्टा कर रहे है। इधर अणुव्रत आंदोलन भी प्रशंसनीय काम कर रहा है, यह बड़ी खुशी की बात है। मैं इसकी सफलता चाहता हूँ कि आपका यह सत्कार्य संसार में फैले और शांति का मार्ग दर्शन करे।

सुख और शान्ति का मूल

आचार्य श्री ने अपने आत्मग्राही प्रवचन में कहा—

"मनुष्य का जीवन सरस भी है, नीरस भी है, सुख भी है, दुःख भी है, सब कुछ भी है, कुछ भी नहीं है।

जीवन कला है।

नीरस को सरस, दुःख को सुख, कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है।

मनुष्य कलाकार है।

कला गूढ की अभिव्यक्ति है।

गूढ़ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है, वह गूढ़ से भी गूढ़ है।

अतिगूढ़ को समझने के लिये पूर्व तैयारी अधिक चाहिये। अति स्पष्ट से अभिलषित विकास नहीं होता। इन दोनो से परे का मार्ग, 'व्रत' है। वह जीवन की कला है। असंयम के घोर अंधकार मे संयम की अर्धरेखायें भी पथ निश्चित बता देती है।

घोर हिंसा और सूक्ष्म अहिंसा के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतों के लिये शक्य है।

अपरिमित संग्रह और अपरिग्रह के बीच का जो मार्ग है, वही बहुतो के लिये है।

युद्ध और संघर्षमय दुनिया मे जीने वाले अहिंसा और अपरिग्रह की लौ न जला सकें—ऐसी बात नहीं है। अहिंसक होना अन्तिम दर्जे की वीरता है। हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है। भय से भय बढता है, घृणा से घृणा। क्रूरता का प्रतिफल क्रूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है। हिंसा के प्रति हिंसा का सिद्धांत फलित हो रहा है।

भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश में सो नहीं सकता। किवाड़ों से बन्द मकानो मे और बड़े बड़े शस्त्र धारियों के पहरे मे सोता हुआ भी सुख से नींद नहीं ले सकता। शांति का प्रकाश अभय के सान्निध्य में फैलता है।

मन और आत्मा को बेचकर शरीर की परिचर्या करने वाले लोग सुख के सामने शांति को आँखो से ओझल किये देते हैं। सुख शारीरिक स्रोतो से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है। शांति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है। साधारण लोग शांति के लिये सुख को नही ठुकरा सकते, किन्तु अशांति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते है।

अशांति दुःख का कारण है फिर भी सुख के लिये अशांति को मोल लेने में मनुष्य नहीं सकुचाता। अंत में परिणाम दुःख ही होता है।

शांति के बिना सुख के साधन भी सुख पैदा नहीं करते। शांति का मूल्य सुख से बहुत अधिक है। यही सही समझ है। इसमें बाहरी विकास की उपेक्षा भी नहीं है। आंतरिक विकास के अभाव में पनपने वाली बाहरी विकास की भयंकरता या निरंकुशता भी नहीं है। सुख के साधन पदार्थ, उनका संग्रह और उनका भोग है। शांति का साधन संयम या त्याग है।

संग्रह और अशांति का उद्गम-विन्दु एक है। सामान्य स्थिति में वह अभिव्यक्त नहीं होता। संग्रह के बिन्दु इधर रेखा बनाते चलते हैं तो उधर अशांति भी समानांतर रेखा के रूप में बढ़ती जाती है। संग्रह की भूख सब को है, अशांति को कोई नही चाहता।

मन को दावानल में डाले और वह जले भी नही, यह कैसे होगा ?

कार्यकारण का सही विवेक किये बिना भटकना नहीं मिटेगा। दो सौ वर्ष पहले की बात है—आचार्य भिक्षु ने कहा—परिग्रह से धर्म नहीं होता। तब यह बहुत अटपटा लगा।

युद्ध परिग्रह के लिये होते हैं, अणुबम भी उसी के लिये बनते हैं।

अधिकारों के उपर्जन में क्रूरता बरतनी पड़ती है। उनकी सुरक्षा के लिये और भी अधिक। अधिकार-दान या धन-दान क्रूरता का आवरण है।

शोषण का पोषण करने वाले दानियों की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ है। शोषण न करने वाला स्वयं धन्य है, चाहे वह एक कौड़ी भी न दे।

शोषण का द्वार खुला रखकर दान करने वाला, हजारों को लूट कुछेक को देने वाला कभी धन्य नहीं हो सकता।

अशांति की जड़ परिग्रह-विस्तार या अधिकार-विस्तार की भावना है। दुःख की जड़ अशांति है। इसीलिये तो सुख-संवर्धन के हजारो वैज्ञानिक उपकरणों के सुलभ होने पर भी सुख दुर्लभ होता जा रहा है। अभय और शांति किनारा कसती जा रही है। मैं अधिक गहराई में

नहीं जाऊँगा। थोड़ी गहराई में गये बिना गति भी नहीं है। पेट को पकड़े बिना बाहरी उपचार से कुछ बनने का नहीं है।

सुख के बाहरी उपादानों को बढ़ाने की दिशा में अणु-युग का प्रवर्तन हुआ है। इसमें भयंकरता के दर्शन होने लगे हैं। अणु बुरा नहीं है, वह भयंकर भी नहीं है। भयंकरता मनुष्य में है। भय से भय आता है, अभय से अभय। अपने मन से भय को निकाल दीजिये, अणु की भयंकरता नष्ट हो जायगी। मन में भय बढ़ता रहा तो अणु और अधिक भयंकर बन चलेगा। अणु अस्त्र वाले अणु अस्त्र वाले से नहीं घबड़ाते। जिनके पास अणु अस्त्र नहीं है—वे अणु अस्त्र वालों से डरते है। यह अणु और स्थूल की टक्कर है। सफलता के जमाने में विषमता नहीं हो सकती। इसीलिये भय बढ़ रहा है। अणु की टक्कर अणु से होने दीजिये, भय रहेगा ही नहीं।

स्थूल अस्त्रों से अणु-अस्त्रों का प्रतीकार नही हो सकता। अणु-अस्त्र अणु-अस्त्रों के प्रतिकार में लगेंगे तो दोनों मिट जायँगे। प्रतीकार के दोनों मार्ग गलत हैं।

अणुव्रत संग्रह की प्रवृत्ति को मर्यादा में बाँधता है। अधिकार और इच्छायें सिमट कर अपने क्षेत्र में आजाती हैं, अभय का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अणुबमों को हतवीर्य करने का यही सरल मार्ग है।

"अणुव्रतों के द्वारा अणुबमों की भयंकरता का विनाश हो, अभय के द्वारा भय का विनाश हो और त्याग के द्वारा संग्रह का ह्रास हो", ये घोष उच्चतम सभ्यता, संस्कृति और कला के प्रतीक बनें और इस कार्य में सबका सहयोग जुड़े तो जीवन की दिशा बदल सकती है।

अपनी शान्ति के लिये अणुव्रत अपनाइये, अपनी शान्ति के लिये अभय बनिये, अपनी शान्ति के लिये संग्रह को कम करिये। आपके अणुव्रतों की आभा दूसरों को भी आलोक देगी। आपका अभय भाव शत्रु को भी मित्र बनायेगा।

आप द्वारा किया गया संग्रह का अल्पीकरण अणु-आयुधों के लिये

अपनी मौत आप मरने की स्थिति पैदा करेगा। विश्व के विशिष्ट चिन्तकों, लेखकों, कलाकारों से जो अपने अपने राष्ट्र की सजीव भावनाओं के प्रतीक बन कर यहाँ आये है, मै हृदय की गहरी संवेदना के साथ कहना चाहूँगा कि वे जीवन में "व्रतों के प्रयोग" की दिशा को व्यापक बनाने में लगें। हमारे संयम से हमारा हित होगा, दूसरों को प्रेरणा मिलेगी, थोड़ा-बहुत दृष्टिकोण बदला तो व्यापक हित होगा। अहिंसा, शान्ति और मैत्री के लिये यत्नशील व्यक्ति और संगठनों के सारे निरवद्य प्रयत्न शृंखलित हो—यह मै चाहता हूँ। राजनीतिक दलबन्दी से दूर रहकर विशुद्ध मानवता व भाईचारे की दृष्टि से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाये जायें। जैसे—

(१) अहिंसा दिवस—निःशस्त्रीकरण का प्रयोग किया जाय।

(२) मैत्री दिवस—अपनी भूलों के लिये क्षमा माँगी जाय और दूसरों को उनकी भूलों के लिये क्षमा दी जाय।

ये समारोह प्रेरणा के स्रोत बन सकते है और बिखरे प्रयत्नों को सामूहिक रूप दे सकते है। मै अपनी भावना के प्रति सहयोगियों की सद्भावना के लिये कृतज्ञ हूँ। अहिंसा के प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ।

रचनात्मक उपक्रम

मुनि श्री नगराज जी ने अणुव्रत आन्दोलन के बारे मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुये बताया—

अणुव्रत आन्दोलन ने राष्ट्र में नैतिक विचार-जागृति का वातावरण लाने में उपयुक्त भूमिका तैयार की है। व्यक्ति व्यक्ति के जीवन-शोधन और नैतिक विकास के माध्यम से इसने जन-जीवन को सही विकास की ओर आगे बढ़ने की एक दिशा दी है। यह जीवन-शुद्धि की सार्वजनीन रूपरेखा को लेकर चलने वाला एक रचनात्मक उपक्रम है, जो मानवता के नव निर्माण के संदेश के रूप में आगे बढ़ रहा है। वह निर्माण चरित्र-उत्थान पर आधारित है।

(३९)

आत्मबल का स्रोत-अणुव्रत

इडियन नैशनल चर्च बंबई के सर्वोच्च अधिकारी फादर डा० जे० एस० विलियम्स ने, जो स्वयं अणुव्रती है। जोशीली भाषा में अपने उद्‌गार प्रगट करते हुये कहा कि अणुव्रत आन्दोलन ने उनमें कितना आत्मबल और साहस फूंका है। यूरोप जैसे पश्चिम के ठण्डे मुल्कों की अपनी यात्रा में भी उन्होंने मादक पदार्थो को नही छुआ। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्वीडन, रूस आदि देशों की अपनी यात्रा के बीच वहाँ के लोगों को किस प्रकार उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के आदर्शो से अवगत कराया, इसका भी उन्होंने अपने भाषण मे उल्लेख किया।

अन्त में अणुव्रत-समिति की ओर से श्री मोहनलाल कठौतिया ने समागत सज्जनो को धन्यवाद दिया। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी की पहली वैठक का कार्यक्रम अत्यन्त आनन्दोत्साह पूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ।

आयोजन (४) राष्ट्रपति भवन मे समारोह

जीवन शुद्धि का महान अनुष्ठान

आज २ दिसम्बर १९५६ को सूर्यग्रहण था अतः गोचरी प्रथम प्रहर मे ही होगई थी और गोष्ठी के प्रातःकालीन कार्यक्रम के बाद आचार्य श्री साधु-साध्वी एवं श्रावक श्राविकाओं के साथ राष्ट्रपति भवन पधारे।

राष्ट्रपति जी और आचार्य श्री के वीच पन्द्रह मिनट तक एकांत में बातचीत हुई। फिर आचार्य श्री और राष्ट्रपति जी साथ-साथ मुगल गार्डन में, जहाँ आज का आयोजन रखा गया था, पधार गये।

भारत की आध्यात्मिकता

पहले आचार्य श्री ने आन्दोलन का परिचय देते हुये अपने भाषण में कहा—

"मुझे प्रसन्नता है कि भारत के राष्ट्रपति अध्यात्म भावना के प्रतीक हैं। भारत एक अध्यात्म प्रधान देश है और आगे भी मैं यह चाहूँगा कि भारत की जो आध्यात्मिकता है वह प्रतिदिन बढ़ती जाये। इसमें साधुओं का सहयोग तो है ही, अगर नेताओं का सहयोग भी, जैसा कि आज है, रहे तो निश्चय ही वह खूब बढ़ सकती है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि राज्यसंपत्—यह कोई सर्वोत्तम वस्तु नहीं है। सर्वोत्तम वस्तु है संयम। इसीलिए अणुव्रत आन्दोलन का घोष है—"संयमः खलु जीवनम्" संयम ही जीवन है। वास्तव में संयम से बढ़कर और कोई धन नहीं है।

अणुव्रत आन्दोलन के लिये आज जनता की भावना बढ़ रही है, जैसा कि स्वयं राष्ट्रपति जी ने भी कहा था कि अब इसे जनता से मान्यता मिल गई है और यह उचित भी है। जब तक आन्दोलन को जनता से मान्यता नहीं मिलती, तब तक वह फैल नहीं सकता।

आज से ७ वर्ष पूर्व जब इसका पहला अधिवेशन दिल्ली में हुआ था, तब हमें यह आशंका थी कि आन्दोलन में जाति, देश, धर्म और रंग का कोई भेद न होते हुये भी लोग इसे साम्प्रदायिक मानकर इसमें सहयोग देंगे कि नहीं ? पर राष्ट्रपति जी ने कहा था कि आपकी भावना सही है अतः आप काम करते जाइये। लोगों की भावना अपने आप बदलती जायगी। हुआ भी ऐसा ही। आज लोग इसे साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं देखते हैं। यह देश में फैल रहा है। अभी दिल्ली आने का भी हमारा लक्ष्य यही है कि यूनेस्को के अधिवेशन का अवसर उसके लिये सर्वथा उचित है। अभी यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लोग आये हुये हैं। उनके साथ पारस्परिक संपर्क एवं परिचय हो; आज का

राष्ट्रपति भवन का प्रसंग भी इसी उद्देश्य से है। इससे राष्ट्रपति जी को अणुव्रत आन्दोलन के प्रति श्रद्धा स्वयं प्रकट हो रही है।

आन्दोलन का अभिनन्दन

राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण मे कहा :—

पिछले कई वर्षो से अणुव्रत आन्दोलन के साथ मेरा परिचय रहा है। शुरूआत मे जब कार्य थोड़ा आगे बढ़ा था, मैंने इसका स्वागत किया और अपने विचार बतलाये। जो काम आज तक हुआ है, वह सराहनीय है। मै चाहूँगा इसका काम देश के सभी वर्गो मे फैले, जिससे सब इससे लाभान्वित हो सकें। इस आन्दोलन से हम दूसरों की भलाई करते हैं, इतना ही नही, अपने जीवन को भी शुद्ध करते है, अपने जीवन को बनाते है। संयम की जिन्दगी सबसे अच्छी जिन्दगी है। इसीलिये हम चाहते हैं कि सभी वर्गो मे इसका प्रचार हो। सबको इसके लिये प्रोत्साहित किया जाये।

हमारे देश में कई तरह के लोग हैं। अणुव्रत आन्दोलन का काम पहले व्यापारियो में किया गया। उनकी बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया गया। ज्यो-ज्यो काम बढ़ता गया, दूसरे वर्गो को भी लिया गया। अभी अभी जैसी मेरी आचार्य जी से बात हुई, कुछ और लोगो में भी काम किया जावेगा। दो तरह के लोग होते हैं—कुछ ऐसे जो मामूली तौर से अच्छे होते हैं, उन्हें और अच्छा बना देना चाहिए। कुछ ऐसे लोग हैं, जो उस तरह के समाज के संपर्क से या जिनकी वैसी ही जिन्दगी रही है, इससे या दूसरे कारणों से बुराइयों में पड़े हुए हैं, उन्हें सुधारना, ऊँचे रास्ते पर लाना मुश्किल है, पर हम चाहते है उनको भी अपने काम के दायरे में लें और ऐसा आचार्य श्री ने विचार किया है।

अन्त में आपने कहा—"बुराई मत करो, नुकसान मत करो, जिन्दगी को अच्छा रखो"—यह हर कोई कह सकता है; परन्तु केवल

ऐसा कहने का असर नहीं पड़ता। असर केवल उनका पड़ता है, जो जैसा कहते हैं, वैसा करते भी हैं। इसलिये हमारे आचार्यो का, धर्म-गुरुओं का यह काम है कि वे लोगों में उद्‌बोधन पैदा करे। साधु-समाज, धर्मगुरुओं का समाज, जिनके जीवन में कोई दोष नहीं है, वे ऐसा कर सकते हैं। हमारा देश धर्म परायण देश है। मामूली आदमी के बजाय धर्मगुरु या धर्माचार्य जो कहते है, उसे योग निष्ठा से सुनते है। मुझे विश्वास है, आपकी बात लोग सुनेंगे। इसलिये जब शुरू में मुझे इस आन्दोलन के बारे में मालूम हुआ, मैने इसका स्वागत किया। मुझे यह जानकर और भी खुशी हुई कि आप इस क्षेत्र को और बढ़ाने के सम्बन्ध में काम कर रहे है। जिन वर्गो में कोई खास ऐब हों, उन्हें मिटायें, मैं आशा करता हूँ; इसमें आपको सफलता मिलेगी। अच्छे कामों में सबका सहयोग मिलता है और मिलेगा। सहयोग के अभाव में काम खराब नहीं होता। आपका काम फले-फूले, आगे बढ़े। मै यह कामना करता हूँ।"

मुनि श्री नगराज जी ने भी इस प्रसंग पर भाषण दिया। कुमारी यामिनी तिलकम् ने संस्कृत में मंगलगान किया। इस प्रकार अति स्वाभाविक वातावरण में आज का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

आयोजन (५) अणुव्रत गोष्ठी

अणुव्रत गोष्ठी की तीसरी बैठक

नैतिक विकास की महान योजना

'अणुव्रत गोष्ठी' का दूसरे दिन का समारोह ३ दिसंबर १९५६ को आचार्य प्रवर के सान्निध्य में हर्ष विभोर वातावरण में प्रारंभ हुआ। बंबई निवासिनी श्रीमती कांता बहिन जवेरी तथा कुमारी इला

बहिन जवेरी एम० ए० ने मंगलगान किया।

आज के अधिवेशन में मुनि श्री नथमल जी, हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार, संसत्सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राष्ट्र के सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक आचार्य जे० बी० कृपलानी, बम्बई की भूतपूर्व मेयर श्रीमती सुलोचना मोदी, 'जीवन साहित्य' के संपादक श्री यशपाल जैन, अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने निर्धारित विषय "नैतिक विकास की योजना" पर अपने-अपने विचार प्रकट किये।

नैतिक दीप

श्री नवीन जी ने आचार्य श्री के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व भक्ति प्रदर्शित करते हुये कहा—"आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अगम्य है। आप एक असाधारण व्यक्ति है। निरंतर दस दिन के लंबे विहार से आप के पैर छिल गये, यह देखकर मै गद्‌गद् हो उठा। मन में सहज ही प्रश्न उत्पन्न हुआ कि आखिर आचार्य जी इतना परिश्रम क्यों कर रहे है। कुछ सोचा, समाधान मिला कि महान् व्यक्ति अपने लिये नही जीते। जन साधारण के हित के लिये उनका जीवन होता है। प्रश्न समाहित हुआ।

कल आचार्य श्री का प्रवचन सुनकर मेरे हृदय में श्रद्धा का स्रोत वह चला। उनके प्रवचन में द्रष्टा की वाणी सुनाई दी। जो केवल पढ़ लेता है, वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता, अनुभूति से ही ऐसा बोला जा सकता है। साधारण व्यक्ति आँखों देखी बात कहता है। इसीलिये उसकी वाणी का कोई महत्व नही रहता। अनुभूत वाणी में वेग होता है, उसका असर भी होता है। अनुभव तपस्या का फल है। आचार्य श्री का जीवन तपस्वी-जीवन है।

जीवन प्रगति का प्रतीक है। स्थिरता से ह्रास होता है। इसीलिये "चरैवेति चरैवेति" का मंत्र सामने आया। अणुव्रत प्रगति के साधक है।

वे जीवन में विकास लाते है, अवरोध नही। व्रत छोटे है किन्तु उनमें प्रचण्ड शक्ति है। वे जीवन की छोटी-छोटी बातो को भी छूते हैं। इनको अच्छी तरह समझ लेने से जीवन "सत्यं शिवं सुन्दरम्" बन सकता है।

अणुव्रती व्यक्ति सुधार से आगे बढ़ते है, उनकी गति में वेग होता है। वे रुकते नहीं, व्यक्ति से समष्टि की तरफ चलते ही जाते है। जहाँ व्यक्ति और समष्टि में सामंजस्य नहीं होता, वहाँ नाशकारी स्थिति पैदा हो जाती है। आज के युग में आचार्य विनोबा भावे तथा आचार्य श्री तुलसी इसी सामंजस्य के प्रतीक है। ऐसे नैतिक दीप संसार के तम को हरते रहे है और हरते रहेंगे।"

भोग बनाम त्याग

मुनि श्री नथमल जी ने अपने भाषण में कहा—"आज हमारे सामने दो पक्ष हैं—एक आकर्षण का और दूसरा विकर्षण का। जितना आकर्षण भोग में है, वह त्याग में नहीं—यह संस्कारों का परिणाम है। हिंसा और भोग के आकर्षण को प्रभाव शून्य बनाने के लिये अमिताभ बनना प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिये। धन का ढेर या अधिकारों की आकांक्षाएँ 'अमिताभ' नहीं बना सकतीं। आत्मा 'अमिताभ' हैं। उसे पाना सहज नहीं। पवित्रता ही उसे प्राप्त करने का साधन है। पवित्रता लादी नहीं जा सकती, वह स्वतः आती है। व्रतों से जीवन 'अमिताभ' बनता है।

नैतिक उत्थान

श्रीमती सुलोचना मोदी ने अपने भाषण में कहा—"आज देश में नाना तरह के आंदोलनों की चर्चा है। किंतु कोई भी आंदोलन पूर्णतः मानव के अनैतिक व्यवहारों को नहीं छूता। वे एक अंग को छूकर चलते हैं। अणुव्रत आंदोलन ही एक ऐसा आंदोलन है, जो पूर्णतः नैतिक है। यह नैतिक उत्थान की बाते कहता है। कानून हृदय को नहीं

छूता। उसकी गति व्यक्ति के ऊपर की तह तक ही होती है। व्रत हृदय में घुसते है और चिपक जाते है।

वाल्य जीवन संस्कारो को ग्रहण करने वाला जीवन होता है। उसे हम जिस प्रकार चाहें, उसी प्रकार मोड़ सकते है। मै चाहती हूँ आज की यह सभा सरकार से यह अपील करे कि ऐसा प्रबंध किया जाए जिससे बच्चो को प्रारंभ से ही अणुव्रत शिक्षा मिल सके।

अणुव्रतों की महिमा

आचार्य जे० वी० कृपलानी ने अपनी विनोदपूर्ण भाषा में अनूठे ढंग से भाषण करते हुए कहा—

व्रत अच्छे हैं, पर मै इनके लायक नहीं। मेरा जीवन राजनीति में रचा-पचा है। धर्म में निष्ठा अवश्य है किन्तु उसमें मेरा प्रवेश नही है। मुझे राजनीति से सन्यास ले लेना चाहिये किन्तु मै उसे छोड़ नहीं सकता। मै मानता हूँ कि व्रतों के बिना दुनिया चल नहीं सकती। व्रतों को त्यागने से सर्वनाश हो जाता है। मै व्यक्ति सुधार में विश्वास नहीं रखता। सामूहिक सुधार को सत्य मान कर चलता हूँ। व्यक्ति सुधार की प्रक्रिया में वह वेग और उत्साह नही रहता, जितना सामूहिक सुधार में रहता है। इसके तात्कालिक परिणाम भी लोगों को आकृष्ट कर लेते हैं। अणुव्रत आंदोलन इस दिशामे मार्ग सूचक बने, ऐसी मेरी भावना है।

सजीव कार्यक्रम

श्री यशपाल जैन ने अपने भाषण में कहा—अणुव्रत आंदोलन हमारी निगाह को बाहर से हटा कर अपने भीतर की ओर देखने की प्रेरणा देने का सजीव कार्यक्रम है। वैयक्तिक जीवन मे समाये गहरे दोषों के परिमार्जन की यह एक सफल योजना है।

अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन ने अपने भाषण में कहा—आज हमारा जीवन दुकानदारी का जीवन हो गया है। सर्वत्र हम स्वार्थ साधने की धुन में लग रहे है। दुकानदारी के स्थान पर मेहमानदारी का, स्वार्थ के बदले निःस्वार्थ का जीवन हमारा बने, अणुव्रत आंदोलन हमें यह सिखाता है।

नैतिक प्रगति

श्री छगनलाल शास्त्री ने अपने भाषण मे कहा—यदि जीवन में नैतिकता नहीं, संयमाचरण नहीं तो कैसा जीवन ! वह केवल कहने भर को जीवन है। उसमें सारवत्ता और ओज नहीं होता। आज व्यक्ति की, समाज की, और राष्ट्र की कुछ ऐसी ही स्थिति बनती जा रही है। प्रायः सर्वत्र इस ओर पराङ्मुखता दिखाई देती है। फलतः व्यक्ति सचाई से गिर रहा है, ईमान से हाथ धो रहा है, चरित्र निष्ठा से मुँह मोड़ रहा है, केवल भौतिक अभिसिद्धियों की प्राप्ति और स्वार्थ पूर्ति में अंधा बन कर। इसलिये उसका जीवन आज ध्वस्त-विध्वस्त है, उसकी व्यवहार चर्या और चरित्र के बीच लम्बी दरारें और गहरी खाइयाँ पड़ गई है, जिन्हे पाटना आज अत्यन्त आवश्यक है। जिसके लिये नैतिक विकास और चारित्र्य जागृति का उज्ज्वल वातावरण अपेक्षित है। यह कहते प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत आंदोलन नैतिक विकास की एक सफल योजना है। यदि समाज, राष्ट्र और जनजन ने इसे आत्मसात् किया तो यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उसको एक नये परिष्कार, शुद्धि और शांति का वरदान प्राप्त होगा।"

नैतिक निर्माण का आंदोलन

अंत में आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण में कहा—"अणुव्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है। आंदोलन के प्रति भाव उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं—यह शुभ सूचना है। आज का जन जीवन

यह महसूस करने लगा है कि भौतिक सिद्धियाँ ही सब कुछ नहीं हैं। इससे परे भी कुछ 'अमिताभ' है, जिसे हमें पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमो में कितने नेता इकट्ठे होते है। हमें यह भी नही सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रशंसाये होती हैं। परन्तु हमे सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमो से लोगों को क्या मिलता है। हमें यह सोचना है कि हम नैतिक उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अणुव्रत आंदोलन इतना सीधा-सादा होने पर भी लोग इससे दूर रहते है। इसमें अपना हित जानते हुए भी वे नजदीक नही आते, यह क्यों ? अणुव्रती बनने में संकोच क्यो ? लोग शायद इसे साम्प्रदायिक समझते हों किन्तु आंदोलन के ७ वर्षो के सार्वजनिक कार्यक्रमों से यह भावना भी ढह चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी से मिलना हुआ, तब आंदोलन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होने कहा था कि आंदोलन के प्रति शुरू से मेरी निष्ठा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं थे, तब से मै इसका प्रशंसक रहा हूँ। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है, यह खुशी की बात है।

आज राष्ट्र के नेता इसे असाम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे उचित प्रश्रय भी मिल रहा है। आज का जन-जीवन विषाक्त है—यह मै जानता हूँ। लोगों की दुर्बलताएँ भी मुझ से छिपी नही हैं। लोग कषायों से मुक्त नही है। वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

"दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्य महोरगेण।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया—
जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम्॥"

"क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाएें सारे विवेक को भस्मसात् कर रही है। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल में फँसा मानव छटपटा रहा है।"

ऐसी अवस्था में व्रतों का पालन संभव नहीं होता—ऐसा लोग सोचते हैं। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण है, उनके बिना जीवन सुखमय नहीं बन सकता और जीने की कला नहीं आ सकती, तब तक जीवन मिट्टी के समान बना रहता है। अणुव्रत आंदोलन जीवन की कला सिखाता है। कषायों से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतों से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका महसूस होता है। हमारा श्रम में पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मैं अपने इन शिष्यों व साथियों के साथ दो सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहाँ आया हूँ। मेरे कन्धे खाली थे किन्तु इन साधुओं के कंधे भाराक्रांत थे—फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नहीं थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अंग समझते है। इस कष्टमय साधना में उन्हें अपने लक्ष्य के दर्शन होते हैं। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अंग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा घोष है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिये, तामसिक नहीं।

आज व्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन में नहीं होगा तब तक बुराई मिटेगी नहीं। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं है।

यह आंदोलन विश्व में चल रहे अन्य आंदोलनों से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नहीं करता अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा में सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक्रांत नहीं बनाता, भारमुक्त करता है। एक बार इसमें

प्रवेश कर लेने पर व्यक्ति उससे छूटने का विचार नही करता। व्रत व्यक्ति में चिपक जाते है। ज्यों-ज्यों श्रद्धा बढ़ती है, त्यों-त्यों जीवन व्रतमय बनता जाता है। भूदान में व्यक्ति कुछ भूमि का दान कर अपनी जिम्मेवारी से छूट सकता हैं किन्तु इस आंदोलन से वह छूट नही सकता। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यों-त्यों जीवन में जिम्मेवारियाँ बढ़ती जाती है।

मैं मानता हूँ कि व्यक्ति एकाएक व्रती नही बन सकता, किन्तु गूंगा बेटा बाप को, बाप कहे तो लाखन के अनुसार उसके प्रति अपनी भावना अच्छी रखे तो अवसर पर वह भी व्रती बन सकता है। मै सदा आशा वादी रहा हूँ। आज आंदोलन के प्रति सद्भावनायें बढ़ रही है तो वह दिन भी दूर नहीं, जब कि समस्त वर्गो में नीति की प्रतिष्ठा होगी।

व्रती बनने में संकोच नहीं होना चाहिये। जन साधारण के बीच व्रतों को ग्रहण करना लोग आडम्बर समझते है, यह उनकी भूल है। जनसमूह के बीच किये गये संकल्पों से आत्मबल बढ़ता है, जिम्मेवारी आती है—ऐसा मेरा अनुभव है।

अणुव्रत-गोष्ठी आप को नाना प्रकार के विचार दे रही है। विचारों की क्रांति आचार को उत्पन्न करती है। अणुव्रतों पर आप विचार करें। उसकी भावना को अपने मित्रों तक पहुँचायें और जीवन को तदनुकूल बनाने का प्रयास करें।

अणुव्रत गोष्ठी की अन्तिम बैठक

अहिंसा और विश्वशान्ति

४ दिसंबर १९५६ को 'अणुव्रत गोष्ठी' का अंतिम दिन का कार्यक्रम था। देश विदेश के सम्भ्रांत सज्जनों के अतिरिक्त विशेषतः विभिन्न देशों के बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। पिछले दो दिनों से उपस्थिति अधिक थी। सामने की पंक्ति में पीतवस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु थे और उनके पीछे की पंक्तियों में राज्यकर्मचारी, विशिष्ट अधिकारी व दूर दूर से आये सज्जन बैठे थे।

प्रारंभ में बंबई निवासी श्री रश्मिकुमार जवेरी ने अणुव्रत प्रार्थना का गान किया। आज के लिये निर्धारित विषय था—"अहिंसा और विश्वशान्ति"—जिस पर मुनि श्री बुधमल जी राष्ट्र के सुप्रसिद्ध विचारक—काका कालेलकर, अखिल भारतीय कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण, दिल्ली राज्य विधान सभा की भूत पूर्व अध्यक्षा डा० सुशीला नायर, हिन्दी जगत् में सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र-कुमार, प्रो० एम० कृष्ण मूर्ति, संसत्सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती सावित्री देवी निगम तथा दिल्ली के जन सेवी श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने विचार प्रगट किये।

काका कालेलकर ने कहा—"श्रमण और भिक्षु शांति-सेना के सैनिक हैं। नैतिक प्रसार और प्रचार के लिये उन्होंने जीवन को जगाया है—यह उचित है। अणुव्रत-आंदोलन में नैतिक विचार क्रांति के साथ साथ बौद्धिक अहिंसा पर भी बल दिया गया है—यह इसकी अपनी विशेषता है।"

जीवन का आंदोलन

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा—

प्रारंभ से ही मै इस गोष्ठी मे शामिल होने की भावना रखता था, किन्तु कार्यवश आ नहीं सका। अणुव्रत आंदोलन की जबसे मुझे जानकारी हुई है, तभी से मै इसका प्रशंसक रहा हूँ। इसके संबंध में मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह आंदोलन जीवन की छोटी छोटी बातो पर भी विशेष ध्यान देता है। बड़ी बातें करने वाले बहुत है, किन्तु छोटी बातों को महत्त्व देने वाले कम होते है।

यह आंदोलन क्रमिक विकास को महत्त्व देता है—यह इसकी विशेषता है। एक साथ लक्ष्य पर नही पहुँचा जा सकता, एक एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है। अभी कुछ दिन हुए मै अणुव्रत आंदोलन के सप्तम अधिवेशन में भाग लेने सरदार शहर गया था। मैंने देखा हजारों लोग नैतिक व्रतो को अपनाने के लिये तैयार होते है और अपना जीवन शुद्ध करते हैं। उन पर व्रत थोपे नहीं जाते, वे स्वयं अपनी आत्म-प्रेरणा से व्रत ग्रहण करते है। उनमें जीवन शुद्धि की तड़प मैंने देखी।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आज पंचशील की चर्चा है। मैं मानता हूँ कि अणुव्रत आंदोलन अपने देश में पंचशील का आंदोलन है। इसका जितना ज्यादा प्रचार होगा, उतना ही देश का हित सम्भव है।

डा० सुशीला नायर ने कहा—प्रत्येक व्यक्ति धर्म की दुहाई देता है किन्तु धर्म का आचरण नही करता। मै चाहती हूँ—धर्म के नाम की जगह धर्म का काम हो। कानून से सर्वोदय नही हो सकता। व्रतों से ऐसा ही संभव है। कानून से धन छीना जा सकता है प्राइवेट एंटरप्राइज़ के बदले स्टेट एंटरप्राइज़ शुरू किया जा सकता है किन्तु सौहार्द या प्रेम नहीं पाया जा सकता। अणुव्रतो से दोनों साथ साथ सहज में सध जाते है।

अणुव्रत आंदोलन जीवन के मूल्यों को बदलता है। हृदय और बुद्धि

का समन्वय हो, आचार और विचार का समन्वय हो, कथनी और करनी समन्वय हो—यही अणुव्रतों का ध्येय है। सेमिनार विचार-विमर्श के लिये किये जाते है। इनसे विचारों में क्रांति आती है। विचार जब सक्रिय बनते है, तब जीवन प्रशस्त बनता है।

अहिंसा की चुनौती

हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने भाषण मे कहा—अहिंसा का इतिहास भी हो सकता है और तत्त्ववाद भी। उसमें मुझे नहीं जाना है। इतिहास और तत्त्ववाद के माध्यम से देखने पर उसमें मतवाद आ जाता है। मै अहिंसा को समग्र रूप में, जिसमें शक्ति है—चेतना है, देखना चाहूँगा। आज हिंसा की अहिंसा के प्रति एक चुनौती है। जो हिंसा को नही मार सकती, वह अहिंसा नहीं है। जो हिंसा से समझौता करे, उसे मै अहिंसा नहीं मान सकता। सिद्धांत की कसौटी व्यवहार है, जो व्यवहार पर खरा सिद्ध नहीं होता, वह सिद्धांत कैसा ? मुझे यह कहते प्रसन्नता है कि महाव्रत का मार्ग जगत् से एकदम निरपेक्ष नहीं है, अणुव्रत उसका उदाहरण है। व्रत जीवन में किनारे जैसे है। यदि नदी के किनारे न हों तो उसका पानी रेगिस्तान में सूख जाय। किनारे नदी को बांधने वाले नहीं होने चाहिये वे उसको मर्यादा में रखने वाले होने चाहिये। ऐसे ही वे किनारे जीवन-चैतन्य को विकास देने वाले, और दिशा देने वाले हो सकते हैं।

प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने अपने भाषण में कहा—जो जीवन अहिंसा से अभिव्याप्त है, वही सच्चा जीवन है। अहिंसा की अभिव्याप्ति जीवन में आत्म चेतना जगाती है। आत्म जागृत व्यक्ति सहजरूप से विकारों से परे हो जाता है।

मुनिश्री बुद्धमल जी ने अपने भाषण में कहा—वह विश्व के लिये परम हर्ष का दिन होगा, जब वह आत्मा से यह जान जायेगा कि हिंसा के द्वारा उसे कभी शांति मिलने वाली नहीं है। शांति तभी होगी जब

वह हिंसा के विरुद्ध कमर कस कर उससे मुकाबला लेने के लिये सन्नद्ध होगा।

विश्वशांति का प्रतीक

संसत्सदस्या श्रीमती सावित्री देवी निगम ने कहा—अर्थबल, सैन्य-बल या विज्ञान के बल पर आज भारत ऊँचा नहीं उठा है। उसकी महानता का कारण है संयम की साधना। आचार्य श्री तुलसी ने जो उपक्रम चालू किया है, वह बुनियादी कार्य है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत में चलने वाले अन्य आंदोलनों ने बुराई को पकड़ा अवश्य है किन्तु जड़ उनके हाथ नहीं आ सकी। आचार्य श्री ने बुराई की जड़ को पकड़कर एक विशेष काम किया है। यह आंदोलन विश्व-शांति का प्रतीक है, ऐसा मै मानती हूँ और सबसे यह अपील करती हूँ कि वे ज्यादा से ज्यादा इसमें सहयोग देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

जीवन शुद्धि

संसत्सदस्या श्रीमती सुचेता कृपलानी ने कहा—अणुव्रत आंदोलन जीवन शुद्धि का आंदोलन है। जब कार्य और कारण दोनों शुद्ध होते हैं तब परिणाम भी शुद्ध होता है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक का व उनके साथी साधुओं का जीवन शुद्ध है, अणुव्रतों का कार्य क्रम भी पवित्र है, इसलिये इनके कहने का असर पड़ता है।

अणुव्रत आंदोलन के व्रत सार्वजनीन हैं। प्रत्येक वर्ग के लिये इसमें व्रत रखे गये है। यह इसकी अपनी विशेषता है। व्रतों की भाषा सरल व स्वाभाविक है। अहिंसा आदि व्रतों का विवेचन सामयिक व युगानुकूल है। अहिंसा की व्याख्या व व्रतों में शब्दों का संकलन मुझे बहुत ही प्रभावोत्पादक लगा। कहा गया है—जीव को मारना या पीड़ा पहुँचाना तो हिंसा है ही, किन्तु मानसिक असहिष्णुता भी हिंसा है। अधिकारों का दुरुपयोग भी हिंसा है। कम पैसो से अधिक श्रम लेना भी हिंसा है,

आदि आदि। इसी प्रकार प्रत्येक व्रत जीवन को छूते है। अणुव्रतियों का जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुझ पर आंदोलन का काफी असर है। आचार्य जी का सत् प्रयास सफल हो—यह मेरी कामना है।

श्री गोपीनाथ 'अमन' ने अपने भाषण में कहा—अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति सुधार का आंदोलन है। व्यक्ति जाति और राष्ट्र का मूल है। व्यक्ति से आगे बढ़ता-बढ़ता सुधार जाति और राष्ट्र को भी अपनी परिधि में ले सकता है।

संयम सुख शान्ति का मूल

आचार्य प्रवर ने अपने उपसंहारात्मक भाषण में कहा—

"प्रकाश को प्रकाशित करने के लिये दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। यदि स्वयं में प्रकाश नहीं है तो वह दूसरों को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। यही "व्यक्तिवादी सिद्धान्त" का आधार है। इसका फलित यह है—यदि व्यक्ति शुद्ध है तो समाज भी शुद्ध होगा, यदि व्यक्ति अपवित्र है तो समाज भी अपवित्र होगा।

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" यह सच है। किन्तु सभी मनुष्य करके ही कहें—यह मुश्किल है। जो करता है उसे ही कहने का अधिकार है, यह एकान्तवाद ठीक नहीं। अच्छा उपदेश सबको मान्य होना चाहिये। हम वीतराग नहीं, फिर भी उपदेश करते है। सुधर्मा स्वामी भगवान की वाणी के आधार पर बोलते थे। उसी प्रकार हम वीतराग न होने पर भी वीतराग की वाणी के आधार पर बोलते है, यह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

आज आडम्बर का युग है। प्रत्येक कार्य में आडम्बर दीखता है। व्रतों के पालन में भी आडम्बर दीखता है। इसी आशय को स्पष्ट करते हुये एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है :—

वैराग्य रंगं परिवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकरं समीश॥

लोग विरक्त बनते है दूसरो को ठगने के लिये, धार्मिक उपदेश जन-रंजन का साधन बना हुआ है, ज्ञानार्जन वाद विवाद के लिये किया जाता है, इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती है।

जब तक जीवन-व्यवहार मे दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तियाँ रहेंगी, तब तक शान्ति का समावेश जीवन मे हो सके, यह कम संभव लगता है। शान्ति —अहिंसा और संयम पर आधारित है। शास्त्रो में कहा है—

हत्थ संजए पाय संजए वाय संजय संजई दिए।

अज्झप्परए सुसमाहि अप्पा सुतत्थं च विमाणइ जेंस भिक्खु ॥

हाथ पैरों का संयम, वाणी का संयम, इंद्रियों का संयम करने वाला व्यक्ति और जो अध्यातम में लीन रहना है, वही साधु है, महान् है। ऐसे व्यक्ति को ही शान्ति प्राप्त होती है।

संयम और अहिंसा के आदर्श वैयक्तिक जीवन को तो मानते ही हैं, उससे आगे बढ़ कर वे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी शान्ति का स्रोत बहा देते हैं। मेरा विश्वास है कि विश्वशान्ति का इसी प्रकार प्रादुर्भाव होगा, व फलित होगी।

अणुबम वा हाइड्रोजन बम द्वारा शान्ति चाहने वाले भयंकर अजगर के मुँह में हाथ डालकर अमृत प्रात करना चाहते हैं। यदि संसार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अणुव्रतो के मार्ग पर आना होगा, अन्यथा वह भटकता ही रहेगा। अन्त मे मै आपसे अनुरोध करूँगा कि आप तटस्थ रहकर अणुव्रतों पर विचार करें और अपने में उनको धारण करने का प्रयास करें।

अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी ने त्रिदिवसीय कार्यक्रम का सिंहावलोकन करते हुये सबके प्रति आभार प्रदर्शन किया।

आल इंडिया रेडियो दिल्ली के डिप्टी डायरेक्टर जनरल श्री० ए० के० सेन तथा उनकी पत्नी श्रीमती आरतीदेवी आचार्य श्री के पास आये और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हम दोनों का नाम अणुव्रतियों की सूची मे लिख लीजिये। आचार्य प्रवर ने सहर्ष स्वीकार किया।

आज का कार्यक्रम बहुत ही प्रभावोत्पादक रहा। अत्यन्त उल्लास व उत्साह के साथ कार्य को सम्पन्न होते देख स्थानीय व बाहर से आये हुये कर्मठ कार्यकर्त्ता हर्ष विभोर हो रहे थे। अपने अथक परिश्रम के सुन्दर परिणाम से वे प्रफुल्लित हो रहे थे। इस प्रकार अणुव्रत गोष्ठी का त्रिदिवसीय कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रतिक्रिया

गोष्ठी की चर्चा प्रत्येक क्षेत्र में फैल गई। लोगों ने यह जाना और अनुभव किया कि आचार्य श्री तुलसी आज के युग के महान् व्यक्ति हैं जिन्होने अपनी साधना के फलस्वरूप अणुव्रत आन्दोलन की देन से मानव जाति को कृतार्थ किया है। प्रत्येक वर्ग ने अणुव्रत आन्दोलन के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत किया। दिल्ली के प्रमुख पत्रों ने गोष्ठी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसके समाचारों को प्रमुखता दी।

समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों को पढ़ कर अनेक व्यक्ति आंदोलन में अपना सहयोग देने के लिये तैयार हुये और आचार्य प्रवर से मिले।

रेडियो का प्रोग्राम

४ दिसंबर १९५६ की रात्रि को लगभग ८॥ बजे रेडियो प्रोग्राम था। आल इंडिया रेडियो ने लगभग १५ मिनट तक अणुव्रत गोष्ठी के त्रिदिवसीय कार्यक्रम तथा राष्ट्रपति भवन के कार्यक्रम की संक्षिप्त झाँकी प्रसारित की। आँखों देखा हाल इस शीर्षक के अन्तर्गत श्री यशपाल जैन ने प्रायः सभी वक्ताओं के भाषणों का सार दिया।

सप्रू भवन में प्रधान मंत्री श्री नेहरू द्वारा उद्घाटन

१३ दिसम्बर की दुपहर को ३ बजे "राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह" का उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों से सम्पन्न होने वाला था। आचार्य श्री २-४५ बजे ही सप्रूभवन पधार गये थे और सप्रू भवन का हाल श्रोताओं से खचाखच भर चुका था। भवन के बाहर साधुओं की हस्त निर्मित वस्तुओं की एक प्रदर्शनी सी की गई थी, जिसमें सब वस्तुएं व्यवस्थितरूप से रख दी गई थी। आचार्य श्री वहाँ ही ठहर गये। थोड़ी ही देर में पंडित जी भी आ पहुंचे। उन्होंने साधुओं की निर्मित सब वस्तुओं को बड़े ध्यान से देखा, सूक्ष्माक्षर-पत्र को बहुत ही अधिक ध्यान से देखा और कहा कि यह बड़ा अद्भुत और आश्चर्यजनक है। इसमें एक इंच में देसी कलम से १४०० अक्षर लिखे गए थे। फिर आचार्य श्री और पंडित जी साथ-साथ हाल में पधारे। सीढ़ियाँ आने पर पंडितजी ने आगे चलने का इशारा करते हुए कहा—आप चलिये। आचार्य श्री स्टेज पर बिछे छोटे से पाट पर बैठ गये। नेहरू जी पास में बिछी हुई गद्दी के एक कोने पर बैठ गए।

श्रीमती कान्ता बहिन जवेरी तथा कु० इला बहिन जवेरी द्वारा गाये गए मंगल-गान से कार्यक्रम शुरू हुआ। अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचंदलाल दफतरी ने स्वागत भाषण किया। श्री मोहनलाल कठौतिया ने प्रधान मंत्री को खादी की माला पहनाई।

उद्‌घाटन भाषण

भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने उद्‌घाटन भाषण करते हुए कहा—"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहनो ! अपने मामूली कर्तव्य को छोड़ कर भी मै यहाँ आया हूँ। यद्यपि मै कल भारत से चला जाने वाला हूँ फिर भी मुझे यहाँ आना उचित मालूम हुआ। मैंने यह क्यों किया ? कुछ महीने पहले मेरा मुनि नगराज जी से मिलना हुआ था। दो चार दिन हुए आचार्य जी से भी मिलने का अवसर मिला। उन्होंने मुझे अणुव्रत आंदोलन का हाल बताया। मुझे वह काम उचित लगा, इसलिये मैंने यहाँ आना स्वीकार कर लिया। यद्यपि हमारा और आचार्य जी का काम का रास्ता अलग-अलग है, पर कभी कभी अलग-अलग रास्ते भी मिल जाते है, और वास्तव में ही एक दूसरे की सहायता के बिना संसार का काम चल भी नही सकता। संसार में अनेक लोग अनेक प्रकार से अनेक काम करे, तब ही सारा काम चल सकता है। पर संसार में इतने कुछ काम होते हुए भी कुछ बुनियादी बातें होती हैं, जो सभी देश, सभी समाज और सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है। हम इतिहास में देखते है कि संसार में अनेक बार उत्थान और पतन आये है। पर हजारों वर्षो की इन बातों में हम अधिक को भूल जाते है। कुछ लोग अपने समय में भी हुये है और उनकी बात आज भी सुनी जाती है। वे लोग स्वयं तो अच्छे मार्ग पर चलते ही हैं पर दूसरों को भी अच्छा रास्ता दिखाते हैं।

कुछ लोग स्वयं को एक गज से तथा देश व समाज को दूसरे गज से मापते है। जब गांधी जी राजनीति में आये तब उन्होंने कहा—व्यक्ति और समाज को एक ही गज से मापना चाहिये। यह ठीक ही थ। उन्होंने स्वयं अच्छे रास्ते पर चलकर दूसरों को भी उस पर चलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन में भी इस बात को लिया और अपने विचार जनता में फैलाये। इससे कुछ सुधार हुआ। उन्होंने

अहिंसात्मक आन्दोलन से देश की ताकत को बढ़ाया और हमारी विजय हुई। वह विजय बदले की भावना पैदा किये बिना हुई।

दुनियां के इतिहास में हम देखते है कि जो हारता है वह बदला लेना चाहता है, और ताकतवर बन कर वह वापिस विजयी पर हमला कर देता है। वह हार का फिर बदला लेना चाहता है। इस प्रकार यह लड़ाई चलती रहती है और शान्ति नही होती। आज दुनियां की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह खत्म हो सकती है। इससे दुनियाँ की आँखें भी खुल गई हैं। वह देखती है कि अगर कही भी शक्ति काम में आई तो सारा संसार श्मशान हो जायेगा। वास्तव में ही हथियारों से शान्ति पैदा नही की जा सकती।

इसीलिये "यूनेस्को" के विधान मे कहा गया है—लड़ाई लोगो के दिमागों में पैदा होती है। गांधीजी ने भी कहा था—तलवार हमारे दिमाग मे है, उसे निकालो और काटो। इन बाहर की तलवारों से शान्ति होने वाली नहीं है।

देश क्या है ? बहुत से व्यक्तियों का समूह। जैसे वहाँ के लोग होंगे वैसा ही वह देश होगा, उससे दूसरा नही हो सकता। देश में यदि व्यक्ति ऊँचे होंगे तो देश भी ऊँचा होगा। एक व्यक्ति भी अच्छा होगा तो उसका असर दूसरे पर पड़ेगा। अतः हम ऐसा वायुमंडल पैदा करें कि देश के सारे लोग अच्छे हों, देश अपने आप अच्छा हो जायेगा।

आज देश के सामने बड़े-बड़े काम है, उनमें सफलता तभी मिल सकती है, जब देश का चरित्र-बल अच्छा हो, वह कानून से नहीं बन सकता। हाँ, रास्ता जरूर बनता है। अतः घूम फिर कर बात वही आ जाती है कि देश की जनता का चरित्र कैसा है ? हम बहुत दिनो तक दूसरों को धोखा नही दे सकते। किसी को एक दिन धोखा दिया जा सकता है पर हमेशा नहीं दिया जा सकता। अतः हमें देश का चरित्र-बल अवश्य ऊँचा बनाना होगा।

इतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने हैं तो हम सोचें कि हमें देश को

किस प्रकार का बनाना है। हमें भारत की बुनियाद ऐसी बनानी है, जो गहरी हो और बहे नहीं। विशेषतः हमें अपने नौजवानों को बनाना है, क्योंकि हम तो अब बुड्ढे हो गये है। कल का भारत आज के बालक और नौजवान ही होंगे। अतः हमें उन्हें ऐसे साँचे में ढालना है, जिससे वे अच्छे हों। हम लोग ४० वर्ष तक उस ढांचे में ढले जो गांधीजी ने देश के सामने रखा था। उससे अच्छा या बुरा जो कुछ हुआ, हो गया है, पर अब प्रश्न यह है कि जो काम हमें करने हैं, उन्हें छोटे आदमी नही कर सकते। उनमें शक्ति और वीरता होनी चाहिये। अतः मूल में वही बात आ जाती है कि देश का चरित्र उन्नत हो।

यह काम अणुव्रत-आन्दोलन से हो रहा है। मैंने सोचा—ऐसे अच्छे काम की जितनी तरक्की हो उतना ही अच्छा है। इसलिये मै आशा करता हूँ—"अणुव्रत-आन्दोलन" का जो प्रचार हो रहा है, उसमें पूरी तरह सफलता मिले।"

आचार्य श्री का सन्देश

प्रधान मंत्री जी भाइयो और बहिनो ! आज राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण मूलक अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन हुआ। भारत की राजधानी में यह चरित्र-निर्माण मूलक कार्यक्रम चले, यह आवश्यक भी है, क्योंकि यहाँ की बात का असर सारे देश पर ही नहीं, सारे विश्व पर पड़ता है। अतः यह अच्छा कार्यक्रम यहाँ से चला, यह अच्छा ही हुआ। आज देश और विश्व की स्थिति के बारे में आप पढ़ते और सुनते है ही। अतः उसके बारे में मैं क्या कहूँ, उसे सुधारने के लिये अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। भारत के प्रधान मंत्री विश्वशान्ति और विश्वमैत्री के लिये पंचशील का प्रचार कर ही रहे है और उन पर यह जिम्मेदारी भी है। उससे पहले कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करें, हमें अपने देश की बातें सोचनी चाहिये। देश में आज अनेक कार्य करने है और उनके लिये सुदृढ़ आधार की आवश्यकता है।

लोग कहते है—आज अणुयुग है, परमाणु-युग है, पर मुझे लगता है, आज का युग अकर्मण्यता, असहिष्णुता और आलोचना का युग है। हमें इस बारे में सोचना है। आज विद्यार्थी अध्यापकों की आलोचना करते हैं और अध्यापक विद्यार्थियों की। जनता सरकार की आलोचना करती है और सरकार जनता की। पर मै यह नही समझा कि सारे औरों की आलोचना करते हैं मगर अपने को क्यों नही देखते ? कोई अपना थोड़ा सा भी अहित नही देख सकता। पिछले ही दिनों में प्रान्तीयता की झंझा ने देश के बड़े-बड़े लोगो को कँपा दिया। विद्यार्थी भी इसमें पीछे नहीं रहे। इसका क्या कारण है ? क्या अति-राष्ट्रीयता ही तो अति-प्रान्तीयता की जनक नही है ? हमें यह असहिष्णुता मिटानी होगी, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को उन्नत बनाना होगा।

इसलिये मै आप से कहना चाहूँगा—पहले आप अपना जीवन बनायें, फिर देश और उसके बाद विश्वमैत्री की बात सोचें। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक कुछ नही हो सकता।

राष्ट्रों की संकीर्ण मनोवृत्ति को भी मिटाना होगा। एक राष्ट्र के हित को, यदि उससे दूसरे राष्ट्रों का अहित होता हो तो छोड़ना पड़ेगा। अपना अहित तो कौन करेगा ? पर इतना ही हो गया तो मै समझता हूँ, संसार शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

आज जो अनीति भारत मे ही नही, सारे संसार में फैल रही है, उसका उन्मूलन आवश्यक है। सब लोग ऐसा चाहते हैं। अब प्रश्न यह है कि इसका उपाय क्या है ? उपदेश इसका एक मार्ग था। हजारों वर्षो से यह चलता आ रहा है, पर आज हमारा काम प्रायः दूसरो ने लिया है, जगह जगह नेता लोग ऊँचे स्वर में उपदेश देते हैं। उनका असर क्यों नहीं पड़ता ? बात स्पष्ट है—जब तक उनका निजी जीवन अच्छा नहीं होगा, तब तक उपदेश काम नहीं कर सकता। उनके जीवन का प्रतिबिम्ब जनता पर पड़ता है।

आज हम पैदल यात्रा करते हैं, यह बात लोगों को हास्यास्पद

लगती है। वे किसान जो हमेशा पैदल चलते थे, आज हमें पैदल चलते देखकर आश्चर्य करते है। अभी जब हम दिल्ली आ रहे थे तो रास्ते में हमें किसान लोग मिलते और कहते—आप मोटर मे क्यों नहीं बैठ जाते ? हमेशा श्रम करने वालो को भी पैदल चलना इतना भारी लगता है तो दूसरों की तो बात ही क्या की जाय ?

लोग कहते है—जो काम मिनटों में हो जाता है, उसके लिये आप इतना समय क्यों लगाते हैं ? पर मै कहता हूँ, जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय काम करते है, वे उन साधनों का उपयोग करते है, पर मैं तो इतना बोझ नही लेता। पंडितजी ने राष्ट्रीय ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय बोझ भी अपने कंधों पर ले लिया है, और उसे वे छोड़ भी नहीं सकते। उनका वह क्षेत्र है।

भारत ने हमेशा संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व किया है, इसीलिये कहा गया है :—

"एत देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्व मानवा :"...

नेहरूजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—आज विश्व में शान्ति के लिये भारत का नाम सबसे पहले आता है। अतः यह भारत के लिये गौरव की बात है, धर्म के लिये गौरव की बात है। हाँ, तो वे उन साधनों का उपयोग करते है। पर मेरा काम तो कोटि-कोटि जनता का दुःख-दर्द जानना और सुनना है। अभी जब मै गांवों से होकर आ रहा था, लोग मुझ से पूछते थे कि महाराज हमारे पास वोट के लिये अनेक लोग आते है। हमें पता नही, किसको वोट दें और किसको न दे। आप हमें कह दीजिये, हम किसको वोट दे। मैंने कहा—मै नहीं कहता कि तुम उसको वोट दो और उसको मत दो। पर एक बात जरूर कहूँगा कि वोट की बिक्री तो मत करो अर्थात् नोट के बदले में वोट मत दो। यह आवश्यक है कि आज देश में ऐसा आन्दोलन चलाया जाये—मैंने इस आवश्यकता को अनुभव किया और उसी का

परिणाम है कि मैने अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया। लोग कहेंगे—क्या आपने अणुव्रत चलाया ? नही।

पंडितजी से मैने कहा—आपने पंचशील चलाये। पंडितजी ने कहा—नहीं, यह तो चलते आ रहे हैं। मैने क्या चलाया। (क्यों पंडितजी आपने ऐसा कहा था न ? पंडितजी ने मुस्कराते हुये स्वीकार किया।) उसी प्रकार मैने तो छोटे छोटे व्रतों का संगठन कर सारी जनता के सामने रख भर दिया है।

यह भी ध्यान रखा है कि इसमें धर्म, जाति, लिंग और रंग का कोई भेद न रहे। आज जगह जगह पार्टीबाजी चल रही है। हमने सोचा—एक प्लेटफार्म ऐसा हो, जिस पर सब इकट्ठे हो सकें।

जर्मन दूतालय के लोगों से मैने पूछा—क्या आपको यह जैनों का आन्दोलन लगा ? क्या इसमें कोई साम्प्रदायिकता है ? उन्होने कहा—नहीं, यह तो हमारी बाइबिल के अनुकूल है। मुझे इससे खुशी हुई और इसीलिये जनता ने, नेताओं ने, साहित्यकारों ने, कवियों ने सभी ने इसमे सहयोग दिया।

मै अपनी योजना को अन्तिम नहीं मानता। कोई भी अच्छी बात, वह चाहे जनता से मिले या नेहरूजी से मिले, मै उसका स्वागत करूँगा। मेरा काम और भावना तो यही है कि जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठे। और इसी के लिये मेरा प्रयास है।

देश की आज सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हममे से प्रत्येक अपनी जिम्मेवारी को समझे। भारतीयो ने उसे अभी तक नही समझा। विदेशी लोग इसका बड़ा खयाल रखते है। अधिकतर भारतीयों को अभी तक चलने, उठने, बैठने और थूकने का भी ज्ञान नहीं।

महाव्रत की बात बहुत दूर है। हम अणुव्रतो की बात करते है। हम दार्शनिक चर्चायें—आत्मा और परमात्मा की बाते फिर कभी करेंगे। आज तो नैतिकता के छोटे छोटे नियमों की बातें करनी चाहिये। अगर इतना भी हो गया तो भी बहुत है।

बुद्ध ने अति-त्याग और अति-भोग के बीच मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। अति-त्याग साधारण जनता के लिये असाध्य है और अति-भोग तो सर्वनाशक है ही। अतः हमने भी साधारण जनता के लिये छोटे छोटे व्रतों को लिया और मध्यम मार्ग को अपना कर इस काम का सूत्रपात किया।

नैतिक प्रतिष्ठापन के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है—छोटे छोटे बच्चों को सुधारने की। बचपन से ही अच्छे संस्कार डालना सहज है। बड़े होने पर समझाना बड़ा मुश्किल है। अतः शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से ही बच्चों को अणुव्रतों की शिक्षा मिलती रहे, ऐसा सोचा जाना चाहिये। इसमें राष्ट्र के नेताओं, विचारकों, कार्यकर्ताओं के सहयोग की अपेक्षा है।

इस प्रसंग पर मुनि श्री नगराजजी तथा अ० भा० कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण के भी भाषण हुये।

मुनि श्री नगराज जी ने आंदोलन पर बोलते हुये कहा—"अणुव्रत आंदोलन को चलते सात वर्ष हुए हैं। इस बीच आचार्य प्रवर तथा उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियों के सतत प्रयास से लाखों व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए हैं, करोड़ों तक यह भावना पहुँची है। यह भारतीय संस्कृति के संयम एवं अध्यात्म मूलक आधारों पर प्रतिष्ठित है। नैतिक और आध्यात्मिक आधार के बिना देश में चलती सब प्रकार की प्रगति फीकी है। कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण ने कहा— "मुझे इस आंदोलन के प्रति अणु शब्द से आकर्षण हुआ। आज के जमाने में बड़ी बड़ी बातें करने वाले बहुत है पर काम बहुत कम। जब मैंने अणुव्रत आंदोलन का नाम सुना तो आप—छोटी बातें करने वाले भी तैयार हैं। विद्यार्थियों में, व्यापारियों में, वकीलों में, डाक्टरों में, विभिन्न वर्ग के लोगों में इस आंदोलन द्वारा जीवन सुधार का काम किया गया। जिसकी जैसी शक्ति थी, उन्होंने वैसे व्रत लिये। मुझे यह बहुत अच्छा लगा। हमारे देश में अनेकों आर्थिक आयोजन चल रहे हैं पर जब तक चरित्र-निर्माण न हो,

तब तक आर्थिक आयोजनो से विशेष लाभ नहीं हो सकता। इसलिये मैं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि से भी इस आंदोलन को महत्त्व देता हूँ। आर्थिक विकास के साथ साथ यदि चरित्र संबंधी गुणों का भी विकास हो तो सोने में सुगंध हो जाय।"

कुमारी यामिनी तिलकम् ने संस्कृत में मंगलाचरण किया तथा श्री गोपीनाथ अमन ने आभार प्रदर्शन किया। सभा सानंद संपन्न हुई।

आयोजन (=) अणुव्रत सप्ताह

दूसरा दिन

विद्यार्थी जीवन का निर्माण

१४ दिसम्बर १९५६ की प्रातः ९ बजे मॉडर्न हाईस्कूल में प्रवचन का कार्यक्रम था। आचार्य श्री ठीक समय पर वहाँ पधारे, विद्यार्थियो के सामूहिक गान से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। स्कूल के प्रिन्सीपल श्री एम० एन० कपूर के स्वागत भाषण के बाद (कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण की धर्मपत्नी) श्री मदालसा देवी ने आचार्य प्रवर व अणुव्रत-आन्दोलन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये अणुव्रत-सप्ताह की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मैं आज विद्यार्थियो के बीच बोल रहा हूँ, विद्यार्थियो में बोलना मेरी रुचि का विषय है। उनमें बोलना मैं पसन्द करता हूँ।

मै जो कुछ बोलता हूँ, 'उसके दो आधार हैं—मेरा अपना अनुभव और 'आर्षवाणी'..... आधार हीन बोलने में कोई तथ्य नहीं होता, हृदय

नही होता, वेदना व तड़प नहीं होती। केवल शब्द जाल सा रह जाता है। मुझे आज विद्यार्थी जीवन पर प्रकाश डालना है।

जैन सूत्रों में एक प्रकरण है—साधक अपने गुरु से पूछता है—भगवन् शिक्षा कौन-कौन प्राप्त कर सकता है अथवा विद्यार्थी के क्या लक्षण है। त्रिकालदर्शी भगवान् ने कहा—

"वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियं करे पियं वाही, स सिक्खा लद्धु मरिहई ···॥"

जिसमें ये पाँच लक्षण पाये जाते है, वह विद्यार्थी है।

पुराने जमाने में यह परम्परा रही है कि विद्यार्थी गुरुकुलों में ही विद्याध्ययन करते थे। अपने माता-पिता से कोसों दूर रह कर निर्जन स्थान में जीवन की बाते सीखते थे। वहाँ केवल किताबी ज्ञान ही नहीं, कैसे खाना, सोना, उठना, बैठना आदि आदि कार्यों का भी ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल के अधिपति उनका संरक्षण व संवर्धन करते थे। गुरुजनो के सात्विक व सदाचारी होने का लड़कों पर पूरा असर पड़ता था। दिन और रात उनके सहवास से उनका जीवन मँजता रहता था। किन्तु आज की स्थिति और है। आज का विद्यार्थी मुश्किल से ५–६ घंटे अध्यापकों के सम्पर्क में रह पाता है। शेष समय घर वालों के बीच बीतता है ··इसीलिये अध्यापकों के कथन व रहन-सहन का इतना असर नहीं होता, जितना घर वालों का होता है। पारिवारिक चिन्ताओं का शिकार भी उसे होना पड़ता है। यही कारण है कि आज का स्नातक जीवन के सही मूल्यों के आँकने में सफल नही होता। आज भी ऐसा सोचा जा रहा है कि यदि गुरुकुल की परम्परा का अनुसरण किया जाये तो सम्भव है, विद्याध्ययन के लक्ष्य में कुछ परिवर्तन आ सके।

विद्यार्थी-जीवन साधना का जीवन है। योग-साधना उसका लक्ष्य होना चाहिये। इस ओर कैसे गति की जाय, ऐसा चिन्तन होना चाहिए। आप चौंकेगे कि कहाँ तो विद्यार्थी जीवन और कहाँ योगी की योग

साधना? यह प्रश्न हो सकता है। किन्तु आपको यह जान लेना चाहिए कि योग के बिना एकाग्रता नहीं आती और एकाग्रता के अभाव में विद्या का समुचित ग्रहण नही होता। वही विद्यार्थी अपने जीवन में सफल हो सकता है, जो कि अपने अध्ययन, चिन्तन और मनन में एकाग्र रहता है। एकाग्रता से ग्रहण की हुई बातें नही भूलती। उनके संस्कार अमिट होते है।

आज विद्यार्थियो का जीवन एक रस नहीं है। वह कई भागो में विभक्त हो चुका है। राजनीति, समाज सुधार, अर्थनीति आदि आदि पचड़ों मे पड़कर अपना अध्ययन भी वे पूरा नही कर पाते। न अध्ययन ही होता है और न राजनीति में ही पूरा प्रवेश कर पाते हैं। आज का विद्यार्थी देश व विदेश की राजनीति के बारे में सोचता है। उसे समझने का प्रयास भी करता है। किन्तु यह भूल जाता है कि उसका अध्ययन किस ओर जा रहा है। एक उदाहरण है:—एक गाँव में कई वृद्ध महिलाएँ एक स्थान पर बैठी थी। आपस मे चर्चा चल पड़ी। उनका मुख्य विषय था—राजनीति। अपने-अपने मनोगत भावो को कह कर वे अपने आप में सन्तोष का अनुभव करती थीं। गर्मागर्म बहस होने लगी। एक राहगीर उस ओर से गुजरा। विषय को भाँपने में उसे देर न लगी। व्यंग कसते हुए उसने कहा—

रेंट्यो पूणी राम, इतरो मतलब आपरो
की डोकरियाँ काम, राजनीति स्युँ राजिया।

इसी प्रकार विद्यार्थियों को भी राजनीति से दूर रहना चाहिए।

विद्यार्थी का जीवन तपस्यामय हो, तपस्या का अर्थ भूखे रहना ही नहीं। मन, वचन और काया को संयत रखना भी तपस्या है। स्वाध्याय सत्-सेवा आदि कार्य भी तपस्या है।

अपनी छोटी से छोटी भी गलती को सहर्ष स्वीकार करना विद्यार्थी जीवन का बड़ा गुण है। गलती करना इतनी भूल नहीं, जितनी बड़ी भूल कि गलती को गलती न समझना तथा समझ लेने पर भी उसे

नही छोड़ना है। विद्यार्थी इससे बचे। इसी को पुष्ट करने के लिए रामायण की एक कथा आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ —

दो भाई विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल गये। बारह वर्ष तक अध्ययन किया। कुल पति की आज्ञा से वापिस घर लौटे। इस अवधि में बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। आते आते उन्होंने एक विशाल अट्टालिका के झरोखे में बैठी हुई द्वादश वर्षीय कन्या को देखा। मन में विकार उत्पन्न हुआ, विद्यार्थी अवस्था को भूल वे नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करने लगे। किन्तु ···· ?

माता पिता के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने देखा कि वही कन्या वहाँ भी उपस्थित है। मन चंचल हो उठा, मन ही मन सोचने लगे— यह कन्या कौन है ? क्या इसे हम पा सकते हैं। साहस कर माँ से पूछा—माँ यह कौन है ? माँ ने कहा—बेटा यह तुम्हारी बहिन है। जब तुम पढ़ने के लिए गुरुकुल में गये थे, तब इसका जन्म हुआ था। आज यह पूरे १२ वर्ष की हो गई हैं। यह कह कर माँ ने पुत्री की ओर संकेत करते हुए कहा—बेटी ये दोनों तेरे भाई हैं इन्हें प्रणाम कर। वह भाइयों के पैरों में पड़ गई। यह देख दोनों दंग रह गये।

अपनी मलिन भावनाओं को याद कर उन्होंने मन ही मन अपने आपको धिक्कारा। लज्जित हो, आँखें भूमि में गड़ाये हुये कुछ क्षण स्तब्ध से खड़े रहे। अपने किये का प्रायश्चित्त करने को उत्सुक हो उठे। उन्होंने यह निश्चय किया कि इस पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप वे जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहेंगे। इस कठोर व्रत के संकल्पमात्र से उनमें स्फूर्ति व उत्साह उमड़ पड़ा। आगे क्या हुआ ? इसमें हमें नहीं जाना है, इस उदाहरण से विद्यार्थी कुछ सीखें और इस शृंखला को अक्षुण्ण रखने में प्रयत्नशील रहें।

"विद्या ददाति विनयम्"—विद्या से विनय आती है। जो विद्या विनय नहीं देती, वह अविद्या है। उसका विकास नहीं, ह्रास होता है। विद्यार्थी को यह कभी नहीं समझना चाहिये कि उसकी समझ ही सब

कुछ है। बड़े बूढों की बातो पर ध्यान देना भी उसका परम कर्तव्य होना चाहिये।

मै आज से ५ वर्ष पूर्व पंडित नेहरू से मिला था। कल फिर उनसे मिलने का मौका मिला। मैंने उनमें बहुत अन्तर पाया। मुझे ऐसा लगा कि वे प्रतिवर्ष नम्र बनते जा रहे है। उनमें भारतीय परम्परा व सभ्यता के प्रति कितना सम्मान है। कहाँ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह वे केवल जानते ही नहीं, बल्कि तदनुकूल आचरण भी करते है। धर्माचार्य के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह आप उनसे सीखें। उनकी कोठी पर मै गया था। वहाँ भी उन्होंने लगभग ४८ मिनट तक धार्मिक विषयों के विचार-विनिमय में कितना रस लिया, यह मै जानता हूँ।

आपको भी चाहिए कि आप नम्र रहना सीखें। नम्रता के अभाव मे आचार और विचार में सामन्जस्य नहीं रहता, शिष्यत्व की भावना नहीं होती, वहाँ वात्सल्य नहँ आता या यों कह दें, वात्सल्य के बिना नम्रता नही आती।

विद्यार्थी अपने आपको पवित्र रखें। "जीवन को शुद्ध बनाये"—यह मै विद्यार्थियों के लिए नही कहूँगा। क्योंकि विद्यार्थी-जीवन बाल्य-जीवन है। वह प्रायः पवित्र होता है। मै उनको कहूँगा कि वे अपना जीवन् अशुद्ध न बनाएँ।

तीसरा दिन

शान्ति का मार्ग

१५ दिसम्बर १९५६ को मध्याह्न में चरित्र निर्माण सप्ताह के अन्तर्गत आचार्य श्री का आयकर अधिकारियों के बीच सेन्ट्रल रेवेन्यू बिल्डिंग में प्रवचन था। करीब १ बजे आचार्य श्री वहाँ पधारे। आयकर आयुक्त श्री एन० सी० चौधरी ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया। आचार्यश्री ने उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज आपके इस नये भवन में हम आपको और आप हम को कुछ विचित्र से लगते हैं। आज हमारा संगम भी तो नया है और जब तक परिचय नहीं हो जाता तब तक आश्चर्य होना स्वाभाविक भी है। एक बच्चा जब इस संसार में आता है, तब पहले पहल उसे भी संसार कुछ विचित्र सा लगता है। धीरे-धीरे उसका परिचय संसार के साथ होने लगता है, वह अपने वातावरण में रच-पच जाता है। अतः उचित है, पहले मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। हम भी आपकी तरह भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहने वाले थे। क्योंकि साधु कोई जन्म से तो होता नहीं, जिसे अपने अनुभव से संसार से विरक्ति हो जाती है, वही साधु होता है।

हम लोग शरणार्थी भी है, क्योंकि हमारी कहीं पर भी इंच भर जगह नहीं है। पर हम सामान्य शरणार्थियों से भिन्न है। दिल्ली में एक बार बहुत से शरणार्थी मेरे पास आये और मुझे अपना दुःख सुनाने लगे। मैंने उनसे कहा—भाइयो आप और हमतो एक से है, क्योंकि हम दोनों ही शरणार्थी है। पर हम में और आप में एक बहुत बड़ा

अन्तर है। वह यह है कि आपकी जमीन जायदाद छुड़ायी गई है और हमने अपनी धन सम्पत्ति जानबूझकर छोड़दी है। यही कारण है कि आपको तो दुःख होता है और हमें प्रसन्नता।

हम लोग जैन है। "जिन" का मतलब है—विजेता। विजेता यानी जो अपने पर अनुशासन करे। जिसने अपने पर अनुशासन नहीं कर लिया है, उसे वास्तव में दूसरों पर अनुशासन करने का अधिकार ही क्या है? अपने स्वार्थ से दूसरो पर अनुशासन करने वाला कायर है। पर "जिन" विजेता अपने पर ही अनुशासन करते है, उनका ही धर्म जैनधर्म है।

आप कहेंगे कि—हम यहाँ क्यो आए? हम यहाँ अपनी साधना के लिए आए है। हमारा सारा काम चलना, फिरना, खाना, पीना और प्रवचन करना साधना के लिए ही होता है। यहाँ जो प्रवचन करने आये हैं, यह आप पर कोई अहसान नहीं है। यह तो हमारी साधना ही है। आपसे भी हम कहना चाहते है, आप भी जो कुछ करें, साधना की ही भावना से करें।

आज की आवश्यकता

आज देश ने सबसे अधिक जो खोया है वह है ईमान और मानवता। ऊपर से तो सारे लोग बहुत अच्छे लगते है, पर अन्दर से केवल अस्थि-पंजर मात्र रह गया है। सब दूसरों की आलोचना करने को तत्पर हैं, पर अपने आप को कोई नहीं देखता। व्यापारी लोग आपको कोसते है। वे सोचते है, हम तो इतनी मेहनत से पैसा कमाते है और आप लोग (इन्कम टैक्स आफिसर) आकर उसे साफ कर देते है। सचमुच आप लोग उन्हें यमदूत लगते है (श्रोताओं में हंसी) पर वे स्वयं यह नही सोचते कि वे कितने गरीबों के गले पर छुरी फेरते है। अभी मेरे सामने व्यापारी (बनिये) लोग नहीं है। पर जब वे मेरे सामने होते है, तो मैं उनकी भी अच्छी तरह से खबर लेता हूँ। मुझे दुःख है कि आज

बनिये बदनाम है और उसके साथ साथ कभी-कभी हमें भी लोग कुछ बदनाम कर देते है, क्योंकि लोग हमें भी बनियों के गुरु कहते हैं। हमारे अनुयायी सारे बनिये ही है, ऐसा नहीं है।

बहुत से व्यापारी ऐसे भी है, जिन्हे आपका बिल्कुल भय नहीं है। उनका व्यापार बिल्कुल साफ है। अणुव्रत मनुष्य को अभय बनाता है। भय से भय बढ़ता है। अणुबम ने मनुष्य को भयभीत बना दिया तो विपक्ष के लोग हाईड्रोजन बम बनाकर अभय बनना चाहते है। पर अभय का रास्ता यह नहीं है। अणुव्रत अभय बनने का मार्ग है।

अणुव्रत आपको सन्यासी नहीं बनाता है। वह कहता है—जहाँ भी आप रहने है, वहाँ रहकर भी अपने पर नियंत्रण करे। अगर आपने यह कर लिया तो आपके घर और कार्यालय सब सुधर जायेगे।

पहला अणुव्रत अहिंसा है। किसी को मार देना मात्र ही हिंसा नहीं है पर बुरा चिन्तन भी हिंसा है। अस्पृश्य मान कर करोड़ों का तिरस्कार करना हिंसा नही तो और क्या है? इस तिरस्कार की फिर प्रतिक्रिया भी होती है। आज जो सामूहिक रूप में धर्म परिवर्तन किया जा रहा है, यह क्या है? क्या उन्होंने श्रद्धा से ऐसा किया है? श्रद्धा से व्यक्ति समझ सकता है पर इतने बड़े पैमाने पर धर्म-परिवर्तन निश्चय ही अपमान का प्रतिकार है। हिन्दू लोगों ने शूद्रों के साथ असद् व्यवहार किया, उसका फल है कि आज ये लाखों की संख्या में बौद्ध बनते जा रहे है। काम के आधार पर किसी को नीचा और अस्पृश्य मानना हिंसा है और व्यवहार विरुद्ध भी है। अगर इसी प्रकार कोई अस्पृश्य होता तो माताये तो कभी की अस्पृश्य-अपवित्र हो जातीं।

भगवान् महावीर ने कहा—"कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो, वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा..." अर्थात् कर्म से ब्राह्मण होता है और कर्म से ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी कर्म से ही होता है।

जीवन के मूल्य बदलो

आज बड़ा वह माना जाता है, जिसके पास पैसे हों, भवन हों, मोटर हों और जिसकी आवाज सब सुनते हो। पर जीवन के इस मूल्य में परिवर्तन करना होगा। हमें पैसे को मनुष्य से बड़ा नहीं मानना है। बड़ा वह है—जो त्यागी है, संयमी है। यदि पैसे से ही मनुष्य बड़ा हो जाता तो हम अकिंचन भिक्षुओं की क्या गति होती, जिनके पास एक पैसा भी नहीं है। भारतीय संस्कृति में सदा त्यागियों की पूजा होती आयी है। बड़े बड़े सम्राटों के सिर भी उन अकिंचन भिक्षुओं के सामने झुक जाते थे। अतः आज भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बड़ा वह है, जो त्यागी है।

दूसरा व्रत है—सत्य। केवल सत्य बोलना मात्र ही सत्य नहीं है। सत्य का अर्थ है—जैसा सोचे, वैसा बोले। यदि ऐसा नहीं, तो मनुष्य ऊँचा नहीं बन सकता।

इसी प्रकार तीसरे व्रत अचौर्य का मतलब भी केवल चोरी नहीं करना ही नहीं है। अपने कामधन्धे में ईमानदारी नहीं बरतना भी चोरी है। अपनी जिम्मेवारी के काम से दिल चुराना भी चोरी है।

चौथा व्रत है—ब्रह्मचर्य। आज के जीवन में इसकी बड़ी कमी है। इसीलिये आज बचपन से यौवन आता ही नहीं, सीधा बुढ़ापा आ जाता है।

पाँचवाँ व्रत है—अपरिग्रह। इसका मतलब यह नहीं कि आप संन्यासी बन जायें। पर अपनी निःसीम लालसाओं की सीमा तो करें।

आप आफिसर हैं। किसी व्यापारी पर अभियोग लगाया कि अपना घर भर लिया। उधर व्यापारी-गण अपनी रक्षा करते हैं—रिश्वत देकर। सरकार की आपको क्या चिन्ता ? आप सोचते हैं—"पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा।" पर अब ऐसे काम चलने वाला नहीं है। अब आप स्वतन्त्र हो गये। राष्ट्र की सारी जिम्मेदारी आपके कन्धों पर है। अब

आप दूसरों पर दोष नहीं मढ़ सकते । अतः अपने आपको जगाना पड़ेगा ।

सबसे पहली और महत्व की बात यह है कि आप रिश्वत न लें । मैं आपकी कठिनाइयों को जानता हूँ । यह कठिनाई केवल आपकी ही नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति के सामने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ रहती हैं । बिना उनके सहे आप सुखी नहीं हो सकेंगे । जिस व्यक्ति ने इस तथ्य को समझ लिया है, वह निश्चय ही एक आन्तरिक शान्ति का अनुभव करेगा ।

दूसरी बात आप दुर्व्यसनों से बचें । बीड़ी सिगरेट तो आज सभ्यता की चीज़ बन गई है । बहुत से लोगों से मै पूछता हूँ—भाई तुम बीड़ी पीते हो । वे कहते है—हाँ महाराज । वैसे तो हम बीड़ी नहीं पीते, पर कभी कभी जब दोस्तों के साथ बैठ जाते है तो सभ्यता के नाते पीनी पड़ती है । लानत है ऐसी सभ्यता को । क्या सभ्यता इसे ही कहा जाता है ? और चाय तो आज बिछौने में ही चाहिये । बिना उसके तो दूसरे काम में हाथ लगाना ही मुश्किल हो जाता है । वह तो मानो आजकल रामनाम हो गई है । इसी प्रकार और भी बहुत सी नशीली चीजें हैं, जिनसे आप बचने की कोशिश करेंगे तो आपके जीवन में एक सच्ची शान्ति मिलेगी ।

सेक्रेटरी श्री हरनाम शंकर के द्वारा किये गये आभार प्रदर्शन के साथ सभा विसर्जित हुई ।

चौथा दिन

हरिजन—बनाम महाजन

१६ दिसंबर १९५६ को दोपहर में राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण अणुव्रत संप्ताह के अन्तर्गत हरिजन बस्ती में वाल्मीकि मंदिर में हरिजनों के बीच आचार्य श्री का प्रवचन हुआ।

पहले वाल्मीकि सभा के सेक्रेटरी श्री रतनलाल वाल्मीकि ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना भाषण प्रारंभ करते हुये कहा—आप लोगों में सुनने की उत्कंठा है, जिसका प्रमाण स्वयं आप लोगों की उपस्थिति है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। आप लोगों को समय कम मिलता है क्योंकि आपके जिम्मे सफाई का बहुत बड़ा काम है। दूसरे लोग जहाँ गन्दगी करते हैं, वहाँ आप लोग सफाई करते है। यह बड़े महत्त्व की बात है। इसे ऊँचे अर्थ में लें तो गन्दगी मनुष्य के भीतर है, आत्मा में है। क्या कोई ऐसा भी हरिजन है जो उस गन्दगी को दूर कर सके। वही वास्तव में सच्चा हरिजन है।

हरिजन का अर्थ

गांधीजी ने आपका नाम हरिजन दिया। पर वास्तव में इसका अर्थ क्या है, यह आपको समझना है। जैसा कि वैष्णव जन की परिभाषा में गांधीजी एक भजन गाते थे—"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे।" उसी प्रकार वास्तव में हरिजन वह है जो अपने आपको स्वच्छ रखकर दूसरों को भी स्वच्छ रखने का प्रयास करता रहे। ऐसे

हरिजन थोड़े ही मिलेंगे पर उनकी अत्यधिक आवश्यकता है।

आज नई दिल्ली के वाल्मीकि मंदिर में आप लोगों के बीच मैं पहली बार ही आया हूँ। वैसे मैं बहुत स्थानों पर हरिजनों के बीच जाता रहा हूँ। वहाँ केवल मैं देता ही देता नहीं हूँ, लेता भी हूँ। देता तो मैं उपदेश हूँ और लेता उनसे भेंट हूँ। पर मैं रुपयों और फल फूलों की भेंट नहीं लेता। मुझे त्याग की भेंट चाहिये। आज ही लोक सभा के अध्यक्ष अय्यंगार आये तो उन्होंने मुझे फल भेंट करने चाहे। मैंने कहा—मुझे भक्ति और त्याग की भेंट चाहिये।

आपको लोग हरिजन कहते हैं पर मेरी दृष्टि में आप सबसे पहले मानव हैं। मनुष्य सबसे पहले मनुष्य है और पीछे वह सज्जन, दुर्जन, महाजन, हरिजन है। मानव मौलिक चीज है, दूसरी सब उपाधियाँ है।

सोचना यह है कि मानव कौन है? स्पष्ट है—जिसमें मानवता है, वह मानव है अन्यथा मानव का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। मानवता यह है कि मनुष्य दूसरों को भी अपने जैसा समझे। पर आज मानवता रह कहाँ गई है। आज तो करोड़ों आदमी अपने भाइयों को भाई नहीं समझते। वे उन्हें नीच और अस्पृश्य मान कर उनका तिरस्कार करने से भी नहीं सकुचाते। ये ऊँची-नीची कौम कब और क्यों हुई? यह सब इतिहास का विषय है। मुझे उसमें नहीं जाना है। पर शुरू में भिन्न भिन्न जातियाँ काम के आधार पर बनी थीं यह निश्चित है। पहले हरिजन जैसा कोई नाम नहीं था। ये सब बाद की चीजें हैं। स्यात् पुराना नाम "महत्तर" था। जब से काम का व्यवस्थित विभाजन हुआ, तब वह श्रम पर अवलम्बित था। श्रम करने वालों को महान् कहा जाता था। उनमें जो विशेष काम करता, उसे महत्तर कहा जाता था। अतः सफाई का काम करने वालों को महत्तर कहा जाने लगा। पर आज स्थिति दूसरी ही हो गई है। आप लोगों ने भी अपने आपको हीन मान लिया। आप समझते हैं—हम तो नीचे है। पर यह कायरता क्यों? हीन वह है जो दुराचारी है, व्यभिचारी है, कमीना है। आप

सफाई का काम करने मात्र से हीन और नीच कैसे हो गये ?

मुझे एक प्रसंग याद आता है---एक बार एक चंडालिनी चली जा रही थी। उसके हाथ में खप्पर था, हाथ लहू से सने हुये थे। सिर पर मरा हुआ कुत्ता था और वह मार्ग को पानी से छींटती हुई जा रही थी। उसे देखकर एक ऋषि ने पूछा--

"कर खप्पर शिर श्वान है, लहु जु खरड़े हत्थ।
छटकत मग चंडालिनी, ऋषि पूछत है बत्त।"

उसने तुरन्त उत्तर दिया--

"ऋषि तुम तो भोरे भये, नहिं जानत हो भेव।
कृतघ्नी की चरण रज, छटकत हूँ गुरुदेव।"

गुरुदेव आप इसका रहस्य नहीं जानते। मै मार्ग पर जो पानी छिटक रही हूँ, इसका कारण है, आगे जो कृतघ्न मनुष्य चला जा रहा है, उसकी चरण रज मेरे पैरों पर न पड़ जाये। क्योंकि वह अस्पृश्य है।

अतः सफाई का काम करने मात्र से कोई अस्पृश्य नहीं हो जाता। वास्तव में अस्पृश्य तो वह है जो कृतघ्नी है। केवल अच्छे कपड़े पहन लेने मात्र से ही कोई ऊंचा नहीं हो जाता। दिन भर तो बेईमानी करें और आफिस में जाकर ऊँचे आसन पर बैठकर अपने आपको ऊँचा मानने वाला वास्तव में ऊँचा नही है। अतः आप अपने मन से यह भावना निकाल दें कि हम नीच हैं।

दूसरी बात है, आप लोग अपने आपको गरीब क्यों मानते हैं। क्या इसलिये कि आपके पास धन नहीं है ? तो हमें भी देखिये हमारे पास एक पैसा भी नहीं। हम पैदल चलते हैं। अब पूँजी की पूजा करने का ज़माना लद चुका है। हाँ, आज सीटों का जमाना अवश्य है। आज वे आदमी वड़े माने जाते हैं, जो शासकीय सीट पर हैं। पर यह भी गलत बात है। वे ही आदमी जिन्हें सीट लेनी होती है, पहले कितने लुभावने आश्वासन देते हैं और फिर गरीबों के सामने देखते तक नहीं। अतः उन्हें ही बड़ा मानना कोई आवश्यक नहीं है। बड़े वे ही हैं जो त्यागी

हैं। खाने को बड़े भी तो मुश्किल से बनते है फिर बड़ा आदमी बनने में तो बड़े त्याग की आवश्यकता है। अगर आपको बड़ा बनना है तो अणु-व्रती बनिये।

आप लोग इतना काम करते है, पर फिर भी रहते भूखे के भूखे हैं। इसका कारण क्या है? यही कारण है कि आप कमाते तो एक हाथ से हैं और गंवाते सौ हाथों से है। इधर कमाया और उधर शराब में खो दिया। मांस मत खाइये। हाँ, रोटी खाये बिना काम नहीं चल सकता। पर मांस भी कोई खाने की चीज है? तम्बाकू भी आपको चाहिये। क्या यह पैसे, स्वास्थ्य और सबसे ज्यादा आत्मा के बर्बाद होने का रास्ता नहीं है?

एक बात और—आप अपने वोट की बिक्री न करें। आप वोट किसी को दे, इसमें मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। पर अपने आपको दूसरों के हाथ तो मत बेचिये।

कम से कम इतनी बातों को अपने जीवन में स्थान दे दिया तो मैं समझता हूँ कि आपका जीवन सुखी हो जायेगा। बिना आत्म-शुद्धि के कहीं भी शान्ति नहीं मिलने वाली है। चाहे आप कहीं चले जायें, किसी धर्म को स्वीकार कर लें।

आपके साथ साथ आपके पास बैठने वाले भाइयों से भी मै यही कहूँगा कि वे अस्पृश्यता जैसी मानसिक हिंसा का त्याग करें। हाँ, इस सम्बन्ध में आपसे भी मुझे कहना है। हरिजनों में भी आपस में छूआछूत है, यह अनुचित बात है। जब आप लोग भी इसके शिकार है, तब दूसरों को आप समानता की बात क्या कह सकते हैं। अतः उसे मिटाइये, तब ही आप बड़े हो सकेंगे। अपना बड़प्पन अपने हाथ में है। अगर आप किसी को भी छोटा नहीं मानते हैं तो आप स्वयं ही बड़े हो जाते हैं।"

प्रवचन के अन्त में अनेकों (प्रायः सभी) हरिजनों ने वोट के लिये

रुपये लेने और शराब पीने का त्याग किया...उससे थोड़े लोगों ने धूम्र-पान और उससे थोड़े लोगों ने मांस खाने का त्याग किया।

त्याग लेते समय कुछ बच्चे भी खड़े हो गये थे। उन्हें समझाते हुये आचार्य श्री ने कहा—अभी तुम छोटे हो, फिर बड़े हो कर भी इन्हें निभाना होगा। अतः पूरा समझ लेना। कुछ छोटे लड़के, जो त्याग के महत्व को नहीं समझते थे, उन्हें प्रत्याख्यान नहीं करवाय. गया।

पांचवां दिन

पाप का सुधार

१७ दिसंबर १९५६ को नई दिल्ली से विहार कर आचार्य श्री नये बाजार पधारे। बीच में "राष्ट्रीय-चरित्र-निर्माण-अणुव्रत सप्ताह" के अन्तर्गत "सैन्ट्रल जेल" में प्रवचन हुआ। प्रवचन प्रारम्भ करते हुए आचार्य श्री ने लगभग १५०० कैदियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"आज के इस सुन्दर अवसर पर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। अपराधियों के बीच काम करने में मेरी विशेष रुचि रही है। आप लोगों के बीच मेरा आने का पहला ही अवसर है। शायदआप लोगों का भी यह पहला ही अवसर होगा, जब कि एक धर्म गुरु आप के बीच उपदेश कर रहे है।

सब से पहले मै आप से यह पूछना चाहूँगा कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक ? नास्तिक वह है जो पुनर्जन्म, धर्म, कर्म में विश्वास नहीं करता। जो इनमें विश्वास करता है वह आस्तिक है। शायद आप

लोगों में से अधिकतर आस्तिक होंगे। आप को सोचना है—ईश्वर क्या है? ईश्वर वही है, जो सर्वद्रष्टा है। इसीलिए हम सवेरे-सवेरे उसका स्मरण करते हैं। जब हमने मान लिया कि परमात्मा सारे संसार को देखता है तो उससे छिपकर काम करने वाला क्या नास्तिक नहीं है? अतः सब से पहले आपको यह सोचना है कि आपने क्या अपराध किया था? किसी दूसरे ने आप के अपराधों को देखा या नहीं? पर आप खुद अपने अपराधों को नहीं भूल सकते। इसी कारण आप को जेल की हवा खानी पड़ी है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि समूचा संसार कैद खाना ही है क्योंकि शरीर भी तो बन्धन ही है…जिस दिन इससे छूटेंगे, वह दिन धन्य होगा। पर इतना कह देने मात्र से काम नहीं चलेगा। यह निश्चय की भाषा है। व्यवहार की भाषा में जेल यही है, क्योंकि यहाँ अपराधी रहते हैं। मैं कहूँगा—आप अपना आत्म-निरीक्षण करें। आप सोचिये—क्या आपने अपराध किया है? शायद आपकी आत्मा हाँ कहेगी। तब आप उसे छुपाइये मत। साफ-साफ कह दीजिये। आप यह देखते होंगे कि पुलिस ने आप को व्यर्थ ही जेल में डाल दिया है। पर आज आप उसे भूल जाइये। गवाहों की झूठी गवाही को भूल जाइये। अपने आप को देखिये कि अपना क्या अपराध हुआ? पाप के स्वीकार मात्र से आप की आत्मा कुछ हल्की हो जायेगी। पाप का पहला प्रायश्चित्त है—आत्म-ग्लानि। अतः अगर आप अपने आप को स्वीकार कर लेते हैं, तो एक रूप से उसका प्रायश्चित्त हो जाता है।

रामायण में एक प्रसंग आता है—एक बार सीतेन्द्र अपने स्वर्ग से चल कर रावण आदि अपने पूर्व भव के सम्बन्धियों को देखने नरक में गया। वहाँ उसने देखा—सारे नैरयिक आपस में बुरी तरह लड़ते हैं और दुःख पाते हैं। उसके मन में दया आ गई। उसने चाहा कि वह रावण आदि को विमान में बिठा कर अपने स्वर्ग में ले जाये। पर अपने पाप के कारण वे ऊपर नहीं जा सके। सीतेन्द्र ने भी देखा कि वह रावण आदि को स्वर्ग में नहीं ले जा सकता और कहा—तुम स्वर्ग

में तो नहीं जा सकते पर एक काम तो करो—आपस में लड़ कर जो तुम दुःख पा रहे हो, वह तो मत करो। इससे कम से कम तुम्हारा अगला जन्म तो सुधरेगा। रावण ने उसकी बात मान ली।

इसी प्रकार हम आज यहाँ जेल में आये हैं पर आप को जेल से छुड़ाने के लिये नहीं। हमारा कर्तव्य है कि हम आप को उपदेश दें और आप को दुर्व्यसनों से छुड़ायें। आप भी जेल से छूट नहीं सकते पर कम से कम अपने अपराधों को तो स्वीकार करें। सभे आप को आगे की लम्बी जेल से छुटकारा मिलेगा।

अपराध कई प्रकार के होते हैं—मानसिक, वाचिक और कायिक। मन में बुरा चिन्तन करने वाला भी अपराधी है तो जो आदमी हत्या या चोरी करता है, वह तो साक्षात् अपराध है ही ... फिर वे चाहे जेल में हों या बाहर। उसी प्रकार जो आदमी हत्या नहीं करता है, अहिंसक है, पर चाहे जेल में भेज दिया जाये, वह अपराधी नहीं होता। यह भी क्या पता कि आप अपराधी है या नहीं। मै तो कई बार कहा करता हूँ कि आज का सारा संसार ही अपराधी है। व्यापारी बाजार में अनीति करते हैं, क्या वे अपराधी नहीं है ? कानून का भंग करने वाला हर कोई अपराधी है। तो आज संसार में कितने आदमी हैं, जो अपराध नहीं करते। पर कानून ही ऐसा है कि जिससे सारे पकड़ में नहीं आते या नहीं पकड़े जाते। आप अपराधी इसलिये हैं कि आपका अपराध पकड़ लिया गया। अतः व्यवहार की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि आपने अपराध किया है। इसलिये आज आप को स्वयं को टटोलना है।

हमने सोचा—जब हम सब वर्गों में काम करते हैं तो अपराधी लोगों को भी हमें सम्हालना चाहिये। हमारा यह दावा नहीं है कि हम आप को सुधार ही देंगे। प्रेरणा देना हमारा काम है। सुधरेंगे तो आप स्वयं ही। मैं यह कहूँ कि मै आप को सुधारता हूँ, तो यह 'अहं' होगा। रास्ता दिखाना मेरा काम है उस पर चलना आप का काम है। मैं क्या,

परमात्मा भी किसी को सुधार नहीं सकता, यदि स्वयं व्यक्ति सुधरना न चाहे।

सुधार व्रतों से सम्भव है। अणुव्रत व्रतों का मार्ग है वह आप के सामने है। अति-त्याग और अति-भोग के ब च का यह मध्यम मार्ग है। अणुव्रती वह है जो छोटे व्रतों को ग्रहण करे। आप भी आज से अपने अपराधों को पुनः न दुहराने को प्रेरणा लें। खान-पान में अशुद्धि न बरते। कम से कम उन चीजों को तो अवश्य छोड़िये जो दिमाग को बिगाड़ती हैं। इसके अलावा आप से मै एक बात यह भी कहूँगा कि आप अपने व्यवहार को इतना विश्वस्त बनाइये, जिससे कि आप के आस-पास रहने वाले अफसर आप पर विश्वास कर सकें · सजा तो आप को भोगनी ही पड़ेगी। तो फिर अविश्वस्त बन कर पाप क्यों कमा रहे हैं।

आप के साथ-साथ उपस्थित अधिकारियों से मैं भी यह कहना चाहूँगा कि आप को कैदियों के साथ वैसा बर्ताव तो करना ही पड़ता है, जैसा कानून कहता है। पर आप अपनी ओर से उनके साथ क्रूर व्यवहार न करें।

इसके बाद सभी लोगों ने दो मिनट तक आत्म-चिन्तन किया। कई कैदियों ने अपने-अपने अपराध स्वीकार भी किये और आगे वैसा न करने की शपथ ली। वातावरण बड़ा शान्त रहा।

तत्पश्चात् एक कैदी ने अपनी आत्म-कथा सुनाई। उसकी बोली में वेग था। एक ही साँस में वह सब कुछ कह गया और आचार्य श्री से यह प्रार्थना की कि वे उच्च अधिकारियों से मिलते वक्त कैदियों की स्थिति का भी वर्णन करे और उसमें कुछ सुधार हो, ऐसा प्रयत्न भी करें।

आज के इस अनोखे कार्य-क्रम में केन्द्रीय रेलवे मंत्री श्री जगजीवन-राम और राजस्थान के पुनर्वास मंत्री श्री अमृतलाल यादव ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये और अणुव्रत आंदोलन के वर्गीय कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई श्रावक श्राविकायें भी कार्यक्रम में उपस्थित थीं।

आत्मा की आवाज़

केन्द्रीय रेलमंत्री श्री जगजीवनराम ने अपने भाषण में कहा—"जिस काम को करते समय छिपाना चाहते है या काम करके जिसे छिपाना चाहते है, मेरे विचार में वह अपराध है। सब की आत्मा हर वक्त यह बताती रहती है। पर होता यह है कि हम आत्मा की आवाज को दवा देते है। व्यक्ति अपराध क्यो करता है, समाज का ढाँचा भी इसका एक कारण है। आज के समाज मे अनेको बेढंगी और बेहूदी बातें है, जिन्हें हमें बदलना है। आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत-आंदोलन द्वारा ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये मुझे इस आंदोलन मे दिलचस्पी है। आचार्य श्री का यह काम बड़ा सुन्दर है। मै तो चाहता था कि जहाँ भी यह कार्यक्रम चले, उपस्थित रहूँ। पर ऐसा कर नही सका, दूसरा कार्य भार जो है। जेल के भाइयों से मै कहना चाहूँगा कि वे जेल से निकलें तो कुछ सीख कर निकलें। बुराइयाँ नही, भलाइयाँ और चरित्र की बातें।

नैतिक दिशा

राजस्थान के पुनर्वास मंत्री श्री अमृतलाल यादव ने अपने भाषण में कहा—"जिन कैदी भाइयों ने खड़े होकर आचार्य श्री के समक्ष प्रतिज्ञायें ली हैं, वे अपने मन में निश्चय कर लें—उसके अनुरूप उन्हें अपने आप को तैयार करना होगा। जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक पहलुओं पर जैसा कि आचार्य श्री ने बताया, वे अमल करें और अपने भावी जीवन में क्रियात्मक रूप से ईमानदारी, सचाई आदि अपनायें। अणुव्रत आंदोलन वह आंदोलन है, जिसने दलित, शोषित और पीड़ित—सबको—मानव-मात्र को एक नैतिक दिशा प्रदान की है। आचार्य श्री तुलसी का यह गौरवशाली कदम है।"

छठा दिन

महिलाओं का दायित्व

१८ दिसम्बर १९५६ को "दीवान हाल" में दिल्ली प्रदेश काँग्रेस महिला समाज की ओर से महिलाओं में आचार्य श्री का प्रवचन हुआ। दिल्ली की अनेक कार्यकर्त्रियों के अलावा कॉंग्रेसाध्यक्ष श्री ढेबर भाई भी प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे। हाल खचाखच भरा था। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस महिला समाज की संयोजिका श्रीमती सुशीला मोहन ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

आचार्य श्री ने अपना प्रवचन आरम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह के छठे दिन का कार्यक्रम है। उसका उद्देश्य यही है कि आज जो देश का चारित्रिक वातावरण गन्दा हो गया है, शुद्ध किया जाय। जब तक देश का चरित्र ऊँचा नहीं होगा, तब तक सारी विकास योजनाएँ बे-बुनियाद होंगी। इसीलिए हमने सोचा कि हमें देश में चरित्र का वातावरण बनाना चाहिए। वैसे तो जिम्मेवार व्यक्ति इस विषय में सोचते ही हैं, क्योंकि देश की बागडोर चिन्तक व्यक्तियों के हाथ में है। पर हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है और इसलिए हमने सोचा--यह आन्दोलन अब की बार राजधानी में भी विशेष रूप से चलाना चाहिए। इसलिए हम राजस्थान से चलकर अभी-अभी यहाँ आये और देश के विशिष्ट व्यक्तियों से विचार-विमर्श किया। इसी का यह परिणाम है कि हम जन-जन में नैतिक जागृति लाने की कोशिश कर रहे हैं।

हम हरिजनों में गये। हम जेल वासी बन्दियों के बीच भी गये।

हमें खुशी है कि वहाँ पर अनेकों बन्दियों ने अपने अपराध स्वीकार किये और फिर से अपराध न करने की प्रतिज्ञा की। वहाँ पर मैंने एक बात कही थी—आज अपराधी कौन नहीं है। सारा संसार मुझे तो अपराधी ही दीखता है, ये बेचारे अपराध करते देख लिए गये। अतः जेल में डाल दिये गये। उनका सुधार भी आवश्यक है।

बहिनों से मै कहूँगा—आपका सुधार बड़ा महत्व रखता है। एक बहिन के सुधार होने का मतलब है, एक परिवार का सुधार, अतः आपको देश के नैतिक पतन से लड़ने के लिये तैयार रहना चाहिये। आप यह कहना छोड़ दें कि हम क्या कर सकती हैं। आप तो बहुत कुछ कर सकती हैं। कई भाई व्यापार में अनैतिकता करते हैं। उनसे पूछा गया—आप अनैतिकता क्यों करते हैं ? तब उन्होंने कहा—हम क्या करें ? हमें औरतें तंग करती हैं। उन्हें हमेशा नई फैशन चाहिये। नये जेवर और नये कपड़े चाहिये। इसीलिये हमें अनैतिकता बरतनी पड़ती है··· उनका यह उत्तर सही हो, यह मै नहीं मानता। पर आज हमें उन्हें नहीं देखना है। मैने "सप्रू हाऊस" में कहा था—आज आलोचना का युग है। हर एक दूसरे की आलोचना करने को तैयार है। जनता सरकार की आलोचना करती है। पर ज्यादातर वही लोग सरकार को कोसते हैं, जो स्वयं रिश्वत देते हैं। इसी प्रकार सरकारी लोग जनता की आलोचना करते हैं। अध्यापक छात्रों की आलोचना करते हैं और छात्र अपने अध्यापकों की। पर अपनी आलोचना कोई नहीं करता। सब दूसरों की आलोचना करते है। अगर अपनी आलोचना करें तो देश सुन्दर हो जाय। आज दूरबीन बनने की आवश्यकता नही है, आइना बनने की आवश्यकता है। दूरबीन दूर की चीजें देखती है, आइना नजदीक की। आज अपने आपको नजदीक से देखने की आवश्यकता है।

कई लोग कहते हैं—इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार से सारा संसार कब तक सुधरेगा ? पर आप बताइये कि इसके सिवाय परिवर्तन का और मार्ग ही क्या है ?

आज लाखों आदमी एक साथ धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। पर मेरा इसमें विश्वास नहीं। धर्म-परिवर्तन इस प्रकार कभी सम्भव नही होता। एक एक व्यक्ति जब धर्म के महत्व को समझेगा, तब ही वास्तविक सुधार सम्भव है। एक एक व्यक्ति से समाज का सुधार होगा और फिर एक एक समाज से एक देश का सुधार होगा और फिर सारे राष्ट्र का। क्रान्ति की यह प्रक्रिया है। मकान की एक एक ईंट सही होगी तो मकान पक्का बनेगा। अगर ईंटे ही कमजोर होंगी तो मकान पक्का कैसे बनने वाला है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र का व्यक्ति व्यक्ति चरित्रवान होगा तो राष्ट्र अवश्य उन्नत होगा।

अगर आज बहनें यह संकल्प करलें कि हमें फैशन नहीं चाहिये, हमारे लिये जनता का शोषण नही होना चाहिये, तो मै समझता हूँ, यह बहुत बड़ी क्रान्ति होगी;

दूसरी बात यह है कि बहनें अपने आप में हीनता का अनुभव करती है, यह क्यों? आप तो महापुरुषों की माताएँ है। तब फिर आप में यह कायरता क्यों। बहनें तो पुरुषों से कई बातों में आगे हैं। भारत में चरित्र का स्थान पुरुषों से बहनों का ऊँचा है। तब फिर अपने आपको हीन मानना, क्या अपराध नहीं है?

मैं बहुधा बहनों से यह सुनता हूँ कि उनका आदर नहीं होता। पर मैं आप से एक बात कहूँ कि आपके पुत्री हो जाये तो आपके मन में कितनी हीन भावना पैदा होती है। राजस्थान में एक कुप्रथा है कि लड़का पैदा होता है तो उसकी खुशी में थ.ली बजाई जाती है और लड़की पैदा होती है तो छाज पीटा जाता है। कहा जाता है—यह पत्थर कहाँ से आगया। और भी कितने हीन भाव मन में आते होंगे। तो फिर सोचिये आपके मन में ही यदि लड़की के प्रति हीन भावना है तो पुरुषों के मन तो उच्च भावना होगी ही कैसे? अतः आप को स्वयं अपने मन से वह दुर्भावना निकाल देनी चाहिये। मै समझ नहीं पाया, जबकि दोनों ही सृष्टि के अंग है, तो फिर उनमें यह भेदभाव क्यों?

तीसरी बात है—आप सोचती हैं कि हमारा उत्थान पुरुष करेंगे। पर यह बात निराधार है। अपना उत्थान व्यक्ति स्वयं करने वाला है। कोई किसी का उत्थान नहीं कर सकता। उत्थान आखिर है क्या? अपनी कमियों को दूर किया कि उत्थान हुआ। हमें प्रगति नहीं करनी है। केवल अपनी दुर्गति को हटा देना है। यही वास्तव मे प्रगति है और यह किसी दूसरे से होने वाली नही है।

रामायण में सीता जी के लिये कितना सुन्दर उदाहरण है। अरण्य में छोड़ देने के बाद राम स्वयं सीता को याद करते हैं। वहाँ कितना सुन्दर चित्रण किया जाता है :—

"मतो देण मंत्रीश, सुकाम समारण दासी"

राम कहते हैं—सलाह देने के लिये सीता मेरे मंत्री का काम करती थी। जब कभी उससे सलाह लेने का काम पड़ता, वह कितनी सुन्दर सलाह देती थी। पर वही सीता घर का काम करने के लिये दासी थी। आज स्त्रियाँ सोचती हैं कि घर का काम करना तो उनका है ही नहीं। कई बार हमारी ये बहनें कहती हैं—महाराज सेवा करने की इच्छा तो थी। पर करें क्या, साथ में कोई औरत नहीं है। इस प्रसंग पर मुझे वह कथा याद आती है—

"एक व्यक्ति एक सेठ जी के पास गया और कहा—मुझे अमुक चीज चाहिये। सेठ जी ने कहा—हाँ भाई, वह चीज तो है पर देने वाला कोई आदमी नहीं है। वह हसा और कहने लगा—मै तो आपको आदमी ही समझता था। व्यंग को सेठ जी समझ गये।"

इसी प्रकार हमारी बहनें कहती हैं—उनके साथ काम काज करने के लिये कोई औरत नहीं है। तो मै समझ नहीं पाया कि आप औरत हैं या और कोई। अतः जब तक बहनों में स्वावलम्बन नहीं आएगा, तब तक वे वास्तविक उन्नति नहीं कर सकेंगी।

इसी प्रकार दहेज-प्रथा के बारे में भी मैं आपसे यह कहूँगा कि क्या यह नारी जाति के लिये कलंक की बात नहीं है। रुपये पैसों से भेड़

-बकरियों की तरह औरतों को खरीदना और बेचना क्या शर्म की बात नहीं है। आप कहेंगी हम क्या करें, पुरुषों का दिमाग ही ऐसा है। बात ठीक है। पर एक बात तो आप कर सकती है—अपने पुत्रों की शादी में स्वयं तो कुछ न लें। अगर आप इतना भी कर सकीं तो नैतिक क्रान्ति में आप बड़ा भारी काम कर सकेंगी।

आप मेरी भावना को समझें और तदनुकूल जीवन बिताने का प्रयास करें।"

आज के मानव का मूल्य

काँग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबर भाई ने कहा—"हम सबने महाराज श्री का प्रवचन सुना। शब्द त सब ही बोलते है। पर कितनेक शब्दों का बल दूसरा ही होता है। और सचमुच ही आचार्य श्री ने जो बातें कहीं, वे बड़ी बल वाली बातें है। अणुव्रत की बात उनके लिये नई नहीं है। फिर भी वे हमारे बीच आये। इसलिये नहीं कि यहाँ आपसे उन्हें कोई स्वार्थ साधना है या इसलिये नही कि आपको अपना शिष्य बनाना है···पर वे हमारी हालत देखकर अनुकम्पा से प्रेरित होकर ही यहाँ आये हैं।

मनुष्य ईश्वर की सबसे बड़ी कृति है। पर मनुष्य ने अपनी जाति को बिगाड़ने की जितनी हरकतें की है, उतनी शायद किसी ने नहीं कीं। गाय, बैल, पत्थर, वृक्ष कोई भी अपने धर्म को नहीं भूले, पर मनुष्य सब कुछ भूलकर आज कहाँ पहुँच गया है ? वह मनुष्य जो अपने हाथ से सोना निकालता था, आज सोने का गुलाम बन गया है। वह मनुष्य जो अपने हाथ से समृद्धि पैदा करता था, आज समृद्धि का गुलाम बन गया हैं। वह मनुष्य जो अपने हाथों से अपने पुरुषार्थ से संसार को बनाता है, वही आज संसार का गुलाम बन गया है···ऐसे तो मनुष्य जीवन अमूल्य है पर आज वह सबसे सस्ती चीज समझा जाता है।

आज मनष्य का मूल्य बदल गया है। मूल्यांकन की दृष्दि बदल गई

है। कभी मानवता की कद्र की जाती थी पर आज अभिनेता और अभिनेत्रियों की कद्र की जाती है।

कनॉट् सरकस में एक वार बच्चों, युवकों और बुड्ढों की भीड़ जमा हो गई थी। उसे देखकर किसी ने समझा यहाँ नेहरू जी या कोई दूसरे बड़े नेता आये होंगे। पर पूछने पर पता चला कि वहाँ तो अभिनेता और कई अभिनेत्रियाँ खड़ी थी। अतः लगता है, जीवन आज सूखा हो रहा है। हमें अन्दर से प्रेरणा नही मिलती। अतः वह स्थान-स्थान पर सिनेमा में और दूसरी जगह मारा मारा भटकता फिरता है। आज हमें आवश्यकता है कि हम जीवन को रसमय बनायें और प्रतिपल रस लेना सीखें।"

आयोजन (१३) अणुव्रत सप्ताह

सातवां दिन

पैसे की भूख

१९ दिसम्बर १९५६ को आहार के पश्चात् दोपहर के दो बजे आचार्य प्रवर विक्रय कर कार्यालय में प्रवचन करने पधारे। वहाँ के सारे अधिकारी एवं कर्मचारी एक खुले मैदान में इकट्ठे हो गए। लगभग ५०० की उपस्थिति थी। जैन मुनियों को नजदीक से देखने का उनके लिए पहला ही अवसर था। उनके चेहरों पर जिज्ञासा झलकती थी। विक्रय कर आयुक्त श्री डी० डी० कपिल के स्वागत भाषण के बाद आचार्य श्री ने अपने भाषण में कहा—दूसरों को धोखा देना 'पाप है

किन्तु सबसे बड़ा पाप है अपने आप को धोखा देना। व्यक्ति दूसरों का बुरा करता है पर यह नहीं सोचता कि सबसे ज्यादा बुरा स्वयं का होता है। बुरे व्यक्ति से समाज बुरा बनता हैं, बुरे समाज से राष्ट्र बुरा बनता है और बुरे राष्ट्र का प्रभाव अनेक राष्ट्रों पर पड़ता है। इसीलिए स्वयं को धोखा देने से बचना चाहिए। मैंने एक प्रवचन में कहा था—

आपको और संघ को, संसार को धोखा न दो।
करके कहनी सींक करनी वेग से आगे बढ़ो॥
व्यक्ति जाति व संघ का इससे सदा कल्याण है॥

जब तक कथनी और करनी में समानता नहीं आती तब तक पवित्रता नहीं आती।

वह नारकीय जीवन है, जिसमें मन-वाणी और काया का सामञ्जस्य नहीं, आत्मविश्वास नहीं, इंसानियत या मानवता नहीं।

वह स्वर्गीय जीवन है, जिसमें सत्य, अहिंसा व प्रेम भरा हुआ है; जिसमें आत्म सम्मान है, आत्म निष्ठा है।

आज मनुष्य की निष्ठा पैसे में है। वह सुख-सुविधा व विलास चाहता है। विलास पैसे के बिना नहीं आता। पैसों का ढेर शोषण के बिना नहीं होगा। इसलिए अपनी विलास की अभिलाषा को तृप्त करने के लिए शोषण भी करता है। कभी-कभी अपनी मानवता को भी बेंच देता है। उसे पैसा चाहिए, वह कैसे भी क्यों न मिले वह यह नहीं सोचता। उसका ध्यान पैसे पर केन्द्रित है। इसी को बनाये रखने के लिये वह ज्यादा व्यावहारिक बनता है। झूठी सभ्यता को अपनाने में कभी नहीं हिचकता। यहीं से बुराई का चक्र घूमने लगता है। घूमते-घूमते जब वह व्यक्तियों को जीर्णकाय बना देता है, तब व्रतों की बात याद आती है। उसके चिन्तन के प्रकार में एक मोड़ आता है और वह भोग से त्याग की ओर मुड़ता है। महाव्रतों को वह अपना नहीं सकता। अणुव्रतों की ओर गति करता है।

अतिभोग विनाश का कारण है और अति त्याग (महाव्रत) व्यापक

नहीं हो सकते। अणुव्रत बीच का मार्ग है, मध्यम प्रतिपदा है। वे छोटे-छोटे व्रत व्यापक बन सकते हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन्हें अपना सकता है।

विशिष्ट अणुव्रती किसी भी कर की चोरी नहीं करता। राज्य-निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार नहीं करता। कट-तोल-माप नहीं करता, जीवन को आडम्बर युक्त नहीं कर सकता। इस प्रकार जीवन का प्रत्येक क्षेत्र पवित्र बनता चला जाता है और जीवन सुखी व भारमुक्त हो जाता है।

मै आपसे अनुरोध करूँगा कि आप अणुव्रतों को समझें। प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती या विशिष्ट अणुव्रती इन तीनों में से किसी भी श्रेणी में अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दें। व्रतों से घबराएँ नहीं।

प्रश्नोत्तरों का भी कार्यक्रम रहा। व्रतों का वाचन हुआ। विक्रय कर कार्यालय में प्रवचन कर आचार्य श्री मिनर्वा पधारे। उस समय राजस्थान के राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह दर्शनार्थ आये। लगभग २० मिनट तक बातचीत हुई। उन्होंने कहा—अब मैं आपके राजस्थान में आ गया हूँ। यदि संभव हुआ तो मर्यादा महोत्सव पर सरदार शहर आ सकूँगा।

आत्मतत्त्व का बोध

१६ दिसम्बर १९५६ को अपराह्न में दूसरा कार्यक्रम वकील-संघ की ओर से आयोजित किया गया।

सर्व प्रथम मुनि श्री नगराज जी ने परिचयात्मक भाषण दिया। वकील-संघ के अध्यक्ष श्री राधेलाल अग्रवाल ने स्वागत भाषण दिया। तदनन्तर आचार्य श्री ने प्रवचन आरम्भ करते हुए कहा—"आज सप्ताह का अंतिम दिन है। जहाँ पिछले दिनों विद्यार्थियों, अध्यापकों, हरिजनों तथा अन्यान्य वर्गीय लोगों के वीच इस नैतिक निर्माणकारी आन्दोलन का कार्यक्रम चला, वहाँ आज विशिष्ट वौद्धिक क्षेत्र के लोग—आप वकीलों, जजों एवं मजिस्ट्रेटों के वीच यह कार्यक्रम रखा गया है, जिसे मैं आवश्यक समझता हूँ।

हम जिस देश में रहते हैं, उसे पुण्यभूमि कहा जाता है। आप कहेंगे—क्यों ? यहाँ पर सत्य और अहिंसा की जगमगाती ज्योति निरंतर जलती रहती है। दूसरे देशों को इसने सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। यहाँ पर विध्वंसात्मक शस्त्रों का अन्वेषण नहीं हुआ, यहाँ की गवेषणा से आत्म-तत्व प्राप्त हुआ है। पश्चिम में एटमवम और हाई-ड्रोजन वम का आविष्कार हुआ, वहाँ हमारे ऋषियों ने सत्य और अहिंसा का आविष्कार किया। केवल यह कहने भर के लिए नहीं, उन्होंने अपने जीवन में उतारा भी। अतएव यह कहा गया है—

> एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् संसार के लोगों को नीति और चरित्र की शिक्षा लेनी है तो वह ज्ञानी और सच्चरित्र भारतीय से ले। यही कारण है, भारत ने संसार का आध्यात्मिक और नैतिक नेतृत्व किया था, पर आज

खेद है कि भारत में बाहर से लोग नीति की शिक्षा देने आते है। कोई भी आये, उसकी हमें शिकायत नहीं। भारतीय संस्कृति ने बन्धु होकर रहने वालो का हमेशा स्वागत किया है। पर वास्तव में जो भारतीय होगा, उसके मन में दुःख होगा कि आज भारत की क्या दशा हो गई है ? मै जानता हूँ कि आज भारत में ऊँची ऊँची शिक्षाएँ चल रही हैं, पर इसके साथ-साथ यह भी जानता हूँ कि आज भारत में आत्म-निरीक्षण की भावना बहुत कम हो गई है। हर कोई दूसरों को बुरा-भला कह देगा पर अपना आत्म-निरीक्षण करने को कोई तैयार नहीं। दर्शन केवल शिरस्फोटन के लिए नहीं है, वह देखने के लिए है, अपने आपको देखने के लिए है। अतएव भारतीय ऋषियों ने कहा है—

"अप्पाचेव दमेयव्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो।
अप्पादंतो सुही होई, अस्सि लोए परत्थए...

आत्मा का—अपने आपका ही दमन करना चाहिए। आत्मा निश्चय ही दुर्दमनीय है। जो अपने आप का दमन करता है, अपने आप को संयत बनाता है, वह इस लोक में और परलोक में सुखी होता है।

दूसरों पर अनुशासन करने के लिए सब तैयार हैं, पर अपने पर कोई नही करता। वह विद्या ही क्या है जिससे इतना भी ध्यान न आए कि दूसरों को पीड़ा नहीं देनी चाहिए ? भारतीय संस्कृति में कहा है:—

"वरं मे अप्पादंतो, संजमेण तवेण य...
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं बहेहि य।

अर्थात् अच्छा हो अपने नियमों से हम अपना कंट्रोल करें।
मत ना दूजे वध बन्धन से मानवता की शान हरें॥

बहुत से लोग मौत से घबराते हैं। पाँच क्षण के लिए भी दवाइयाँ लेकर जीवन की याचना करते रहते है। पर हमारे शास्त्रों में बताया गया है—"मौत से लड़ो" जब तुम और काम करने में समर्थ नहीं रहो, तब अनशन कर अपने शरीर का त्याग करदो।

अणुव्रत का मार्ग

महाव्रत की तो कल्पना ही शायद आप लोगों के लिये मुश्किल हो जायेगी। जीवन भर पैदल चलना, अपना बोझ स्वयं उठाना, चिकित्सा भी डाक्टर से नहीं करवाना, नौकर-मजदूर नहीं रखना, भोजन आदि के लिये किसी को तंग नहीं करना, केशलुंचन करना, रात को कुछ भी नहीं खाना, न कुछ भी पीना। प्राण चले जायें पर प्रण नहीं जाये—यह साधुत्व का आदर्श है। पर अणुव्रत तो मध्यम मार्ग है। उसमें न तो इतना बड़ा त्याग है और न बहुत ज्यादा भोग के लिये छूट ही है। भोगों का नियंत्रण यथाशक्य करते रहो, यही इसका संदेश है। इसलिये यह प्रत्येक के लिये ग्रहण करने योग्य है। आप भी इसे ग्रहण कर सकते हैं।

आज लोगों में धर्म से अरुचि हो गई है। विशेषतः शिक्षित वर्ग तो धर्म को अफीम तक कह देते हैं। पर यह निरपेक्षता क्यों हुई? क्योंकि धर्म केवल धर्म स्थानों तक ही रह गया। जीवन-व्यवहार में वह नहीं उतरा। आज भी बाजार और कचहरी में, जीवन-व्यवहार में धर्म को भुला दिया जाता है। इसी कारण धर्म बदनाम हो गया। पर वह क्या धर्म जो केवल धर्मस्थानों में ही किया जा सके। उसकी हर क्षेत्र में आवश्यकता है। वकालत में भी ईमानदारी की बड़ी आवश्यकता है। वकालत में निष्ठा यह हो कि वह केवल अपने लाभ के लिये ही नहीं की जाय। इसका अर्थ यह हो कि असलियत बताये। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बताना वकालत नहीं है, धोखा है, हमारे ऐसे वकील अणुव्रती भी हैं, जो कभी झूठा मामला नहीं लेते। झूठे गवाह तैयार नहीं कराते। आप कहेंगे यह तो मुश्किल है। हमारा वकालत का धंधा ही ऐसा है कि हमें सच-झूठ करनी ही पड़ती है। पर यह बात तो सबके लिये बराबर है। एक व्यापारी के लिये भी यही कठिनाई है। वह कहेगा—मिलावट किये बिना काम ही नहीं चलता। इसी

प्रकार की समस्या मिनिस्टरों के भी सामने हो सकती है। वैद्य, डाक्टर, भी तो यही कहेंगे। परन्तु यह बचाव अवैधानिक है। अतः मै आपसे भी यही कहूँगा कि जब तक आप नैतिकता के इन स्थूल व्रतों को नहीं अपना लेते तब तक मानवता आपसे बहुत दूर रहेगी। आज हम आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म की बातों को छोड़कर कम से कम व्यवहार की इन छोटी छोटी बातों पर तो ध्यान दें।

आप पूछेंगे—यह आन्दोलन किसका है ? उत्तर है--सबका है और इसीलिये आपका भी है। यह सर्व धर्म समन्वय की भावना को लेकर चलता है। अतः किसी धर्म सम्प्रदाय विशेष का नहीं है।

अणुव्रत-आन्दोलन की दृष्टि है—जीवन के मूल्य बदलो। आज तो धन और सत्ता का महत्त्व बढ़ गया है, यह गलत बात है। जैसे दवा रोग मिटाने के लिये ही दी जाती है, उसी प्रकार धन केवल जीवन-निर्वाह के लिये है, दूसरों पर प्रतिष्ठा जमाने के लिये नहीं। प्रतिष्ठा और अणुव्रत दोनों एक साथ नही चल सकते। अणुव्रतों की दृष्टि से ऊँचा वह है जो चरित्रवान् है।

आप कहेंगे—हजारों वर्ष हो गये, उपदेश होते आये है। भगवान् महावीर आये, बुद्ध आये, महात्मा गांधी आये। उन्होंने अपना अपना उपदेश दिया। पर क्या बुराइयाँ संसार से मिट गईं ? आपका कहना ठीक है। पर मै तो कर्मवादी हूँ। कर्म को मानता हूँ। कितना होता है, इसकी मुझे परवाह नहीं। काम करना हमारा कर्त्तव्य है। जितना भला होता है, उतना अच्छा है, उसे बुरा नही कहा जा सकता।

हम भी अपनी क्षमता के अनुसार काम करते हैं। विश्व कवि टैगोर ने एक जगह कहा है—

"सूर्य छिपने लगा, अंधेरा होने लगा। सूर्य बोला—मै तो चला जा रहा हूँ। पीछे से अंधेरा न हो जाय, कौन प्रकाश करेगा ? टिमटिमाते दीपक ने कहा—मै जो हूँ, अपनी शक्ति के अनुसार प्रकाश करूँगा।"

उसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार हम काम करते है। हाँ, इसमें

आपका सहयोग अपेक्षित है। अकेला मै क्या कर सकता हूँ। श्री नेहरूजी से भी मैंने कहा—क्या आपका सहयोग इसमें अपेक्षित नहीं है ?

उन्होंने पूछा—कैसा सहयोग ?

मैंने कहा—हम राजनैतिक सहयोग नहीं चाहते।

उन्होंने कहा—मै तो राजनीति में रचा-पचा व्यक्ति हूँ। मेरा सहयोग आपके क्या काम आयेगा ?

मैने कहा—पर मैं तो राजनैतिक जवाहरलाल का सहयोग नहीं चाहता....मैं तो व्यक्ति जवाहरलाल का सहयोग चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—वह सहयोग तो है ही।

मैं इस भावना को शुभ-सूचक मानता हूँ। अतः इसी प्रकार आप लोगों से भी कहूँगा कि आप अपना सहयोग हमें दें।

उपस्थित वकीलों की संख्या १२५-१५० थी। और भी जज, मजिस्ट्रेट व अनेक सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। प्रवचनोपरान्त प्रश्नोत्तर भी हुये। सभी ने पूरा पूरा रस लिया।

प्रश्नोत्तर

प्र०. हम काम करते हैं, यह करने वाला कौन है ?

उ० आत्मा। दूसरे शब्दों में जो अहं का बोध करता है, वही तत्त्व काम भी करता है।

प्र० क्या अहंकार आत्मगुण है ?

उ० नहीं, वह आत्मा की दुष्प्रवृत्ति है,

प्र० शरीर में आत्मा का वास कहाँ है ?

उ० सारे ही शरीर में। जिस प्रकार तिलों में तेल सभी जगह व्याप्त रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी सारे शरीर में व्याप्त है।

प्र० आत्मा क्या है ?

उ० चैतन्य गुण युक्त पदार्थ आत्मा है।

प्र० "मै यह कहता हूँ"--यह जो हमें बोध होता है, क्या यही आत्मा है ?.

उ० हाँ, यह आत्मा का एक गुण है। उसमें और भी अनेक गुण है जैसे श्रवण, दर्शन आदि।

प्र० कर्म करने में आत्मा स्वतंत्र है या परतंत्र ?

उ० स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी।

प्र० आप अहिंसा का प्रचार करते है। पर कमजोरों में उसके प्रचार की क्या आवश्यकता है ? अहिंसा के कारण ही तो भारत गुलाम हुआ था और आज भी वह पूरा सशक्त नहीं है। अतः पहले भारत को बलवान् होने दीजिये, फिर अहिंसा का प्रचार कीजिये।

उ० मैं कायरता को अहिंसा नही मानता। डर कर छुपने वाला यदि अपने को अहिंसक कहे तो मै उसे प्रथम दर्जे की कायरता कहता हूँ। और आज अगर हम हिंसा का प्रचार करने लगेंगे तो समूचा संसार क्या जंगल नहीं हो जायेगा ? अणुव्रतों का मतलब यह तो नहीं है कि अपनी रक्षा मत करो। उसका मतलब तो है—कम से कम दूसरों पर तो प्रहार मत करो।

प्र० अणुव्रत का अर्थ है—नैतिकता का प्रसार। इस ओर सर्वोदय काम कर ही रहा है तो फिर उसके होते अणुव्रतों की क्या आवश्यकता हुई ?

उ० प्रत्येक आन्दोलन की अपनी अपनी सीमायें हुआ करती हैं। अतः अणुव्रत-आन्दोलन की भी अपनी स्वतंत्र सीमा है। सर्वोदय केवल नैतिक ही नहीं है, वह आर्थिक भी है। पर अणुव्रत विशुद्ध नैतिक ही है। एक डाक्टर सब प्रकार की चिकित्साओं में निपुण है, फिर भी स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) डाक्टरों की आवश्यकता होती है।

प्र० अणुव्रतों में जो बातें बताई गई हैं, वे वेदों, उपनिषदों आदि धर्मग्रन्थों में पहले ही बताई हुई हैं तो फिर अणुव्रत की क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता तो ऐसे व्यक्तियों की है, जो अपने जीवन में इन सब बातों का आचरण कर सकें ?

उ० मै यह कब कहता हूँ कि यह नया है। पुराने शास्त्रों में जो

अच्छी अच्छी बातें हैं, उनका आज के युग की दृष्टि से मैंने चुनाव किया है। वैसे शास्त्रों में है तो सब कुछ, पर लोग आज उसे भूल गये। अतः अणुव्रतों के माध्यम से हम लोगों को उस ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं......

ऐसे व्यक्ति एक-दो नहीं, अनेक है जिन्होंने ब्लैक मार्केटिंग के जमाने में भी ब्लैक मार्केट नहीं किया, झूठी साक्षी नहीं दी। वे सारे अणुव्रती हैं। और आप भी तो वैसे बन सकते हैं।

प्र० क्या दिल्ली में भी ऐसे व्यक्ति है?

उ० हाँ, एक नहीं, दसों ऐसे व्यक्ति मिलेगे।

वकीलों के लिये इस तथ्य को स्वीकार करने के अलावा कुछ अवशेष था ही नही।

कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन (१५)

आज के व्यापारी

राष्ट्रीय चरित्र निर्माण अणुव्रत सप्ताह के अंतर्गत ता० २० दिसंबर को प्रातः ९ बजे दिल्ली मर्केन्टाइल एसोसियेशन की ओर से आचार्य श्री के सान्निध्य में व्यापारी सम्मेलन का आयोजन रखा गया, जिसमें दिल्ली तथा अन्यान्य स्थानों के विभिन्न क्षेत्रीय व्यापारी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारत के वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने प्रमुख वक्ता के रूप में भाग लिया।

आचार्य श्री ने उपस्थित व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा—

"पैसा जीवन का चरम साध्य नहीं है। वह सामाजिक जीवन का साधन कहा जा सकता है। पर कहते खेद होता है— आज स्थिति कुछ ऐसी बन गई है कि पैसा जीवन के लक्ष्य स्थान पर आरूढ हो गया है। पैसा जब एक मात्र ध्येय बन जाता है, तब उसका अर्जन करते समय न्याय-अन्याय, औचित्य अनौचित्य का ध्यान कोई रख सके, यह संभव नहीं है। इससे शोषण बढ़ता है, स्वार्थपरता बढ़ती है, फलतः जीवन गिरता है, उसका आत्म बल और सत्यनिष्ठा डगमगा जाती है। अब मै मध्यम श्रेणी के कुछ अणुव्रतियों को यह कहते सुनता हूँ कि अमुक व्यापारी के यहाँ नौकरी के लिये जाने पर उन्हें जवाब मिला कि व्यापार में झूठ से परहेज़ करने वालों की उनके यहाँ क्या उपयोगिता? यह आज के व्यापारी मानस का चित्र है। पर मै कहना चाहूँगा—यह उनकी भ्रांत धारणा है। यह कायरता है। व्यापारी अपने जीवन मे सत्य की जितनी अधिक सन्धि पेश करेंगे, उनका जीवन उतना ही ऊँचा उठेगा। व्यापारियो की प्रतिष्ठा जो आज घटती जा रही है, पुनः कायम होगी। वे सब तरह से लाभ में होंगे। वास्तव में सत्य और ईमानदारी व्यापारी जीवन का भूषण है।

व्यापारियों की प्रतिष्ठा

केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने अपने भाषण मे कहा—"आज व्यापारी की इज्जत ठीक नही है, ऐसा आम तौर से कहा जाता है। पर व्यापारी ही कमजोर है, और सब ऊँचे है, मै इसे ठीक नहीं मानता। समाज तालाब के पानी जैसा है। समाज के एक कोने का पानी खराब हो, दूसरे का अच्छा, ऐसा नही हो सकता। बात यह है, व्यापारी के पास पैसा होता है, वह ऊँचा माना जाता है। जो ऊपर के तबके के लोग होते है, पैसे आदि की दृष्टि से जो ऊँची स्थिति में होते हैं, उनकी ओर सब की दृष्टि जाती है। सब को उनसे आशा रहती है, इसीलिये उनकी आलोचना होती है। उनको चाहिये कि वे ऊपर की

स्थिति के लायक बनें, वे गुणों ... ँचे बनें। नैतिकता की बुनियाद सचाई है। यह मनुष्य का स्वभाव है। झूठ क्या है, अन्दर से झट मालूम हो जाता है, पर उसे हम रोकते जाते हैं। झूठ की आदत पड़ जाती है, सचाई के प्रति निष्ठा कम हो जाती है। हर एक व्यक्ति को उससे (झूठ से) बचने की कोशिश करनी है। अन्यान्य पेशों की तरह व्यापार भी जीवन चलाने का एक पेशा है और वह एक जरूरी काम है। यदि वह न हो तो लोगों को चीज कैसे मिले ? पर वह झूठ के बिना नहीं चल सकता, ऐसा कहने वालों को भरोसा नहीं है, धर्म पर, सचाई पर। आज केवल व्यापारी ही नहीं हर एक आदमी चाहता है, उसे जीवन के साधन अधिक से अधिक प्राप्त हों—मोटर गाड़ी उसके पास रहे, मुलायम कपड़े उसे मिलें, खाना अच्छा मिले, चाहे पचे या नहीं। यह सब इसलिये कि उसका दिमाग कुछ ऐसा बन गया है, वह सुविधा और आराम चाहता है, इसलिये वह पैसे के पीछे पड़ा है। पर ध्यान रहे भोग से आदमी कभी तृप्त नहीं होते, उससे तो दुःख बढ़ता है। व्यापारी भाई इतना समझ लें, यदि वे सच का व्यवहार करेंगे तो पैसा तो उनको मिलेगा और जीवन भी उनका ऊँचा होगा। यदि सत्य को छोड़ा तो जीवन तो गिरेगा और पैसा भी नहीं रहेगा।"

प्रस्तुत आयोजन में पूना के सर्वोदयवादी विचारक श्री रिषभदास रांका ने श्री मोरार जी देसाई के परिचय में भाषण दिया। दिल्ली मर्कैन्टाइल एसोसियेशन के अध्यक्ष रायसाहिब श्री गुरुप्रसाद कपूर ने समागत अतिथियों का स्वागत किया तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने अणुव्रत सप्ताह के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

दोपहर में दो बजे लक्ष्मी हायर सेकेण्ड्री स्कूल की लगभग ३०० छात्रायें आचार्य श्री का संदेश सुनने को नया बाजार आईं। अध्यापिकायें भी साथ थीं।

आचार्य श्री ने उन्हें जीवन उत्थान की प्रेरणा देते हुए बताया कि वे विवेक, विनय और नम्रता जैसे सद्‌गुणो का संचय करें। बाहरी साज

सज्जा और दिखावे में न भूल वे आंतरिक सौन्दर्य की साधना करें। आंतरिक सौन्दर्य का अर्थ है—संयम, सादगी और सच्चरित्रता।

आयोजन (१६)

चुनावों में चरित्र शुद्धि

आगामी देशव्यापी आम चुनावों में अनैतिक और अनुचित प्रवृत्तियों का समावेश न हो, इस लक्ष्य से आचार्य श्री के सान्निध्य में २२ दिसंबर १९५६ को कांस्टीट्यूशन क्लब, कर्जन रोड, नई दिल्ली में अखिल भारतीय राजनैतिक दलों के नेताओं की एक सभा का आयोजन रखा गया जिसमें चुनाव मुख्यायुक्त श्री सुकुमारसेन, कॉंग्रेस अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर, साम्यवादी नेता श्री० ए० के० गोपालन, प्रजा समाजवादी नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी आदि देश के प्रमुख राजनीतिज्ञ उपस्थित थे।

आचार्य श्री ने अपने संदेश में कहा—"मनुष्य ने जब से संगठित रूप मे रहने की सोची किसी व्यक्ति को अपना नायक चुना। उसका सीमित क्षेत्र था कुल या परिवार जिसका नियंता कुलकर कहा जाता था। यह व्यवस्था शासन सूत्र में गणतन्त्र के रूप में परिव्याप्त थी। प्राचीन भारत के मल्लि और लिच्छवि गणतन्त्र इसके उदाहरण हैं। समय ने पलटा खाया, जन साधारण से मिलने वाली प्रभुसत्ता का अधिकारी एक व्यक्ति बन बैठा, एकतन्त्र चला। जहाँ व्यक्ति एकाकी अपने स्वार्थ और हित साधने में लग जाता है, वहाँ जनहित गौण हो जाता है। एकतन्त्र ने इतनी गहरी जड़ जमाई कि राजा को ईश्वर का

अवतार माना जाने लगा। युग ने करवट ली, भारत में राजतंत्र मिटा, विदेशी हकूमत हटी, स्वतंत्रता आई, जनतांत्रिक आधार पर इसकी शासन व्यवस्था शुरू हुई। आप जानते है जनतंत्र का आधार है जन-जन। उस व्यवस्था का प्रकार चुनाव है। यदि चुनाव में अनैतिकता और अन्याय का समावेश रहे तो उससे फलित होने वाला जनतंत्र शुद्ध नहीं हो सकता। जैसा कि अणुव्रत आंदोलन का लक्ष्य है—लोक जीवन में नैतिक प्रतिष्ठा और चारित्रिक जागृति लाना, चुनाव कार्य में भी इस शुद्धिमूलक भावना का प्रसार हो, एकमात्र इसके लिये हमारा यह प्रयास है। हमारा किसी दल, पार्टी व पक्ष से कोई संबंध नहीं है। अध्यात्म प्रेरणा और सत्य निष्ठा जागृत करना हमारा कार्य है।

यह किसी से छिपा नहीं है कि चुनाव कार्य में कितनी अशुद्धि और अनैतिकता छाई हुई है। दलगत और व्यक्तिगत स्वार्थ से मनुष्य इस कदर घिर जाता है कि वह सत्य, न्याय और जनसेवा से पराङ्मुख होने लगता है। जनतंत्र के मूल आधार चुनावों में से अनैतिकता दूर हो सके, इस दृष्टि से उम्मीदवारों, मतदाताओं व समर्थकों आदि के लिये कुछ नियम प्रस्तुत करता हूँ।

उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूँगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूँगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक प्रभाव से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नहीं करूँगा।

(४) मत-गणना में पर्चियों हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व

भय आदि दिखा कर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(७) सेवा भाव से रहित केवल व्यवसाय वुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

मतदाता और समर्थक के लिये नियम

(१) रुपये पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान न करूँगा और न करवाऊँगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा न दूँगा और न दिलवाऊँगा।

(३) जाली नाम से मतदान न करूँगा।

(४) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का अच्छा या बुरा असत्य प्रचार न करूँगा और न करवाऊँगा।

राष्ट्र के नेता इन पर विचार करें और इनके व्यापक प्रसार का प्रयास करें।"

चुनाव मुख्यायुक्त द्वारा समर्थन

चुनाव मुख्यायुक्त श्री सुकुमारसेन ने अपने भाषण में कहा—"आचार्य श्री तुलसी ने जैसा अपने भाषण में बताया, आज के आयोजन का उद्देश्य है—चुनावों में अपवित्रता न रहे इसका प्रसार करना। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि सब राजनैतिक दलो के नेता इसमें सम्मिलित हुये है। हमारे देश में ब्रिटिश हकूमत के समय भी चुनाव होते थे पर तब हमारी हालत मालिकों की नहीं थी। आज हमारी हालत मालिकों की है। हमारे ऊपर भारी जिम्मेवारी है। चुनावों में हमारे देश

के वे आदर्श प्रतिबिम्बित हों, जिन्हें हम सदियों से मानते आ रहे हैं। आचार्य श्री ने जो नैतिकतामूलक नियम प्रस्तुत किये है, उन्हें बार-बार दुहराया जाये। जनता के सामने प्रतिज्ञा की जाय ताकि जनता के सान्निध्य में उन में शक्ति पैदा हो। प्रतिज्ञायें तोड़ने के लिये नहीं, पालने के लिये की जाएँ। जो नियम आचार्य श्री ने रखे हैं, मै उनमें दो बातें और जोड़ने का निवेदन करूँगा।

(१) मतदाता यह प्रतिज्ञा करे कि मै वोट अपने अन्तरतम की आवाज के अनुसार दूँगा, देश के लाभ को सोचते हुये दूँगा।

(२) मै किसी ऐसे उम्मीदवार को वोट नहीं दूँगा, जिसने उम्मीदवार के लिये निर्धारित उक्त नियम नहीं लिये हों।

मै आशा करूँगा, हर पार्टी इन आदर्शों को ध्यान में रखेगी।

श्री ढेबर का कथन

कांग्रेस अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर ने कहा—"मनुष्य की कोई प्रवृत्ति ऐसी न हो, जो उसे गिराने वाली हो। हमारे उद्देश्य भी शुद्ध हों, साधन भी शुद्ध हों। शुद्ध उद्देश्य को हासिल करने के लिये अशुद्ध साधन का प्रयोग हुआ तो व्यक्ति को तो नुकसान होता ही है, देश को भी उससे नुकसान होता है। गलत रास्ते से कोई अच्छा काम हो नहीं सकता। यह जरूरी है कि चुनावों में इस ओर पूरा ध्यान रहे। मैं आचार्य श्री को विश्वास दिलाना चाहूँगा कि इस ओर हमारी जो जिम्मेवारी है, उसे तथा बुनियादी बातों को समझते हुए सहयोग करेंगे।"

साम्यवादी नेता का मत

साम्यवादी नेता श्री ए० के० गोपालन ने अपने भाषण में कहा—"यह अत्यन्त आवश्यक है कि चुनावों में पवित्रता और निष्पक्षता रहे। कहीं ऐसा न हो कि चुनावों में वोट पाने की गरज से उम्मीदवार इन प्रतिज्ञाओं को ले लें। जो प्रतिज्ञाये ले, वह निभाये भी। रुपयों के लिये वोट देना सचमुच एक कलंक है। ये नियम चुनावों में पवित्रता लाने वाले

हूँ। यदि मैं अपनी पार्टी की ओर से चुनाव लड़ूँगा तो इन नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करता हूँ। मेरी पार्टी में यदि कोई विपरीत बात देखे तो मै कहूँगा—वह हमे बताये, हम उसको रोकने का प्रयत्न करेंगे। मेरा एक सुझाव भी है कि जिस तरह उम्मीदवार व मतदाता के लिये प्रतिज्ञायें रखी गई है वैसे ही चुनाव विभाग के अधिकारियों के लिये भी नियम रखे जावें कि वे भी सचाई और नैतिकता का व्यवहार रखेंगे।"

आचार्य कृपलानी का अभिमत

प्रजा समाजवादी नेता आचार्य जे० बी० कृपलानी ने अपने भाषण में कहा—"जहाँ उम्मीदवार व मतदाता के लिये नियम रखे गये हैं, एक्जीक्यूटिव कमेटी के मेम्बरो के लिये भी नियम रखे जायें, क्योंकि टिकट तो वे ही देने वाले हैं, उसी तरह मंत्रियों के लिये भी नियम रखे जाने चाहियें कि वे सरकारी साधनों का चुनाव में उपयोग न करें।"

अ० भा० अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचन्दलाल दफ्तरी ने समागत नेताओं एवं अन्य महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शन किया। श्री छगनलाल शास्त्री ने आज के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

चुनाव शुद्धि नियम

चुनाव संबंधी नियम परिवर्तन-परिवर्धन आदि के पश्चात् निम्नांकित रूप में देश में सर्वत्र प्रसारित हुए—

उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर मत ग्रहण नहीं करूँगा।

(२) किसी दल व उम्मीदवार के प्रति मिथ्या, अश्लील व भद्दा प्रचार नहीं करूँगा।

(३) धमकी व अन्य हिंसात्मक उपाय से किसी को मतदान के लिये प्रभावित नही करूँगा।

(४) मतगणना में पर्चियाँ हेर-फेर करवाने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(५) प्रतिपक्षी उम्मीदवार और उसके मतदाताओं को प्रलोभन व भय आदि दिखाकर तथा शराब आदि पिलाकर तटस्थ करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(६) दूसरे उम्मीदवार या दल से अर्थ प्राप्त करने के लिये उम्मीद-वार नही बनूँगा।

(७) सेवा-भाव से रहित केवल व्यवसाय बुद्धि से उम्मीदवार नहीं बनूँगा।

(८) अनुचित व अवैध उपायों से पार्टी टिकिट लेने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(९) अपने अभिकर्ता (एजेन्ट), समर्थक और कार्यकर्ता को इन व्रतों की भावनाओं का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दूँगा।

मतदाताओं के लिये नियम

(१) रुपये-पैसे आदि लेकर या लेने का ठहराव कर मतदान नहीं करूँगा।

(२) किसी उम्मीदवार या दल को झूठा भरोसा नहीं दूँगा।

(३) जाली नाम से मतदान नही करूँगा।

समर्थकों के लिये नियम

(१) अपने पक्ष या विपक्ष के किसी उम्मीदवार का असत्य प्रचार नहीं करूँगा।

(२) अनैतिक उपक्रमो से दूसरे की सभा को भंग करने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

(३) उम्मीदवार संबंधी सारे नियमों का पालन करूँगा।

चुनाव-अधिकारियों के लिये नियम

(१) अपने कर्तव्य-पालन में पक्षपात, प्रलोभन व अन्याय को प्रश्रय नहीं दूँगा।

सत्तारूढ उम्मीदवारों के लिये नियम

(१) राजकीय साधनों तथा अधिकारों का अवैध उपयोग नही करूँगा।

आयोजन (१७)

संस्कृति का रूप

२८ दिसम्बर १९५६ को सायंकालीन प्रार्थना के बाद सामूहिक ध्यान का कार्यक्रम रक्खा गया था। आचार्य प्रवर ने कहा—"आँख मूंद लेना ही ध्यान नहीं है। ध्यान में आत्म-शोधन के लिए चिन्तन होना चाहिये। प्रत्येक को यह सोचना जरूरी है कि समूचे दिन और रात में किसी के साथ प्रतिकूल व्यवहार तो नही किया। यदि भूल हुई है, तो उसका प्रायश्चित्त किया या नहीं। उसके साथ साथ आगे उन भूलों को न दुहराने की प्रतिज्ञा या दृढ़ संकल्प भी करना चाहिये। यही यहाँ अपेक्षित है।"

ध्यान का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। साधु सब बैठे ही थे। आचार्य श्री ने कहा—"पाँच मिनट का समय दिया जाता है। सब यह सोचें और मुझे बतायें कि संस्कृति क्या है ?" आदेश पाकर सब सोचने लग गये। बारी बारी से एक एक से आचार्य श्री ने पूछना आरम्भ किया। तब सब ने अपने अपने विचार बताये। वे संक्षेप में इस प्रकार है :—

१—जीने की कला संस्कृति है।

२—जीवन की आनन्दानुभूति संस्कृति है।

३—विशुद्ध आचार परम्परा संस्कृति है।

४—रूढ़िगत परम्पराएँ संस्कृति हैं।

५—आत्म-शुद्धि के विचार संस्कृति हैं।

जो विद्वान् आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये थे, उन्होंने चर्चा में रस लिया और अपने विचार भी व्यक्त किये। विद्वानों के अनुरोध पर दूसरे दिन भी इस विषय पर चर्चा करने का निश्चय किया गया। दूसरे दिन भी अनेक परिभाषाएँ सामने आईं। आचार्य प्रवर ने विषय को स्पष्ट करते हुए कहा—"यह विषय बड़ा जटिल है। अनेक परिभाषायें की गईं, फिर भी समाधान नहीं हो सका। और विचार किया जाना चाहिये।"

अप्रोत्त १२८

कार्यकर्ताओं का दायित्व

आचार्य प्रवर २६ दिसम्बर १९५६ को सब्जीमण्डी से नया बाजार होकर नई दिल्ली पधारे। 'बारा खंभा रोड' पर विराजना हुआ। दोपहर में श्री एन. उपाध्याय आचार्य श्री के दर्शन करने आये।

आचार्य श्री अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल के घर पधारे। वहाँ उनके साथ अत्यन्त आत्मीयता से बातचीत हुई। चुनाव के विषय में उन्होंने कहा—"अब की बार कांग्रेस के अधिवेशन पर जिक्र आया तो मैं अवश्य इसकी चर्चा करूँगा। श्रीमती सुचेता कृपलानी भी वहाँ आगईं। लगभग १ घंटे तक अनेक विषयों पर बातें हुईं। उनके आग्रह पर आचार्य श्री ने यहाँ थोड़ी गोचरी भी की।

संसत् सदस्य श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के घर

श्री श्रीमन्नारायण जी के घर से लौटते वक्त नवीन जी का घर बीच में आ गया। उनके आग्रह पर थोड़ी देर आचार्य श्री वहाँ भी विराजे। कई प्रश्नोत्तर भी हुए। कविताएँ भी सुनाईं।

उसके बाद "भारत सेवक समाज" के केन्द्रीय कार्यालय में उसके कार्यकर्ताओं के बीच प्रवचन करने पधारे। मन्त्री श्री चाँदीवाला जी ने आचार्य श्री व साथ में आये साधुओं का हार्दिक स्वागत किया।

भारत सेवक समाज में

भारत सेवक समाज दिल्ली की ओर से दोपहर में ३ बजे आचार्य श्री के सान्निध्य में एक सभा का आयोजन रखा गया, जिसमें भारत सेवक समाज के विभिन्न क्षेत्रीय संयोजकों तथा प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

प्रारम्भ में श्री छगनलाल शास्त्री ने अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधि और चुनावों में अनैतिकता निवारण के लिये आचार्य श्री की ओर से प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

पश्चात् भारत सेवक समाज के अग्रणी श्री ब्रज कृष्ण चाँदीवाला ने कार्यकर्ताओं की ओर से आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य श्री ने कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुये कहा—

"कार्यकर्ताओं पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, बहुत बड़ा उद्देश्य उनके सामने है। इसके लिये सबसे पहले उन्हें अपना जीवन बनाना होगा। जब तक जीवन में सत्यनिष्ठा, विश्वास, सादगी और संयतवृत्ति नहीं होगी, तब तक दूसरों को उनसे क्या प्रेरणा मिल सकेगी? आरामतलबी और सुविधावाद कार्यकर्ता के मार्ग में अवरोध पैदा करने वाले दुस्तर रोड़े है जिनसे कार्यकर्ताओं को बचना है। कार्यकर्ताओं को यह अच्छी तरह समझ लेना है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य चरित्रनिर्माण का है। देश के लोगों का चरित्र जब तक समुन्नत नहीं होगा, देश तब तक ऊँचा

नही उठ सकेगा। कितने खेद और आश्चर्य का विषय है, जहाँ एक ओर बड़ी-बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में मानव चिंतित दीखता है, दूसरी ओर उसका अपना जीवन किधर जा रहा है, इसका उसे भान तक नहीं। दीपक तले अँधेरा—कैसी विचित्र बात है।

कार्यकर्ताओं से एक विशेष बात मैं और कहना चाहूँगा—पद, प्रतिष्ठा, और नाम की भावना उन में न हो। जहाँ ये भावनाएँ आ जाती है, वहाँ कार्यकर्ताओं का जीवन सुस्थिर और आदर्श नहीं रह पाता। उसमें गिरावट आ जाती है। कार्यकर्ता उन बुराइयों से बचें।"

आचार्य श्री के प्रवचन के पश्चात् श्री ब्रजकृष्ण चाँदीवाला ने चुनावों में अनैतिकता और अनौचित्य निवारण के लिये आचार्य श्री द्वारा उद्घोषित नियमों को कार्यकर्ताओं को पढ़कर सुनाया और कहा कि "भारत सेवक समाज की ओर से इन नियमों को हम प्रसारित करेंगे। अपनी शाखाओं में इन्हें भेजेंगे, जिससे विभिन्न स्थानों पर लोगों को इनसे अवगत कराया जा सके।"

अन्त में अ० भा० अणुव्रत समिति के मन्त्री श्री जयचंद लाल दफ्तरी ने चरित्र-विकास के लक्ष्य को लेकर विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ताओं से पारस्परिक समन्वय से काम करने की अपील की तथा इसके लिये अपने व अपने साथियों के सहयोग की भावना प्रकट की।

मैत्री दिवस का विराट समारोह

विश्वशान्ति की ओर एक ठोस कदम

आचार्य श्री के दिल्ली पधारने का लाभ उठाते हुये जो विविध आयोजन किये गये उनमें सब से अधिक महत्वपूर्ण आयोजन की व्यवस्था राजधानी के प्रमुख सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्थल पर की गयी। विश्ववंद्य महात्मा गांधी की समाधि के कारण राजघाट को सहज ही में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो गया है और देशविदेश से आने वाले प्रायः सभी यात्री तथा राजनीतिज्ञ व कूटनीतिज्ञ उस समाधि के दर्शन करके अपनी पुष्पाञ्जलि अर्पित कर अपने को धन्य मानते हैं। ऐसे पुनीत स्थल पर आज के अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन की विशेष व्यवस्था की गयी। यह आयोजन था "मैत्री दिवस" का, जिसका प्रयोजन है वर्ष में एक वार अपनी समस्त ज्ञात-अज्ञात भूलों तथा अपराधों के लिये एक-दूसरे से क्षमा माँग कर विश्व मैत्री के लिए वातावरण को पवित्र एवं अनुकूल वनाना। सम्भवतः हमारे देश में महात्मा गांधी की हत्या से अधिक वड़ा कोई दूसरा अपराध मानव समाज के प्रति नहीं किया गया है। इसी कारण इस आयोजन की व्यवस्था राजघाट पर गान्धी जी की समाधि पर की गयी थी। आचार्य श्री की यह मान्यता है कि इस प्रकार मानव अपनी भूलों एवं अपराधों का परिमार्जन करते हुए विश्वशान्ति की स्थापना में वहुत वड़ा सहयोग दे सकता है और विश्व की एक महान समस्या के हल करने में अपने कर्तव्य का यत्किञ्चित् पालन कर सकता है। विश्वशान्ति के प्रति उसकी सच्चाई और ईमानदारी का यह एक प्रवल प्रमाण हो सकता है। आचार्य श्री ने राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य नेताओ एवं विदेशी राजनीतिज्ञों के साथ भी इस सम्बन्ध

में जो चर्चा वार्ता की थी उसी का परिणाम यह शुभ मंगलमय आयोजन था और राष्ट्रपति ने इसका उद्घाटन करने के लिए अपनी उदार सहमति प्रदान की थी ।

३० दिसम्बर १९५६ प्रातः बाराखंभा रोड से चलकर आचार्य श्री दरियागंज में श्री प्रभुदयाल जी डावड़ी वालों के मकान पर थोड़ी देर विराजे। वहाँ से महात्मा गांधी की समाधि राजघाट पर पधारे। फिनलैण्ड के राजदूत मोसिय ह्यूगो वालवन्ना ने वहाँ आचार्य श्री के दर्शन किये। उनसे लोगों ने "मैत्री-दिवस" के उपलक्ष्य में बोलने के लिये कहा। वे सहमत न हुए। परन्तु आचार्य श्री से समारोह की पूरी जानकारी पाकर बोलने के लिए सहमत हो गये।

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी और कृष्णा बहिन को विशेष रूप से आयोजन में सम्मिलित होने के लिये भेजा था। उन्होंने आचार्य श्री से कुछ बातचीत की। थोड़ी ही देर में राष्ट्रपति जी पधारे। आचार्य श्री व राष्ट्रपति जी साथ-साथ सभास्थल पर आकर विराजे।

करीब ढाई-तीन हजार की उपस्थिति थी। अत्यन्त मनोरम वातावरण में कुछ आप्त वाक्यों का पाठ करने के बाद आचार्य श्री ने अपना स्फूर्तिप्रद भाषण प्रारम्भ किया।

विश्वव्यापी आतंक और उसका उपाय

"राष्ट्रपति जी, भाइयो और बहिनों !

आज हम सब यहाँ मैत्री-दिवस मनाने के लिये एकत्रित हुये हैं। मैत्री की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं, सभी लोग इससे परिचित हैं। मित्र के नाम में ही स्वयं कितना प्यार भरा हुआ है और मित्र के साथ बात कर हर मनुष्य जैसे स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है, वैसा शायद और बातों में कम करता होगा। वास्तव में मैत्री कितनी सुन्दर होती है। पर आज लोग इसे भूलते जा रहे है। अतः आवश्यक है कि

हम उन्हें पुनः सचेत करें। इसीलिये आज मैत्री-दिवस समारोह रखा गया है।

आज दुनिया की स्थिति के बारे में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि नये-नये वैज्ञानिक साधनों के कारण संसार के एक क्षेत्र की बात दूसरे क्षेत्र में आसानी से अति शीघ्रतया जानी जा सकती है अतः सभी लोग स्थिति से परिचित है ही।

आज लोगों के दिमाग में दो बातें है। पहली—अपने जीवन की सुरक्षा का भय और दूसरी भविष्य की आशंका। इसी कारण आज मनुष्य आतंकित है। राष्ट्रों में भी एक दूसरे के प्रति भय का वातावरण फैला हुआ है।

पंडित नेहरू के विचारों से हमने जाना कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अब कुछ कम है। परन्तु स्थिति अब भी विषम बनी हुई है। इसका मूल कारण क्या है? इसका मूल है—भय। भय का भूत जब मनुष्य के सिर पर सवार हो जाता है तो मनुष्य अपने को भूल जाता है। उससे उसमें अविश्वास बढ़ता है। उसी के गर्भ में से शीतयुद्ध पैदा होता है और आगे चलकर वह "गर्म युद्ध" के रूप में परिवर्तित हो जाता है। विचारों का युद्ध साक्षात् युद्ध का रूप ले लेता है।

मनुष्य युद्ध के परिणामों से परिचित है। अतः वह उससे भयभीत है। कोई यह नहीं चाहता कि युद्ध हो। अतः कई लोग इस विषय पर अपनी अपनी दृष्टि से सोचते हैं, पर मिलता कुछ नही। लोग सही कारण सोच नहीं पाते। इसका कारण भी भय है।

मैने भी इस पर विचार करने का प्रयास किया है, मुझे तो यही लगा कि उसका मूल कारण केवल भय ही है। शस्त्रास्त्रों की तैयारी का मूल कारण भी भय ही है। यदि मनुष्य भयहीन हो तो शस्त्रास्त्रों की तैयारी का कोई प्रश्न पैदा ही नहीं होता। आज सब लोग शांति की बात करते हैं। पर शांति की इन बातों में भी परस्पर कटाक्ष और आक्षेप होते हैं। यह सर्वथा अवांछनीय है। मैने सोचा—यह क्या है?

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह भय संसार में अथवा आम जनता में नहीं है, केवल कुछ व्यक्तियों में है, जो नेता हैं और जिन पर संसार के नीति निर्धारण अथवा उसके निर्माण की जिम्मेवारी है। आम जनता भय को नही जानती। वह अपने वर्तमान सुख पर ज्यादा सोचती है। पर उन नेताओं के चिंतन से भय पैदा होता है और बढ़े हुये वैज्ञानिक साधनों के द्वारा उसका प्रचार होने में देरी नहीं लगती।

भय से भय बढ़ता है, वैर से वैर बढ़ता है। अतः अवैर-अहिंसा के द्वारा ही वैर-हिंसा खत्म हो सकती है। सत्य और अहिंसा, जो भारतीय संस्कृति का मूल है और कोई भी धर्म जिसके बिना नही चल सकता— शांति का रास्ता है। मै मानता हूँ, सब धर्म एक नहीं हो सकते, सब राजनीति भी एक नही हो सकती। अतएव पंचशील के सिद्धांत सामने आये और सहअस्तित्व की भावना का उदय हुआ। पर यह सब तभी कामयाब हो सकता है, जबकि इसकी नीव में सत्य और अहिंसा हो। जिस प्रकार बिना नींव के मकान नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार बिना भूमिका के सहअस्तित्व भी नहीं ठहर सकता। प्रश्न यह हो सकता है कि वह भूमिका क्या है ? मेरी सम्मति में वह भूमिका है :

सद्‌भावना, सहिष्णुता और समन्वय।

इन तीन बातों के आधार पर अभय की बड़ी इमारत खड़ी की जा सकती है। पर इन्हें भी कैसे पैदा किया जाए। यद्यपि सहिष्णुता से सद्‌भावना, सद्‌भावना से समन्वय और उससे अभय, यह शांति का मार्ग है। इन्हें लाने के लिये और भी बड़े बड़े तरीके हो सकते है पर वह सब बड़े आदमियों का काम है। हम अकिंचन और पैदल चलने वाले इसे कैसे सोचें ? उन बड़े-बड़े सोचने वाले आदमियों में राष्ट्रपति भी एक है, जो अभी हमारे बीच में उपस्थित हैं। हमने सोचा—बड़ी-बड़ी नहीं, छोटी योजना ही अपने हाथ में लें, जिससे आज के भय भ्रांत संसार का कुछ पथ-प्रदर्शन हो सके। खूब घूमने और अनेकों विचारकों से बात करने के बाद आखिर एक रास्ता हमें सूझ पड़ा कि कम से कम हम लोगों में इसके

सम्बन्ध में एक भावना को पैदा करें और उसी भावना को लोगों के सामने रखने के लिये 'मैत्रीदिवस' का आयोजन किया जाए। मै यह मानता हूँ कि यह कोई रामबाण दवा नही है परन्तु एक रास्ता जरूर है। इसके लिये हम एक दिन तय करें कि जिस दिन मनुष्य कुछ याद करे और कुछ भूले भी। होना तो यह चाहिये कि मनुष्य अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या को देखे। जिस प्रकार एक व्यापारी रोज अपना खाता मिलाता है और साधु रोज अपनी भूलों के लिये प्रतिक्रमण करते है, उसी प्रकार हर एक अपने प्रतिदिन के जीवन की आलोचना करे। लोगों के लिये कम से कम एक दिन तो ऐसा हो, जिस पर वे वर्ष भर में हुई अपनी भूलों की क्षमा दूसरों से मांगे और दूसरों को अपनी ओर से क्षमा करें।

मैत्री बड़े सुख का कारण है पर वह तब तक नही हो सकती, जब तक कि मनुष्य विगत की अपनी भूलों को भूल जाने के लिये विनम्र और क्षमाशील नही हो जाता, साथ साथ में दूसरो को स्वयं भूलने का प्रयास नही करता।

यह कार्यक्रम ऊपर और नीचे दोनों ओर से होना आवश्यक है। (ऊपर याने बड़े लोगों से और नीचे यानी सामान्य लोगों से) यद्यपि मेरी दृष्टि में मनुष्य ऊँचा और नीचा कोई नही होता, पर आम दृष्टि से यह दोनों ओर से होना आवश्यक है। ऊँचे लोगों के लिये तो यह और भी जरूरी है क्योंकि ऊपर का पानी स्वयं नीचे आता है। बड़े लोगों में यदि क्षमा की भावना पैदा होगी तो छोटे लोग तो उनका अनुकरण अवश्य करेंगे। अतः मै दोनो ही से कहूँगा कि वे इस बात पर गहराई से सोचें। इसके लिये तीन बातें जरूरी है—

(१) प्रत्येक मनुष्य अपनी ओर से सारे प्राणियों को अभय दान करे।

(२) अपनी भूलों के लिये दूसरों से क्षमा याचना करे।

(३) दूसरो की भूलों को स्वयं क्षमा करे।

मै मानता हूँ, यह कोई बड़ी बात नहीं है, एक छोटी सी बात है।

पर हमें आदि में छोटे काम से शुरू करना चाहिये। आगे चलकर वह स्वयं बड़ा बन जाता है। अतः आज हम इसका प्रयोग करें। यह छोटा प्रारंभ भी आगे बड़ा रूप ले सकता है।

आज के लिये दो बातें

अभी अभी राज्य पुनर्गठन को लेकर देश में जो कटुता फैली, वह किसी से छिपी नहीं है। सामने चुनाव का प्रश्न आ रहा है। उसमें भी कटुता की संभावना हो सकती है। अतः भूत और भविष्य के बीच आज हम मैत्री की ऐसी भावना जगायें, जिससे एक सुन्दर वातावरण बन जाय।

अणुव्रत आंदोलन के द्वारा हम जो कुछ कर रहे है, उससे इन तीनों बातों के प्रसार का अच्छा मौका मिलता है।"

विश्वमैत्री का महत्व

राष्ट्रपति ने अपने भाषण में कहा—

"आचार्य जी ! भाइयो तथा बहिनों !

सबसे पहले मै आपको इस मंगल दिवस के आयोजन के लिये बधाई देना चाहता हूँ।

मैं मानता हूँ कि हमारे देश में आज अधिक से अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, वह है मैत्री। अतः उसके लिये जो कुछ भी किया जा सके, वह स्वागत करने योग्य है। मै सोचता था कि आपके पत्र-पत्रिकाओं में जो 'फ्रैटरनिटी' शब्द का प्रयोग हुआ है और दूसरी भाषा में जिसको हमने मैत्री कहा है, इसमें कोई भेद है या दोनों एक ही है। फ्रैटरनिटी का अर्थ है—भ्रातृभाव। वह जन्मजात होता है। क्योंकि एक मनुष्य जन्म से ही दूसरे मनुष्य का भाई है। अतः उनके बीच में जन्म से ही एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव होना चाहिये और होता भी है। पर हम सोचते है कि कई बार भाई-भाई में भी इतना वैमनस्य हो जाता है कि उसका कोई ठिकाना नहीं रहता। उनके आपस में मिलने को

मैत्रीभाव कहते हैं। अतः हम देखते है कि मैत्रीभाव जन्मजात नहीं होता। उसे स्वेच्छापूर्वक लाया जा सकता है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति, एक समाज का दूसरे समाज के प्रति और एक प्राणी का दूसरे प्राणी के प्रति। अतः यह भ्रातृभाव से ज्यादा है और स्वेच्छापूर्वक होने से जब तक कायम रखना चाहें, रखा जा सकता है। जैसे इसका जन्म स्वेच्छा से होता है वैसे ही अंत भी। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि मैत्रीभाव को केवल जन्म ही नहीं पोषण भी दिया जाय। इस के लिये निरंतर प्रयत्न और प्रयास किया जाना चाहिये। आज के कार्यक्रम का महत्त्व स्वयं स्पष्ट है और इसीलिये मैने इसका स्वागत किया। आशा करता हूं कि भविष्य में भी इसे जारी रखा जाए और अधिक वढ़ाया जाये।

आचार्य श्री ने यह ठीक ही कहा कि मनुष्य अपने हृदय में ही भय को पैदा करता और वढ़ाता है। आज जो शस्त्रास्त्र वनाये जा रहे है, उनका भी यही कारण है। एक राष्ट्र सोचता है, मेरे पास दूसरे से कम शस्त्र हैं। अतः वह उनके वढ़ाने के प्रयास में लग जाता है। फिर वह उससे कुछ आगे वढ़ना चाहता है और वढ़ जाता है। इससे एक वात और पैदा होती है कि फिर वह किसी दूसरे को वड़ा देखना नही चाहता। इस प्रकार एक दूसरे को दवाने के लिये अनेक राष्ट्र खड़े हो जाते है और अशांति पैदा कर देते हैं। इसी कारण जो प्रयत्न आज चल रहे हैं, उनसे लाभ नही होता। हमारे देश में यह कहावत प्रचलित है, कि कीचड़ को कीचड़ से नही धोया जा सकता। उसे धोने के लिये तो जल की आवश्यकता होती है। हिंसा को हिंसा से नहीं, अहिंसा से मिटाया जा सकता है। हिंसा को हिंसा से मिटाने की कोशिश की गई तो वह दूसरा कदम भी हिंसा ही हो जाता है। फिर उसे मिटाने के लिये हिंसा की गई तो तीसरा कदम भी हिंसा हो जायगा। इस प्रकार हिंसा का कोई अंत नहीं हो सकता। अगर उसे पहले ही कदम में रोक दिया जाय तो वहीं पर उसकी जड़ खत्म हो सकती है। इस प्रकार मैत्री भावना हिंसा को

जड़ से निकाल सकती है। इतिहास में हम इसके एक नहीं, अनेक उदाहरण देख सकते है।

उन्नति एक-मुखी नही हो सकती। वह चतुर्मुखी होती है। हमें विद्या और संपत्ति सृजन मे ही नहीं, भावना में भी उन्नति करनी चाहिये। आज भारत के लिये एक नवयुग है, क्रांति का युग है, जिसमें हमें हर प्रकार की उन्नति करनी है। उसमें हमारी सद्भावना सबसे अधिक जरूरी है। उसके बिना और किसी भी प्रकार की उन्नति नही हो सकती। विष को बोकर हम उससे विष ही पायेंगे, अतः हमें उसे जड़ से ही सुधारना है, जिससे आगे हमें सुखद फल मिले।

यह हमारे देश के सौभाग्य के बात है कि धर्माचार्यों के मन में यह भावना पैदा हुई है। सम्प्रदाय से उठकर वे समस्त मानव समाज के लिये काम करते हैं। वैसे वे जो कुछ करे सो करे। पर उसकी जड़ में सद्भावना रखे। यदि यह प्रयास सफल हो गया तो सब अन्य प्रयास भी सफल हो जायेंगे।

आपके आंदोलन का मै हमेशा से समर्थक रहा हूँ और इसके लिये आप अगर मुझे कोई पद देना चाहे, तो मै समर्थक का पद लेना चाहूँगा।

हमारी पुरानी परंपरा है कि यहाँ देश और विदेश से अनेकों मत-धर्म आये। उन्हें देश भर के लोगों ने एक करके रखा। भाषा की दृष्टि से भी एक भारत में ही उतनी भाषाएँ बोली जाती हैं, जितनी कि सारे यूरोप में। धर्म के संबंध में भी संसार में जितने धर्म हैं, उनके अनुयायी लाखों की संख्या में हमारे यहां रहते हैं। इसी प्रकार रहन-सहन और पहनावे की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के लोग हमारे देश में बसते हैं। इन सबसे मिलकर हमारी संस्कृति बनी है। सहिष्णुता को हमने हमेशा आदर्श माना है; वह केवल प्रसारों में ही नहीं जीवन में भी। इसी का फल है कि हमारे देश में जितना वैचित्र्य है, उतना और किसी दूसरे देश में नहीं है। हिन्दुओं की विधि में केवल इतना नही है कि उस

किसी विधान विशेष को ही मान्यता दी है। एक प्रांत और एक जाति में ही नहीं, एक खानदान में भी अलग-अलग रिवाज है और हिन्दू विधि ने उन सबको मान्यता दी है। यह सहिष्णुता के बिना कैसे संभव हो सकता था। अतः हमारी यह परंपरा आपस में घुल-मिल गई है। आज तो इसके बारे में हम जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। इसीलिये हमारा संसार के प्रति उत्तरदायित्व अधिक हो जाता है कि हम अपनी भावना सब लोगों में पहुँचाएं। यह हमारी परंपरा के रूप में चली आई है। प्रश्न यह है कि आज हम इसको आधुनिक जामा कैसे पहनाएं, जिससे मानव समाज इसे समझे और अपनाए।

महात्मा जी ने यही काम किया था। उन्होंने प्राचीन चीजों को नई भाषा में रखा। हम लोगों ने, जो पश्चिमी रंग में रंग गये थे— उसका महत्व समझा और विदेशों में तो इसमें कई लोग हम से भी अधिक रस लेते हैं। आज उसी बात को जागृत करने का आचार्य जी नें प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। मै इस प्रयत्न का स्वागत करता हूँ।

मैत्रीदिन के पीछे उसे परिपुष्ट करने का और भी तौर-तरीका सोचा जाना चाहिये। मुझे विश्वास और आशा है कि इस काम में अपने को सभी प्रकार के लोगों की सद्भावना मिलेगी क्योंकि यह दिल की बात है, जो आज कुछ ढक गई है पर बहुत जल्दी ही उसका ढका जाना दूर हो सकता है और वह बहुत प्रकाश देगी। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि आपका यह प्रयास सफल हो।"

इसके बाद फिनलैण्ड के राजदूत मोसिय ह्यूगो वालवन्ना तथा रामकृष्ण मिशन दिल्ली के स्वामी रंगनाथानंद जी ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। अन्त में अणुव्रत समिति के मंत्री श्री जयचंद लाल दफ्तरी ने सब को धन्यवाद दिया और बड़े ही उल्लासित वातावरण में आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ।

आयोजन सम्पन्न होने के बाद वहाँ से आचार्य श्री हैदरकुली में लाला द्वारकादास मंगलराम के यहाँ पधारे। आहार के बाद कई घरों में

पधारना हुआ। करीबन ५०० सीढ़ियाँ उतरनी चढ़नी पड़ीं। वहाँ से सब्जीमण्डी पधारे।

आयोजन (२०)

संस्कृत गोष्ठी

आचार्य श्री के अभिनन्दन में तारीख १ जनवरी सन् १९५७ को अपरान्ह में दो बजे अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से हिन्दी-विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० नरेन्द्र नाथ चौधरी एम० ए० डी० लिट की अध्यक्षता में कठोतिया भवन में एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफ़ेसरों, संस्कृत विद्यालयों एवं पाठशालाओं के पंडितों, छात्रों, राजधानी के अन्यान्य विद्वानों, हिन्दी-साहित्यकारो तथा साहित्यानुरागी नागरिकों ने भाग लिया।

अ० भा० सं० सा० सम्मेलन के मंत्री डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए०, पी० एच० डी० ने सम्मेलन की ओर से आचार्य श्री के सम्मान में निम्नांकित अभिनन्दन पत्र पढ़ा :—

अणुव्रतान्दोलन सम्प्रवर्तकानां विद्यात्याग तपोनिधीना मत्यन्तोदार चेतसां परमपावन जैनाचार्यप्रवर पूज्यवर श्री तुलसीदास गणि महाभागानां सेवायां सादरं समर्पितम्।

अभिनन्दन पत्रम्

पूज्यचरणाः,

सुरसरस्वतीसमाराधन संलग्नचेतसो वयमद्य तत्रभवतां श्रीमता-

मभिनंदनं विदधाना श्रमन्दमानंद सन्दोहमनुविन्दामः। श्रार्यावर्तमिमं निखिलभूमण्डलमौलिमंडनतामापादयन्त्यस्याध्यात्मिकी परम्परा भवादृशैरेव तपोराशिभिरहर्दिवमुपचीयत इति न कस्याप्यविदितं। श्राणववारुणा-द्यस्त्रजालसंजालमहाप्रयलातंक शंके विनाशजलधराक्रांत इवास्मिन् धरणीतले समीरायते श्रीमतां वाणी। एकतोऽणुव्रतान्दोलन समुत्तोलनेन संयमि जीवनम् अन्यतश्च मैत्रीभावनाप्रसारणेन परस्परोपग्रहमुपदिशन्ती श्रीमतामुपदेशपयस्विनी द्वेषदावानलशान्तये धरणीतलमाप्लावयन्तीव दरीदृश्यते।

मुनिवर्याः

श्रीमतां कठोरं संयमं, निवृत्तिप्रधानानि व्रतानि प्रतिपदं निग्रहन्तीं च दिनचर्यामालोकमालोकं प्राचीनभारतीय संस्कृते रादर्शं प्रत्यक्षमिव समालोकमाना भृशं गौरवमनुभवामः। सन्यासाश्रम स्थितेनाऽपि लोकोद्धार परायणेन मनस्विना किंक तु शक्यत इति भवता महान् श्रादर्श उपस्थितः। दर्शितंच श्रीमता यल्लोकसेवा निवृत्त्योर्नास्ति कश्चनविरोधः। यदि भारतीय सन्यासिवर्गः श्रीमतां चरण चिन्हानुवर्तेत, भारतं पुनरपि निखिललोक-मूर्धन्यतां समासादयेत् इति नास्ति संदेहलवोऽपि।

विद्यानिधयः,

भवादृशैर्मन्त्रद्रष्टृभिर्जीवनस्य यानि रहस्यानि साक्षात्कृतानि दीर्घ-कालमननेन यानि तत्वानि सदासादितानि, 'सत्यम् शिवं सुदरम्' स्वरूपाया भारतीयसंस्कृतेः प्रसाराय ये य उपाया समालम्बिताः, श्रार्याणां धर्मतरौ यानि यानि सुरभीणि पुष्पाणि विकासितानि मधुराणि च फलानि समुद्भावितानि, तानि सर्वाणि गीर्वाणवाण्यां सन्निबद्धानीव राराजन्ते। सभ्यतायाः समुन्मेषकालादारभ्य श्रद्यावधि सर्वेषां संस्कृति समुत्थापकानां स्वरोऽनयैव तन्त्र्या जेगीयमानं श्रूयते। भारतस्य सांस्कृतिक समुत्थानेन समेहमपि सुखं समुच्छ्वसेतेति स्वाभाविकम्। तदर्थं भवादृशां ज्योति-र्धराणां कृपाकटाक्ष मपेक्षंते। श्रीमतां चरण चंचरीकाः—

अखिलभारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन सदस्याः

ऋषियों का मार्ग

आचार्य प्रवर ने उत्तर में बोलते हुए कहा—

भारतीय संस्कृति में वही मार्ग अनुकरणीय है जिस पर ऋषि चले, आत्मद्रष्टाओं के पद-चिन्ह जिस पर पड़े। वह मार्ग है आत्मचेतना और अन्तर जागृति का। यह वह सरणि है, जिस पर भारतीय परम्परा का इतिहास अवस्थित है। चाहे कैसा भी युग क्यों न हो, इस मूल परम्परा का सर्वथा विलोप भारतीयों में हो नही सकता। उस पर आवरण पड़ सकता है जैसा कि इस समय पड़ रहा है। इसलिए मैं विद्वानों से कहूँगा कि भारत की अन्तर जागृतिमयी संस्कृति के परिवर्द्धन और परिपोषण के लिये कृत-प्रयत्न होते हुए वे राष्ट्र की अध्यात्म परम्परा को आगे बढ़ाएँ, अपना निजी जीवन उस पर ढालें और औरों को भी इस ओर प्रेरित करें। आप लोगों ने मेरा अभिनन्दन किया। आप जानते हैं, मैं एक अकिंचन व्यक्ति हूँ, पादचारी हूँ, वैभव विलास से सर्वथा शून्य। मेरा कैसा अभिनन्दन है ? मैं चाहूँगा कि जन जागृति के जो उदात्त विचार मैं देना चाहता हूँ, जिनको लेकर मै चल रहा हूँ, उन्हें आप अपने जीवन में उतारें, औरों तक पहुँचाने में सहयोगी बनें। इसको ही मैं सच्चा अभिनन्दन मानूँगा।

साहित्य गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था। मुनि श्री नथमल जी, श्री बुद्धमल जी तथा श्री नगराज जी ने उपस्थित विद्वानों द्वारा दिये गये विषयों और समस्याओं पर तत्काल संस्कृत में आशु कविताएँ कीं। मुनि श्री नथमल जी, पं० चारुदेव शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल०, प्रो० एम० कृष्णमूर्ति, डा० सत्यव्रत, व्याकरणाचार्य एम० ए० डी० लिट्, श्री छगनलाल शास्त्री काव्यतीर्थ, श्री कर्णदेव शास्त्री तथा आचार्य श्यामलाल शास्त्री ने संस्कृत में भाषण दिये।

मुनि श्री दुलीचन्द जी, श्री बुद्धमल जी, कविशिशु तथा बच्चन ने कविता पाठ किया।

आयोजन (२१)

साहित्य गोष्ठी

४ जनवरी १९५७ को ६ बजे आचार्य श्री के अभिनन्दन के निमित्त हिन्दी भवन की ओर से १६ बाराखम्भा रोड पर साहित्यकारों एवं कवियों की विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया। जीवन साहित्य के सम्पादक श्री यशपाल जैन ने अभिनन्दन भाषण दिया।

मुनि श्री नथमल जी, श्री दुलीचन्द जी, श्री बुद्धमल जी, श्री नगराज जी, श्री सागरमल जी, श्री हर्षचन्द जी, श्री मानमल जी, श्री मनोहरलाल जी तथा श्री गोपीनाथ जी अमन, श्री ललित मोहन जोशी, श्री रमेशचन्द, श्री रामेश्वर अशांत आदि कवियों ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत की।

आचार्य प्रवर ने कवियों एवं साहित्यकारों को उनके महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व से अवगत कराते हुए कहा कि—स्वयं अपने जीवन को आत्मनिर्माण में लगाते हुए जन-जन को अन्तर्मुख बनाने में वे अपनी प्रतिभा और कल्पना को सत् प्रयुक्त करें। अणुव्रत आन्दोलन आत्म-निर्माण और अन्तर्मुखता का आन्दोलन है, जिस पर उन्हें मनन एवं अनुशीलन करना है।

अन्त में हिन्दी भवन की मंत्रिणी श्रीमती सत्यवती मलिक ने आभार प्रदर्शन करते हुए कहा—

मैं यह नहीं समझती थी कि आपके संत इतनी गंभीर एवं हृदय-स्पर्शी कवितायें करते है। आपके संघ में साहित्य विकास का जो सर्वतोमुखी प्रयास चल रहा है, वह स्तुत्य है। मैं उससे बहुत प्रभावित हुई।

बिदाई समारोह

महत्वशील साधना

७ जनवरी १९५७ को आचार्य श्री दिल्ली से राजस्थान के लिए प्रस्थान करेंगे, इसलिये ६ जनवरी १९५७ की प्रातःकाल काठोतिया भवन में सैकड़ों भाई बहिनों की उपस्थिति में बिदाई समारोह का आयोजन किया गया। सब के मुख पर खेद-मिश्रित प्रसन्नता दीख रही थी। प्रसन्नता इसलिये थी कि आचार्य प्रवर का दिल्ली प्रवास पूर्ण सफल रहा। देश में ही नहीं विदेशों में भी नैतिक भावना का काफी प्रसार हुआ। खेद इसीलिये था कि आचार्य श्री उन्हें छोड़ चले जा रहे हैं। आचार्य श्री का बिदाई सन्देश सुनने के लिये सभी उत्सुक थे। आचार्य श्री ने कहा—

"मै उस साधक, साधना और प्रगति को अधिक महत्वशील मानता हूँ, जो केवल अकेला ही उत्थान-पथ पर न बढ़ता हुआ औरों को भी उस विकास और प्रगति की राह पर बढ़ने की प्रेरणा दे। यही कारण है कि अणुव्रत आंदोलन के रूप में जन-जन के अन्तर जागरण का कार्य क्रम लिये मै पर्यटन कर रहा हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि आंदोलन की भावना दिल्ली के विभिन्न क्षेत्र, वर्ग और समाज के लोगों में व्यापक रूप में फैली। मै मानता हूँ दिल्ली केवल एक राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है और मै यह आवश्यक समझता हूँ कि ऐसे क्षेत्रों में इस प्रकार के नीतिनिष्ठ और चरित्र विकास के कार्यक्रमों का ज्यादा से ज्यादा फैलाव हो। मै कहना चाहूँगा कि नैतिक भावना का दिल्ली में जो प्रसार हुआ है, लोग उसे भूलें नही।

संकीर्ण और ऊँच नीच की भावना ने राष्ट्र का बहुत बिगाड़ किया

है। अणुव्रत आंदोलन साम्प्रदायिक मतवाद और जातीय कटुता से दूर जीवन-जागरण का प्रशस्त पथ है, जिस पर मानव मात्र को चलने का अधिकार है। यह धर्म का व्यावहारिक रूप है, जिसकी जन-जन में महती आवश्यकता है, क्योंकि धर्म के ऊँचे सिद्धांत जब तक जीवन में नहीं उतरते, तब तक उसका केवल नाम रहने से कुछ बनने का नहीं है।

यहाँ के कार्यक्रमों को पूर्ण सफल बनाने में यहाँ पर स्थित मुनि श्री नगराज जी, मुनि श्री महेन्द्र जी तथा उनके सहयोगी संतों ने बहुत परिश्रम किया, बहुत से व्यक्तियों से संपर्क साधा और आंदोलन की भावना उन्हें समझाई। साथ-साथ यहाँ के स्थानीय कार्यकर्ताओं तथा इस अवसर पर बाहर से आये हुये कार्यकर्त्ताओं ने भी नैतिक भावना के प्रसार में बहुत परिश्रम किया है। इससे दूसरों को भी प्रेरणा लेनी चाहिये। धार्मिक तत्त्वों का प्रचार करना जीवन का भी ध्येय होना चाहिए।

मुनि श्री नगराज जी और मुनि श्री महेन्द्र जी ने भी इस अवसर पर अपने विचार प्रकट किये। श्री मोहनलाल जी कठौतिया, श्री जयचन्दलाल जी दफ्तरी तथा प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने भी अपने श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न भाव व्यक्त किए।

आयोजन (२३)

पिलानी में संस्कृत साहित्य गोष्ठी

आकाश प्रातःकाल से ही प्रायः मेघाच्छन्न था। रुक-रुक कर बूँदें पड़ रही थीं। आशंका थी कि कहीं आज के कार्य-क्रम में विघ्न न आ जाए। आज १८ जनवरी १९५७ का प्रातःकालीन आयोजन बिरला मांटेसरी पब्लिक स्कूल में था। उसके बाद वर्षा जोर से पड़ने लगी।

गोचरी भी पूरी तरह से नहीं हो सकी। अतः ग्यारह बजे का सेन्ट्रल आडिटोरियम हॉल के प्रवचन का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। इधर हाल में विद्या विहार के हजारों छात्र इकट्ठे हो गये थे। जब उन्हे पता चला कि आचार्य श्री आज नहीं आ सकेंगे तो उन्हें निराशा हुई। आचार्य श्री के इधर के कार्यक्रमों से वे परिचित थे अतः प्रवचन सुनने के लिये अति उत्सुक थे। पहले दिन कुहरे के कारण आने में देर हो गई थी। दूसरे दिन वर्षा के कारण प्रवचन नहीं हो सका था। दूसरे कार्यक्रम भी नही हो सके थे। लोगों में इतनी उत्कंठा थी कि अगर आचार्य श्री बाहर नहीं जा सके तो वहाँ उनके स्थान पर ही कुछ कार्यक्रम कर लेना चाहिए। किन्तु वह भी नही किया जा सका। अतः उसी दिन तीसरे पहर चार बजे 'संस्कृत साहित्य गोष्ठी' का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। गोष्ठी में बिरला विद्या विहार के संस्कृत प्राध्यापक, छात्र, वेद वेदांग संस्कृत महाविद्यालय के पंडित, छात्र एवं आयुर्वेद कालेज के विद्वान् व विद्यार्थी सोत्साह उपस्थित थे।

सर्व प्रथम मुनि श्री दुलीचन्दजी ने सुमधुर स्वर से एक संस्कृत गीतिका का गान किया। पश्चात् श्री छगनलाल शास्त्री काव्यतीर्थ ने आचार्य प्रवर के निर्देशन में साधु साध्वीगण में चल रही संस्कृत साहित्य के बहुमुखी विकास, अनुशीलन, साहित्य सृजन आदि विविध प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला। वेद वेदांग संस्कृत महाविद्यालय के प्रधान आचार्य श्री अनन्तदेव शास्त्री व्याकरणाचार्य ने आचार्य प्रवर के अभिनन्दन में भाषण किया। वेदवेदांग संस्कृत महाविद्यालय के एक छात्र श्री रामस्वरूप शर्मा ने संस्कृत प्रसार के विषय में अपने विचार प्रकट किये। मुनि श्री सुखलाल जी ने संस्कृत भाषा की उपयोगिता के बारे में बताया। मुनि श्री नथमल जी तथा मुनि श्री बुद्धमल जी ने तत्क्षण प्रदत्त विषयों पर आशु कविता की।

मुनि श्री नथमल जी ने अपने भाषण में बताया—आज जो पंडितों और प्रोफेसरों का भेद है, वह जब तक नहीं मिट जाता तब तक संस्कृत

भाषा प्रगति नही कर सकती। पंडित लोग केवल व्याकरण में उलझे रहते है और प्रोफेसर लोग व्याकरण की उपेक्षा कर देते है। ये दोनों पक्ष उचित नही हैं। व्याकरण ही कोई भाषा नही है और व्याकरण की उपेक्षा से भी भाषा नही बन सकती। अतः मध्यम मार्ग ऐसा होना चाहिये, जिससे यह भेद मिटे और संस्कृत भाषा विकास कर सके। संस्कृत का महत्व केवल इसलिये ही नही कि वह लालित्यमयी भाषा है। इसका महत्त्व इसलिये है कि इसके साहित्य में अध्यात्म अनुभूति उचित मात्रा में प्रस्फुटित हुई है।

मुनि श्री ने अपनी आशु कविता में संस्कृत की गरिमा गाते हुए कहा—आज देवता तो हमारे सामने हैं नही, जिनसे हम उनकी वाणी को जान सकें और इधर संस्कृत को लोग देव-भाषा मानते है तो यहाँ मैं "कं प्रमाणं मन्ये"—किसको प्रमाण मानूँ ?

इतना सुनते ही वहाँ उपस्थित एक संस्कृत पंडित आवेश में आकर बोल उठे—यहाँ आपने "प्रमाणं" शब्द का जो नपुंसक लिंग का है, पुंल्लिग 'कम्' विशेषण कैसे कर दिया। मुनि श्री ने उन्हें समझाया कि यह प्रमाण का विशेषण नहीं है। यहाँ मैंने "कं पुरुषं प्रमाणं मन्ये" इस पुरुष शब्द को ध्यान में रखकर कं विशेषण का प्रयोग किया है। पंडित जी विवाद करने पर उतारू हो गये। कहने लगे—बिना विशेष्य के आपने विशेषण का प्रयोग कैसे किया ? मुनि श्री ने उन्हें समझाया—ऐसा होता है, यह साहित्य का दोष नही है। वे कहने लगे पद्य में ऐसा नहीं होता। चर्चा में कुछ तेजी पैदा हो गई। पंडित जी ने फिर आवेश में पूछा कि देव कौन होता है ?

मुनि श्री ने कहा—हम तो अपने आगमों पर श्रद्धाशील है अतः मानते हैं कि देव भी होते है।

उन्होंने कहा—नहीं, यह बात गलत है। देव तो वे ही है, जो संस्कृत भाषा बोलते है। फिर बहस चल पड़ी। उन्हें समझाया गया कि केवल संस्कृत बोलने वाले ही देव नही होते। अगर इसी से देव हो जाते

हों तो हम मनुष्य भी देव हो जायेंगे जो संस्कृत बोलते हैं, पर ऐसा नहीं है। हम मनुष्य हैं, यह स्पष्ट है। मुस्कराते हुये आचार्य श्री ने कहा—यदि संस्कृत में बोलनेमात्र से ही कोई देव हो जाता हो तब तो विदेशों में भी अनेक लोग संस्कृत बोलते हैं। क्या वे देव हो गए ?

अबकी बार पंडित जी अचकचाये। कहने लगे—नहीं, देव तो भारतवासी ही हो सकते हैं। वे तो अब म्लेच्छ है। आचार्य श्री ने कहा तब आप संस्कृत बोलनेमात्र से किसी को देव कैसे मान लेते है ? यदि मानते है तो उन्हें भी आप को देव मानना पड़ेगा। वे कहने लगे—नहीं, वे संस्कृत बोलते तो हैं पर उनका संस्कृत के प्रति अनुराग और विश्वास नहीं है।

आचार्य श्री—नहीं, यह बात गलत है। अनेक विदेशी विद्वान् संस्कृत से अच्छा अनुराग रखते है। यह बात आप कैसे कह सकते है कि उनको संस्कृत से अनुराग नही है। इस बात पर वे टाल मटोल करने लगे। इधर समय भी काफी हो गया था। मेघ आकाश पर अपना गहरा अधिकार जमाये हुए थे। दिन भी छिप चुका था। आचार्य श्री ने आज के विषय का उपसंहार करते हुए गोष्ठी को समाप्त किया। आचार्य श्री ने बहस में कटुता पैदा नहीं होने दी।

गोष्ठी के बाद एक संस्कृत प्रोफेसर मिलने आये। वे कहने लगे—हम प्रोफेसरों और पंडितों में यही तो अन्तर है। एक शब्द के लिए उन्होंने सारा मजा बिगाड़ दिया। अच्छा प्रकरण चल रहा था। बड़ा आनन्द आ रहा था। शब्द की गलती भी हो सकती है पर वह तुच्छ है। उसमें उलझ जाना उचित नहीं है। पर पंडित लोगों की यह प्रवृत्ति रहती है। आपने तो कोई गलती की भी नहीं थी। पर क्या किया जाए ? एक ओर से ये संस्कृत विकास की ऊँची-ऊँची उड़ानें भरते हैं और उसके लिये इकट्ठे होते हैं, दूसरी ओर आपस में ऐसी कलह कर लेते हैं। इसी कारण संस्कृत का विकास रुका हुआ है।

दूसरा प्रकरण

श्रमण संस्कृति का स्वरूप

चेतना के जगत में हिंसा और अहिंसा का झमेला नहीं है। वहाँ अंतर और बाहर का द्वंद्व नहीं है। स्वभाव ही सब कुछ है। वहाँ पहुँचने पर बाहर का आकर्षण मिट जाता है।

पौद्‌गलिक जगत् में चेतन और अचेतन का द्वंद्व है, इसलिये वहाँ हिंसा भी है और अहिंसा भी है। बाहरी आकर्षण हिंसा को लाता है, उसकी मात्रा बढ़ती है तब उसका निषेध होता है। वह अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ है— बाहरी आकर्षण से मुक्ति। बाहरी पदार्थों के प्रति खिचाव होता है, इसीलिये तो मनुष्य संग्रह करता है। संग्रह के लिये शोषण और युद्ध करता है।

अहिंसा और अध्यात्म को अव्यावहारिक मानने वाले वे ही लोग है, जो बाहर से अधिक घुले मिले है। उनकी दृष्टि में जीवन के स्थूल पहलू ही अधिक मूल्यवान हैं।

बाहरी आकर्षण हिंसा है। बाहर से आसक्ति, परिग्रह और उसके समर्थन का आग्रह-एकान्तवाद, कठिनाइयों के मूल ये तीन है और सारे दोष इनके पत्र-पुष्प हैं।

आज का विश्व विपदाओं के कगार पर खड़ा है। उसे अशान्ति से उबारने के लिये "अनेकांत दृष्टि" सहारा बन सकती है। बाहरी पदार्थों के बिना जीवन नहीं चल सकता। गृहस्थ जीवन में उनकी पूर्ण उपेक्षा नही की जा सकती, पूरा निषेध नही किया जा सकता, यह एक तथ्य है। किन्तु उनके प्रति जो अत्यधिक झुकाव है वही सारी दुविधाएं पैदा करता है।

अहिंसा आकर्षण की दूरी से नापी जाती है, वह केवल योग्य वस्तुओं

की दूरी से नहीं नापी जा सकती। मूर्च्छा का ममत्व स्वयं परिग्रह है। वस्तु का संग्रह हो या न हो, ममत्व से जुड़ी हुई वस्तुएँ भी परिग्रह हैं।

भगवान् महावीर ने कहा— हिंसा और परिग्रह दोनों सत्य की उपलब्धि में बाधा हैं। इन्हे नही त्यागने वाला धार्मिक नहीं बन सकता। दुःख के बाहरी उपचार से दुःख के मूल का विनाश नहीं होता। भगवान् ने कहा— धीर ! तू दुःख के अग्र और मूल दोनों को उखाड़ फेंक। (अग्रं च मूलं च किंमि च धीरे।)

असुख और अशांति में दोनों महा भयकारक हैं। (अगायं अपरिनिआणं म अभयं)। इनका प्रवाह कर्म में है। कर्म का प्रवाह मोह में है। प्रिय और अप्रिय पदार्थों में मूढ़ बनने वाला शांति नही पा सकता और सुख भी नहीं पा सकता। सुख इन्द्रिय और मन की अनुभूति है। वह प्रियता की कोटि का तत्व है। शांति आत्मा की समवृत्ति है। सुःख-दुःख, लाभ-अलाभ, जीवन-मृत्यु, उत्कर्ष-अपकर्ष, आदि आदि उतरती-चढती सभी अवस्थाओं में वृत्तियों की समता जो है, वह शांति है।

अप्रिय और प्रतिकूल संयोगों में भी विचार तरंगों की जो अप्रंकम्पना है वह शांति है। आत्म-निर्भरता और स्वावलम्वन शांति है। श्रमण संस्कृति का अर्थ है— शांति की संस्कृति। वह सम, शम और श्रम—स्वावलंबन या वैयक्तिकता के आधार पर टिकी हुई है। भगवान ने कहा श्रामण्य का सार उपशम है। उपशम जो है वही श्रामण्य है।

'उवसयंसारं सामण्णं'

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्रकी आराधना जो है वही जैन धर्म है।

अनेकान्त, अनाग्रह और अध्यागम का जो विचार है वही जैन दर्शन है

अहिंसा, अपरिग्रह और अभय की जो साधना है वही जैन दर्शन का मुक्ति मार्ग है।

विश्व मैत्री का मार्ग यही है। वैयक्तिक दुर्लवताओं को जीते विना

विजय नहीं। विजय के बिना शांति और अखंड की उपलब्धि नहीं—जैन धर्म का यही मर्म है।

स्याद्वादो विद्यते यस्मिन्, पक्षपाती न विद्यते।
नास्त्यन्यपीड़नं किञ्चित् जैन धर्मः स उच्यते ॥
आसवो भव हेतुः स्यात्, सम्वरो मोक्ष कारणम्।
इतीय मार्हती दृष्टिः सर्वं मन्यत् प्रवञ्चनम् ॥

आचार्यश्री का यह प्रवचन ३० नवम्बर १९५६ को सप्रू भवन में जैन गोष्ठी मे दोपहर के समय हुआ। देरी हो जाने के कारण आचार्य श्री ने आहार एक ही समय किया।

जैन गोष्ठी के मन्त्री डा० किशोर ने आचार्य श्री से वहाँ पधारने के लिए निवेदन किया था। बाद में स्थिति ने कुछ पलटा खाया। अन्य जैन सम्प्रदायो के साधुओं ने या उनके श्रावको ने भी वहाँ आने का आग्रह किया। आचार्य श्री ने कहा—अगर वे आएँ तो मुझे तो वहाँ न जाने या जाने मे कोई आपत्ति नही। अपनी आत्मा का पूरा आलोचन करने के बाद मुझे मेरे एक प्रदेश मे भी कोई दुर्भावना नही लगती, मेरी दृष्टि मे भी सही काम होना चाहिये, चाहे वे करे या हम करें। पर खेद है कि जैन समाज मे, विशेषतया साधुओ मे भी अभी समन्वय की वृत्ति नही आई है।

अंत मे वहाँ के कार्यकर्ताओ ने आचार्य श्री की उपस्थिति आवश्यक समझी। उनके निवेदन पर आचार्य श्री वहाँ पधार गये। दिगम्बर आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी भी आये थे। काका कालेलकर के उद्घाटन भाषण के बाद आचार्य श्री देशभूषण जी ने मगल प्रवचन किया। फिर आचार्य श्री का श्रमण सस्कृति तथा जैन धर्म के स्वरूप पर सारगर्भित प्रवचन हुआ।

दिन थोडा रह जाने के कारण प्रवचन के बाद आचार्य श्री वापस पधार गये। पीछे से प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने प्रवचन का अंग्रेजी मे अनुवाद किया।

प्रतिक्रमण के बाद टी० सी० ओ० के एक आफीसर श्री पुष्कर ओझा दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने उन्हे अणुव्रत आदोलन की जानकारी दी। फिर प्रार्थना के बाद जैन सेमिनार के अध्यक्ष भारत के प्रमुख उद्योगपति श्री साहू शातिप्रसाद जी जैन आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उन्होने जैन साहित्य और समाज के बारे में काफी चर्चा की।

प्रवचन (२)

धर्म व नीति

दिल्ली में मै तीन बार आया हूं, पहिले पहल मै जब आया तब अणुव्रत आन्दोलन का पहिला वार्षिक अधिवेशन हुआ था। दूसरी बार मै यहाँ चातुर्मास करने आया और अब तीसरी बार मै एक बहुत लम्बी यात्रा तय करके आ रहा हूँ। दिल्ली में मेरे न आने पर भी हमारे साधुओं ने यहाँ अच्छा कार्य किया है। विभिन्न कार्यक्रमों से अणुव्रत की जानकारी और निष्ठा भी पैदा हुई हैं। मै चाहता हूँ, हमारा यह क्रम जारी रहना चाहिए। कई लोग कहते है कि साधुओं को इस से क्या मतलब? उन्हें तो जंगल में एकान्तवास और ध्यान करना चाहिए। पर यह सही नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है—साधुओं का कार्य है साधना करना। वह जंगल में भी हो सकती है और लोगों के बीच में भी "साधयति स्वपरकार्याणीति साधुः" साधू वही है जो अपना और दूसरों का भी कार्य साधे। अतः साधु का अपना काम करना भी साधना है और दूसरों के आत्मगुणवर्धक कार्यो में सहायक होना भी साधना है।

शास्त्रों में चार प्रकार के मनुष्य बतलाये गये है। एक प्रकार के मनुष्य आत्मानुकम्पी—जो अपनी ही चिन्ता करने वाले होते हैं। दूसरे

परानुकम्पी—जो दूसरों की ही चिन्ता करने वाले होते हैं। तीसरे उभयानुकम्पी—जो अपनी भी और दूसरों की भी चिन्ता करने वाले होते हैं। चौथे प्रकार के मनुष्य जो न आत्मानुकम्पी है न परानुकम्पी—न अपनी ही चिन्ता करते हैं और न पर की ही। इसमें आज के साधू तीसरे प्रकार के होने चाहिए अर्थात् ये अपना हित भी साधें और दूसरों का भी। अपनी साधना के साथ साथ वे लोगों में आकर कुल कार्य करें। यह हमारी साधना के सर्वथा अनुकूल है।

आज यह हमारा मुख्य कार्य है—मानवता हीन मानव समाज में मानवता की पुनः प्रतिष्ठा करना। आज मानव ने सबसे बड़ी चीज जो खोई है, वह है—मानवता। इसलिए आज भी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उसे प्राप्त किया जाय। मुझे आश्चर्य होता है कि आज उन छोटी छोटी बातों के लिए भी हमें उपदेश करने पड़ते है, जो सहज ही जीवन में होनी चाहिए। एक मनुष्य दूसरे के साथ विश्वासघात करते नहीं सकुचाता। इससे बढ़कर और क्या बतन होगा। यह वर्तमान युग का जमाने का रंग है। पर हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। हमें कर्तव्य करना है। और उस खोई हुई मानवता को पुनः प्राप्त करना है। इसी कारण आज नीति की प्रतिष्ठा करना आवश्यक हो गया है। पर यह अध्यात्म की भूमि के बिना टिक नहीं सकती। बहुत से लोग स्वार्थ के लिए नीति का अवलंबन करते हैं। पर यह स्थायी नहीं होता। जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक नीति का अवलम्बन किया जाता है। और स्वार्थ साधना के बन्द होते ही नीति की साधना भी बन्द हो जाती है।

गांधी जी ने एक बार कहा था—अहिंसा मेरा व्यक्तिगत धर्म है। कांग्रेस ने उसे नीति के रूप में स्वीकार किया है। यह उसका धर्म नहीं है। इसी का यह परिणाम है कि आज गांधी जी के चले जाने के बाद कांग्रेस के वे व्यक्ति, जिनसे कुछ आशा थी, अहिंसा को भुला बैठे है। अगर कांग्रेस ने इस को धर्म के रूप में स्वीकार किया होता तो आज अहिंसा को इस प्रकार भुलाया नहीं जाता। पर वह केवल नीति

थी। और वह स्थायी कैसे हो सकती थी ?

व्यवहार शुद्धि के बिना आंतरिक शुद्धि स्थायी नहीं बन सकती। अतएव शास्त्रों में कहा है—"धम्मो शुद्धस्स चिट्ठई" धर्म शुद्ध अन्तः करण में स्थित होता है। किम्वदन्ती है, सिंहनी के दूध के लिए सोने की थाली आवश्यक है। उसी प्रकार नैतिक व्यवहार के लिए अध्यात्म की भूमिका की नितांत अपेक्षा है, अन्यथा वह टिक नहीं सकता।

यह कहा जा सकता है कि धर्म से आत्मा पवित्र बनती है या आत्मा में धर्म टिक सकता है ? क्योंकि धर्म को आत्म की शुद्धि का साधन माना गया है पर बिना आत्मा को पवित्र किये वह व्यक्ति में ठहरेगा कैसे ?

अतः अणुव्रत आन्दोलन कहता है कि आत्मा की शुद्धि करो। व्रत शुद्धि के साधन है। कुछ व्रत ग्रहण करो। वैसे आत्मशुद्धि और धर्म दो चीजें नहीं है। आत्मा की पूर्ण शुद्धि ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है।

केवल व्यवहार शुद्धि से दोषों की जड़ नहीं कटती। अतएव भगवान ने कहा है "अग्गंच मूलंच विगिंच धीरो" धीर पुरुष दोष के अग्र और मूल दोनों का उन्मूलन करें।

जैन दर्शन में दोष शमन के दो प्रकार बताए गये हैं। पहिला उपशम और दूसरा क्षपक। आठवें गुण स्थान से उठने वाला जीव जो मोह का शम नहीं करता, उपशम करता है। यह उपशम श्रेणी का आश्रय लेता है। उस श्रेणी से ग्यारहवें गुण स्थान तक चला जाता है। पर उसे वापिस नीचे गिरना पड़ता है। पर क्षपक श्रेणी से चढ़ने वाला जीव नीचे नहीं गिरता। वह सिद्धि के उन्नत शिखर पर पहुँच जाता है। उसी प्रकार धर्म से केवल व्यवहार शुद्धि के लिए पालन करने वाले दोषों का पूर्ण शमन नहीं कर सकते। अवसर आने पर वे दोष पुनः उद्बुद्ध हो जाते है। पर आन्तरिक शुद्धि से होने वाली व्यवहार शुद्धि स्थायी और सर्वांग होती है अतः धर्म को केवल व्यवहार शुद्धि के लिए करना रोग का सर्वनाशक उपाय नहीं है।

लोग पूछते है—इतने वर्ष हो गये, अनेकों ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का उपदेश किया। पर उसका फल क्या हुआ ? क्या अशांति संसार से मिट गई। पर सोचना है अगर अहिंसा ने कुछ नहीं किया तो हिंसा से भी आखिर कौनसी शान्ति स्थापित हो गई। वह भी तो हजारों वर्षों से चलती आ रही है। पर तत्व यह है कि जितने साधन हिंसा को मिले उन में से अगर उनका थोड़ा अंश भी अहिंसा को मिल जाता तो न जाने संसार में क्या से क्या हो जाता।

थोड़े बहुत साधन उपलब्ध हैं, पर उनमें भी आज सहयोग नहीं है। जितनी भी अहिंसक शक्तियाँ हैं वे आपस में मिलती नहीं। हिंसक शक्तियाँ बिना मिलाए आपस में मिल जाती हैं। जितने साधन आज अहिंसा को प्राप्त हैं, उतनों का समुचित उपयोग हो, तो भी बहुत काम किया जा सकता है। आज उनके मिलने की बड़ी आवश्यकता है।

अहिंसा का आचरण क्यों ?

प्रश्न है, अहिंसा का आचरण क्यों किया जाए ? उत्तर भी सीधा है—अभय बनने के लिए अहिंसा का आचरण करो। यद्यपि अहिंसा मनुष्य को अभय बनाती है, फिर भी सब जगह अभय होना अच्छा नहीं। इसलिए कहा गया है कि पाप से भय खाओ। जो पाप से डरता हो वही अहिंसा की पूर्ण साधना कर सकता है। शास्त्रों में कहा है—पाप से डरने वाला ही मृत्यु से मुक्त बनता है। अणुव्रतों की साधना अभय की ओर सफल प्रयास है। कुछ लोग आशंका भी करते है कि अणुव्रत नया तो है ही नही फिर चलने की क्या आवश्यकता हुई। मै पूछता हूँ संसार में आखिर नया क्या है ? आचार्य—हेमचन्द्र ने भगवान की स्तुति करते हुवे कहा है—

यथा स्थितं वस्तु दिशन्नधीश।
नताहृशंकौशलं माश्रितोऽसि।
तुरंग शृंगा ण्युपपादयद्भ्यो-
नमः परेभ्यो नव पंडितेभ्यः॥

सब कुछ अति प्राचीन काल से चला आ रहा है अतः व्रत की परम्परा भी पुरानी है। पर आज के युग में जब संसार अणुव्रत से भय भीत है, अणुव्रत की अत्यधिक आवश्यकता है। अणुव्रत अभय बनाता है। आप अपने मन से भय को निकाल दें तो संसार में कोई भय है ही नहीं। और यह व्रतों से ही पैदा की जा सकती है।

आज १ दिसम्बर १९५६ को प्रात: काल पंचमी समिति से निवृत्त होकर आचार्य श्री नार्थ एवेन्यू एम० पी० क्लब पधारे। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, श्री सावित्री देवी निगम आदि कई संसत्सदस्य आचार्य श्री को लेने आये। क्लब में पधारने पर श्री सावित्री देवी निगम ने आचार्य श्री का स्वागत किया और अणुव्रत आन्दोलन की भूरि भूरि प्रशंसा की।

वहाँ उपस्थित संसत्सदस्यों एवं प्रमुख नागरिकों के बीच आचार्य श्री ने मर्मस्पर्शी प्रवचन दिया।

प्रवचन के उपरान्त क्लब के मंत्री श्री केशव अय्यंगार ने आचार्य श्री का आभार मानते हुए कहा—आप हमें उपदेश देने पधारे हैं यह आपकी बड़ी कृपा है। बहुत से लोग आपके इस संयम मूलक आन्दोलन को महत्त्व नही देते। आज जब मैं लोकसभा की गैलरी में सदस्यों को आज के कार्यक्रम और अणुव्रत आन्दोलन की जानकारी दे रहा था तो बहुत से सदस्य कहने लगे—भला इस आन्दोलन से क्या होने वाला है। यह तो बालू से तेल निकालने जैसा प्रयास है। आज के युग में संयम के माध्यम से राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाना हास्यास्पद प्रतीत होता है। मैंने उन्हे समझाया कि संयम के माध्यम से ही सही हल निकलने वाला है। लोग भले ही आज इसके महत्व को न समझें। परन्तु यह बुनियादी काम है जिसका महत्व स्वीकार करना ही होगा।

विद्याध्ययन का लक्ष्य

वह ज्ञान अज्ञान है जो जीवन के अन्तरतम को छूता नहीं। वह विद्या अविद्या है जो अन्तर्वृत्तियों में परिशुद्धि नहीं लाती—ये हमारे भारतीय महर्षियों के वाक्य हैं, जिनमें प्रेरणा भरी है, ओज भरा है। मै बहुधा कहा करता हूँ कि विद्याध्ययन का लक्ष्य जीविकोपार्जन नहीं है। ऋषियों के शब्दों में "सा विद्या या विमुक्तये"। उसका लक्ष्य है "विमुक्ति" बुराइयों से छुटकारा, अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थान। पर बड़े खेद का विषय है कि जीवन का यह महान् लक्ष्य आज आँखों से ओझल होता जा रहा है। तभी तो किताबी पढ़ाई के लिहाज से शिक्षा का अधिक प्रचार होने के बावजूद भी अन्तर् चेतना की दृष्टि से उसमें कुछ भी विकास नहीं हो सका है।

हम आये दिन सुनते हैं, अमुक स्थान पर विद्यार्थियों ने उद्दण्डता की, उच्छृङ्खलता की, अनुशासनहीनता बरती। यह सब क्यों सारा वायुमंडल ही कुछ इस प्रकार का बना हुआ है। क्या घर में, क्या परिवार के इर्द गिर्द, वे ऐसा ही पाते हैं। आज संपूर्ण वातावरण में एक नया आलोक भरना होगा। विद्यार्थियों को अपने जीवन का सही मूल्य समझना होगा। अभिभावकों और अध्यापकों को भी यह समझना होगा कि विद्यार्थी राष्ट्र की सब से बड़ी संपत्ति है। उन्हें अभ्युत्थान और जागृति की ओर ले जाना सब का काम है। इसके लिये उन्हें स्वयं को अति जागरूक बनाना होगा।

प्रवचन का उपसंहार करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा—आज भौतिकवाद सर्वत्र प्रसार पाता जा रहा है। हिंसा से व्याकुलता और आतुरता आदि अशांतिकारी प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। यही कारण है कि

जीवन का महत्व आज बाहरी दिखावे में समाता जा रहा है। यदि अंतर जीवन का सच्चा संरक्षण हम चाहते हैं तो इसे रोकना होगा।

इसका सब से अधिक उपयोगी एक यही उपाय है कि बालकों को शुरू से अध्यात्म की शिक्षा दी जाय। फलतः वे बहिर्दृष्टि नहीं बनेंगे। बहिर्दृष्टि नही बनने का अर्थ है—आत्मोन्मुख बनना। जहाँ आत्मोन्मुखता है, वहाँ बुराइयाँ नहीं आतीं, कालुष्य नही पनपता। जीवनवृत्ति परिमार्जित हो, इसके लिये मै विद्यार्थियों, साथ-साथ अध्यापकों एवं अभिभावकों से भी कहना चाहूँगा कि वे अणुव्रत आंदोलन के नियमों को देखें, उन्हें आत्मसात् करें। विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप में ये पाँच नियम रखे गये है—

(१) मद्यपान नहीं करना।

(२) धूम्रपान नहीं करना।

(३) किसी भी तोड़ फोड़ मूलक हिंसात्मक प्रवृत्ति में भाग नहीं लेना।

(४) अवैधानिक तरीकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयास नहीं करना।

(५) रुपये आदि लेने का ठहराव कर वैवाहिक संबंध स्वीकार नहीं करना।

यह प्रवचन ५ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल नयी दिल्ली की अत्यन्त अनुशासित प्रमुख शिक्षण संस्था माडर्न हायर सेकन्डरी स्कूल में हुआ। इस विद्यालय मे एक हजार से अधिक छात्र-छात्राये पढती हैं।

श्रद्धा व आत्मनिष्ठा

"वितिगिच्छा समावण्णेणं अप्पाणेणं णो लहई समाहिं" संशयशील मनुष्य समाधि-शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। संशयशील को दूसरे शब्दों में हम मिथ्या भी कह सकते हैं। जो श्रद्धाशील होता है, उसे संशय नहीं होता। वह सम्यक्त्वी कहलाता है। इसके बीच भी एक अवस्था होती है 'सासादन सम्यक्त्व', पर उसकी स्थिति बहुत थोड़ी होती है।

प्राणी का स्वभाव है क्रिया करना। अगर क्रिया करेगा तो वह सम्यग् या मिथ्या अवश्य होगी। गीता में भी कहा है—

> अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति।
> नायं लोकोस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः॥ गीता ४-४०
> अश्रद्धाशील मनुष्य का विनाश हो जाता है।

प्रश्न उठता है आखिर श्रद्धा किसमें रखनी चाहिये। वैसे तो भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रतीकों में विश्वास करते हैं। कोई प्रतिमा में, कोई अग्नि में, कोई वृक्ष में, कोई आकाश में श्रद्धा करता है। इस प्रकार श्रद्धा के स्थान अनेक हो जाते हैं। पर श्रद्धा का आखिर आधार क्या है? यह सही है कि यह भी श्रद्धा ही है। पर वास्तव में श्रद्धा का मतलब है आस्तिक्य। यही इसका आधार है। आस्तिक्य यानी आत्मा, परमात्मा, देव, भगवान् और अपने आपका विश्वास। जो व्यक्ति अपने आपका "मैं हूँ" यह विश्वास कर लेगा तो वह अपने जैसे ही दूसरों के आस्तिक्य में भी विश्वास कर लेगा। जैसा मुझे दुःख होता है, वैसा औरों को भी होता है, यह बात भी उसकी समझ में आ जायगी। अतः वह किसी को भी कष्ट नहीं देगा।

भगवान् पर हमारी श्रद्धा होती है, अतः हम उनका स्मरण करते

हैं। पर उससे हमें क्या मिलने वाला है ? क्या भगवान् हमें कुछ देते हैं ? नहीं, भगवान् न तो हमें कुछ देते हैं और न हम कुछ उनसे पाते है। परन्तु उनके गुणों का स्मरण कर हम अपने आपको तदनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं। उनमें जो गुण है, उन्हे हम भी पा सकते हैं। इस प्रकार श्रद्धा के द्वारा हम अपना चौमुखी विकास कर सकते हैं। बहुधा श्रद्धेय का नाम लेकर निकल जाने पर कार्यसिद्धि होती है। इसमें श्रद्धेय की अपेक्षा स्वयं की निष्ठा का चमत्कार ही अधिक है।

इसी प्रकार कोई भी आन्दोलन बिना निष्ठा के सफल नहीं हो सकता। भला, जिसमें स्वयं की श्रद्धा नहीं, उसमें दूसरों की निष्ठा कैसे हो सकती है। अगर आन्दोलन में हमारी निष्ठा हुई तो आज भले ही उसकी आवाज को कोई न सुने, पर एक दिन अवश्य हमारी बात सुनी जायगी। भिक्षु स्वामी ने प्रारम्भ में जब तेरापंथ की नींव डाली, तब उनके पास कौन सुनने आता था ? वे अपने साधुओं को लेकर बैठ जाते और कहते "आओ प्रवचन करें"। साधु कहते—महाराज ! आपका प्रवचन सुनने के लिये कोई श्रावक तो है ही नहीं, आप किसको सुनायेंगे ? वे कहते, तुम्हे सुनायेंगे। एक बार नहीं, अनेक बार भिक्षु स्वामी ने ऐसा किया था और उसी दृढ़ निष्ठा का फल है कि आज उनकी बात सुनने वाले लोगों की भीड़ नहीं समाती। गाँधी जी भी कहा करते थे—"अगर तुम्हारी बात सुनने वाला कोई नहीं है तो तुम जंगल में जाकर निष्ठा-पूर्वक अपनी बात जोर जोर से कहो। वह अवश्य फल लायेगी।"

जब अणुव्रत आन्दोलन शुरू हुआ तो कौन जानता था कि वह इतना व्यापक बन जायगा। इतना ही नहीं, हमारे निकट रहने वाले लोग भी इसकी खिल्लियाँ उड़ाया करते थे। पर हमारी निष्ठा बलवती थी। उसका ही यह परिणाम है कि आन्दोलन प्रतिदिन आगे बढ़ रहा है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि हमने आज तक जितना किया है, उससे कई गुना ज्यादा और करना है। और इसके लिये मैं कार्यकर्ताओं से कहूँगा कि वे निष्ठापूर्वक काम करते रहें। अगर कार्यकर्ताओं ने निष्ठा-

पूर्वक काम किया तो मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयगा, जबकि सारा संसार हमारे कार्य को देखेगा।

आप अपने आपको कभी तुच्छ न समझें। साथ-साथ अभिमान भी न करें। यह कभी न सोचें कि हम क्या कर सकते हैं ? हमारी आत्मा में अनन्त शक्ति है, उसे विकसित करते चले, सब कुछ सम्भव है।

४ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल ठहरने के स्थान पर यह पहला प्रवचन था।

प्रथम प्रहर मे पंचमी से लौटते सयय आचार्य प्रवर थोडी देर 'डालमियाँ' की कोठी पर ठहरे। श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमियाँ ने श्रद्धापूर्वक सम्मान किया। धर्म प्रचार व प्रसार के विषय मे बातचीत हुई। स्थान पर वापस आने के बाद श्रीमती मदालसा देवी (धर्मपत्नी श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल) से थोड़ी देर बातचीत करने के बाद प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

प्रवचन के बाद कई व्यक्तियों ने आचार्य श्री से भेंट की। इधर हाँसी नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति 'मर्यादा महोत्सव' की अर्ज करने श्री चरणों मे उपस्थित हुए।

प्रवचन (५)

मानवधर्म

देहली में आये नौ दिन हो जाने के बाद भी इस बस्ती में मै आज पहली ही बार आया हूँ। यहाँ की खटपट में तो मनुष्य की आवाज ही नहीं सुनाई देती। इसीलिये आप लोग बोलने के लिये भौतिक साधन (लाउड स्पीकर) का उपयोग कर रहे हैं। यदि आप प्रकृति में रहते

तो इन भौतिक साधनों की कोई आवश्यकता नहीं होती। भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक जीवन को महत्व दिया जाता रहा है और इसीलिये हमें तो प्रकृति में ही रहना है। अतः लाउडस्पीकर का उपयोग नहीं करते। केवल बोलने में ही नहीं, हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रकृति का ही सहारा है और यही तो साधुत्व है। साधुत्व कोई वेष थोड़े ही है। प्रकृति में रहना ही वास्तव में साधना है और इसीलिये भारत में आज भी साधुओं की आवाज सुनी जाती है। हम अपनी साधना की दो बातें आपको भी सुना दें। साधना से हमें जो फल मिला है, उसे स्वार्थी बनकर अकेले ही नहीं खाये, दूसरे लोगों में भी बाँटें।

एक बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ—आप जो संसार में आनन्द मान रहे हैं, उसका आधार क्या है? हो सकता है, आपके पास जीवन है, पर आप सोचिये, इसका क्या भरोसा है। एक कवि ने कहा है—

> आयुर्वायुतर त्तरंगतरलं लग्नापदः सम्पदः,
> सर्वेऽपीन्द्रिय गोचराश्च चटुलाः संध्याभ्र रागादिवत्।
> मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमं,
> तत्किं वस्तु भवे भवे दिह मुदामालम्बनं यत् सताम्॥

यह आयु तो वायु की चंचल लहरों के समान अस्थिर है। देखिये, कल की ही घटना है—एक भाई मेरे पास आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर ने कहा है कि मैं आचार्य श्री से मिलना चाहता हूँ और आध घंटे बाद ही दूसरा भाई आता है और कहता है कि डा० अम्बेडकर तो चल बसे। तो इस प्रकार के अस्थिर जीवन का भरोसा कर आप आनन्द मना रहे हैं। इसमें क्या बुद्धिमानी है? इसी प्रकार जितनी भी धन सम्पत्ति है, उसके पीछे विपत्तियाँ लगी हुई है। इन्द्रियों के जितने विषय हैं, वे भी इन्द्रजाल के समान हैं। इनमें आनन्द मानकर क्या आप सचमुच ही धोखा नहीं खाते है? आप जो संसार में सुख मान रहे हैं, आखिर वह है क्या? हाँ यदि कोई वास्तविक सुख है तो हमें भी बताइये। हम भी उससे वंचित क्यों रहें? पर हजारों मील घूम आने के बाद और लाखों

लोगों से मिलकर भी मैंने तो इन सबमें कुछ भी सुख नहीं पाया। आप सोचते होंगे—धनवानो, करोड़पतियों को संसार में बड़ा सुख है। पर आप सच मानिये, उनकी स्थिति आज बड़ी चिन्तनीय है। उनको न तो सुख से खाने का समय है और न सोने का। मन में वे भी समझते है मगर फिर भी अपने को आनन्द में मानते हैं। बात कड़ी अवश्य है, पर सही है कि आज के लोगों की स्थिति ठीक उस कुत्ते जैसी है, जो भूखा रहकर भी केवल शाब्दिक सम्मान पाकर अपने को धन्य मानता है।

कथा इस प्रकार है—किसी धोबी के पास एक पालतू कुत्ता था। उसका नाम था 'सताला'। वह जब घर से घाट पर जाता तो धोबी, जो घाट पर रहता था, समझता—शायद वह घर से ही रोटी खाकर आया है और घर आता तो उसकी पत्नियाँ (धोबी के दो पत्नियाँ थीं) समझतीं—धोबी ने इसको रोटी डालदी होगी। इस प्रकार दोनों ही तरफ से उसे भूखा रहना पड़ता। वह थककर एकदम कृश हो गया। उसकी यह दशा देखकर दूसरे कुत्ते उससे कहने लगे—जब तुम्हें रोटी नही मिलती तो तुम यहाँ क्यों रहते हो? वह कहने लगता—भाई! यह तो सही है पर एक बात है, धोबी के दो पत्नियाँ है। वे जब आपस में लड़ती हैं तो एक कहती है—मै क्यों "तू सताने की औरत" इस प्रकार रोटी नहीं मिलने पर भी दो स्त्रियों का मै पति कहलाता हूँ। क्या यह कम गौरव की बात है?

इसी प्रकार आज लोग धन से सुख नही पाते पर उसकी प्रतिष्ठा से अपने को धन्य मानते है। यह है आज के लोगों की स्थिति। पर हमें प्रतिष्ठा का मूल्य बदलना होगा। प्रतिष्ठा धन की न होकर त्याग की होनी चाहिए। आज लोग जीने का स्तर ऊँचा होने के माने मानते हैं—भौतिक समृद्धियों का ज्यादा से ज्यादा होना। पर जीवन के स्तर के माने इससे भिन्न हैं। उसके ऊँचे होने के माने है—जिसका जीवन ज्यादा सत्यमय हो, अहिंसामय हो। आपको सोचना है कि आपको जीने का स्तर ऊँचा करना है वा जीवन का स्तर? हाँ, यह अवश्य है कि जीवन

के स्तर को ऊँचा उठाने में आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, पर आप उनसे घबराये नहीं। उसका आनन्द भी अपूर्व होगा। जीने के स्तर और जीवन के स्तर के भेद को आप उदाहरण से समझिये। यह जैन आगमों की घटना है—

इसुकार नामक राज की रानी अपने महलों के ऊपरी भाग में बैठी हुई थी। उसने देखा—शहर में सब जगह धूल उड़ रही है। पूछने पर पता लगा कि उनके पुरोहित—कुटुम्ब के सारे प्राणी अपनी समग्र धनराशि को छोड़कर दीक्षा लेने जा रहे हैं और राजा उस अपार धनराशि को अपने खजाने में मँगवा रहा है। वह तत्क्षण राजसभा में आई और राजा से कहने लगी—

"वंता सी पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसि ओ।
भाहणेण परिच्चत्तं, धणं आदा उमिच्छसि॥"

राजन्! वमन को खाने वाला व्यक्ति कभी प्रशंसित नहीं होता। ब्राह्मण (पुरोहित) द्वारा परित्यक्त धन को आप लोग लेना चाहते है?

रानी के इस उद्‌बोधन से राजा की आँखे खुल गईं। वह धन के द्वारा जीने के स्तर को उन्नत बनाना चाहता था पर रानी ने उसे जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने की प्रेरणा दी और आखिर में वह और रानी दोनों ही साधु-जीवन में प्रव्रजित हो गये।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि मानव धर्म का क्या मतलब होता है। आप अपने जीवन के स्तर को ऊँचा उठाये, यही मानव धर्म है।

६ दिसम्बर १९५६ की प्रात काल इस प्रवचन का आयोजन पहाडगंज मे वहाँ के निवासियों के विशेप अनुरोध पर किया गया था। प्रवचन से पहले मुनि श्री बुद्धमल जी और संसत्‌सदस्य काका श्री नरहरि विष्णु गाडगील ने भी अपने विचार प्रकट किये;

———

सच्ची प्रार्थना व उपासना

"परमात्मा की उपासना जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है । प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन आदि आदि उपासना के प्रकार है। लोग परमात्मा की उपासना करते हैं, आत्म-विकास के लिये नहीं, किन्तु भौतिक अभिसिद्धियों के लिये। परमात्मा को वे अपनी इच्छापूर्ति का साधन मानकर उनसे भौतिक सिद्धियाँ चाहते हैं। यह वंचना है, ईश्वर के साथ धोखा है । उपासना आत्मिक गुणों को विकसित करने के लिये करनी चाहिये। परमात्मा किसी को दुखी या सुखी नही बनाता । हम अपने पुरुषार्य से ही सव कुछ पाते हैं। पुरुषार्थ से ईश्वर बन सकते है, यह हमें नहीं भूलना चाहिये ।

आज लोग भूत-ग्रस्त हैं। कहा भी है—"चेतः प्रेतहृतो जहाति न भवप्रेमानुवन्धं मम"—चित्त में भूत का वास है। लोग स्वतः को भूलकर पीढ़ियों की वाते करते है, क्या यह पागलपन नहीं है। आकाश को अपने वाहों में पकड़ने का प्रयास करना बचपन नहो तो क्या है ? अपने हितों को गौणकर पीढ़ियों के हितों की वाते सोचना भूल है।

एक दिन एक योगी वादशाह सिकन्दर के पास आया। सिकन्दर ने उसका यथोचित सम्मान किया। योगी न पूछा—राजन् ! तुम क्या करना चाहते हो ?

सिकन्दर ने कहा—मै एक एक कर सारे देशों को जीतूंगा। विश्व में अपना साम्राज्य कायम करूँगा । धन-कुबेर बन कर मै विश्व की समस्त सुख-सुविधाओं के वीच जीवन के प्रत्येक क्षण को अपूर्व आनन्द से व्यतीत करूँगा। इतना कर लेने के वाद राज्य के झंझटों से छट कर आराम करूंगा

यह सुन योगी कुछ मुस्कराया। मुस्कराहट में छिपे रहस्य को सिकन्दर समझ न सका। उसने पूछा—योगिराज ! क्या मेरी बातों से आपको आश्चर्य हुआ है ? आप जानते हैं—बादशाह सिकन्दर जो कहता है, उसे पूरा भी करता है। मेरे भाग्य ने मुझे साथ दिया है। मै जो चाहता हूँ, वही होता है। आप अपनी मुस्कराहट का रहस्य मुझे समझाये।

योगी ने कहा—मै जानता हूँ, आप अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं, पर आपकी नादानी पर मुझे हँसी आती है कि जो कार्य आप बाद में करना चाहते है, वह अभी क्यों नहीं कर लेते। रहस्य सम्राट की समझ में आ गया।

वर्तमान में लोगों की यही दशा है। सिकन्दर जैसे मनोविचार प्रायः सुनते रहते हैं। क्या यह पागलपन नहीं है ? इससे छुटकारा पाने का एकमात्र साधन है—परमात्मा की उपासना।

आत्मा की उपासना परमात्मा की उपासना है। उपासना में श्रद्धा और हृदय होना चाहिये। जहाँ दिखावा होता है, वहाँ वंचना होती है। ऐसी उपासना फल नहीं लाती।

हम प्रवचन करते है या आप उसे सुनते है, यह भी साधना या उपासना का ही एक अंग है।

लोग अज्ञानवश कई बार यह पूछ बैठते है कि साधु उपदेश देने घर घर क्यों जाते है ? प्रश्न ठीक है। हम भिक्षा लेने घर घर जाते है तो उपदेश देने के लिये या जन-जीवन में नैतिक उत्थान के लिये घर घर जाये तो अनुचित कैसे हो सकता है ?

साधु समता के प्रतीक है। सभी वर्ग व जाति के प्राणी उनके लिये समान है। उनका उपदेश किसी देश या राष्ट्र विशेष के लिये नहीं होता। आचारांग सूत्र में कहा है—"जहा पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई, जहा तुच्छस्स कत्थई तहा पुण्णस्स कत्थई" साधु जिस प्रकार धन-कुवेरों को या भाग्यशाली व्यक्तियों को उपदेश करते है, उसी प्रकार टूटी-फूटी

झोंपड़ियों में रहने वाले निर्धनों को भी उपदेश देते हैं। यह समता की उत्कृष्ट साधना है।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा—योग क्या है ? कृष्ण ने कहा— "समत्वं योग उच्यते-समता का आचरण योग है।" आगे उन्होंने बताया—"योगः कर्मसु कौशलम्"—अपने कर्मों में कुशलता योग है।" व्यक्ति खाता है, पीता है, उठता है, बैठता है, चलता है, बोलता है, इन सभी कर्मों में अपनी मर्यादा को जानने व तदनुकूल बर्ताव करने वाला वास्तव में योगी है। केवल खाना या न खाना ही योग नहीं है; किन्तु खाकर या भूखा रहकर भी अपने में विकारों को न आने देना योग है। "समो निन्दा पसंसासु तहा माणाव माणओ"—यह योग की कसौटी है।

योग उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन है। स्वरूप का चिन्तन योग की विशिष्ट क्रिया है। प्रत्येक को यह सोचना चाहिये—"कोहं कस्त्वं कुल आयात:"—मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ?" इसका चिन्तन पवित्रता लाता है। परन्तु आज के लोग यह नहीं सोचते। वे ईश्वर, स्वर्ग, नरक की बातों में उलझ कर अपने आपको भूल से रहे हैं। इसी आशय को स्पष्ट करते हुये तेरा पंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु ने कहा—आपरो भाषा रो आप अजाण छै, काचरी ओरी में श्वान जेम"— एक काच की कोठरी है। चारों ओर काच ही काच लगे हुये हैं। कुत्ते को उस कमरे में छोड़ दिया तो अपनी परछाईं देखकर यह भूल जाता है कि काच में जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, वह मै ही हूँ। वह यह सोचता है कि वह कोई दूसरा कुत्ता है। यह सोचकर वह उस पर झपटता है। कई बार प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं पकड़ सकता और खुद लहूलुहान हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य को अपने आपका ध्यान नहीं हैं। वह अपने मूल स्वरूप को भूलकर इधर-उधर भटक रहा है।

१० दिसम्बर १९५६ की प्रात.काल यह प्रवचन नयी दिल्ली मे १९, बारा खम्भा रोड पर निवास स्थान पर हुआ।

जीवन की साधना

प्रातःकालीन प्रवचन में आचार्य श्री ने कहा—"सूत्रों में कहा गया है—"आणाऐ मामगं धम्मं" आज्ञा में मेरा धर्म है। प्रश्न होता है कि क्या 'आज्ञा' और 'मेरा धर्म' ये दो तत्व हैं या एक ही तत्व के दो पहलू ? इसका समाधान है कि दोनों एक है, दो नहीं।

साधक साधना करता है। साधना का आधार आज्ञा है, वही उसका धर्म है। जहाँ आज्ञा है वहाँ "मेरा धर्म" (आत्म धर्म) है और जहाँ "मेरा धर्म" है वहीं आज्ञा है, ऐसा अन्वय बनता है।

आज्ञा हम किसे मानें ? इसका समाधान करते हुये कहा है—"अर्हदुपदेश आज्ञा"—वीतराग के आत्म-शुद्धि-उपायभूत प्रवचन को आज्ञा कहते हैं।

साधक ने भगवान् से पूछा—प्रभो साधना क्या है ? भगवान ने कहा—"जयं चरे जयं चिट्ठे मासे जयं सये। जयं भुंजं तो भासंतो, पाव कम्मं न बंधई।" (दशवैकालिक सूत्र-४) यत्ना से चलो, यत्ना से बैठो, यत्नापूर्वक शयन करो, यत्ना से बोलो, आहार-विहार तथा विचार यत्ना पूर्वक करो—यही साधना है।"

खाते, पीते, चलते सब हैं, किन्तु खाने, पीने व चलने की कला नहीं जानते। कला के बिना साधना नहीं आती। साधना के बिना आनन्द नहीं आता।

शरीर धर्म का साधन है। खाये बिना शरीर नहीं चलता। जीवन-निर्वाह के लिये भोजन आवश्यक है। मोक्ष की साधना भी शरीर के अभाव में नही होती। तो क्या खाना मात्र साधना है ? नहीं, भोजन करना साधना है भी और नहीं भी।

जो भोजन केवल शरीर पुष्टि के लिये किया जाता है, वह साधना

नहीं। संयम की पुष्टि के लिये खाना साधना है। इसीलिये खाना चाहिये और नहीं भी। शरीर जब तक मोक्ष साधना में साधक बने, तब तक भोजन करना साधना है और जब शरीर साधक नहीं बनता तब शरीर छोड़ना ही उत्कृष्ट साधना है। घोर तपस्वी मुनि सुमतिचन्द्र जी का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है।

अभी दो महीने की बात है। मुनि सुमतिचन्द्र जी मेरे पास आये। हाथ जोड़कर कहने लगे—"गुरुदेव मैं कई महीनों से तपस्या कर रहा हूँ। तपस्या से जो आनन्द और समाधि का अनुभव होता है, वह वाणी का विषय नही बन सकता, केवल अनुभवगम्य है। मैं यह चाहता था कि अन्तिम समय तक इसी प्रकार तपस्या करता रहूँ और जीवन का आनन्द लूटता रहूँ। किन्तु कुछ दिनों से भावना बदली है। इसका भी कारण है। जिस शरीर को मै साधना में लगाये रखने के लिये कुछ आहार देता हूँ, वह उसेपचाता नहीं, खाते ही बाहर फेंक देता है। यह देख मुझे ग्लानि हो गई है। अब मै चाहता हूँ कि जब शरीर भी मेरा साथ छोड़ रहा है तो क्यों नही मै इससे पहले सम्हल कर अपना कल्याण करूँ। भोजन मुझे नहीं भाता। साधना में शरीर वाधक वन रहा है। मैं इसे छोड़ना चाहता हूँ। कृपा कर आप मेरी मदद करे" अस्तु मुनि सुमतिचन्द्रजी ने वीरत्व दिखाया, वह इस आणविक युग को चुनौती है। किस प्रकार एक वीर साधक अपने बाधक तत्वों से लोहा ले सकता है, यह हमें इस ज्वलन्त घटना से सीखना है।

खाने के तीन उद्देश्य हैं

(१) स्वाद के लिये खाना, (२)जीने के लिये खाना और (३) संयम निर्वाह के लिये खाना। स्वाद के लिये खाना अनैतिक है, जीने के लिये खाना आवश्यकता है और संयम के लिये खाना साधना है, तपस्या है। इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ पात्र-दान की महिमा बताता है। दान देने वाला धर्मी तभी बनता है, जबकि लेने वाले का संयम पुष्ट होता हो। दी जाने

वाली वस्तु शुद्ध हो, देने वाला शुद्ध हो, तथा लेने वाला संयमी हो—यही पात्र-दान है ।

अपने हिस्से का देना साधुओं की साधना का उपष्टम्भ होता है। जैसे तैसे देना धर्म नहीं, अशुद्ध देना धर्म है । न देने से शुद्ध देना ज्यादा हानिकारक है ।

साधुओं के भोजन तथा तपस्या साधना के दो प्रकार हैं—भोजन संयम पुष्टि का कारण बनता है और तपस्या विशेष निर्जरा के हेतु। साधु नगर में रहे या अरण्य में, साधना ही उसका जीवन है। अरण्यवास में मौन रहना भी एक साधना का प्रकार है और नगर में रहकर उपदेश देना भी साधना का ही प्रकार है। मेरा अनुभव है कि अरण्यवास की साधना से भी नगर में रहकर पवित्र रहना अति कठिन है। सभी संयोगों में मन को स्थिर रखना बहुत कठिन है । आज स्थूलिभद्र बनने की आवश्यकता नहीं । आज आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति आदर्शों को निभाये। वास्तव में वह कठोर ब्रह्मचारी है, जो अपने घर में रहकर भी ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करे। किन्तु सब कोई गृहस्थाश्रम में रहकर ही ब्रह्मचर्य का पालन करे, यह कोई आवश्यक नहीं। आत्म-साधना के प्रत्येक प्रकार में वीतराग की आज्ञा है। प्रश्न हो सकता है कि यदि वीतराग विपरीत आज्ञा दे दे तो साधक को क्या करना चाहिये ? इसका समाधान यह है कि व्यक्ति झूठ बोलता नहीं, बोला जाता है । असत्य के मूल भूत कारण हैं—क्रोध, लोभ, भय और हास्य। इन्हीं के कारण व्यक्ति असत्य बोलता है। वीतराग में इनका अभाव होता है। उसमें इतनी पवित्रता आ जाती है कि असत्य का आचरण होता ही नहीं, इसीलिये उसकी वाणी आदर्श बनाती है।

शास्त्रों में कहा है—वीतराग की वाणी में संदेह करने वाला मिथ्यात्व को प्राप्त होता है। संदेहशील बन जाता है, इसीलिये श्रद्धा को दृढ़ करने के लिये यह मंत्र उपयोगी होगा कि—"तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं"—यही सत्य है ज वीतराग द्वारा कहा गया है ।

श्रद्धा से व्यक्ति कितना ऊँचा हो जाता है, यह आचार्य भिक्षु की जीवनी से स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी के लिये जिनवाणी ही सब कुछ थी। उनकी प्रत्येक रचना में, कथा में जिनवाणी की पुट है। यही श्रद्धा उनकी जीवन-घटनाओं के कण कण से बोल रही है।

१२ दिसम्बर १६५६ का प्रातःकालीन प्रवचन।

प्रवचन (८)

वीरता की कसौटी

"पणया वीरा महावीहीं"—महापथ पर चलने वाले वीर होते है। शारीरिक बल वीरता का लक्षण नहीं, वह तो पशु में भी होता है। वीरता की कसौटी है—आत्मबल। यदि यह मानदण्ड न मानें तो डाकू, आततायी, सिंह बैल, कसाई आदि भी वीर की कोटि मे आजाते हैं। वे शारीरिक शक्ति की दृष्टि से बलवान हो सकते हैं, किन्तु वीर नहीं। जब शारीरिक बल के साथ सहिष्णुता का गुण जुड़ता है, तब वीरता आ जाती है।

भगवान महावीर अनन्त बली थे। अपनी कनिष्ठिका से मेरु को कंपित कर देने की शक्ति उनमें थी। उनके शरीर का संहनन "वज्र ऋषभ नाराच" था। संस्थान समचतुरस था। इतने पर भी वे महावीर नहीं कहलाए। जब वे संसार को छोड़ अकिंचन बने, दुःसह परिषहों को समभाव से सहने की जब उनमें क्षमता आई, तब देवों ने उन्हें "महावीर" कहा। केवल शरीर के बल की अपेक्षा से बनते तो कभी के वीर बन जाते।

कष्टो को समभाव से सहना वीरता है। कष्ट सहन का अर्थ केवल शारीरिक कष्ट सहन से ही नहीं, किन्तु मानसिक संक्लेष को धैर्यपूर्वक

सहना भी है। मानसिक संक्लेश के समय मनके संतुलन को खो देना पहले दर्जे की कायरता है। इसीलिए कहा है—

"सहनशील बन वीर बनेंगे, विश्वमैत्री का सबक सुनेंगे।
पशु बल को प्रश्रय नही देंगे, 'तुलसी धार्मिकता पनपायेंस',

सहनशील बनना वीरताकी ओर बढ़ना है। आचार्य भिक्षु ने हमारे सामने सहनशीलता का महान आदर्श रखा। आज हम उसी आदर्श पर चलते है इसीलिए हमें विरोध विनोद सा लगता है। हमारी सफलता का मूल यही है। यदि विरोधों को हम धैर्यपूर्वक नही सहते तो कभी के खत्म हो गए होते। हमारे विरोधी बन्धुओं ने हमारे प्रति क्या नहीं किया। यदि मै विरोध का इतिहास बताऊँ, तो काफी समय लग जायेगा। थोड़े में ही समझे कि विरोध हुआ है और आज भी होता है उससे घबराना नही चाहिए।

वीर का तीसरा गुण है—परमार्थ-वृत्ति। स्वार्थी को भय रहता है। भय कायरता है।

फलित यह हुआ कि (१) शारीरिक बल (२) सहनशीलता (३) पारमार्थिकता—इन तीनों के योग से व्यक्ति वीर बनता है और इन्हीं से साध्य की प्राप्ति होती है।

कुमार गजसुकुमाल "महा पथ" की ओर जाना चाहते थे। मन संसार से ऊब चुका था। दीक्षा ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये। आज्ञा ले श्मशान की ओर चल पड़े। भीषण परिषह सामने आए। समता से सहन कर नश्वर शरीर को छोड़ चल बसे। यह विशेष साधना थी। महाव्रतों का पालन था। संयत अवस्था में भी एक विशेष पड़िमा का ग्रहण था।

आज इतनी कठोर साधना होती नहीं। अणुव्रतों की साधना भी इसी ओर सही कदम है। व्रतों की साधना कष्टमय होती है। अपनी वृत्तियों का निग्रह करना पड़ता है। किन्तु यह सीधा मार्ग है।

१८ दिसम्बर सन् १९५६ की प्रातः काल नया बाजार में।

धर्म का रूप

धर्म के दो प्रकार है—(१) आचारात्मक धर्म (२) विचारात्मक धर्म। दोनों की पूर्णता ही जीवन को चमक दे सकती है।

विचारात्मक धर्म के लक्षण है—

(१) विचारों में आग्रह हीनता

(२) दूसरों के विचार जानने में सहिष्णुता

(३) भावों में पवित्रता

आचारात्मक धर्म के लक्षण है—

(१) आचार उच्च, निर्मल व पवित्र हो।

(२) व्यवहार शुद्ध हो।

(३) सत्य में निष्ठा हो, अहिंसा की साधना हो।

जो व्यक्ति कथनी और करनी में समान रहता है, वही सच्चा साधक है। जैन धर्म साधना का मार्ग है। इसका तत्व ज्ञान गम्भीर गहन है। फिर भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

१६ दिसम्वर १६५६ को इस प्रवचन के लिये आचार्य श्री सुवह को नया वाजार से मिनर्वा विशेप रूप से पधारे। प्रवचन के प्रारम्भ मे आचार्य श्री ने सरल शब्दों मे नयवाद, प्रमाणवाद, तथा स्याद्वाद का सुन्दर विवेचन किया। प्रवचन के वाद श्रीमती सुचेता कृपलानी एम० पी० से वहुत देर तक चर्चा वार्ता हुई।

मेधावी कौन ?

आचारांग सूत्र में एक प्रसंग आता है—शिष्य पूछता है—मेधावी कौन ? आजकल साधारणतया जो पढ़ालिखा है, वही मेधावी माना जाता है, किन्तु यह अर्थ सही नहीं है। संस्कृत कोष में "मेधा" बुद्धि का पर्याय-वाची शब्द है। किन्तु आगे भेद-प्रभेदों में ऐसा कहा गया है कि—सा मेधा धारणक्षमा—वही बुद्धि मेधा है जो धारण करने में समर्थ है। सुनकर धारण करने वाला मेधावी है। यही इसकी सही परिभाषा है।

यह कोई बात नहीं कि पढ़े-लिखे ही मेधावी होते है, किन्तु आज तो पढ़े लिखे भी ठोठ (अबुद्धिशील) बहुत मिलते है। उनमें पढ़ाई सिर्फ भार स्वरूप होती है। जैसे कहा—"यथा खरश्चन्दन भारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य"—जिस प्रकार गधे को चन्दन का बोझ भी बोझ स्वरूप ही लगता है, वह उसका आनन्द नहीं ले सकता। उसी प्रकार "पढ़े-लिखे" भी पढ़ाई को भार स्वरूप ही लादे फिरते हैं, विद्या का आनन्द नहीं लूट सकते।

विद्या किसको दी जाय ? इसका भी विवेक रखना आवश्यक है। जैसे-तैसे या जिस किसी को दी जाने वाली विद्या फल नहीं लाती। उपनिषदों में एक सुन्दर प्रसंग आया है :—

एक बार विद्या ब्राह्मण के पास आई और उससे प्रार्थना करने लगी—हे भू-देव मेरी रक्षा करे। मै आपकी निधि हूँ। मुझे ऐसे व्यक्ति को कभी न दे जो (१) मत्सरी-ईर्ष्यालु है, (२) कुटिल है और (३) प्रमादी है। कारण कि इनके पास जाने से मेरा वीर्य-बल नष्ट हो जाता है। वे मेरा दुरुपयोग करते है। मत्सरी सदा छिद्रान्वेषी बना रहता है। ऋजुता के बिना विद्या फल नहीं लाती। कुटिल और मायावी अपने लक्ष्य में सफल

नहीं होते। वे "विद्या विवादाय" को मानकर चलते हैं। इससे उनमें अभिमान आ जाता है। अभिमान ज्ञान का अजीर्ण है। वह अहित के लिये होता है। प्रमादी विद्या का ठीक प्रयोग नहीं कर सकता। उपयुक्त प्रयोग के अभाव में विद्या की कार्यजा शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः मुझे आप ऐसे व्यक्ति को दे जो ईर्ष्या से रहित है, जो ऋजु है और जो अप्रमादी है, ताकि मै कुछ क्रियाशील बन सकूँ, मेरा वीर्य प्रकट हो सके।

यह कितना सुन्दर प्रसंग है। विद्या के साथ उपर्युक्त गुण आते हैं। तब व्यक्ति मेधावी कहलाता है। जैन सूत्रों में मेधावी की परिभाषा करते हुये कहा है—"सड्ढी आणाए मेधावी"—जो आज्ञा में श्रद्धावान् है, वह मेधावी है। यहाँ आज्ञा और श्रद्धा ये दो बाते कही गई हैं। इन्हें समझना अत्यावश्यक है।

आप्तवाणी या आप्तोपदेश को आज्ञा कहा गया है। जिस उपदेश या प्रवचन से आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रवृत्ति होती है, वह आज्ञा है। आज्ञा की भी अपनी सीमा है। प्रत्येक व्यक्ति की आज्ञा, आज्ञा नहीं होती। उन्हीं की वाणी या उपदेश आज्ञा है, जो आप्त हैं। आप्त की व्याख्या करते हुए कहा—"जहा वाई तहा कारी"—जो यथार्थवादी है तथा तदनुसार करने वाला है, वही आप्त है। तीर्थंकर, गणधर, चवदह पूर्वधर, मनः पर्यवज्ञानी तथा विशिष्ट अवधिज्ञानी आप्त कहे जाते है। वे कहीं स्खलित होते ही नही, ऐसा मै नही कहता। स्खलित होने पर भी वे अपनी भूल समझ जाते हैं तथा उसका प्रायश्चित्त कर शुद्ध बन जाते जाते है। अतः वे आप्त ही है।

श्रद्धा और तर्क दो है। श्रद्धा में तर्क नहीं होना चाहिये। तर्क दिमागी द्वन्द्व है। उससे सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। वह तो केवल उलझाने में समर्थ है। जहाँ तर्क केवल जिज्ञासा के रूप में होता है, वहाँ श्रद्धा को उससे बल मिलता है, विकास होता है। "तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं"—यह श्रद्धा का उत्कर्ष है। इसमें तर्क नहीं होता। तर्क आते ही श्रद्धा डगमगा जाती है।

मेधावी वह है, जिसकी रग-रग में श्रद्धा के कण उछलते हैं। तर्क उसे उलझा नहीं सकता, आशंका उसे डिगा नहीं सकती।

२१ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल काठोतिया भवन सब्जीमण्डी में प्रवचन।

प्रवचन (११)

आत्मगवेषणा का महत्व

मनुष्य भौतिक गवेषणा में कितना भी क्यों न बढ़ जाय, वह जीवन के सही लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में कुछ नहीं कर सकेगा, जब तक कि वह आत्म-गवेषणा की ओर उन्मुख नहीं होगा। जैसा भारतीय महर्षियों ने कहा है—जिसने आत्मा को नहीं जाना, अपने आप की परख नहीं की, उसने कुछ नहीं जाना। सब कुछ जानकर भी वह अज्ञानी है। भारतीय तत्त्व-दर्शन में उस विद्या को अविद्या कहा है, उस ज्ञान को अज्ञान कहा है, जहाँ आत्मा को पवित्र बना संयम की ओर नहीं लगाया जाता। इसीलिये मैं आपलोगों से कहना चाहूँगा कि आप अपने में अन्तर्मुखी दृष्टि पैदा करें। उससे पराङ्मुख होने की न सोचें। केवल बहिर्पक्ष में रचे-पचे रहने से कुछ नहीं बनेगा।

आज स्कूलों, कालेजों, युनीवर्सिटियों की दिनों दिन वृद्धि हो रही है। विभिन्न विषयों पर बड़े-बड़े गवेषणा-केन्द्र काम कर रहे हैं, पर आत्म-गवेषणा की ओर उपेक्षा सी हो रही है। यह भूल है। इसीलिये सत्य, शौर्य, शील और नीति आदि मानवीय गुण बढ़ने के बजाय घट रहे हैं। वह जीवन क्या जीवन कहा जाय, जो असत्य, चौर्य और अशील

से जर्जर है। वह कैसा जीवन है ? वह तो केवल हाड़-मांस का लोथडा है।

२६ दिसम्बर १९५६ की दोपहर को ३ बजे आचार्य श्री के इस प्रवचन की व्यवस्था श्रीरामइण्डस्ट्रियल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे विशेष रूप से की गयी थी।

इन्स्टीट्यूट का पुस्तकालय भवन अधिकारियो व कार्यकर्ताओं से खचाखच भरा था। आचार्य श्री के पधारने पर इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डा० टी० एन० दारूवाला का स्वागत भाषण हुआ।

कार्यकर्ताओ के अनुरोध पर आचार्य श्री ने गवेषणाशाला के कई स्थानों का निरीक्षण किया। लोहे के काट से बनी हुई रुई भी देखी और कुछ जाँच कर साथ भी लाये।

प्रवचन (१२)

आत्मविस्मृति का दुष्परिणाम

आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में कहा—किसी के प्रति शत्रुभाव न रखना, किसी का बुरा न चाहना और न अपनी ओर से किसी के प्रति प्रतिकूल आचरण करना अहिंसा है। यह मैत्री और बन्धुत्व का मूल है। अणुबम और उद्‌जनबम की विभीषिका से संत्रस्त मानव के लिये यही एक मात्र त्राण है। अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है। इसके लिये बहुत बड़े आत्मबल और धीरज की अपेक्षा है। हिंसा और प्रतिशोध के दुर्भावों से अभिशप्त मानवता के लिये यही वह मार्ग है, जो उसे शान्ति की राह पर ले जा सकता है। अणुव्रत आन्दोलन

यही तो सिखाता है कि किसी के प्रति आक्रांता मत बनो, निरपराध को मत सताओ, अर्थ लिप्सा और लोभ के भयावह तूफानों में अपना संतुलन न बिगाड़ो। धन जीवन का साध्य नहीं है। उसके पीछे सत्य-निष्ठा और सदाचरण को मत छोड़ो।

आज के मानव की सबसे बड़ी भूख यह है कि वह नई-नई बातों को जानने, खोजने और समझने की कोशिश करता है, पर वह अपने आपको भूल जाता है। आत्मा अनन्त शक्तियों और सुखों का स्रोत है, जिसे पहचानने की वह जरा भी चिन्ता नहीं करता।

अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति को आत्मोन्मुख बनाना चाहता है। उसका अर्थ है—जीवन में समाई बहिर्मुखता का परिहार और अन्तर्मुखता का संचार। यदि ऐसा हुआ तो अर्थ-लोलुपता और महत्वाकांक्षा से जन्य काला बाजार, धोखा, विश्वासघात और रिश्वत जैसी अनैतिक और अनाचार मयी प्रवृत्तियाँ स्वतः उन्मूलित हो जाएँगी। मै पुनः आप लोगों से यही कहना चाहूँगा कि अणुव्रत आन्दोलन जन-जन को आत्मोन्मुख बनाने का आन्दोलन है।

अन्त में आपने चुनावों में अनैतिकता और अनुचित प्रवृत्तियों के परिहार के लिये उद्बोधित नियमों की विस्तृत व्याख्या की।"

५ जनवरी १९५७ को प्रातःकालीन प्रवचन सदर बाजार में हुआ। आहार-पानी से निवृत्त हो आचार्य श्री दोपहर में १ बजे ओल्ड सैक्रेटरीएट के विशाल भवन में पधारे, जहाँ कि प्रवचन की विशेष व्यवस्था की गई थी। दिल्ली राज्य के चीफ कमिश्नर श्री ए० डी० पंडित ने आचार्य श्री का स्वागत किया। आचार्य प्रवर चीफ कमिश्नर के साथ असेम्बली हॉल में पधारे। चीफ कमिश्नर श्री ए० डी० पंडित ने आचार्य श्री का अभिनन्दन करते हुये कहा—

जीवन-व्यवहार की छोटी-छोटी बातों पर हमें गौर करना होगा। उनमें ईमानदारी और सचाई का बहुत बड़ा मूल्य है। यही वे बातें हैं, जिनसे मनुष्य का चरित्र ऊँचा उठता है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा

प्रवर्तित एवं संचालित अणुव्रत आन्दोलन जीवन-व्यवहार में शुद्धि और चरित्र में ऊँचापन लाना चाहता है। पूजा आदि परम्पराओं का पालन मात्र धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ है—नैतिक आचरण। आज जहां हमारे देश में पंचवर्षीय योजना के रूप में सामाजिक प्रगति का काम चल रहा है, वहाँ नैतिक प्रगति की भी बहुत बड़ी जरूरत है। उसके बिना हमारा काम पूरा नही होगा। किसी भी देश में नीतिमान् और चरित्रवान् लोगों की आवश्यकता होती ही है। हम अपना चरित्र सुधारेंगे तो आर्थिक सुधार पर भी इसका असर पड़ेगा। आचार्य जी बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, उनके कार्य में हमें सहयोग देना चाहिये।

प्रवचन के बाद प्रो० एम० कृष्णमूर्ति ने अंग्रेजी मे अणुव्रत आन्दोलन का सक्षिप्त परिचय दिया। श्री गोपीनाथ अमन, अध्यक्ष दिल्ली राज्य सलाहकार समिति के द्वारा आभार प्रदर्शन करने के बाद आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (पिलानी में) (१३)

ऋषि प्रधान देश

लाखों योद्धाओं को जीतना सहज है पर अपनी एक आत्मा पर विजय पाना मुश्किल है। जिसने अपनी आत्मा को जीत लिया है अथवा भवभ्रमण में डालने वाले रागद्वेष आदि आत्म-शत्रुओं को जिसने क्षीण कर दिया है, वह वास्तव में विश्व विजेता है। वह चाहे जिन, विष्णु या बुद्ध किसी भी नाम से कहलाए, उस परम पुनीत आत्मा को हमारा नमस्कार है।

पिलानी में आने का मेरा यह पहला ही अवसर है। जब मैं राज-

स्थान में पर्यटन करता था तो सुना करता था कि पिलानी विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। बहुत से श्रावक मुझे यहाँ आने को प्रेरित भी करते थे। पर मैं ना आ सका। अब की बार दिल्ली से लौटते हुए मैंने सोचा कि पिलानी भी जाना चाहिये और इसलिये थोड़ा चक्कर खाकर भी यहाँ आना तय कर लिया। आज पिलानी में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जैसी कि विद्या केन्द्रों में जाकर मुझे हमेशा हुआ करती है।

इस प्रथम प्रसंग पर अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि भारतीय संस्कृति अपने ढंग की अनूठी है, यहाँ आत्म-साधना और त्याग का महत्व रहा है। इसलिये जहाँ एक ओर इसे कृषि प्रधान देश कहा जाता है वहाँ मैं इसको ऋषि प्रधान देश कहता हूँ। यह ऋषियों, ज्ञानियों, और तपःपूत साधकों का देश रहा है परन्तु खेद का विषय है कि आज तप— जीवन शोधन की परंपरा शिथिल होती जा रही हैं। जीवन दायिनी ऋषिवाणी आज ह्रासोन्मुख है। फलतः जीवन सदाचरण और सत् चर्या से सूना हुआ जा रहा है। सांस्कृतिक परंपराएँ डगमगा रही हैं। आज भारतीयों को जगाना है। अपने अस्त-व्यस्त चारित्र्य जीवन और डगमगाती सांस्कृतिक परंपराओं को सहारा देना है। वह सहारा एक मात्र धर्म है। मैं उसे संप्रदाय, जाति और वर्ग भेद से नहीं बाँधता। मेरी निगाह में धर्म वह है जो विश्व मैत्री और विश्व बंधुत्व की सुदृढ़ भित्ति पर अवलंबित है, जो सत्य और अहिंसा के विशाल खंभों पर टिका है, जो निर्धन, धनवान और सबल, दुर्बल के भेद से अछूता है। जो शांति का स्रोत और करुणा का निकेतन है। मैं चाहूँगा, आज का भारतीय उस व्यापक और विश्व जनीन धर्म से अपने को अनुप्राणित करे। विद्यार्थी जीवन से ही इन्हीं सद्वृत्तियों की ओर झुकाव हो तो कितना अच्छा हो। विद्यार्थियों में विनय, विवेक और आचार की मैं बहुत बड़ी आवश्यकता समझता हूँ। मुझे आशा है विद्यार्थी इस ओर आगे बढ़ेंगे।"

यह प्रवचन पिलानी के बिड़ला कालेज में सबसे पहला था। दिल्ली से सरदार शहर को लौटते हुए आचार्य श्री १६ जनवरी १९५७ को

दोपहर १२ वजे 'मोखा' से ४ मील का विहार करके राजस्थान के सुप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र पिलानी पधारे।

मार्ग मे सेठ जुगलकिशोर जी विड़ला तथा विडला विद्या विहार के कुलपति श्री शुकदेव जी पाडे आदि कई सज्जन एक मील के करीव अगवानी तथा अभिनन्दन करने आये। यहाँ सवसे पहला कार्य-क्रम विडला हाई स्कूल मे 'स्वागत समारोह' तथा विद्यार्थी सम्मेलन का सम्मिलित आयोजन था। विशाल हॉल विद्यार्थियो और नागरिको से भरा था। आचार्य श्री के हॉल मे पधारने पर सवने वड़ी शाति से प्रणाम और अभिवादन किया।

सेठ जुगलकिशोरजी विडला ने अतिविनम्र और श्रद्धायुक्त शब्दों में आचार्य श्री का अभिनन्दन किया।

मुनि श्री नगराजजी ने छात्रों को आचार्य श्री का तथा उनके सान्निध्य में चलने वाले कार्यक्रमो का परिचय दिया। उसके वाद आचार्य श्री का प्रभावशाली प्रवचन हुआ।

प्रवचन (१४)

विद्यार्थी जीवन का महत्व

भववीजाङ्कुर जनना रागाद्याः क्षयमुनागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती, जव मै अपने को विद्यार्थियो के वीच पाता हूँ। आज इन छोटे-छोटे खिले हुए फूलों को सम्मुख देखकर सचमुच मुझे वहुत हर्ष है। हम लोग शोधक है, हमें गन्दगी पसन्द नहीं, हम सफाई चाहते हैं। अवसर ऐसा होता है कि हमें कीचड़ से भरे हुए

वस्त्र धोने पड़ते हैं। अच्छा हो कि वे उस रूप में मैले ही न किये जाएँ। हमें मूल रूप में ही मिलें और हम उन्हें संस्कारित कर दें। मलिन को पुनः शुद्ध करने में बड़ी कठिनाई होती है और उन्हें सुधारने में बहुत सा समय खर्च हो जाता है। किन्तु हम देखते है, बच्चों के अभिभावक इस विषय में सतर्क नहीं रहते। मुझे खुशी है कि प्रस्तुत संस्था में बालकों को नैतिक दृष्टि से अच्छे साँचे में ढाला जा रहा है। बच्चों के शांत वातावरण को देखकर मुझे लगा कि वे काफी संयत बनाये जा रहे हैं। राजस्थानी कहावत है—"गाँव की साख भरे बाड़ा", गांव कैसा है, इसकी साक्षी ग्रामोपकंठ में बने बाड़े ही दे देते है।

मै मानता हूँ कि प्रत्येक को विद्यार्थी बने रहना चाहिये। जो विद्यार्थी बना रहेगा, वह हर जगह कुछ न कुछ पा सकेगा, क्योंकि उसके अर्जन का रास्ता सदा खुला रहता है। विद्यार्थी रहने का अर्थ है—कुछ न कुछ प्राप्त करने की अवस्था में रहना। इस दृष्टि से हम स्वयं विद्यार्थी हैं और रहना भी चाहते हैं।

मै मानता हूँ संस्कार भरने की दृष्टि से बाल्य-अवस्था से बढ़कर कोई अन्य अवस्था नहीं। इसमें जो संस्कार भरे जाते है, वे गहरे जम जाते है। पर खेद है कि आज जो विद्यार्थियों को संस्कार मिल रहे है, वे अच्छे नहीं है। आज वे नास्तिकता के वातावरण में पल रहे है, जहाँ उन्हें आत्मा, परमात्मा, धर्म और सद्व्यवहार की कोई शिक्षा नहीं मिलती। प्रत्युत इनसे विरोधी तत्त्व उनके जीवन में भरे जाते है। भौतिकता आज चरम सीमा पर है और भोग उसमें अधिकाधिक फँसते जा रहे है। ऐसी स्थिति में छात्रों में भी उसका आकर्षण स्वतः आ जाता है और छात्र अपने लक्ष्य को पाने में सफल नही होते। आज शिक्षा-केन्द्रों में भी इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। मैं समझता हूँ धर्म के मौलिक आदर्श यदि छात्रों के जीवन में आ जाएँ तो उनकी नींव पक्की हो जाती है। आजीवन वे चरित्र निष्ठ और उदार बने रहते है।

धर्म इस्लाम, जैन, ईसाई और हिन्दू नहीं। ये तो धर्म के तरीके हैं।

धर्म का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है "धारणात् धर्म उच्यते" जो धारण करने वाला है वह धर्म है, और प्रवृत्ति लभ्य अर्थ है —आत्मा की शुद्धि का साधन। जिससे आत्मा अपनी शुद्धावस्था को पाती है, वह धर्म है। जैसे शरीर को आभूषित करने के लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने जाते हैं वैसे ही जीवन को अलंकृत करने के लिये धर्म का आचरण आवश्यक है।

धर्म का स्वरूप है—अहिंसा, सत्य और उदारता। इस धर्म का संबन्ध किसी जाति, वर्ग और संप्रदाय से नहीं, इसका सीधा संबन्ध जीवन और आत्मा से है। जीवन को परिमार्जित करने के लिये ही इसका उपयोग होता है। जीवन जब मँज जाता है, आत्मा के समस्त बंधन टूट जाते हैं तो आत्मा—परमात्मा में कुछ भेद नही रहता।

सबसे पहली बात—मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है—यह व्यक्ति को भान रहे। यह ज्ञान उसे नही रहता तो वह कर्त्तव्योन्मुख कैसे हो सकता है? इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिये एक कहानी सुनादूँ, क्योंकि सामने बाल मंडली जो है।

एक शेर के बच्चे की माँ मर गई। उसके लिये बड़ी दुविधा हुई। जंगल में उसका कौन सहायक? विधिवश एक ग्वाला उधर से निकला। उसने बच्चे को देखा और उठा लिया। बकरियों का दूध पिला पिला कर उसे पाला। जंगल में बकरियों के साथ वह भी घास चरने लगा। उसे यह ज्ञान तक न रहा कि मै शेर हूँ।

अकस्मात् एक दिन एक शेर आया। उसकी आवाज सुनकर सारी बकरियाँ भागने लगी। वह भी भागा। मगर पीछे मुड़कर जब उसने उस शेर को देखा, तब सोचा—अरे! यह तो मेरे जैसा ही है। क्या मै ऐसी आवाज नही कर सकता। फौरन वह अपने आपको पहचान गया। इसी प्रकार अपने स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता है।

अभिभावकों और अध्यापकों को चाहिए कि वे बच्चे को शिक्षा पुस्तकों से नहीं, अपने जीवन व्यवहार से दें। जीवन व्यवहार की शिक्षा स्थायी होती है।

आज छात्रों में जो उद्दंडता और अनुशासन हीनता बढ़ रही है, वह खतरनाक है। छात्रों को हर एक छोटी-छोटी बात पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये

कांग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण जी ने अणुव्रत गोष्ठी में कहा था कि मुझे अणुव्रत आन्दोलन की इसी बात ने आकृष्ट किया है कि इसके नियम छोटे-छोटे दैनंदिन व्यवहारों को विशेष महत्व देते हैं तथा उन्हें सुधारने का आग्रह रखते हैं।

जैन धर्म में जीवन शुद्धि की छोटी-छोटी चीजों को भी विशेष महत्व दिया गया है। साधक पूछता है—

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहं मासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं न बंधइ॥

प्रभो! बतलाएँ, मैं कैसे चलूं, कैसे स्थिर रहूं, कैसे बैठूं और कैसे सोऊँ? कैसे भोजन करते और बोलते हुए मेरे पाप कर्म न बंधे? गुरु उसे विधि बताते हुए कहते हैं—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासन्तो, पावकम्मं न बंधइ॥

अर्थात् यत्नपूर्वक चल, स्थिर रह, बैठ और सो। यत्नपूर्वक खाते हुए और बोलते हुए के पाप कर्म नहीं बंधते। क्योंकि उससे किसी को भी कष्ट नहीं होता।

भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"—जिन चीजों से अपने को दुःख होता है, वे दूसरों के लिये भी न की जाएँ। अणुव्रत आन्दोलन की यही प्रेरणा है। ये नियम बच्चे, तरुण और वृद्ध सभी के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। चाहे कोई भी हो, जीवन में सीमा आवश्यक होती है। अणुव्रत नियम जीवन में सीमा निर्धारण करते हैं।

अध्यापकों का दायित्व

अध्यापको को लक्ष्य करके आचार्य श्री ने कहा—

"अध्यापक शिक्षा के अधिकारी है और वे शिक्षा देते है पर मै समझता हूँ वे शिक्षाएँ उनके जीवन में ओत-प्रोत होनी चाहिये। ऐसा होने पर आपको कुछ कहने की आवश्यकता नही, छात्र स्वयं आपके जीवन से शिक्षा ग्रहण करेंगे। इसलिये मै चाहता हूँ, अध्यापक अणुव्रतों के साँचे में ढलें। जो आप विद्यार्थियों से चाहते हैं, पहले वह स्वयं करें। अपने को संयत वनाये विना और खुद का दमन—नियंत्रण किये विना न हम दूसरों को कुछ सिखा सकते है और न स्वयं ही सुखी वन सकते हैं।"

प्रश्नोत्तर

प्रवचन के वाद कुछ प्रश्नोत्तर भी हुये। विद्यार्थियो ने विविध प्रश्न किये, जिनका आचार्य प्रवर ने सरल एवं वोधगम्य भापा मे समाधान किया।

प्रश्न—आत्मा परमात्मा मे फर्क नही तो भय कैसा ?

उत्तर—परमात्मा सर्व द्रष्टा है। उससे कोई कार्य छुपा नही रहता। अत हम वुरा कार्य न करे, यह भावना रखना ही डर है और यहाँ हिंसात्मक भय से मतलव नही।

प्रश्न—आप क्या करते हैं ?

उत्तर—एक वाक्य मे इसका यही उत्तर है कि हम साधना करते है और विस्तार मे पढना, लिखना, उपदेश देना, स्वाध्याय करना आदि अनेक संयमानुकूल प्रवृत्तियाँ करते है।

प्रश्न—आप क्या खाना खाते हैं ?

उत्तर—हम सात्विक भोजन करते है, मादक खाना नही खाते, कच्चे फल नही लेते। मास नही खाते।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य को आप अणुव्रत कहते है तो महाव्रत किसे कहेगे ?

उत्तर—ब्रह्मचर्य का संपूर्ण पालन महाव्रत है और उसके अंश का पालन अणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न—आपके मन में जैन धर्म का प्रचार करने की इच्छा कैसे उठी?

उत्तर—मेरे पूर्वज जैन धर्मावलम्बी रहे हैं। मैं भी गृहस्थावास में उसे ही मानता रहा हूँ। कुछ पूर्व संस्कारों की और कुछ यहाँ की प्रेरणा मिली। फलस्वरूप मैं जैन धर्म का परिव्राजक और प्रचारक बन गया।

इस प्रवचन की व्यवस्था १६ जनवरी सन् १९५७ को बिड़ला मांटेसरी पब्लिक स्कूल में विशेष रूप से की गयी थी।

प्रवचन के बाद मुख्याध्यापक श्री राधारमण पाठक ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रदर्शन किया। विद्यार्थियों द्वारा समवेत स्वर से गाये गये सामूहिक गान से कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रवचन (१५)

विद्यार्थी-भावना का महत्व

सब से पहले मुझे आप से क्षमा याचना करनी है। वह इसलिये कि मेरा कार्यक्रम सूचना के अनुसार नहीं हो पाया। परसों धुंध कुहरों के कारण मैं नहीं पहुँच सका। कल वर्षा ने रोक लिया। आप सोचें—हम कितने कमजोर हैं। साधारण से साधारण चीजें हमें रोक देती हैं। जहाँ आपको बड़े बड़े बम भी नहीं रोक सकते, वहाँ मामूली से मामूली चींटियां और वर्षा की बूंदें भी हमें रोक देती हैं। पर इसके माने आप यह न समझें कि हम वस्तुतः कमजोर हैं। भारतीय संस्कृति में यह बात नहीं है।

पाप भीरुता, कायरता या दुर्बलता नहीं, वह तो आत्मबल का प्रतीक है। अतः अपनी चारित्र्य चर्या के भौतिक नियमों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से ही मैं दो दिन तक नहीं आ सका। कल आप लोग मेरा प्रवचन सुनने को आये और निराश लौटे, इसका मुझे दुःख है। कल मुझे अपने स्थान पर बैठे बैठे कभी प्रकृति पर रोष आता था, कभी यह पद याद आता था कि—"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"—कल्याण कार्यों में अनेक विघ्न आ ही जाते हैं। पर मनुष्य उनसे परास्त न हो, वह उल्टा उनको हटाता चले, यही सबसे सुंदर बात है।

मैंने जो क्षमा याचना की बात कही सो तो जैन दर्शन का आदर्श है—

"खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे" अतः इस दृष्टि से मैं अगर आपसे क्षमा याचना करूँ तो उचित ही है। मै बहुत दिनों से सोच रहा था कि पिलानी विद्या केन्द्र में मै आऊँ। बहुत से लोगों ने मुझ से यहाँ आने का आग्रह भी किया पर हम पैदल चलने वालों के लिये यह इतना सहज नहीं होता, अतः ऐसा नहीं हो सका। श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला ने भी मुझे यहाँ आने के लिये कहा था। अब मैं यहाँ आप लोगों के बीच हूँ। विद्यार्थियों में रहकर मुझे एक स्वर्गीय सुख का अनुभव हुआ करता है। यह मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसका कारण भी है—आप विद्यार्थी हैं और मैं भी विद्यार्थी हूँ। आप मुझे कहेंगे, आप आचार्य हैं, महात्मा हैं। पर मै आप से सच कहता हूँ—मै तो जीवन-भर विद्यार्थी ही रहना चाहता हूँ और यह मानता भी हूँ कि मनुष्य को जीवन भर विद्यार्थी ही रहना चाहिये।

भर्तृहरि ने एक जगह कहा है—

"यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्।"

यह ऋषि वाणी है और अनुभूति की वाणी है। इसका मतलब है, मनुष्य जब तक अल्पज्ञ होता है, तब तक वह अपने आपको महान् मानता है। वही फिर ज्यों-ज्यों ज्ञान को प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों स्वयं ही

यह समझ सकता है कि वह कितना अल्पज्ञ है। अतः मैं तो अपने आपमें जीवन-भर विद्यार्थी रहने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ।

मुझे जीवनभर विद्यार्थी रहने की शिक्षा मिली है। और आज भी जब मैं अपने साधु साध्वियों को पढ़ाता हूँ तो उसमें भी मुझे बड़ी नई चीजें मिल जाती हैं। वास्तव में मैं इनसे बहुत सी शिक्षाएँ पाता हूँ। अध्यापकगण शायद इसका अनुभव ज्यादा कर सकते हैं।

मुझे स्मरण होता है जब मैं अपने पूर्वाचार्य श्री कालूगणी जी के पास पढ़ा करता था, कभी कभी उनकी कुछ बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं। वे मुझे बार बार बताते पर तो भी मैं समझ नहीं पाता था, जब मैं आज उन्हीं बातों को दूसरों को पढ़ाता हूँ तो मुझे बहुत से अनुभव होते हैं। इसलिये मैं बहुधा कहा करता हूँ कि वास्तव में प्रोफेसर ही छात्र होते हैं और छात्र प्रोफेसर।

आप यह सुनकर खुश होंगे कि आज तो महाराज ने अच्छा कहा— हम विद्यार्थियों को भी प्रोफेसर बना दिया और प्रोफेसरों को छात्र। मुझे लगता है अध्यापकगण वास्तव में अपने को छात्र अनुभव करेंगे।

इन चार-पाँच वर्षों में मैं अनेक विद्यार्थियों के संपर्क में आया हूँ। वैसे आप भी छात्र है और मैं भी छात्र हूँ। तब आप और मैं तो एक ही हैं। मैं आपको क्या बताऊँ। आप सोचते होंगे, मैं बड़े-बड़े नेताओं से मिलकर आया हूँ, आपको कुछ नई बात सुनाऊँगा। पर मेरे पास ऐसा नया तो कुछ भी नहीं है, जो आपको सुना सकूँ और सोचता हूँ कि नया कुछ होगा ही नही। आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान महावीर की स्तुति करते हुए लिखा है—

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश !
नताहर्श कौशल मा श्रितोऽसि।
तुरङ्ग भृङ्गाण्युपपादयद्भ्यो,
नमः परेभ्यो नव पंडितेभ्यः ॥

भगवन् आप तो वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा विवेचन करते हैं।

अतः आप में उन अन्य दर्शनीय नये पंडितों जैसा कौशल कहाँ जो घोड़े के भी सींग होने का निरूपण कर डालने की क्षमता रखते हैं ?

यह व्याज स्तुति है। मेरा तो यह मत है कि नया ससार में कुछ होता ही नहीं। अतः अच्छा हो, हम उन पुराने तत्वों की अवगति कर ले।

सबसे पहले हमें इस बात पर सोचना है कि हमारा जीवन क्या है ? वह इधर और उधर से रहित नहीं है, क्योंकि वह धारावाही प्रवाह है। इससे यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमारा पूर्व जन्म था और पुनर्जन्म भी ग्रहण करना पड़ेगा। अगर हम आगे और पीछे दोनों तरफ नहीं देखेंगे तो यथेष्ट विकास नही कर पायेंगे। इसे ही मैं आस्तिकवाद कहता हूँ। यानी आत्मा-परमात्मा, धर्म कर्म की केवल विवेचना ही नहीं, मान्यता भी हो, यही आस्तिकवाद है। अतः सबसे पहले मैं आपको यह कहना चाहूँगा कि आप आत्मा के प्रभाव में विश्राम कर गुमराह न हो जावें, केवल तर्क में ही अपने आपको न भूल जाइये।

ऋषियों ने हमें तीन बातें बताई है—श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र। इसीलिये शास्त्रों में कहा गया है—अगर सम्यक् श्रद्धा न हो तो ज्ञान होते हुए भी आदमी अज्ञानी हो जाता है। श्रद्धायुक्त आदमी ही ज्ञानी है। तीसरी चीज है—चरित्र यानी सदाचरण। इसीलिये कहा गया है—सम्यग्ज्ञान दर्शन चरित्राणि मोक्ष मार्गः।

आज मेरी समझ में सबसे बड़ी जो कमी है वह है श्रद्धा की। उसके बिना मनुष्य को अपने आपको पहचानने की ताकत नहीं मिल सकती। दर्शन और विज्ञान में यही फर्क है। दर्शन हजारों वर्षों से चला आ रहा है पर उसके चिंतन में हमेशा आध्यात्मिकता का अंकुर रहता है। इससे दार्शनिकों ने गहरे चिन्तन के बाद सत्य और अहिंसा के तत्व संसार को दिये हैं। वैज्ञानिकों ने भी गहरा अनुशीलन किया और इसके फलस्वरूप उन्होने संसार को एटमबम और हाइड्रोजन बम दिये। समुद्र-मंथन में अमृत भी निकला और विष भी। अमृत से संसार का भला हुआ और

विष से वह हत हो गया । इसी प्रकार दार्शनिकों के मंथन से सत्य और अहिंसा निकली और वैज्ञानिकों के मंथन से बम ।

इसीलिये आज उन्हीं वैज्ञानिकों का जिन्होंने बम तैयार किये हैं, कहना है कि जब तक इन पर आध्यात्मिकता का अंकुश नहीं होगा, तब तक वास्तविक शांति स्थापित नहीं हो हो सकती ।

आज सबसे पहले हमें यह सोचना है—हमारा लक्ष्य क्या है ? कुछ लोग तो इस विषय पर सोचने का कष्ट नहीं करते और कुछ लोग सोचते हैं—वे अपनी पारिवारिक दुविधाओं को हटाना ही अपना लक्ष्य मानते हैं । पर यह मूल में भूल है । विद्या का यह लक्ष्य कदापि नही हो सकता । उसका लक्ष्य तो है—अपने आपको सुसंस्कृत बनाना । इसीलिये कहा गया है—अहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं, साविद्या या विमुक्तये" यानी विद्या का लक्ष्य है मुक्तिपाना । मुक्ति का अर्थ है वास्तविक शांति । यदि शिक्षा से वास्तविक शांति नहीं मिली तो अपना पेट तो कीड़े मकोड़े भी भर लेते हैं । उसके लिये इतना शिर-स्फोटन क्यों ? पर विद्या का वास्तविक लक्ष्य है—स्थायी शांति ।

विद्या अर्जन का सही अर्थ है—जिस शिक्षा को पुस्तकों में से प्राप्त किया, उसे किताबों में ही नहीं, अपने जीवन में उतारा जाए । कदम-कदम पर वह जीवन में व्यापक बने । इसीलिये तो जिस वाक्य को अन्य विद्यार्थियों ने पाँच मिनट में याद कर लिया था, उसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर महीनों में भी याद नहीं कर पाये । वह वाक्य था "क्रोधं मा कुरु" अर्थात् क्रोध मत करो । उसे सबने याद कर लिया, दुर्योधन ने भी याद कर लिया, पर धर्मपुत्र याद नहीं कर पाये । अध्यापक ने पूछा क्या सब ने याद कर लिया ? सबने कहा—हाँ कर लिया । पर धर्मपुत्र बोला गुरुदेव ! आपने पहला वाक्य बताया था—"सत्यं वद" अर्थात् सत्य बोलो, वह तो याद हो गया है, पर "क्रोधं मा कुरु"—यह याद नहीं हो पाया है । अध्यापक को गुस्सा आ गया । आप जानते हैं, पहले की अध्ययन-प्रणाली दूसरी थी और अध्ययन का मानदंड भी दूसरा था ।

पहले अध्यापक छात्रों की मरम्मत भी कर देते थे, पर आज युग बदल गया है। उल्टे विद्यार्थी अध्यापकों की मरम्मत कर देते हैं। अतः अध्यापकों को डर रखना पड़ता है, कहीं विद्यार्थी उनका अपमान न कर दें। इसीलिये वे विद्यार्थियों को कुछ कहते भी नहीं। अस्तु !—हाँ तो अध्यापक ने गुस्से में आकर धर्मपुत्र के जोर से एक चाँटा लगा दिया। इतना होना था कि धर्मपुत्र खुशी से उछल पड़े और कहने लगे—अच्छा, याद हो गया-याद हो गया।

अध्यापक विस्मय में पड़ गये। उन्होंने धर्मपुत्र से इसका कारण पूछा। धर्मपुत्र कहने लगे—मैं याद होना उसको मानता हूँ, जितना मैं अपने जीवन में उतार लेता हूँ। अन्यथा पढ़ने मात्र से मै किसी बात का याद हो जाना नहीं मानता। मैने इसका अभ्यास तो किया था पर आज मार पड़ने पर मैनें यह जान लिया कि वास्तव में वह पाठ मुझे याद हो गया है।

आज के हमारे विद्यार्थियों ने अनेकों डिग्रियाँ प्राप्त कर ली हैं पर क्या उन्होंने यह पाठ पढ़ा है ? क्या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे गुस्सा नही करते ? साधना यही है कि जो कुछ पढ़ा जाए, उसे जीवन में उतारा जाए। धर्म शास्त्रों में अनेकों अच्छी बाते लिखी पड़ी हैं, पर आज आवश्यकता है उनको जीवन में उतारने की। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पढ़े और अनपढ़े में कोई अंतर नहीं है। शास्त्रों में पूछा गया है—पंडित कौन ? वहाँ उत्तर है—जिसका जीवन संयत है, वही पंडित है। अतः आज ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है।

नेता लोग भी चिंतित है। वास्तव में है या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर देखने में तो वे बड़े चिंतित लगते हैं। वे कहते हैं—आज की शिक्षा प्रणाली सुन्दर नहीं है पर हम इसे सुधार भी नहीं कह सकते। तो मैं कहा करता हूँ—आखिर इसे सुधारने के लिये क्या कोई ब्रह्मा जी आयेंगे ? पर यह सही है कि वे चिंतित हैं। उनके पास कोई उपाय नहीं ? इसका कारण क्या है ? स्पष्ट है—वातावरण उनके अनुकूल नहीं

है। वे जो सुधार करना चाहते हैं, वह कर नहीं पा रहे हैं।

आज थोड़ी सी बात हुई कि विद्यार्थी हड़ताल, लूटपाट और आगजनी करने में भी नहीं सकुचाते। यह देख कर बड़ा दुःख होता है। जिस बुनियाद को हम बनाने जा रहे हैं उसमें कितनी खराबी है।

मैं मानता हूं आपकी कोई मांग हो सकती है, पर बड़े बड़े विरोध भी जब समझौते से सुलझाये जा सकते हैं तो छोटी छोटी बातों के लिये ऐसे घृणित काम कर बैठना क्या सचमुच लज्जा की बात नहीं है? देश के प्रांतीय पुनर्गठन के बारे में विद्यार्थियों ने जो जो कुछ किया, क्या यह शर्म की बात नहीं है? मैंने जहाँ तक सुना है, विद्यार्थियों ने उस समय उपद्रवों में बहुत बड़ा भाग लिया था। हो सकता है, उनको प्रोत्साहित करने में किन्हीं अवांछित तत्वों का हाथ रहा हो, पर यह सही है कि विद्यार्थियों ने इसमें अपनी असहिष्णुता का परिचय दिया था। कम से कम हमारे भारतीय विद्यार्थियों के लिये यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

अणुव्रत आंदोलन

अनेकांत का सिद्धांत उन्हें हर परिस्थिति में समझौते की शिक्षा देता है। अणुव्रत आंदोलन भी यही बात बताता है। देश में आज आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक आदि अनेकों आंदोलन चलते हैं। आज कल चुनाव का भी आंदोलन चल रहा है पर अणुव्रत आंदोलन आध्यात्मिक विकास और नैतिक सुधार का आंदोलन है। भारत में सुधार होगा तो वह हृदय परिवर्तन से ही संभव है, बल प्रयोगों से नहीं हो सकता। अणुव्रत जन-जन में यही भावना भरना चाहता है। वह किसी धर्म विशेष का आंदोलन नहीं है। क्योंकि यदि वह किसी धर्म विशेष का—किसी एक धर्म का हो जाता है तो दूसरे उसे स्वीकार करने में संकोच करेंगे। वास्तव में तो धर्मों में कोई भेद होता ही नहीं। जैन जिन्हें पांच महाव्रत कहते हैं, वैदिक उन्हें पाँच यम कहते हैं और बौद्ध इन्हें पंचशील कहते हैं। बात एक ही है। अणुव्रत आंदोलन उन सबका—छोटे छोटे व्रतों का संग्रह है।

आप पूछेंगे, आप अहिंसा की बातें तो करते हैं पर देश पर आक्रमण हुआ तो आप की अहिंसा क्या काम आयगी। पर मैं आप से कहूँगा— आप इसे गौर से पढ़ें। अणुव्रत आप को यह नहीं कहता कि आप देश, समाज और परिवार की रक्षा करना छोड़ दें। क्योंकि यह महाव्रत का मार्ग है, अणुव्रत का मार्ग है किसी पर आक्रमण नहीं करना। यह न तो महाव्रत का मार्ग है और न अणुव्रत का। महाव्रत सारे लोगों के लिये कठिन पड़ता है और अव्रत तो विनाश का मार्ग है ही। अतः इन दोनों का मध्यम मार्ग है—अणुव्रत। इसके बिना जनता का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता।

यह एक प्रश्न गांधी जी के सामने भी रखा जाता था और मेरे सामने भी आया करता है कि अगर सारे संन्यासी बन जायेंगे, ब्रह्मचारी बन जायेंगे तो यह सृष्टि कैसे चलेगी मैं आपसे कहूँगा—आप उसकी चिन्ता न करें। खुद अणुव्रती तो बनें। यह संन्यास का मार्ग तो नहीं है। इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार की यह योजना आप के सामने है। जीवन में इसे उतारें। हमको इसी रूप में आप के सहयोग की उपेक्षा है।

अंत में मै आप से यह भी कह देना चाहता हूँ कि यहाँ आकर मैंने आप पर कोई एहसान नहीं किया है। यह तो मेरी अपनी साधना है और इसीलिये अगर आपने मेरी बात को शांति से सुना है तो आपने भी मेरा कोई एहसान नहीं किया है। आपकी भी यह साधना ही होनी चाहिए।

प्रस्तुत समारोह मे डा० श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, पी० एच० डी० तथा श्री छगनलाल शास्त्री ने भी अपने विचार प्रकट किये।

प्रवचन के लिये निर्धारित पिछले समयों मे कुहरे तथा वर्षा के कारण आचार्य श्री का ऑडिटोरियल हाल में पधारना नही हो सका था। दो दिन बाद १९ जनवरी १९५७ को आकाश साफ हुआ। सब के मन मे उल्लास था। विद्या विहार के कालेजों तथा अन्यान्य शिक्षरा संस्थाओ के छात्रों की प्रबल इच्छा थी कि आज तो आचार्य श्री को प्रवचन के लिए

यहाँ पधारना ही चाहिए, क्योंकि पिछले दो दिन कोहरे और वर्षा के कारण कोई आयोजन तथा कार्यक्रम नहीं हो सका था। आचार्य श्री प्रातःकाल ही शिव गंगा स्थित अतिथि निवास में पधार गये थे। वहाँ से सेन्ट्रल ऑडिटोरियल हाल में प्रवचन करने पधारे। हॉल विद्यार्थियों और अध्यापकों से खचाखच भरा था। दृश्य बड़ा ही मनोरम था। बिरला विद्या विहार के कुलपति श्री शुकदेव पांडे ने आचार्य श्री के अभिनन्दन में स्वागत भाषण दिया। उसके बाद प्रवचन हुआ।

प्रवचन (१६

नैतिकता और जीवन का व्यवहार

इन बालिकाओं का यह खिला हुआ जीवन उस नन्हे से वट बीज जैसा है जो आगे चलकर विशाल वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। परन्तु उस बीज को यथेष्ट वायु, जल, खाद आदि न मिलें तो वह मुरझा जाता है। यही बात बालक बालिकाओं के लिए है। यदि इस गौरवमयी संपत्ति के संरक्षण, संवर्द्धन और विकास की उपयुक्त व्यवस्था नहीं होती तो ये खिले हुए फूल विकास पाने के बदले झुलस जाते हैं अध्यापक तथा अध्यापिकाओं का यह सबसे पहला और आवश्यक कार्य है कि वे बालक बालिकाओं के जीवन में अनुशासन, शील, मैत्री और आत्मविश्वास आदि सुसंस्कार भरने को सतत जागरूक रहें। इस के लिए उनके अपने जीवन की प्रसंस्कारिता सबसे पहले आवश्यक है। उनका जीवन छात्र छात्राओं के लिये एक खुली किताब होना चाहिए, जिससे वे उनसे जीवन निर्माण की मूर्त एवं सक्रिय प्रेरणा ले सकें।

लोग अनैतिक और अशुद्ध वृत्तियों की ओर धड़ाधड़ बढ़ते जा रहे हैं। इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं, जितनी यह देखकर कि लोगों की यह निष्ठा और आस्था बनती जा रही है कि नैतिकता, सच्चाई और अहिंसा से व्यावहारिक जीवन में काम नहीं चल सकता। यह नास्तिकता है। जीवन तत्व की विस्मृति है। बालिकाओं में ऐसी भावनाएं न जमने पावें ऐसा प्रयास अध्यापिकाओं को करना है। बहिनों से विशेषतः कहा करता हूं कि वे अपने को पुरुषों से हीन न समझें। अपने को हीन समझना आत्म शक्ति को कुण्ठित करना है। वास्तव में उनमें वह अदम्य उत्साह और अपरिमित शक्ति है जो विकास के पथ पर आगे बढ़ने में उन्हें बड़ी प्रेरणा दे सकती है।

आचार्य श्री का यह प्रवचन १९ जनवरी ५७ को दोपहर में दो बजे बिड़ला विद्या विहार के अन्तर्गत बालिका विद्यापीठ मे छात्राओ एवं अध्यापिकाओ के बीच मे हुआ।

विद्यापीठ की सहायक अध्यापिका श्रीमती प्रेम सरीन ने आचार्य श्री के स्वागत में भाषण दिया।

अन्त मे विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका श्रीमती कौल ने आभार प्रदर्शन किया।

अध्यापकों का दायित्व

कहते हुए बड़ा खेद होता है कि आज राष्ट्र में नैतिकता का दुर्भिक्ष आता जा रहा है। ईमानदारी, विश्वास और मैत्री की परम्पराएँ टूटती जा रही हैं। इस नैतिक दिवालियेपन से जन जीवन आज खोखला हुआ जा रहा है। यदि अनीति और अनाचार के इस चालू प्रवाह को रोका नहीं गया तो कहीं ऐसा नहो कि अनैतिकता का यह भयावह दानव मानव को निगल जाय। इन टूटती हुई नैतिक और चारित्रिक शृंखलाओं को सहारा मिले, लोक जीवन में सत्य निष्ठा और ईमानदारी का समावेश हो, इसके लिए, अणुव्रत आन्दोलन के रूप में चारित्रिक उद्‌बोधन का काम हम चला रहे हैं। प्राध्यापक, लेखक, शिक्षा शास्त्री जैसे बौद्धिक क्षेत्र के लोग राष्ट्र का मस्तिष्क हैं। राष्ट्र के जीवन को तथा कथित वितथ विकास के बदले सही विकास और अभ्युत्थान के मार्ग पर लेजाने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उन पर है। इसलिए मैं चाहूँगा चारित्रिक जागृति के लक्ष को लेकर चल रहे अणुव्रत आन्दोलन के बहुमुखी कार्यों में वे सहयोगी बनें। दूसरे लोगों तक पहुँचाया जाए, इससे पहले यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को आदर्शों के अनुकूल बनायें। अध्यापकों से मै कहना चाहूँगा—वे सत्य निष्ठा, प्रामाणिकता और निर्भयता—इन तीन बातों को अपने जीवन में उतारें, यदि वे ऐसा कर पाए तो उनका स्वयं का अपना जीवन तो सही मानें में प्रगतिशील बनेगा ही, राष्ट्र के सहस्रों नौनिहाल, जिनके जीवन निर्माण का कार्य उनके हाथों में सौंपा गया है, उन्हें भी वे उन्नतिपथ की ओर ले जा सकेंगे। राष्ट्र के समक्ष वे मूर्त आदर्श उपस्थित कर सकेंगे।

यह प्रवचन १६ जनवरी १९५७ को बिड़ला बिहार के इंजीनीयरिंग कालेज के हाल मे समस्त अध्यापको तथा ाध्यापको के सम्मुख हुआ।

इजीनियरिंग कालेज के वाइस प्रिसीपल श्री शाह ने आचार्य श्री का प्राध्यापको की ओर से अभिनन्दन किया।

अन्त मे इजीनियरिंग कालेज के प्रिसीपल श्री लक्ष्मी नारायण ने आचार्य श्री के प्रति आभार प्रकट किया।

प्रवचन (१८)

जैन दर्शन तथा अनेकांतवाद

जैन दर्शन का चिंतन अनेकांतवाद पर आधारित है, जो विश्व की समस्त विचार धाराओ में समन्वय और सामंजस्य का पथ प्रदर्शन करता है। वह बताता है—एक ही वस्तु को अनेकों अपेक्षाओं अथवा दृष्टियों से परखा जा सकता है। क्योकि अनेकों अपेक्षाओं को जन्म देते हैं तो उसके निरूपण में भी आपेक्षिक अनेक-विधता का आना सहज है। यह अनेक विधता संशयोत्पादक नहीं है। यह तो वस्तु के बहुमुखी स्वरूप की निरूपक है। हाथी के विविध अंग प्रत्यंगों को लेकर अपने-अपने द्वारा अनुभूत अंग विशेष को हाथी कह कर लड़ने वाले उन अन्धों की कहानी सुप्रसिद्ध है, जिनको किसी नेत्रवान् ने उसी हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों का अनुभव कराकर बताया था कि जिसे वे हाथी कह रहे हैं, वह तो उसका एक-एक अंग है। हाथी उन सब अंगों का समवाय है। जैन दर्शन यही तो बताता है कि वस्तु के एक पहलू को

लेकर दुराग्रही मत बनो, लड़ो नहीं, उसे एकांतिक तथ्य मत समझो। दूसरी अपेक्षाओं से भी वह परखा जा सकता है और उस परखसे निकलने वाला निष्कर्ष पहले से भिन्न भी हो सकता है क्योंकि यह अपेक्षा या दृष्टि पहले से भिन्न है। जैसे एक व्यक्ति किसी का पिता है, पर साथ ही साथ वह किसी का पुत्र भी तो है, भाई भी तो हो सकता है, पति भी तो हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व एवं पतित्व आदि अनेकों धर्म हैं। यही जैन दर्शन का स्याद्‌वाद है, जो विश्व की उलझी समस्याओ के हल का अन्यतम साधन है।

जहाँ विचार क्षेत्र में अनेकांतवाद भी जैन दर्शन की महत्वपूर्ण देन है, वहाँ आचार के क्षेत्र में अहिंसा की साधना का सफल मार्ग जैन दर्शन ने दिया। उसने बताया कि किसी को मारना, सताना, उत्पीड़ित करना, कष्ट देना वीरता नहीं है, सच्ची वीरता है हिंसक आघातों का आत्मबल के साथ मुकाबला करना। प्रहार करने की क्षमता के होते हुये भी उसका प्रयोग न कर अहिंसक प्रतिकार के लिये डटा रहना।"

१६ जनवरी १६५७ को रात को ६॥ बजे शिवगंगा कोठी में बिड़ला विद्याविहार जैन एसोसियेशन की ओर से "जैन दर्शन के संबंध मे आचार्य श्री का यह महत्वपूर्ण प्रवचन हुआ। अनेकों जैन प्रोफेसर एवं छात्र तथा जैन दर्शन में रुचि रखने वाले अन्य प्रोफेसर, विद्यार्थी एवं नागरिक भी उपस्थित थे। प्रवचन के अनन्तर जैन तत्त्वों पर काफी देर तक प्रश्नोत्तरों के रूप मे अत्यन्त मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद विचार विनिमय हुआ।

प्रवचन (१९)

नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि

चुनावों में अनैतिकता और अनुचित आचरण न रहे, इस पर प्रकाश डालते हुये आचार्य श्री ने कहा—"राष्ट्र में प्रचलित नई राजनीतिक एवं सामाजिक परंपराओं और व्यवस्थाओं में जन-जन का जीवन अधिकाधिक शुद्ध, सात्विक और उजला रह सके, इसके लिये अणुव्रत आंदोलन एक चारित्र्यमूलक आलोक देता हुआ सतत प्रयत्नशील है ताकि व्यक्ति प्रखर गति से बहते युग-प्रवाह में तिनके की तरह न बह एक सुदृढ़ स्तंभ की नाई मजबूत बन चारित्रिक आदर्शों पर स्थिर भाव से टिका रह सके। अणुव्रत आंदोलन का एक-मात्र लक्ष्य यह है कि विभिन्न जीवन व्यवहारों में गुजरता मानव अपने को सच्चरित्रता पर अडिग रख सके। इसी दृष्टि से चुनावों को लक्षित कर इस आंदोलन के अंतर्गत हमने एक अहिंसा सत्यमूलक नियमावली राष्ट्र के कोटि-कोटि मतदाताओं और सहस्रों उम्मीदवारों के समक्ष प्रस्तुत की है।

कुछ दिनों के बाद राष्ट्र में आम चुनाव आ रहे हैं, जिनकी आज सर्वत्र सरगर्मी नजर आ रही है। जिस प्रकार अपने सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में व्यक्ति नगण्य स्वार्थों में पड़ पतनोन्मुख बनता है, उसी तरह चुनावों में भी बहुत प्रकार की वीभत्स और जघन्य वृत्तियाँ बरती जाती हैं। यह सचमुच मानवता के लिये भयानक अभिशाप और घृणास्पद कलङ्क है। मै चाहूँगा, किसी भी कीमत पर व्यक्ति मानवीय आदर्शों से न गिरे। आसन्न चुनाव-कार्य को लक्षित कर मैं राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से कहूँगा, वह सत्य और नैतिकता से विचलित न हो, अनैतिकता, और अनाचरण का सर्वतोभावेन परिहार करे।

यदि हम व्यक्ति के सामाजिक पतन के इतिहास के पन्ने उलटें

तो पायेंगे कि एक समय था, जब कि इंसान ने चंद चाँदी के टुकड़ों के मोल अपनी लड़कियों को बेचा। समय आगे बढ़ा, वह लड़कों को बेचने लगा। पर आज तो स्थिति यहाँ तक बदतर हो गई है कि पैसों के हाथ वह अपने आप को भी बेच डालता है। पैसे लेकर किसी के पक्ष में अपना मत देना अपने आप को बेचना नहीं तो और क्या है? क्या यह पतन की पराकाष्ठा नहीं है। रुपये पैसे व अन्य अवैध प्रलोभन देकर, हिंसात्मक प्रभाव दिखाकर, भय धमकी एवं अश्लील आलोचना का सहारा लेकर मत पाने का प्रयास करना, पैसे के लालच में आकर मत देने को तत्पर होना, जाली नाम से मत देना मानवता के लिये निःसंदेह एक अमिट कालिमा है। ऐसा करने वाले अपने मानवीय स्वत्व को ठोकरों से रौंदते हैं। जागृत मानवीय चेतनशील नागरिक ऐसा कर अपने जीवन की चादर को पाप की स्याही से काली न बनायें। यह आत्मिक पतन है, जो मानव को जीवन शुद्धि के एवं सत्चर्या के मार्ग से पराङ्मुख बना अवनति की ओर ले जाता है।

ता० २० जनवरी १९५७ को दोपहर के १ बजे पिलानी के नागरिकों की ओर से बाजार में नागरिकों की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया, जिसमें आचार्य श्री ने उन्हे नैतिक निर्माण और जीवन शुद्धि का उक्त सन्देश दिया।

प्रवचन के बाद सैकड़ों नागरिकों ने चुनावों मे अनैतिक और अनौचित्यपूर्ण व्यवहार न करने की प्रतिज्ञा की। अन्य कई प्रकार की दूषित वृत्तियाँ छोड़ने का भी लोगों ने संकल्प किया।

तीसरा प्रकरण

श्रीलंका निवासी बौद्धभिक्षु के साथ

जैन धर्म और बौद्ध धर्म

२६ नवम्बर १६५६ को बौद्ध गोष्ठी की समाप्ति के बाद आचार्य श्री यंग मेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन हाल से १६ नम्बर बाराखंभा रोड (नई दिल्ली) श्री रामकिशनदास द्वारकादास रंगवाले के मकान पर पधारे।

दोपहर में लंका निवासी बौद्ध भिक्षु 'नारद थेरो' आचार्य श्री से मिलने आये। शिष्टाचारमूलक वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने आचार्य श्री से पूछा—

जैन धर्म और बौद्ध धर्म में क्या अन्तर है ?

आचार्य-श्री—बौद्ध तो प्रत्येक चीज को क्षणिक मानते हैं, जैन उसे स्थिर भी मानते हैं। बौद्ध कहते हैं—

"यत् सत् तत् क्षणिकम्, यथा जलधरः सन्तश्च भावा इमे।" पर जैन कहते हैं कि पदार्थ क्षणिक हैं पर वे परिणामी नित्य भी हैं। पानी बिल्कुल ही नष्ट नहीं हो जाता। उसके पर्याय का नाश होता है पर उसका द्रव्यत्व कभी नष्ट नहीं होता। वैसे ही प्रत्येक वस्तु पदार्थ का पर्याय बदलता है पर मूल द्रव्य स्थायी रहता है।

नारद थेरो—क्या पानी पदार्थ है ?

आचार्य-श्री—नहीं, पानी मूलपदार्थ नहीं है। मूल पदार्थ दो ही हैं—जीव और अजीव। वे सदा शाश्वत रहते हैं। उनमें कभी मूलतः परिवर्तन नहीं होता। जीव का परिवर्तन भी होता है, जैसे मनुष्य, पशु,

पक्षी, आदि। पर वास्तव में वह जीव का परिवर्तन नहीं है, पर्यायों का परिवर्तन है। इसी प्रकार अजीव में भी पर्यायों का परिवर्तन होता है। बौद्ध लोग परमाणु को नित्य नहीं मानते। उनकी दृष्टि में हर चीज क्षणिक है पर हम परमाणु को नित्य मानते हैं।

नारदथेरो—जैन ईश्वर को मानते हैं या नहीं ?

आचार्य-श्री—हाँ, मानते हैं; पर वे उसे सृष्टि का कर्ता-हर्ता नहीं मानते। आत्मा ही परमात्मा ईश्वर है। जब तक वह कर्म बल से लिप्त है, तब तक आत्मा है और कर्मों से छूटते ही ईश्वर बन जाता है।

नारदथेरो—आत्मा क्या है ?

आचार्य-श्री—आत्मा एक स्वतन्त्र ज्योतिर्मय शाश्वतचेतनामयतत्त्व है।

नारद थेरो—क्या शरीर और मन से भिन्न अलग तत्त्व आत्मा है ?

आचार्य-श्री—हाँ, मन भी इन्द्रिय रूप ही है और आत्मा इन्द्रियों से भिन्न चेतना तत्त्व है। शरीर तो उस पर आवरण है, जैसे दीपक पर कोई ढक्कन।

नारद थेरो—वह आवरण क्या है ?

आचार्य-श्री—सूक्ष्म शरीर।

नारदथेरो—सूक्ष्म शरीर क्या है ?

आचार्य-श्री—कर्म-जड़।

नारद थेरो—कर्म क्या है ?

आचार्य-श्री—परमाणु पिण्ड, जो आत्मा की प्रवृत्ति से आकर उससे चिपक जाते हैं, उन्हे कर्म कहते है।

नारद थेरो—क्या कर्म क्रिया है ?

आचार्य-श्री—नहीं, वे क्रिया नहीं है। वे तो क्रिया के द्वारा आत्मा से चिपक जाने वाले परमाणु पिण्ड हैं।

नारद थेरो—वे दोनों बुरे होते है या भले ?

आचार्य-श्री—दोनों ही प्रकार के होते है। यद्यपि भले कर्म भी अन्ततः त्याज्य है पर वे पौद्‌गलिक दृष्टि से दुःखदायी नहीं होते।

दो जापानी विद्वानों के साथ

श्री नारद थेरो के जाते ही दो जापानी विद्वान् पता लगाते-लगाते आ पहुँचे । उन्हे प्रधानमन्त्री नेहरू ने भारत आने का निमंत्रण दिया था और इसीलिये वे बौद्ध गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए आये थे । एक बार वे पहले भी भारत आचुके थे । जब उन्हे आचार्य-श्री के सम्बन्ध में यह बताया गया कि आप तेरापंथ के आचार्य है तो वे बड़े खुश हुये और बोले—हम आपके साधुओं से पहले भी मिले थे । उन जापानी विद्वानों के नाम थे—हाजीमे नाकामुरा और सोसन मियो मोटो । वे संस्कृत के भी विद्वान् थे ।

आचार्य श्री ने उन्हे अपना परिचय देते हुये बताया कि हम किसी भी सवारी का प्रयोग नहीं करते, तो उन्होने कहा—आप मोटर में तो चढ़ते होगे ? जब आचार्य प्रवर ने बताया कि नही, हम मोटर में भी नहीं बैठते । यह सुनकर जापानी विद्वान् बड़े आश्चर्यान्वित हुये और बड़े विस्मय के साथ इस बात को दुहराया कि अच्छा, आप मोटर में भी नहीं बैठते । आचार्य-श्री ने कहा हाँ, इसीलिये हम अभी राजस्थान से ग्यारह दिन में दोसौ मील पैदल चलकर यहाँ आये हैं ।

उन्होंने पूछा—तब आप इंग्लैण्ड कैसे जा सकते हैं ?

आचार्य-श्री ने कहा—हम वायुयान आदि का भी उपयोग नहीं करते, हम तो सड़क के रास्ते से ही चलते है । यही कारण है कि विदेशों में जैन धर्म का प्रचार नहीं हो सका ।

प्रश्न—क्या कृषि में हिंसा है और क्या आप उसका निषेध भी करते हैं ?

उत्तर—हाँ, कृषि में हिंसा है पर हम उसका निषेध या विधान

नहीं करते। बहुत सारे जैन भी कृषि करते है पर उसमें हिंसा ही समझते हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावकों में कई श्रावक कृषिकार हुये हैं।

फिर आचार्य-श्री ने तेरा पंथ का परिचय दिया और दयादान सम्बन्धी मान्यताओं को तीन दृष्टान्तों द्वारा विशद रूप में समझाया। दया दान की व्याख्या उन्हें बहुत ही वास्तविक जँची। साधु साध्वियों के हाथ की बनी चीजे दिखाई गईं तो वे बड़े प्रसन्न हुये और फिर कभी मिलने का वायदा कर चले गये।

मन्थन (३)

राष्ट्रकवि के साथ

साहित्य साधना पर वार्ता

१ दिसम्बर १९५६ को संसद् क्लब में पधारने पर राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने आचार्य-श्री से अपने घर पधारने के लिये निवेदन किया, अतः आचार्य प्रवर क्लब के कार्यक्रम के उपरान्त वहाँ पधारे और २५-३० मिनट तक बड़ा सरस वार्तालाप हुआ।

श्री मैथिलीशरण जी ने कहा—मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि आपके दर्शन करूँ। आज दर्शन पाकर, मेरी कामना पूर्ण हुई। वैसे मैं आपके प्रयत्नों से समय-समय पर आपके सन्तों द्वारा परिचित होता रहा हूँ, उनके सत्प्रयत्नों में यथाशक्ति सहयोग देता रहा हूँ किन्तु आपसे साक्षात्कार आज ही हो पाया है।

साहित्य साधना के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर उन्होंने कहा—मैंने भारत के सभी सन्तों के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की है। मैंने 'साकेत'

लिखा है, यशोधरा की रचना की है। भगवान् महावीर को मै अपनी श्रद्धांजलि भेंट करना चाहता था पर मुझे उनके विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त नहीं हुई। जहाँ भी कहीं देखा श्वेताम्बर-दिगम्बर का झमेला दिखाई दिया। इसीलिये मैंने कुछ नहीं लिखा। आप इसके सही अधिकारी हैं। आप मेरा पथ प्रदर्शन कीजिये और यथार्थ जानकारी देकर मेरी सहायता कीजिये।

अपनी नव निर्मित कृति 'राजा प्रजा' का प्रूफ दिखाया और कहा, मुझे आपका अभी का प्रवचन बहुत मनोहर और वास्तविक लगा। मैं 'राजा-प्रजा' में इसके भाव के कुछ पद्य अवश्य दूँगा। मुझे यह कथन बहुत ही यथार्थ लगा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना अवलोकन शुरू कर दे तो दूसरों की आलोचना और दंड विधान की गुंजाइश ही न रह जाय।

आचार्य प्रवर ने कहा—हम व्यक्ति सुधार पर जोर देते है, क्योंकि व्यक्तियों के समूह के सिवाय राष्ट्र कुछ है नहीं। हमारे यहाँ आत्मसाधना और जनोपकारी कार्यो के साथ उसकी पूरक अन्य साधनायें भी चलती हैं। साहित्य साधना में भी सन्तों की प्रगति है। कई संत आशु-कवि हैं। किसी भी विषय पर तत्काल संस्कृत में पद्यों की रचना कर सकते हैं। संसदसदस्य श्री राधाकुमुद मुखर्जी ने आशु कविता के लिये "तृष्णा-दमन' विषय दिया जिस पर मुनि श्री नथमल जी ने कविता की। राष्ट्र-कवि ने आचार्य-श्री को अपनी कृति "साकेत" भेंट की।

श्रीमती सावित्री देवी निगम के साथ

मानवता के नियम

संसत्सदस्या श्री मती सावित्री देवी निगम ने भी संसद्क्लब में (१ दिसम्बर १९५६ को) आचार्य श्री से अपने यहाँ पधारने का निवेदन किया था। आचार्य-श्री राष्ट्रकवि के स्थान से उनके यहाँ पधारे। कुछ देर वहाँ ठहरे। आचार्य श्री के विराजने की तजवीज छत पर थी। सारे भाई-बहिन वहाँ ही बैठे। कई विषयों पर वार्तालाप हुआ।

आचार्य श्री—क्या आपने अणुव्रतों के नियम देखे हैं ?

श्रीमती निगम—हाँ, महाराज ! उनसे परिचित हूँ। वे तो मानवता के नियम हैं। मुझे उनमें निष्ठा है। यत्र-तत्र चलने वाले ऐसे रचनात्मक सुधार कार्यों में मेरी रुचि रहती है। मैं भारत सेवक समाज में भी कार्य करती हूँ तथा ग्रामों में भी कुछ केन्द्र खोल रखे हैं। पर मैं इन सबसे प्रथम स्थान अणुव्रत आन्दोलन को देती हूँ।

आचार्य-श्री—हाँ, आपको इसे प्रथम स्थान देना ही चाहिये, क्योंकि यह सुधार का आन्दोलन अपने ढंग का एक है। प्रत्येक कार्य में यह आन्दोलन संयम को महत्व देता है। इसके वर्गीय कार्यक्रम बड़े अच्छे ढंग से चले है और चल रहे हैं। हजारों छात्रों ने इससे नैतिक प्रेरणा पाई है। सैकड़ों व्यापारियों ने कूट तोल-माप व मिलावट न करने की प्रतिज्ञा ली है। अनेकों मजदूरों ने नशा न करने का नियम लिया है।

सावित्री देवी—हाँ, आपके कार्यक्रमों ने जनता के विचारों को मोड़ा है। आज नेता व साधारण लोग भी नैतिक्ता की चर्चा करते हैं। इसमें अणुव्रत आन्दोलन ने काफी मदद की है। यह आन्दोलन की

सफलता है। इसमें सन्देह क्या है कि वह भावना फैलेगी और लोग इसे स्वीकार करेंगे। ये व्रत (नियम) जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं। अभी यहाँ मद्य निषेध सप्ताह चला था। उसमें आन्दोलन ने बहुत मदद दी है। मैं इसकी सफलता चाहती हूँ

आचार्य-श्री—आपने अणुव्रती बनने के बारे में क्या सोचा है ?

सावित्री देवी—मुझे तो इसमे कोई अड़चन नहीं है। मैं अपने आपको इसके लिये प्रस्तुत करती हूँ। मेरा नाम कृपया अणुव्रतियों की सूची में लिखलें।

उनके आग्रह पर आचार्य-श्री ने उनके यहाँ कुछ भिक्षा भी ग्रहण की।

मध्यान्ह में आचार्य-श्री वाई० एम० सी० ए० पधार गये, जहाँ साहू शान्तिप्रसाद जी जैन, श्री अगरचन्द जी नाहटा आदि कई व्यक्ति संपर्क में आये (जैन आगमकोश और अनुवाद की बात सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये।)

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा ने आचार्य प्रवर के दर्शन किये।

श्री एलविरा के साथ

व्रतों की निषेधात्मक मर्यादा

यूनेस्को के प्रेस प्रतिनिधि श्री एलविरा के साथ १ दिसम्बर १९५६ को आचार्य-श्री की महत्वपूर्ण चर्चा हुई।

आचार्य-श्री—क्या आपने अणुव्रत आन्दोलन के नियम देखे हैं ?

एलविरा—हाँ, मैंने उनको देखा है। वे मुझे अधिकतर निषेधात्मक प्रतीत हुए, ऐसा क्यों है ?

आचार्य-श्री—इयत्ता के लिये निषेध आवश्यक है, "यह करो वह करो"—इसकी कोई सीमा नहीं है।

एलविरा—बाइबिल में भी अधिकांश नियम नकारात्मक है पर उसमें यह भी कहा गया है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो।

आचार्य-श्री—ऐसा उल्लेख तो इसमें भी है कि आपस मे मैत्री रखो पर यह नियम नहीं हो सकता, यह तो उपदेश हो सकता है।

एलविरा—भारत के लोग अहिंसा में विश्वास व श्रद्धा रखते हैं और अपने जीवन को उस आदर्श तक ले जाना चाहते है, क्योंकि आप जैसे प्रेरक यहाँ विद्यमान है। क्या इसका प्रचार पाश्चात्य देशों में भी हो सकता है ?

आचार्य-श्री—क्यों नहीं, पर इसके लिये आप लोगों का नैतिक सहयोग अपेक्षित है।

एलविरा—मैं तो आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ। मै अपना अहोभाग्य समझूँगा अगर मै इसमें कुछ कार्य कर सकूँ। तत्पश्चात् आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ और जैन आचार विचार परंपरा के सम्बन्ध में जानकारी दी।

लाई लामा के साथ

श्रमण संस्कृति की दो धाराओं का मिलन

२ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति भवन में अणुव्रतों के सम्बन्ध में सम्मेलन होने के बाद जब राष्ट्रपति जी और आचार्य-श्री दोनों उठकर चलने लगे तब आचार्य-श्री ने पूछा—दलाई लामा यहाँ आने वाले थे, क्या वे आ गये है ?

राष्ट्रपति जी ने पूछा—क्या आपको उनसे मिलना है ? मै जाता हूँ, ऊपर से आपको खबर करवा दूँगा। ऊपर जाकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहलवाया कि आचार्य-श्री ऊपर पधारें। ऊपर जाते ही जिस कमरे में दलाई लामा और पंचेन लामा खड़े थे, पं० नेहरू भी उस समय उनसे बातें कर रहे थे। आचार्य-श्री को देखकर पंडित जी लामा से बातें करते करते झट से उनको भी आचार्य-श्री के पास ले आये और उनके दुभाषिये के द्वारा आचार्य-श्री का परिचय उनको दिया। उसने तिब्बती भाषा में उसका अनुवाद कर लामाओं को बताया।

नजदीक आने पर आचार्य-श्री ने कहा—राष्ट्रपति भवन में आज श्रमण संस्कृति की दो धाराएँ-जैन और बौद्ध का मिलन हो रहा है, इसकी हमें बड़ी खुशी है।

पंचन लामा ने कहा—हम शायद आपसे कहीं मिले है ?

आचार्य-श्री ने कहा—नहीं, मिले तो नहीं हैं, शायद आपने कहीं हमारा फोटो देखा होगा।

उन्होंने कहा—हाँ, हाँ।

मुनि श्री-नगराज जी ने कहा—कुछ साहित्य और आचार्य-श्री का परिचय आपको भेजा गया था, वह आपने देखा होगा।

फिर आचार्य श्री ने नेहरू जी से कहा—

पंडित जी आप इन्हें बतलाइये—हम जैन साधु पैदल ही चलते हैं और अभी-अभी दो सौ मील की पैदल यात्रा ग्यारह दिनों में पूरी करके आ रहे है।

पंडित जी ने कहा—मैंने इन्हें अभी-अभी यही बताया था। इस प्रकार थोड़ी देर का यह संगम बड़ा ही रोचक और प्रेरणा-दायक रहा।

मन्थन (७)

बौद्ध भिक्षुओं के साथ
विश्व शान्ति साधन की खोज

श्री लंका से बुद्ध जयंती पर आये हुए बौद्ध भिक्षुओं ने ५ दिसंबर १९५६ की प्रातः बाराखम्भा रोड २२ नम्बर पर आचार्य-श्री से भेंट की। आसन ग्रहण करने के बाद प्रतिनिधि मंडल के प्रधान महा-स्थविर 'धर्मेश्वर' ने कहा—आप और हम लोग दो नही है। श्रमण संस्कृति की दृष्टि से एक ही है।

आचार्य-श्री—हाँ दोनों श्रमण परंपरा की दो धाराएँ है।

धर्मेश्वर—सिलोन में ३० हजार भिक्षु हैं। उनमें से प्रति हजार पर एक प्रतिनिधि के रूप में ३० भिक्षु आये है। बहुत सुन्दर हुआ कि दोनों धाराओं का संगम हुआ। हमें मिल जुल कर एक अच्छी योजना तैयार करनी चाहिये। यह एक अवसर है। वर्तमान दुनिया बुरी तरह से क्षुब्ध है, वह शांति की टोह में है। हम जो सच्चा मार्ग बनायेंगे, उसका सारी दुनिया में प्रचार होगा। हम उस योजना को लेकर अमेरिका, जापान,

चीन, तिब्बत आदि में घूमेंगे। इस प्रकार वह विश्व के लिये शांति का साधन बन सकेगी।

आचार्य-श्री—हाँ, हमारा तो इस प्रकार की योजनाओं के लिये चिन्तन चलता ही रहता है। हमें समन्वय में ही सफलता दीखती है। अणुव्रत आन्दोलन के नियमों के प्रारंभ में तद्विषयक जैन-बौद्ध और वैदिक तीनों धर्मों के समन्वयात्मक पद्य हमने दिये हैं। इसके बाद कुछ और प्रश्नोत्तर हुए।

आचार्य-श्री—हाँ, आप में और तिब्बत के दलाई लामा में क्या भेद है?

धर्मेश्वर—हम भी भिक्षु हैं और वे भी; किन्तु हम ऊष्ण देश के हैं और वे शीत देश के। अतः स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपना अपना आचार व्यवहार चलता है।

आचार्य-श्री—दलाई लामा बुद्ध का अवतार माने जाते हैं, यह कहाँ तक सत्य है?

धर्मेश्वर—यह कुछ नहीं, यह तो केवल तिब्बती जनता की श्रद्धा है इसलिये वहाँ के वे परमेश्वर हैं। हो सकता है सिलोन में कोई बौद्ध इन्हें जानता भी न हो।

आचार्य-श्री—आप महायान के अनुयायी हैं या हीनयान के?

धर्मेश्वर—सिलोन मे सियम निकाय और अमर निकाय है। महायान या हीनयान अलग कुछ नहीं। हमारा साहित्य पाली में है अतः अल्प है। इधर भारतीय बौद्ध विद्वानों ने जब संस्कृत में प्रचुर साहित्य लिखा, तब उन्होंने मूल पाली साहित्य को ही प्रमाणित मानने वालों को हीनयान और अपने आपको महायान कहना प्रारंभ किया, किन्तु इसे हम स्वीकार नहीं करते।

आगंतुक भिक्षुओं में से भिक्षु "ज्ञान श्री" आगे आये और कहने लगे—हमारे यहाँ कुछ नियम पालने वाले और गेरुएँ रंग के वस्त्रधारी को भिक्षु कहते हैं। हमने आप जैसे साधु कभी देखे नहीं; आज ही

देखने का अवसर मिला है। हमें सब कुछ नया-नया लगता है। आपका बाह्य आकार प्रकार भी और आचरण भी। अतः हम छोटी-बड़ी सभी बातें पूछना चाहते है। क्या आपकी आज्ञा है? आप क्रोध तो नहीं करेंगे?

आचार्य-श्री—क्रोध कैसा? हमें तो इससे प्रसन्नता अनुभव होगी। आनंद से पूछिये।

ज्ञान श्री—अच्छा फरमाइये, यह आपके मुँह पर पट्टी क्यों लगी हुई है?

आचार्य-श्री—यह अहिंसा के लिये है। जब हम बोलते हैं तब जो तेज व गर्म हवा निकलती है, उससे हिंसा होती है।

ज्ञान श्री—तब श्वासोच्छ्वास में भी सूक्ष्म जंतु मरते होंगे?

आचार्य-श्री—नहीं, ऐसा नहीं है। जैनागमों के अनुसार बोलने से जो हवा मुँह से निकलती है, उसकी बाहर की हवा से टक्कर होती है, तब वायु के जीव मरते हैं। श्वासोच्छ्वास सहज हवा है, उससे वायु के जीव नहीं मरते, दूसरे सूक्ष्म जीवों की तो बात ही कहाँ?

ज्ञान श्री—आप भिक्षु हैं या साधु?

आचार्य-श्री—हमारी मूल परंपरा में हमें निर्ग्रन्थ या श्रमण कहा जाता है। वैसे श्रमण, निर्ग्रन्थ, भिक्षु, साधु पर्यायवाची नाम हैं।

ज्ञान-श्री—श्रमण का क्या मतलब है?

आचार्य-श्री—आध्यात्मिक श्रम करने वाला अर्थात् तपस्या करने वाला श्रमण कहलाता है।

ज्ञान-श्री—तपस्या किसे कहते है?

आचार्य-श्री—तपस्या उस अनुष्ठान को कहते है, जिससे आत्मा के बन्धन टूटते है। वह दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यंतर। उपवास आदि बाह्य तपस्या है और स्वाध्याय आदि आभ्यंतर।

ज्ञान श्री—बन्धन किसे कहते हैं?

आचार्य-श्री—हमारी शुभाशुभ प्रवृत्ति से ही शुभ अशुभ परमाणु

पिंड आकृष्ट होते हैं और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रवर्तित हो आत्मा के साथ चिपक जाते हैं, आत्म चेतना को आवृत्त कर लेते हैं, उस आवरण को बन्धन कहते हैं।

ज्ञान श्री—बन्धन को दूर क्यो किया जाता है? उससे क्या क्षति है?

आचार्य-श्री—उससे हमारा आत्म विकास रुकता है।

ज्ञान श्री—इस वाक्य में दो शब्द आये है—'हमारा' और 'आत्मा', तो क्या ये दो है?

आचार्य-श्री—नही, उपचार से ऐसा कह दिया गया, वास्तव में मै और आत्मा एक है।

ज्ञान श्री—'मै' यह शरीर का वाचक है या आत्मा का?

आचार्य-श्री—यह आत्मवाचक है।

ज्ञान श्री—तो यह आपका शरीर किससे प्रचलित है?

आचार्य-श्री—आत्मा के द्वारा।

ज्ञान श्री—तो आत्मा एक पृथक् चीज है, शरीर एक पृथक् चीज है?

आचार्य-श्री—हाँ।

ज्ञान श्री—शरीर का संचालक जैसे आत्मा है, वैसे कोई आत्मा का भी चालक है?

आचार्य-श्री—नहीं, आत्मा अनादि है, वह स्व चलित है, इसका कोई करने वाला नहीं।

ज्ञान श्री—आत्मा अनादि है, यह आप किस बल पर जानते है?

आचार्य-श्री—दो आधारों पर—(१) आगम (गणिपिटक) और (२) अनुभव के आधार पर।

ज्ञान श्री—आगम किसे कहते है?

आचार्य-श्री—आप के जैसे त्रिपिटक है वैसे ही हमारे यहाँ गणिपिटक हैं, उन्हें आगम कहते है अर्थात् महावीर वाणी आगम है।

इस प्रकार लगभग घंटाभर पारस्परिक तात्त्विक विचार विमर्श हुआ। अंत में उन्होंने जैन दर्शन को विशेषतः जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।

नूतन दि०

'मारल रिआर्मेमेन्ट' के प्रतिनिधियों के साथ

हृदय परिवर्तन का माध्यम

५ दिसंबर १९५६ की रात्रि में मॉरल रिआर्मेमेंट (नैतिक पुनरुत्थान के विदेशी आंदोलन) के तीन सदस्य मि० डब्ल्यू० इ० पार्टर, मि० जी० एफ० स्टीफ़ेन्स, मि० जे० एस० हडसन तथा उसमें दिलचस्पी रखने वाले संसत्सदस्य श्री राजाराम शास्त्री आचार्य-श्री के दर्शन करने आये।

मॉरल रिआर्मामेंट के सदस्यों में से एक ने बताया कि उनका आंदोलन हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करता है। अपनी कहानी सुनाते हुए उन्होंने कहा—कि मैं शांति का उपदेश करता था, पर अपने घर में काफी अशांति का राज्य था। एक दिन मेरे मन में विचार उठा कि मैं जब इतना अशांत रहता हूँ तथा पिताजी की अशांति का कारण बना हुआ हूँ तब मेरे द्वारा दिये गये शांति के उपदेश का क्या असर हो सकता है? तभी मैं अपनी सारी शक्ति बटोर कर पिताजी से क्षमा माँगने के लिये तैयार हुआ। क्षमा माँगने पर पिताजी ने कहा इस क्षमा माँगने का

अर्थ तो तब निकल सकेगा जब तुम इस नम्र भावना को स्थायित्व दे सको। मैंने उनके शब्द शिरोधार्य किये। तब से हमारा व्यवहार मधुर हो गया और शांति रहने लगी।

शास्त्री जी ने कहा—एक बार मै चुनाव में जीता था तो लोगों ने बड़ी बड़ी सभायें करके मेरा अभिनन्दन किया, फूल मालाओं से लादा, चरणों में पड़े। मेरे मन में विचार आया, लोग इतना करते हैं, क्या मैं इसके योग्य हूँ? तभी मुझे लगा मैंने चुनाव में न जाने क्या-क्या किया है। अब भी लोगों से कुछ और कहता हूँ और कर गुजरता हूँ कुछ और ही। इस प्रकार विचार करते-करते मै आत्मोन्मुख बना। उन्हीं दिनो में मॉरलरिआर्मामेंट के इन कार्यकर्त्ताओं से मेरी भेंट हुई और मै इधर झुका। अब इसका प्रचारक बन गया हूँ।

आचार्य-श्री—हम भी यही कहते हैं कि किसी भी बात का प्रचार करना तभी सार्थक हो सकता है जब वह जीवन में पूर्णतया उतर जाय। आपको जिज्ञासा होगी कि हम अणुव्रतों का प्रचार करते हैं, तो क्या हम अणुव्रती है? हमारे यहाँ दो धाराएँ चलती हैं, महाव्रत और अणुव्रत। हम लोग महाव्रती है, पैदल चलते हैं, किसी भी सवारी का उपयोग नहीं करते। हमारे पास एक भी पैसा नहीं, जमीन, मठ, मंदिर नहीं। यहाँ तक कि हमारे पास भोजन का भी कोई प्रबन्ध नहीं। हमारी भोजन-व्यवस्था भिक्षावृत्ति से चलती है, हम किसी एक घर का खाना नहीं लेते, बिना किसी भेद भाव के अनेक घरों में जाते हैं और थोड़ा-थोड़ा लेकर अपनी आवश्यकता को पूर्ण कर लेते हैं। यह चर्या महाव्रतियों की है।

अणुव्रती वे है जो इनको आंशिक रूप में पालते हैं। हम अणुव्रतों का सब वर्गों में, सब जातियों में प्रचार करते हैं। हम लोग हृदय परिवर्तन पर ही जोर देते हैं। आप लोग (मो० रि० संस्थापक) 'बुकमैन' से कहिये कि वे जो हृदय परिवर्तन के माध्यम से काम करते हैं, उसे स्थायित्व देने के लिये उसके लिये कुछ नियम भी आवश्यक हैं। अणुव्रत

आंदोलन और मॉरल रिआर्मामेंट दोनों मिलकर कुछ करें तो नैतिक जागृति का अच्छा काम हो सकता है।

एक कार्यकर्ता—यह इसकी शुरूआत समझनी चाहिये।

आचार्य-श्री—आप के इस प्रचार के विषय में कुछ आक्षेप भी सुनने को मिले है।

एक कार्यकर्ता—हो सकता है कि लोग इसकी नैतिक चुनौती सहन न कर सके हों।

आचार्य-श्री—हाँ, ऐसा भी हो सकता है, पर मैंने साधारण आदमियों से नहीं अच्छे लोगों से सुना है। कुछ लोगों का कहना है कि इसका प्रचार जो नाटकों और नृत्यों द्वारा किया जाता है, उसका प्रभाव जनता पर अच्छा नही पड़ता। कुछ व्यक्ति इसे राजनैतिक चाल समझते है तो कुछ ईसाई बनाने का तरीका मात्र मानते है। इसमें उनकी कोई श्रद्धा नहीं, उलटा इसे घृणा की दृष्टि से देखते है।

एक कार्यकर्ता—आचार्य-श्री सब चीजों का सब तरह ध्यान रखते है। आपने इसका कितनी गहराई से अध्ययन किया है।

आचार्य-श्री—आप की जो आलोचना की जाती है उसको यद्यपि मै पूर्णतया ठीक नही मानता पर इस विषय में आप को काफी सतर्क रहना चाहिये। क्या आंदोलन के सदस्यों के लिये आवश्यक है कि वे मांस न खायें, नशा न करे ?

कार्यकर्ता—ऐसा कोई नियम नहीं है। पर हम मद्य निषेध की चेतावनी जरूर दे देते है।

आचार्य-श्री—क्या सदस्यों का रजिस्टर है ?

कार्यकर्ता—नहीं।

आचार्य-श्री—भारत में इसका प्रचार कहाँ कहाँ हुआ है।

कार्यकर्ता—बंबई, पूना, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े शहरों में तथा कहीं-कहीं गाँवों में भी इसका कार्य चालू है।

मन्थन (९)

'इंडियन एक्सप्रेस' के समाचार सम्पादक के साथ

धन-धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं

ता० ६ दिसंबर १९५६ को १९ बाराखंभा रोड पर "इंडियन एक्सप्रेस" के समाचार सम्पादक श्री चमनलाल सूरी आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आये। आते ही उन्होंने पूछा—आचार्य जी आप यहाँ कहाँ से आये हैं और क्यो आये हैं ?

आचार्य प्रवर ने अपना उद्देश्य समझाते हुये आंदोलन की बात बताई और कहा, अणुव्रत आंदोलन को आज राष्ट्र की पूर्ण मान्यता प्राप्त है और जन-जन मे इसकी चर्चा है।

सूरी—दिल्ली नगर में इसकी कैसी प्रगति है ?

आ०—यहाँ इसका अच्छा कार्य चल रहा है, लोगो ने इसकी भावना समझी है और यथाशक्ति इसको जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है। थोड़े ही दिन पहले यहाँ 'विद्यार्थी अणुव्रत पक्ष' चला था, जिसमें अनेक छात्रों ने नशा न करने की तथा नैतिक जीवन विताने की प्रतिज्ञा ली थी। उससे पहले व्यापारियों में भी इस प्रकार का कार्यक्रम चल चुका है। उसमें मिलावट न करने की, कम तोल माप न करने की प्रतिज्ञाएँ रखी गई थीं और उन्होने उनका स्वागत किया था। इस प्रकार हम जन साधारण में विचार क्रांति पैदा करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे प्रचार का माध्यम अणुव्रत-आंदोलन है। किन्तु इसके प्रसार में जितना सहयोग अपेक्षित है, उतना नहीं मिल रहा है।

सूरी—कई वार कई समाचार पत्रों में आंदोलन की चर्चा पढते हैं

किन्तु मैं भी यह मानता हूँ कि हम पत्रकार इसमें विशेष हाथ नहीं बटा रहे हैं।

आचार्य-श्री—यह पत्रकारों की गलती है। मैं आप से यह कहूँगा कि आप इस आंदोलन की भावना को सही-सही समझने का प्रयास करें। फिर आप को जैसा लगे, उसे हमें बतायें। केवल इससे दूर रह कर आप एक बहुत बड़े कर्तव्य से वंचित रह जाते हैं। मैं आप से यह नहीं कहता कि आप जबर्दस्ती इसके प्रसार में समय लगावें। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि यदि आप नैतिकता का प्रचार अपने जीवन का एक कर्तव्य मानते हैं तो फिर उससे क्यों पीछे रहते हैं ?

मन्थन (१०)

श्री मोरारजी देसाई के साथ

अनशन आत्मशुद्धि

ता० ६ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल पंचमी समिति से निवृत्त हो अपने प्रायः सभी साधुओं सहित आचार्य प्रवर केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मोरार जी देसाई की कोठी पर पधारे। पीछे की तरफ के बरामदे में आचार्य-श्री एक छोटे से पट्ट पर आसीन हुए। मोरार जी भाई आए और वन्दना कर नीचे बिछे आसन पर बैठ गये। प्रायः एक घण्टे तक अति मधुर संवाद हुआ। लगभग ४०-५० भाई बहिन साथ में थे।

शिष्टाचार की बातों के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार आपने जो अनशन किया, उसमें आप पानी के अतिरिक्त क्या लेते थे ?

मो०—पानी में कुछ नींबू का रस मिला दिया जाता था, वही मै लेता था।

आ०—आपने उसमें क्या अनुभव किया ?

मो०—मुझे विशेष शान्ति का अनुभव हुआ। मानसिक द्वन्द्व नष्ट हो गये। अनशन में मेरी यह भावना बलवती बनी कि हिंसा कभी हिंसा से नही मरती, अहिंसा से ही उसको मिटाया जा सकता है। वही हुआ। मुझ से कुछ लोगों ने कहा, "शरीर निर्बल हो रहा है, अनशन तोड़ दीजिए"। पर मैने कहा-मेरा प्रण जब पूरा होगा, तभी इस विषय में सोचा जायगा। शारीरिक अस्वस्थता मुझे जरूर सताती थी पर उससे मेरा मनोबल शिथिल नही पड़ा, प्रत्युत बढ़ा। भौतिक पदार्थ प्राप्ति के लिये जो अनशन करते है वह ठीक नहीं। आत्मशान्ति के लिए ही उसका उपयोग होना चाहिए।

आ०—हाँ, यह ठीक है। जीवन का या जीवन के अंशों का उत्सर्ग आत्म शान्ति के लिए ही होता है, बाह्य शान्ति तो स्वतः सध जाती है। अभी थोड़े दिन पहले सरदार शहर में हमारे एक साधु श्री सुमतिचन्द जी ने आत्म साधना के लिए आजीवन अनशन किया था। उनकी सारी घटना आचार्य-श्री ने उन्हें सजीव शब्दों में कह सुनाई। श्री मोरारजी भाई रोमांचित हो उठे। बीच बीच में कई जिज्ञासायें भी कीं—वार्त्तालाप का अच्छा असर रहा।

अणुव्रत आन्दोलन की बात चलने पर मोरारजी भाई ने कहा—अच्छा है आप प्रेरणा दे रहे है। आपका यही कर्तव्य है और आप उसे पूरी तरह निभा रहे है। आपके इन प्रयत्नों से लोग लाभ उठायें या नहीं यह उनकी इच्छा है। व्यक्ति स्वयं ही अपना सुधार कर सकता है। दूसरे केवल प्रेरणा दे सकते हैं, सुधार नहीं सकते। आप अपना कार्य करते रहें।

आ०—अब आप पर और अधिक वजन आ गया है।

मो०—हां, मै तो इस झमेले से निकलना चाहता था। लेकिन

विविवश और ज्यादा फंस जाता हूँ। जितनी ही असंग्रह की भावना करता हूँ उतना ही संग्रह के जालों में ढकेल दिया जाता हूँ।

बीच में संतों ने कहा—"कांग्रेस के कोषाध्यक्ष भी आप ही हैं"

मो०—हाँ ऐसा ही कुछ योग है। मुझे इसमें कुछ रस नहीं आता। मेरी रुचि का विषय है अध्यात्मवाद। उसमें रस आता है।

आ०—सुना है केन्द्र में दीक्षा और बालदीक्षा विषयक कोई बिल आने वाला है।

मो०—हाँ ऐसी कुछ चर्चा तो है।

आ०—किन्तु इस प्रकार के बिल अध्यात्मवाद के प्रतिकूल पड़ेंगे। यह धर्म के मामलों में हस्तक्षेप है। इस विषय में आप लोगों को सोचना चाहिये। बम्बई असेम्बली में जब बालदीक्षा के विरोध में बिल आया था तब आपने जो कुछ कहा था उसका अच्छा असर रहा। लोगों को उस विषय में सोचने का मौका मिला था।

मो०—मैं तो इस बार भी चूकनेवाला नहीं हूँ, वैसे ही बोलूँगा। डटकर बिल का विरोध करूँगा। पर हूँ अकेला। नैतिक शक्ति अकेली भी बहुत बड़ी चीज है ऐसा मेरा विश्वास है।

समय काफी हो गया था। आचार्य-श्री को दूसरी जगह पधारना था। वार्ता को वहीं समाप्त किया। श्री मोरार जी भाई ने वन्दना की। आचार्य-श्री ने वहां से प्रस्थान कर दिया।

राजर्षि टंडनजी के यहाँ

आचार्य-श्री श्री मोरार जी देसाई के यहां से राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास जी टंडन के निवास स्थान पर पधारे। टंडन जी बीमार थे इसलिये अणुव्रत गोष्ठी में आने की इच्छा होते भी न आ सके। अपनी बीमारी के कारण उन्होंने कहा था—मैं आचार्य-श्री से मिलना तो जरूर चाहता हूँ पर मैं तो असमर्थ हूँ। वहाँ जा नहीं सकता। आचार्य-श्री यहाँ आवेंगे तो उन्हें बहुत कष्ट होगा। अतः उन्हें यहाँ आने का निवेदन कैसे करूँ।

आचार्य प्रवर उनके श्रद्धाशील मानस की भावना को जानकर उनके घर पधारे। वहाँ पहुँचते ही भदंत आनन्द कोसल्यायन (बौद्ध विद्वान) अन्दर से निकल ही रहे थे, आचार्य-श्री से उनकी मुलाकात हुई। कुछ थोड़ी सी बातचीत भी हुई। टंडन जी ने लेटे लेटे ही हाथ जोड़ प्रसन्नता प्रगट की।

टंडन जी बहुत ही अशक्त थे। बोलने में कष्ट होता था। फिर भी उन्होंने कम्पित स्वर में कहा—"आप में बौद्धिक चिंतन है, आप समाज का मूल-ग्राह से उद्धार कर सकते हैं, आपमें यह सामर्थ्य है"।

आचार्य श्री ने उन्हें 'मंगल पाठ' सुनाया। श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े वे उसे सुनते रहे।

९-१० मील के विहार के बाद आचार्य श्री ११½ बजे वापिस निवास स्थान पर लौट आये।

मन्थन (११)

विदेशी मुमुक्षुओं के साथ

जैनागम शब्द कोष पर चर्चा

७ दिसम्बर १९५६ की रात्रि में जर्मनी के तीन विद्वान श्री अल्फ्रेड वायर, फ्रेल्ड वाल्टर लाइफर, वार्न हाई हाइवेच और अमेरिका की एक महिला आचार्य-श्री से मिले।

आचार्य प्रवर ने उनको तेरापंथ व जैन मुनियों के संबन्ध में विस्तृत जानकारी दी। 'तेरापंथ' का अर्थ सुन वे अतीव प्रसन्न हुए।

आचार्य ने कहा—"हमारे यहाँ अनेक भाषाओं का अध्ययन

चलता है। "जैनागम शब्द कोष" के निर्माण की एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति चालू है। कुछ कार्य हुआ भी है।

मिस्टर वाल्टर ने कहा—हाँ हमें इसकी सूचना मिली है। जर्मन विद्वान डा० रोथ आपके वहाँ गये थे। तब उन्होंने जर्मन दूतावास तथा जर्मनी वासियों के अन्य स्थानों में यह सूचना प्रसारित की थी कि— "आप लोग कभी अवश्य समय निकालकर आचार्य-श्री तुलसी से मिलें। वे एक स्वस्थ धार्मिक संस्था के नेता हैं। इसके अनुशासन में अत्यंत व्यवस्थित रूप में आत्म साधना तथा अन्य सफल साधनायें चलती हैं। यहाँ जो जैनागमों का एक शब्दकोष तैयार हो रहा है, उसे देखकर आश्चर्यान्वित रह गया। इसके निर्माण में अनेक साधु लगे हैं।" इस सूचना के फलस्वरूप हम आपके दर्शनार्थ आये हैं।

मन्थन (१२)

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू के साथ

अणुव्रत आन्दोलन में नेहरू जी की आस्था

८ दिसम्बर १९५६ की प्रातःकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग उपस्थित हुआ, जब दो महान् नेताओं का एक दूसरे के साथ चिरप्रतीक्षित सम्मिलन हुआ। आचार्य-श्री ने मानव के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक निर्माण का जो दायित्व अपने कन्धों पर ओढ़ा है, उसके कारण उनका व्यक्तित्व वैसे ही एक आकर्षण का विषय बन गया है जैसे कि हमारे नेता श्री नेहरू के व्यक्तित्व के प्रति गूढ़तम अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कारण एक आकर्षण उत्पन्न हो गया है। एक राजनैतिक क्षेत्र में महान्

हैं तो दूसरे आध्यात्मिक क्षेत्र में वैसी ही महानता सम्पादन किये हुए हैं। आज वास्तव में ही गंगा-जमना की दो विशाल धाराओं का संगम हुआ।

प्रधान मंत्री श्री नेहरू की कोठी पर

८॥ बजे आचार्य-श्री पंडित नेहरू की कोठी पर पधारे। पंडित जी की सेक्रेटरी श्रीमती विमला ने आचार्य-श्री का स्वागत किया। २८ साधु और साध्वियां तथा सैकड़ों गृहस्थ साथ थे। कोठी के पिछले बरामदे में साधुओं ने पट्टा बिछाया। नेहरू जी २० मिनट बाद आये। आचार्य प्रवर ने साधु-साध्वियों का परिचय कराया। फिर साधु साध्वियाँ एक ओर बैठ गये। पंडित जी आचार्य-श्री के पट्टे के पास बिछे हुए आसन पर बैठ गये और बातचीत आरम्भ हुई।

आचार्य-श्री ने कहा—आप २० मिनट लेट हैं।

नेहरू जी—हाँ, आवश्यक तार आया था और मेरी बेटी बीमार है, इसलिये विलम्ब हो गया

आचार्य-श्री—ठीक ५ वर्ष बाद मिलन हो रहा है। इस वर्ष हमारा चातुर्मास सरदार शहर था। हमारे साधु आपसे मिले थे। आन्दोलन के बारे में आपको जानकारी दी थी। उसकी प्रगति से अवगत कराया था। विद्यार्थियों के कार्यक्रम में आपने भाग लेने को कहा था। और "आचार्य श्री को यहाँ बुलाइये" यह भी कहा था। मैंने इस पर यहाँ आने का निर्णय किया। इसके साथ दूसरा कारण यूनेस्को सम्मेलन भी है। इन दोनों कारणों से मै अभी अभी यहाँ आया हूँ। १८ नवम्बर तक तो चातुर्मास था, इसलिये उससे पहले हम वहाँ से चल नहीं सकते थे। ता० २९ नवम्बर को चले, ३० को यहाँ पहुँच गये।

पंडित जी ने आश्चर्य भरे शब्दों में कहा—बहुत कठिन कार्य है। आपने शरीर के साथ ज्यादती की।

आचार्य-श्री—मै चाहता हूँ आज हम स्पष्टरूप से विचार विमर्श करें। हमारा यह मिलन औपचारिक न होकर वास्तविक हो।

हम जानते हैं कि गांधीजी व आप लोगों के प्रयत्नों से भारत को आजादी मिली। पर आज देश की क्या स्थिति है, चरित्र गिरता जा रहा है। कुछेक व्यक्तियो को छोड़कर देश का चित्र खींचा जाये तो वह स्वस्थ नहीं होगा। यही स्थिति रही तो भविष्य कैसा होगा ? बात ठीक है, पर किया क्या जाय ? कोरी बातों से चरित्र उन्नत नहीं होगा। लोगों को कुछ काम दिया जाय तब वह होगा। काम से मेरा मतलब बेकारी मिटाने का नहीं है। काम से मेरा मतलब है चरित्र सम्बन्धी कोई काम दिया जाय। यही मै चाहता हूँ। अणुव्रत आन्दोलन ऐसी ही स्थिति पैदा करना चाहता है। हम छोटे छोटे व्रतों के द्वारा जीवन स्तर को ऊँचा उठाना चाहते हैं। पाँच वर्ष पूर्व मैंने आपको इसकी गतिविधि बताई थी। आपने सुना अधिक, कहा कम। आपने आज तक कुछ भी सहयोग नही दिया। सहयोग से मतलब हमें पैसा नही लेना है। यह आर्थिक आन्दोलन नहीं है।

नेहरू—मैं जानता हूँ आपको पैसा नहीं चाहिये।

आ०—इस आन्दोलन को मै राजनीति से जोड़ना नही चाहता।

नें०—मै तो राजनीतिक व्यक्ति हूँ, राजनीति से ओतप्रोत हूँ, फिर मेरा सहयोग क्या होगा ?

आ०—जैसे आप राजनीतिक हैं, वैसे स्वतंत्र व्यक्ति भी है। हम आपके स्वतंत्र व्यक्तित्व का उपयोग चाहते हैं—राजनीतिक जवाहर लाल नेहरू का नहीं। पहली मुलाकात में आपने कहा था—"मै उसे पढ़ूँगा" पता नहीं आपने पढ़ा या नहीं।

नें०—मैने यह पुस्तक (अणुव्रत आन्दोलन की) पढ़ी है, पर मैं बहुत व्यस्त हूँ। आन्दोलन के बारे में मैं कह सकता हूँ।

आ०—आपने कभी कहा तो नहीं, दूसरा कोई कारण है ? या तो यह हो सकता है कि आप इस आन्दोलन को उपयोगी नहीं समझते। बीच में नेहरू जी ने कहा यह कैसे हो सकता है ? या यह हो सकता है कि आपको इसमें साम्प्रदायिकता जैसी कोई बात लगती है। वेषभूषा को देख

आपको यह लगता हो कि ये हमारे द्वारा कोई स्वार्थ साधना चाहते हों, पर मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मैं जैन हूँ। जैन धर्म में विश्वास करता हूँ। जैन श्वेताम्बर तेरापंथ संप्रदाय का संचालक हूँ। पर इस आन्दोलन के द्वारा कोई स्वार्थ साधन नहीं चाहता। यह आन्दोलन व्यापक है। जाति सम्प्रदाय आदि भेदों से परे है। इस पर भी किसी को सांप्रदायिक लगे तो दूसरी बात है—यूँ तो आप भी हिन्दू हैं। किन्तु राजनैतिक नेतृत्व हिन्दूपन से नहीं है।

ने०—मै जानता हूँ आपका आन्दोलन सांप्रदायिकता से परे है। ठीक चल रहा है।

आ०—हमारे सैंकड़ों साधु-साध्वियाँ चरित्र-विकास के कार्य में संलग्न हैं। उनका आध्यात्मिक क्षेत्र में यथेष्ट उपयोग किया जा सकता है।

ने०—क्या 'भारत साधु समाज' से आप परिचित हैं ?

आ०—जिस भारत सेवक समाज के आप अध्यक्ष हैं, उससे जो सम्बन्धित है, वही तो ?

ने०—हाँ, भारत सेवक समाज का मैं अध्यक्ष हूँ। यह राजनैतिक संस्था नहीं है। उसी से सम्बन्धित वह 'भारत साधु समाज' है।

ने०—आप श्री गुलजारीलाल नन्दा से मिले हैं ?

आ०— पाँच वर्ष पहले मिलना हुआ था। भारत साधु समाज से मेरा सम्बन्ध नहीं है। जब तक साधु लोग मठों और पैसो का मोह नहीं छोड़ते तब तक वे सफल नहीं हो सकते।

ने०—साधुओं ने धन का मोह तो नहीं छोड़ा है। मैने नन्दा जी से कहा भी था तुम यह बना तो रहे हो पर इसमें खतरा है।

आ०—जो मै सोच रहा हूँ, वही आप सोच रहे है। आज आप ही कहिये, उनसे हमारा सम्बन्ध कैसे हो ?

ने०—उनसे आपको सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता भी नहीं है। साधु समाज अगर काम करे तो अच्छा हो सकता है, ऐसी मेरी धारणा

है। पर काम होना कठिन हो रहा है।

आ०—आपको पता है, अभी तीन दिनों तक 'अणुव्रत गोष्ठी' चली थी।

ने०—हाँ, मैंने पत्रों में पढ़ा है।

आ०—उसमें लोग आपका उपयोग लेना चाहते थे, पर स्थितिवश वैसा नहीं हो सका। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और श्री अनन्तशयनम् अय्यंगार भी अस्वस्थ्य व पारिवारिक उलझनों के कारण 'अणुव्रत गोष्ठी' का उद्घाटन नहीं कर सके। यह कार्य यूनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स द्वारा हुआ। उन्हे अणुव्रत आन्दोलन बहुत भाया। [पं० नेहरू ने यह बहुत आश्चर्य से सुना।] मैंने उन्हें (लूथर इवेन्स को) यूनेस्को द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर "मैत्री दिवस' मनाने का सुझाव दिया। वे सोचेंगे—ऐसा उन्होंने कहा। मै आपसे सुझाव लेना चाहता हूँ। क्या विचार है ?

ने०—कैसे ?

आचार्य-श्री ने उसका स्पष्टरूप समझाया और कहा, यह दिवस विश्व मैत्री की दृष्टि से आपके पंचशील की आधार शिला बन सकता है।

ने०—पंचशील ! मैंने चलाया तो नहीं, काम में जरूर लिया है। (पूर्व प्रसंग को छूते हुए कहा) यह (मैत्री दिवस मनाने का) काम तो अच्छा है, पर चलने से ही। यह चले तो इसके सम्बन्ध में मै कह सकता हूँ, कुछ कर सकता हूँ।

आ०—पंचशील के बारे में आप विश्वस्त है कि सब लोग ठीक पाल रहे है।

ने०—नहीं, ऐसा तो नहो है।

आ०—इस विषय में आपको सोचना चाहिये।

ने०—सोचने का समय नहीं है। बहुत व्यस्त हूँ। सोचने का अवकाश मिल नहीं रहा है।

आ०—डा० लूथर इवेन्स ने चाहा था कि मैत्री दिवस के बारे में

विज्ञान भवन में मै कुछ बोलूँ। उन्होंने सरकार को पत्र भी लिखा होगा किन्तु उन्हें अनुमति नहीं मिली।

ने०—यह अस्वीकृत क्यों किया गया, मुझे पता नहीं है।

आ०– यह तो मुझे भी मालूम नहीं है।

इसके पश्चात् कुछ अंतरंग बाते भी हुईं। तेरापन्थ और उसकी स्थिति के बारे में वार्तालाप हुआ। लगभग ४८ मिनट तक विचार विनिमय होता रहा। पाँच वर्ष पहले हुई मुलाकात में पंडित जी ने सुना अधिक और बोले कम। इस बार चर्चा में बहुत अधिक रस लिया।

वार्तालाप की समाप्ति पर पंडित जी ने कहा—"आन्दोलन की गतिविधि को मै जानता रहूँ, ऐसा हो तो बहुत अच्छा रहे। आप नंदा जी से चर्चा करते रहिये। मुझे उनके द्वारा जानकारी मिलती रहेगी। मेरी उसमे पूरी दिलचस्पी है।"

वार्तालाप की समाप्ति के बाद नेहरू जी आचार्य श्री को कोठी से नीचे तक पहुँचाने आये।

मन्थन (१३)

श्री अशोक मेहता के साथ चुनाव शुद्धि पर चर्चा

प्रवचन के बाद ९ दिसंबर १९५६ को समाजवादी नेता श्री अशोक मेहता आचार्य-श्री के साथ विचार-विनिमय करने आये। श्री मेहता ने पूछा—आजकल आपका कार्यक्रम कहाँ चलता है?

आचार्य-श्री—हमारे साधु-साध्वियां देश के विभिन्न भागों में,

जहाँ जहाँ वे पर्यटन करते हैं, वहाँ हमारा जन जन में नैतिक निर्माणकारी काम चल ही रहा है । दिल्ली में अच्छा कार्यक्रम चल रहा है ।

श्री मेहता—अणुव्रती व्रत लेते है, वे उनका पालन करते है या नही, इसका आपको क्या पता रहता है ?

आचार्य-श्री—प्रतिवर्ष होने वाले अणुव्रत अधिवेशनों में जब अणुव्रती परिषद् के बीच अपनी छोटी छोटी गलतियों का भी प्रायश्चित्त करते है, इससे पता चलता है, वे व्रत पालन की दिशा में सावधान है । कई लोग वापस हट भी जाते हैं । इससे भी ऐसा लगता है कि जो प्रतिवर्ष व्रत लेते है, वे उन्हें दृढ़ता से पालते है । अणुव्रतियों में अधिकांश जो हमारे सम्पर्क में आते रहते है, उनकी सार सम्हाल तो मै और सौ-सवासौ जगह अलग-अलग घूमने वाले हमारे साधु-साध्वियां लेते रहते है । कठिनाई के कारण अगर कोई व्रत नहीं पाल सकता तो उसे अलग कर दिया जाता है और ऐसा हुआ भी है । इस पर से खरे उतरने वाले अणुव्रतियों का भाग नब्बे प्रतिशत रहता है ।

हम नैतिक सुधार का जो काम कर रहे है, उसमें हमें सभी लोगों के सहयोग की अपेक्षा है । रुपये पैसे के सहयोग की हमें अपेक्षा नहीं है । हम चाहते है अच्छे लोग यदि समय समय पर अपने आयोजनों में इसकी चर्चा करते रहें तो इससे आंदोलन गति पकड़ सकता है । अतः हम आपसे भी चाहेंगे कि आप हमें इस प्रकार का सहयोग दें ।

श्री मेहता—उपदेश करने का तो हमारा अधिकार है नही, क्योंकि हम लोग राजनैतिक व्यक्ति है । राजनीति में जिस प्रकार हमने निर्लोभ सेवा की है, उस पर से हमें उसके संबंध में कहने का अधिकार है । पर धर्म का हम उपदेश नहीं कर सकते और करना भी नहीं चाहिये । वैसे मै तो कभी कभी इसकी चर्चा करता हूँ और आगे भी करता रहूँगा ।

चुनाव के संबंध में किये जाने वाले कार्यक्रम को लेकर जब उन्हें उनकी पार्टी का सहयोग देने के लिये कहा गया तो उन्होंने कहा— मैं

तो अभी यहाँ रहने वाला हूँ नही। हमारी पार्टी के दूसरे सदस्य इस कार्यक्रम में जरूर भाग लेंगे। पर काम केवल घोषणा से नही होने वाला है। इसके लिये तो खड़े होने वाले उम्मीदवारों और विशेषतः जनता को जागरूक बनाने की आवश्यकता है। अतः आप जनता में भी कार्य करें।

आचार्य श्री—हाँ, यह तो हम कर ही रहे है। अभी जब हम गाँवो में से गुजर रहे थे तो एक जगह देहाती लोग मेरे पास आये और बोले—महाराज ! हम भले बुरे को जानते नही, हमारे पास अनेक लोग वोट लेने आयेंगे, आप ही बता दीजिये कि हमें वोट किसको देना चाहिये ? औरों को तो हम जानते है नही, आप कहेंगे उन्हे वोट देंगे।

मैंने कहा—भाई ! यह तो तुम स्वयं जानो पर एक बात मै तुम लोगों से जरूर कहूँगा कि वोट लेने के लिये कम से कम अपने आपको तो मत बेचो। इस प्रकार जनता में हमारा प्रयास चालू है। इसको हम उम्मीदवारों में भी शुरू करना चाहते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का आगमन

व्याख्यान के बाद दिन में श्री एन० उपाध्याय आचार्य के दर्शनार्थ आये। काफी समय तक विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ।

आहार के बाद संसदसदस्य सेठ गजाधरजी सौमाणी से दान-दया आदि के बारे में कुछ देर तक बात चली।

तदनंतर कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण और उनकी पत्नी श्रीमती मदालसा जी आई। उनसे "राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण अणुव्रत सप्ताह" के बारे में विचार विनिमय हुआ। उन्होने उसमें बड़ी अभिरुचि दिखाई और अपने सुझाव भी रखे। सायंकाल प्रार्थना के बाद आज "सामूहिक ध्यान" का कार्यक्रम हुआ।

श्री गुलज़ारी लाल नन्दा के साथ नैतिक सुधार के आन्दोलन

ता० ६ दिसंबर १६५६ को प्रार्थना के बाद केन्द्रीय योजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—मै आज सुबह आपके दर्शनार्थ आने वाला था। मैंने पता भी लगाया पर आप सुबह कहीं प्रवचन करने गये हुये थे। मेरा तो आप से पुराना सम्पर्क है। नेहरू जी ने मुझे कहा था कि आचार्य-श्री तुलसी जो काम कर रहे हैं, उससे मुझे अवगत रहना चाहिये।

आचार्य-श्री— हाँ, पॉच वर्ष पहले आप मिले थे, उसके बाद मिलना नहीं हुआ। आपने जो "भारत साधु समाज" नामक संगठन किया है, उसके विकास आदि के लिये काफी समय देना पड़ता होगा ?

नंदा—हॉ, जो काम प्रारम्भ किया है, उसके लिये समय तो देना ही पड़ता है, अन्यथा वह चीज पनप नहीं सकती।

आचार्य-श्री—देश में नैतिक सुधार के जो काम चालू है, उनसे भी आपको परिचित रहना चाहिये। क्योंकि वे भी देश के लिये ही हैं।

नंदा—यह तो ठीक है, नैतिक उत्थान का कार्य किधर से भी हो, वह प्रशंसनीय है। मैं आपके आन्दोलन से परिचित हूँ। लेकिन अपने अपने क्षेत्रों के अनुसार सुधार का काम अपने अपने तरीकों से हो रहा है। उसमें एक रूपता नहीं आती और संगठन का महत्व भी उसमें नहीं आता। अतः मिलकर काम किया जाये तो अधिक व्यवस्थित और अधिक सुन्दर काम होने की सम्भावना रहती है। आप भी इस विषय में हमारा सहयोग कर सके तो अच्छा रहे।

मन्थन (७५)

श्री महेन्द्र मोहन चौधरी के साथ
अणुव्रत आन्दोलन की भावना

१० दिसंबर १९५६ को सायं प्रतिक्रमण करने के बाद कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी श्री महेन्द्रमोहन चौधरी आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत-आंदोलन की जानकारी दी। विभिन्न वर्गों में चलते हुये नैतिक काम से अवगत कराकर आचार्य-श्री ने कहा—जनता को तो हमने इसकी काफी भावना दी, पर अब हम चाहते हैं कि ऊँची श्रेणी के लोग इसमें आयें। जब तक चोटी के लोग इसमें नहीं आयेंगे, तब तक जन साधारण इसका मूल्यांकन नहीं कर सकते। पानी ऊपर से नीचे जाता है और सारी धरती को आप्लावित कर देता है। यही बात प्रत्येक कार्यक्रम पर लागू होती है।

श्री महेन्द्रमोहन चौधरी ने कहा—हाँ, यह बात तो ठीक है और आपके बारे में तो यह बात हो भी गई है। जबकि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मोरारजी भाई, ढेबर भाई, नन्दा आदि से आपकी बात हो चुकी है। आप अपनी विचारधारा दे चुके हैं तथा उन्हें प्रभावित कर लिया है तो ऊँची श्रेणी के लोग तो सम्मिलित हो गये। पर मैं यह मानता हूँ कि इस प्रकार चार पाँच सुधरे हुये व्यक्तियों से जगत् का सुधार नहीं होता। उसके लिये तो आम जनता के साथ सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है। उनमें नैतिक भावनाओं के बल पर परिवर्तन करना चाहिये।

आचार्य-श्री ने कहा—हम लोग तो इस ओर भी पूर्ण सचेष्ट हैं। हमारे साधु-साध्वियों के १२० ग्रुप विभिन्न प्रान्तों में जन-मानस को जगाने का काम करते हैं। हम पैदल चलते हैं, इसीलिये गाँव निवासियों से भी अच्छा सम्पर्क रहता है। कोटि कोटि जनता में अपने विचार

बताने का यह सुगम रास्ता है। ग्रामीण जनता में श्रद्धा है, विश्वास है। साधुओं के सम्पर्क से वे अपनेको कृत-कृत्य समझते हैं और उनकी बाते बिना किसी ननु नच के स्वीकार करते हैं।

मन्थन (१६)

यू. पी. आई के डायरक्टर के साथ

आत्मवाद बनाम भोगवाद

१२ दिसंबर १९५६ को युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया के डाइरेक्टर श्री सी० सरकार आचार्य-श्री से भेट करने आये।

आचार्य-श्री ने कहा—आज विश्व में दो दृष्टियाँ प्रमुख हैं—एक आत्मवाद को देखती है तो दूसरी भोगवाद की ओर दौड़ती है।

आत्मवाद सत्य है, मौलिक है, उसमें दिखावा नही। किनारों पर चलने वालों के लिये वह कुछ नहीं। उसका मूल्य तो गहराई में जाने वाले पाते है। साधारण व्यक्ति गहरे उतरने वाले नही होते। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश लोग आत्मवाद से पराङ्मुख है। वे भोग की ओर झुके जा रहे है, क्योंकि भोग में चमक है। उसमें परवाने पड़ ही जाते है। वे यह नहीं सोचते कि उन्हें अन्त में तिल तिल जलना पड़ेगा।

आज लोगों की यही दशा है। बाहर का दिखावा ही बड़प्पन का मापदंड है। जिसके पास करोड़ों की सम्पत्ति है, मोटरों की कतार है, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ है, ठाटबाटपूर्ण सामग्री है—वही बड़ा माना जाता है। उसे ही सर्वत्र प्रमुख स्थान मिलता है। इस बड़प्पन के चंगुल में फँसकर मनुष्य अपनी मर्यादा से च्युत होने में भी नहीं सकुचाता।

आज हमें इस मूल्यांकन की दृष्टि को बदलना है। नैतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन करना है। इसके लिये हमें भगीरथ प्रयत्न करने होंगे। मैं समझता हूँ कि जननायक, जन सेवक, व्यापारी, वक्ता, साहित्यकार और पत्रकार का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे चरित्र-विकास की योजनाओं में यथाशक्ति सात्विक सहयोग दें। यदि वे ऐसा नहीं करते है तो वे अपने कर्त्तव्य से च्युत होते हैं। साधु-सन्तों का तो लोगों को सन्मार्ग पर लाना, चारित्रिक बनाना आदि काम सदा से रहा है और इस जिम्मेदारी को निभाते भी है। अभी अभी हम २०० मील की लम्बी यात्रा करके राजस्थान से यहाँ आये है। हम किसी वाहन का उपयोग नहीं करते, पैदल ही चलते हैं। हमारे उपकरण सीमित होते है।

सरकार—तो क्या आप इतने वस्त्रो से ही काम चला लेते है ?

आचार्य श्री—हाँ, हम शीतकाल भी इन्हीं वस्त्रों से गुजार देते है। हम रूई का बना भी कोई वस्त्र काम में नहीं लाते।

सरकार—ठीक है, आप में साधना और ब्रह्मचर्य की इतनी गर्मी रहती है कि बाह्य सर्दी पास भी नहीं आती।

आचार्य श्री—क्या आप अणुव्रत-आंदोलन से परिचित हैं ?

सरकार—हाँ, मैंने उसके नियम पढे हैं और उसके कार्यक्रमो से भी पूर्ण परिचित हूँ। प्रायः पत्रो मे इसकी चर्चा मिलती रहती है। यह आन्दोलन राष्ट्र के लिये हितकर है। मै अपने आपको इसके सहयोग मे प्रस्तुत करता हूँ।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने उन्हे "तेरापंथ" की विस्तृत जानकारी दी। संघ संगठन व विधान की बाते बताई। वे इससे बहुत ही प्रभावित हुए।

'टाइम्ज़ आफ़ इंडिया' के डिपुटी चीफ़रिपोर्टर के साथ

अणुव्रत आन्दोलन का उद्गम और विस्तार

१२ दिसंबर १९५६ को तीसरे पहर में अंग्रेजी के प्रमुख दैनिक 'टाइम्ज आफ़ इंडिया' के डिप्टी चीफ़ रिपोर्टर श्री रामेश्वरन आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—मैंने आप के अणुव्रत-आन्दोलन की बहुत चर्चा सुनी है तथा आप के साधुओं से मिलने का सुअवसर भी प्राप्त होता रहा है पर आन्दोलन के प्रवर्तक से साक्षात्कार तो आज ही हुआ है। मै चाहता हूँ कि मेरी जिज्ञासाओं का समाधान आप से पाऊँ।

कृपया बतलाइये—अणुव्रत-आन्दोलन का प्रारम्भ किस आधार पर हुआ ?

आचार्य-श्री—देश के नवयुवक मुझ से बार-बार कहा करते थे कि रूढ़ियों से आच्छन्न कार्यक्रमों में हमारी कोई श्रद्धा नहीं। हम चाहते है कि आपके हाथों ऐसा कोई रचनात्मक कार्य हो, जिससे देश की सुषुप्त चेतना जाग सके और हमें, विशेषतः नवयुवकों को जीवन-निर्माण की सही दिशा मिल सके। मै देश की दयनीय दशा को देखकर सोचा करता था कि राष्ट्र का चरित्र दिनों-दिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। उसके लिये कोई उपक्रम किया जाय। बस नौजवानों की प्रेरणा और मेरे चिन्तन का परिणाम अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात है।

रामेश्वरन्—इसे प्रारम्भ हुए कितने वर्ष हुए है ?

आचार्य-श्री—लगभग ८ वर्षों से यह चल रहा है। सरदार शहर

(राजस्थान) में इसका उद्घाटन हुआ था और इसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन देहली के चाँदनी चौक मे हुआ था, जिसमें लगभग ६५० व्यक्तियों ने अणुव्रत की प्रतिज्ञाएँ ली थी। आज तो यह संख्या लाखों में है।

रामेश्वरन्—आप कैसे जानते है कि वे अपने व्रत निभाते हैं ?

आचार्य-श्री—हम घूमते रहते है। अतः हमारा अणुव्रतियों से सहज मिलना हो जाता है। तब उनके आचरण, इधर उधर के व्यवहार तथा अन्य व्यक्तियों से सारी जानकारी मिल जाती है। साधु-साध्वियों के दलों द्वारा भी जाँच होती रहती है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है, उसमें प्रायः अणुव्रती भाई-बहिन सम्मिलित होते है तथा अपनी छोटी से छोटी भूल का भी प्रायश्चित्त करते है। यही उनके व्रत-पालन का प्रम.ण है।

रामेश्वरन्—भारत के कौन-कौन से भागों में अणुव्रती बने हैं ?

आचार्य-श्री—राजस्थान, दक्षिण भारत, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब आदि प्रान्तों में काफी संख्या मे अणुव्रती हैं। वैसे तो प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में अणुव्रती हैं।

रामेश्वरन्—क्या किसी ने अपना नाम वापस भी लिया है ?

आचार्य-श्री—हाँ, लगभग दस प्रतिशत ने अपना नाम वापस लिया है।

रामेश्वरन्—कौन-कौन लोग इसमें सम्मिलित हुए है ?

आचार्य-श्री—सभी धर्म, जाति और वर्ग के लोग इसमें आये है। धर्म की दृष्टि से हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई अणुव्रती बने हैं। जाति की अपेक्षा राजपूत, ब्राह्मण, वणिक, हरिजन आदि सम्मिलित हैं और वर्ग की अपेक्षा मंत्री, उद्योगपति, मजदूर, संसत् सदस्य, विधान सभाई, वकील, व्यापारी, न्यायाधीश, विद्यार्थी, अध्यापक आदि सभी वर्गों के लोग अणुव्रती है,

तत्पश्चात् "तेरापंथ" के बारे में भी कुछ चर्चा हुई।

दो बहनों की भेंट

मध्यान्ह में अखिल भारतीय महिला कांग्रेस कमेटी की मंत्रिणी

सुश्री मुकुल मुखर्जी तथा सुश्री कृष्णा दवे आचार्य-श्री के दर्शनार्थ आयीं।

आचार्य-श्री—क्या आप ने अणुव्रत-आन्दोलन का साहित्य पढ़ा है?

मु०—साहित्य देखा जरूर है किन्तु पढ़ने का अवसर नहीं मिला। पर मुनिजी (महेन्द्र मुनि) से इस विषय में काफी चर्चा हुई है। उनसे इसके पहलुओं पर अनेक बार विचार-विमर्श हुआ है।

आचार्य-श्री—अच्छा तो आप इसकी गतिविधि से परिचित हैं ही। कहिये आपने इसमें सहयोग देने के बारे में क्या सोचा है? क्योंकि कोई भी काम बल तभी पकड़ता है जब उसमे अनेक व्यक्ति लग जाते हैं और अपने-अपने क्षेत्र में उसकी भावना का प्रसार करते हैं। प्रचार का यह एक सुगम तरीका है कि जो लोग जहां काम करते हैं, वहां उसकी चर्चा करते रहे और उसके अनुकूल वातावरण बनाते रहे।

मु०—इसमें सहयोग की बात ही क्या है। यह तो हम सबका क म है कि ऐसे चारित्रिक आन्दोलनों को सब काम छोड़कर, हम गति दें। मैं अपने सम्पर्क में आने वाले भाई-बहिनों से इसकी चर्चाएँ करूंगी। हमारी कमेटी की २६ प्रान्तीय शाखाएँ हैं और ४०० समितियां हैं। हमें अगर अणुव्रत-आन्दोलन का साहित्य मिले तो हम उसे सारी जगह भिजवा दें तथा इसके अध्ययन की हिदायत भी देदें।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने साधु-साध्वियो के अध्ययन के बारे में विस्तृत जानकारी दी। आचार्य श्री ने कहा—हमारे यहां प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अनेक प्रान्तीय भाषाओं का सुचारु अध्ययन चलता रहता है। किन्तु अध्ययन किन्हीं वेतन भोगी पंडितो द्वारा नहीं होता। साधु ही एक दूसरे को पढ़ाते हैं। यही परम्परा आज भी चालू है। तत्पश्चात् साधु-साध्वियों द्वारा नव निर्मित कलात्मक वस्तुएं तथा सूक्ष्म लेखन के पन्ने दिखाये। हाथ से बनी इन कलात्मक वस्तुओं को देखकर उन्हे आश्चर्य हुआ और उन्होंने यह जाना कि तेरापंथी साधुओ का जीवन श्रममय है। वे अपनी आवश्यकता की बहुत-सी चीजे खुद ही बना लेते है।

श्री गुलजारीलाल नंदा के साथ दूसरी बार

साधु दीक्षा और क़ानून

१३ दिसम्बर १९५६ को प्रथम प्रहर में योजना मन्त्री श्री नन्दा ने पुनः आचार्य श्री से भेंट की। साधारण बातचीत के बाद आचार्य श्री ने कहा—धर्म करने का अधिकार सब स्थानों में, सब वर्गों में और सब कालों में खुला रहा है। इस पर किसी की भी जबरदस्ती नही चल सकती और होनी भी नही चाहिये। लेकिन हम सुनते है कि सरकार एक ऐसा कानून बनाना चाहती है कि कोई भी बिना लाइसेन्स के साधु नही बन सकेगा। मै समझता हूँ कि ऐसा करना सीधा अध्यात्मवाद पर प्रहार करना है। व्रत ग्रहण करने में उसकी योग्यता और वैराग्य वृत्ति ही प्रामाणिक मानी जाती है। वय से उसका सम्बन्ध जोड़ना ठीक नही और कानून से रोकना तो आत्मा-साधना का अधिकार छीनना है।

नंदा—मैं भी ऐसा समझता हूँ कि वैराग्य पर आयु का कोई प्रतिबन्ध नहीं। पर आजकल साधु वेश में अनेक ढोंगी, चोर और जघन्यवृत्ति के आदमी बढ़ते जा रहे है, इसीलिये ऐसी चर्चा चलती है।

आचार्य-श्री—पर इससे मतलब नही सधेगा, जो अनैतिकता से काम करने वाले है, वे तो फिर भी अपना धंधा इसी प्रकार चलाते रहेंगे। दुविधा केवल उनको होगी जो अपने नियमो से चलते है। देखिये—बाल-विवाह कानून निषिद्ध है फिर भी वे होते ही रहते है। कानून से हृदय नहीं बदलता इसीलिये हम इसे उपयोगी नहीं मानते।

दीक्षा के विषय में हम तो व्यक्ति के ज्ञान और व्यवहार को ही कसौटी मानते है। हमारे यहाँ दीक्षा देने का अधिकार एक मात्र आचार्य को ही है, अन्य किसी को नहीं। आचार्य भी काफी समय तक उसके आचार-विचार और स्वभाव की परख करते है। तदनन्तर प्रव्रजित करते है। ऐसी दीक्षा को कानून से बन्द करना कहाँ तक उचित है ?

नंदा—मै इस विषय पर विचार करूँगा। अब तक तो इस प्रकार का कोई बिल संसद् में नहीं आया है। कुछ लोगों का उसे लाने का विचार तथा प्रयत्न अवश्य है। अच्छा, आपने "भारत साधु समाज" के साथ मिलकर कार्य करने के विषय में क्या सोचा है ?

आचार्य श्री—नैतिक और चारित्रिक विशुद्धि का जहाँ तक सवाल है, हम उसके साथ है और अन्य विषयों से सम्बन्ध कम सम्भव लगता है। क्योंकि उसमें कुछ उद्योग भी सम्मिलित है, जो हमारी मर्यादा के अनुकूल नहीं बैठते।

नंदा—नहीं, ऐसा कोई औद्योगिक धन्धा तो उसके जिम्मे नहीं है। उसका लक्ष्य तो अध्यात्मवाद को फैलाना तथा साधु समाज को सुधारना है।

आचार्य-श्री—फिर भी हम लोग कोई भी चिट्ठी नही देते तथा अपने शास्त्रीय नियमों के अनुसार किसी सभा या समिति के अध्यक्ष, मंत्री और सदस्य नही बन सकते। और वैसे हम यही सुधार का काम कर रहे है। यह आवश्यक नही कि सब लोग एक ही प्रकार से काम करे।

इस प्रकार आधा घंटे तक विचार-विमर्श हुआ।

दो जर्मन सज्जनों के साथ

जीवन शुद्धि

१३ दिसम्बर १९५६ को मध्याह्न में जर्मन दूतावास के श्री वाल्टर लाइफर और श्री वार्नहार्ट हाइवेच ने आचार्य श्री से भेंट की। शिष्टाचार के बाद निम्न प्रश्नोत्तर हुए :—

लाइफर—आज दुनियाँ व्यथित है, बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को दबोच रहे हैं। परस्पर आक्रमण होते हैं। उनसे कैसे बचा जा सकता है और यहाँ अहिंसा कैसे काम कर सकती है ?

आचार्य-श्री—अहिंसा में आत्म-शक्ति होती है। उसमें शुद्ध प्रेम होता है। हम जब निश्छल प्यार करेंगे, अपनी तरफ से भय मुक्त कर देंगे और किसी भी प्रकार से बाधक न बनेंगे तो आक्रमण स्वतः बन्द हो जायेगा।

लाइफर—अणुव्रत-आन्दोलन का एक नियम है—"४५ वर्ष के बाद विवाह न करना" ऐसा क्यों ? भारत में १८-२० वर्ष की अवस्था मे विवाह हो जाते हैं, पर पाश्चात्य देशों में तो कहीं कहीं ४०-५० वर्ष के बाद प्रथम-विवाह होता है।

आचार्य-श्री—ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध संयम से है। वह यदि यौवन में न हो सका तो ढलती आयु मे तो अवश्य हो, यह इस नियम का उद्देश्य है। यहाँ (भारत मे) कुछ ऐसा चलता है कि ६०-७० वर्ष के बूढ़े दूसरा तीसरा विवाह करने के लिये तैयार होजाते हैं। अपने मन पर काबू नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में यह नियम उपयोगी है।

लाइफर—अणुव्रतों का प्रचार क्या सब धर्मों में और सब देशों में किया जा सकता है ?

आचार्य-श्री—हाँ, इसके नियमों का चयन ही कुछ इस प्रकार से किया गया है कि ये देश-विदेश सब जगह चल सकते है और सब धर्म वाले ग्रहण कर सकते है। क्योंकि ये नियम आत्मा है या नहीं, ईश्वर कर्ता है या अकर्ता ऐसे सैद्धान्तिक भेद डालने वाले नही, लेकिन नैतिक नियम है। जीवन में उतारने की चीजें है। इनमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

लाइफर—आन्दोलन ऐहिक सुख-सुविधा के लिये है या अदृष्ट जीवन के लिये ?

आचार्य-श्री—यह जीवन विशुद्धि के लिये है। जीवन शुद्ध होगा तो यहाँ भी शान्ति मिलेगी और इतर लोक में भी।

लाइफर—आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है या कोई अन्य ?

आचार्य श्री—आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है। कोई अन्य शक्ति नही।

लाइफर—हम जो अच्छा काम करते है, क्या उसके लिये ईश्वर का आशीर्वाद आता है ?

आचार्य-श्री—अच्छा अनुष्ठान स्वयं ही आशीर्वाद है। ईश्वर कोई आशीर्वाद नहीं भेजता ?

लाइफर—हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि ईश्वर अनुग्रह करता है पर ऐसा नहीं कि वह अनुग्रह धार्मिक पर ही करे, वह एक पापी पर भी कर सकता है। वह उसकी व्यक्तिगत चीज है। किन्तु वह प्रायः करता धार्मिक पर ही है, क्योंकि उसके लिये वही उत्तम भाजन होता है। फिर भी कभी-कभी देखा जाता है कि जो आजीवन पापों में लिप्त रहा, वह भी अन्तिम समय में धर्म-प्राण बन जाता है। यह प्रभु का अनुग्रह ही कहा जा सकता है। यहाँ तर्क नही चलता, केवल श्रद्धा काम देती है।

आचार्य-श्री—पूर्व अवस्था में जो व्यक्ति पापी रहा और अन्तिम अवस्था में धार्मिक बनता है, वह उसके आत्म-सुधार का ही परिणाम

है। ईश्वर का उसमें कुछ सहयोग हो, ऐसा जँचता नहीं। आप लोग अणुव्रत-आन्दोलन में क्या सहयोग कर सकते है ?

लाइफर—हमारे यहाँ भी ऐसे नैतिक नियमों की आवश्यकता है। पर वहाँ धार्मिकों को टेलीविजन, ब्राडकास्ट आदि पर मौका नहीं दिया जाता। अतः आप लोग सशक्त धार्मिक वहाँ आयें तो कुछ हो सकता है। मै विश्वास पूर्वक कहता हूँ कि इसका अच्छा असर पड़ेगा।

आचार्य-श्री—हम लोग पैदल चलते है। वहाँ जाना सम्भव प्रतीत नही होता। हम आपको ही अपना दूत बनाते हैं। आप अपने देश में यथा-सम्भव इसको फैलाने का यत्न करें।

लाइफर—हाँ, हमारा दूतावास इसके लिये यथा-शक्ति तैयार है। हम पत्रों द्वारा इसका प्रचार करेंगे, रिपोर्ट भेजेंगे और लोगों को इसकी जानकारी देंगे। आज हमने आपसे जीवन विशुद्धि का मार्ग प्राप्त किया है। हम आपके आभारी है। आपने जो अपना अमूल्य समय दिया है, हम वह कभी भूलेंगे नही। धन्यवाद।

मन्थन (२०)

अमरीकी महिला जिज्ञासुओं के साथ

जैन मुनि जीवन की मर्यादा

१४ दिसम्बर १९५६ को तीन अमेरिकन महिलायें आचार्य-श्री से भेंट करने आयीं। आचार्य-श्री ने जैन साधु जीवन का परिचय देते हुए उन्हें बताया—हम लोग आजीवन अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच महाव्रतों की साधना करते है। अहिंसा के लिए ही

हम पैदल चलते हैं। रात में नहीं चलते। अभी इन तीन वर्षों में हमने ५ हजार मील की यात्रा की है। हम बीच बीच में गांवों में ठहरते हैं। वहाँ उपदेश करते हैं। हम चातुर्मास के सिवाय एक मास से अधिक कहीं भी नहीं ठहरते। बीमारी का अपवाद है। हम रात्रि-भोजन नहीं करते। हरी घास पर नहीं चलते। मांस भी जैन साधुओं के लिये वर्ज्य है।

प्र०—भारत में जैन कितने हैं?

उ०—जन गणना में जैनों की संख्या १५ लाख आई है; पर मेरा खयाल है जैन ४० लाख से कम नहीं होने चाहिये।

प्र०—आपके भोजन की विधि क्या है?

उ०—हम भोजन नहीं पकाते और न हमारे लिये पकाया हुआ लेते हैं। गृहस्थ लोग अपने लिये जो बनाते हैं, उसका ही कुछ अंश ग्रहण कर हम अपना काम चला लेते हैं।

प्र०—दूसरे पकाते हैं, उसमें भी तो हिंसा होती होगी?

उ०—हाँ, पर वे तो स्वयं अपने लिए पकाते ही हैं। क्योंकि सारे तो साधु होते नहीं।

प्र०—साधु बनने में न्यूनतम अवस्था कितनी है?

उ०—अवस्था की दृष्टि से शास्त्रों में ९ वर्ष का विधान आया है पर साथ साथ में योग्य होना भी आवश्यक है। अयोग्य भले ही ६० वर्ष का क्यों न हो, दीक्षा नहीं हो सकती।

प्र०—कोई मनुष्य जानवर पर अत्याचार करे तो आप उस समय क्या करेंगे।

उ०—हम मारने वाले को उपदेश देंगे। हिंसात्मक तरीकों से बचाना हमारा काम नहीं है। क्योंकि हम हृदय परिवर्तन को ही धर्म मानते हैं।

प्र०—क्या आप पशुओं पर अत्याचार नहीं करने का उपदेश करते हैं?

उ०—अवश्य, इसीलिए तो हम किसी भी प्रकार की सवारी नही करते।

प्र०—पर मोटर, प्लेन आदि में तो किसी जानवर को कष्ट नही होता तो फिर आप उनमे क्यों नहीं बैठते ?

उ०—उनमें वैसे तो किसी जानवर को कष्ट होता नहीं दीखता, पर उनके नीचे आकर या उनके प्रयोग से छोटे छोटे जीव तो बहुत मरते ही है और बड़े जीव भी तो उनसे मर सकते हैं।

प्र०—कृषक खेती करते है। वे तो अहिसक नही हो सकते ?

उ०—हाँ, वे पूर्ण अहिंसक नही हो सकते।

प्र०—स्त्रियों के लिये क्या आपके धर्म मे समानता है ?

उ०—हाँ, जितने अधिकार पुरुष को है, उतने ही स्त्रियों को भी हैं। आत्म-विकास का सबको समान अधिकार है।

प्र०—क्या वे भी पैदल चलती हैं ?

उ०—हाँ। साध्वियाँ हजारो मील पैदल घूमती है।

प्र०—क्या वे उपदेश भी करती है ?

उ०—हाँ, बड़ी-बड़ी सभाओं में भी उनका उपदेश होता है और बहुत से लोग उनसे प्रभावित होकर अनेक बुराइयो का त्याग करते है।

हमारा दूसरा महाव्रत है सत्य। हम जीवन भर असत्य नहीं बोलते और वैसा सत्य भी नही बोलते, जिससे किसी का नुकसान होता हो। इसलिये हम न्यायालयो मे कभी गवाही नही देते।

तीसरा महाव्रत अचौर्य है। हम कोई भी चीज, बिना पूछे नही लेते। मकान भी पूछ कर ही लेते है और जब हमें मकान मालिक मना ही कर देता है तो हम उसी वक्त उसे खाली कर देते हैं।

प्र०—क्या आप पैसा नही रखते ?

उ०—नहीं, हमने तो अपना स्वयं का धन भी छोड़ दिया है।

प्र०—क्या आप जातिवाद को मानते हैं ?

उ०—नहीं, भगवान् महावीर ने जातिवाद को अतात्त्विक माना है।

प्र०—क्या आप पुनर्जन्म को मानते है ?

उ०—हॉ, क्योंकि आत्मा शाश्वत है। जब तक वह मुक्त नही बन जाती तब तक एक शरीर से दूसरे शरीर में आती रहती है। अतः पूर्व जन्म और पुनर्जन्म दोनों ही है।

प्र०—क्या विदेशों मे भी जैन धर्म का प्रचार है ?

उ०—हॉ, डा० हर्मन जैकोबी जैनधर्म के अच्छे ज्ञाता थे और भी बहुत से जैन श्रावक है। जर्मन भाषा में तो जैन दर्शन का बड़ा साहित्य है। रात में हम रजोहरण से आगे की जगह को पूजकर चलते है। हम लोग धातु मात्र नहीं रख सकते। अतः कॉटा निकालने के लिये भी हम काठ की बनी हुई चीपड़ी और शूल रखते है।

प्र०—आप धातु क्यो नहीं रखते ?

उ०—वह परिग्रह माना गया है। जीवनयापन के लिये वह आवश्यक भी नहीं है।

प्र०—क्या जैन साधु श्रम भी करते है ?

उ०—हॉ, पात्र-निर्माण, लेखन-चित्र, रजोहरण आदि चीजें वे अपने हाथ से ही तैयार करते है।

जब उन्हे पात्र, पत्र आदि दिखाये गये तो वे बड़ी प्रसन्न और आश्चर्यान्वित हुई और कहने लगीं —

प्र०—क्या आप इन्हे बेचते भी है ? आप हमें दे सकेंगे क्या ?

उ०—नहीं, ऐसे तो दे नही सकते। तुम भी अगर साध्वी बन जाओ तो तुम्हें भी दे सकते है। वह हंसने लगीं और कहने लगीं—वह तो हमसे नहीं होगा।

आचार्य-श्री ने कहा- एक दूसरी बात और है, हम जिस प्रकार सवारी पर नहीं चढ़ते, उसी प्रकार हमारी चीजे भी किसी सवारी में नहीं चढ़तीं।

वह हँसती हुई कहने लगीं—पैदल तो हम से अमेरिका नही जाया जा सकता।

प्र०—क्या आपकी साध्वियां दूसरो की सेवा कर सकती है ?

उ०—हाँ, वे आध्यात्मिक सेवा कर सकती हैं। हम गृहस्थों से न तो शारीरिक श्रम लेते है और न देते हैं।

प्र०—क्या आप भूखे को भोजन दे सकते है ?

उ०—हाँ, पर उसी अवस्था मे जब वह हमारे जैसा ही हो। हम जैसे शरीर पोषण के लिए नही खाकर, संयम निभाने के लिए खाते हैं, उसी प्रकार अगर कोई पूर्ण संयत व्यक्ति संयम पोषण के लिये खाये तो हम उसे भी भोजन दे सकते है। लेकिन सेवा को हम आध्यात्मिक धर्म नही मानते। वह तो सामाजिक कर्तव्य है। कर्तव्य और धर्म में अन्तर है। धर्म कर्तव्य अवश्य है किन्तु सारे कर्तव्य धर्म नहीं। हम केवल धार्मिक काम ही कर सकते है।

प्र०—जैन श्रावक तो करते होंगें ?

उ०—वे साधु नही, अतः यथावश्यक करते ही है।

प्र०—कलकत्ते में मैने जैन मंदिर देखा था। क्या आप मूर्ति-पूजा करते है ?

उ०—नही, हम न तो मूर्ति-पूजा ही करते है और न फोटो को ही नमस्कार करते है। यहाँ तक कि गुरू के फोटो को भी वन्दना नहीं करते। जैनो में कई सम्प्रदाय है। उनमे हम तेरापंथी है। हम लोग मूर्ति-पूजा नहीं करते। हमारे संघ में ६५० साधु-साध्वियाँ है। संघ में एक ही आचार्य होता है। सारे साधु देश के कोने कोने में घूमते रहते है। धर्म का प्रवचन करना उनका मुख्य काम है।

तत्पश्चात् आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत-आन्दोलन की जानकारी दी। आचार्य-श्री ने पूछा—क्या तुम भी अमेरिका में इस सर्व-धर्म-सम्मत आन्दोलन का प्रचार करोगी ? मैत्री दिवस के बारे में भी आचार्य-श्री ने उन्हें समझाया और कहा—क्या तुम स्वयं इस पर चल कर अमेरिका के लोगो को भी यह बताओगी ?

उन्होंने स्वीकार किया।

साथ में आयी हुई एक पत्रकार महिला ने अणुव्रतों का अध्ययन कर इस पर कुछ साहित्य लिखने का वादा किया और प्रसन्न होकर फिर दुबारा आने का वादा कर तीनों चली गयीं।

मन्थन (२१)

उपराष्ट्रपति के साथ

सक्रिय जीवन का प्रभाव

१५ दिसंबर १९५६ को प्रातः आचार्य श्री उपराष्ट्रपति डा० सर्व-पल्ली राधाकृष्णन् की कोठी पर पधारे। उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़ कर अभिनन्दन किया। आचार्य श्री ने कहा—हम लोग अभी सरदार शहर (राजस्थान) से आ रहे हैं। क्योंकि आजकल दिल्ली सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण की क्रीडा स्थली बनी हुई है। हम भी अपनी भावना उसमें देने आये हैं। आपको पता होगा। जैनगोष्ठी का आयोजन हुआ, तीन दिन "अणुव्रत गोष्ठी" का कार्यक्रम चला और परसों भारत से अमेरिका बिदा होने से पूर्व नेहरूजी ने "अणुव्रत-सप्ताह" का उद्घाटन किया।

उ० रा०—लेकिन मैं इनमें से किसी में भी सम्मिलित नहीं हो सका।

आ०—हाँ, हमने सुना था कि आपकी पत्नी का देहावसान हो गया था। संसार का यही स्वरूप है। जन्म-मृत्यु का अविच्छिन्न ताँता लगा रहता है। आचार्य-श्री ने प्रसंगोपात्त "शान्त सुधारस" की "विनय

चिन्तय वस्तु तत्त्वं" गीतिका भी फरमायी, जो कि उपराष्ट्रपति ने बड़े ध्यान से सुनी।

उ० रा०—आप यहाँ अभी कितने दिन और रहेंगे ?

आ०—अभी कुछ दिन तो ठहरना होगा क्योंकि "अणुव्रत-सप्ताह" चल रहा है। उसके आगे के भी अलग-अलग वर्गों के कार्यक्रम बन चुके हैं।

उ० रा०—जैन-मंदिर में हरिजन-प्रवेश के विषय में आपका क्या अभिमत है ?

आ०—जहाँ धर्माभिलाषी व्यक्ति प्रवेश न पा सके, वह क्या मंदिर है ? किसी को अपनी अच्छी भावना को फलित करने से रोकना, मै धर्म में बाधा डालना मानता हूँ। वैसे हम तो अमूर्तिपूजक है। जैनों में मुख्य दो परम्पराएँ हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। दोनों ही परम्पराओं के दो प्रकार के सम्प्रदाय है—एक अमूर्तिपूजक और दूसरा मूर्तिपूजक। जैन सम्प्रदायों में मूर्तिपूजा के विषय में मौलिक-दृष्टि से प्रायः सभी एक मत हैं। कुछ एक चीज को लेकर थोड़ा पार्थक्य है, जो अधिकांश बाह्य व्यवहारों का है, जो क्रमशः कम होता जा रहा है। अभी जैन सेमिनार में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के साधुओं ने भाग लिया। वहाँ मुझे भी प्रमुख वक्ता के रूप में निमंत्रित किया गया था और अच्छा सहिष्णुता का वातावरण वहाँ था।

उ० रा०—समन्वय का प्रयत्न तो होना ही चाहिये। आज के समय की सब से बड़ी यह माँग है और इसी के सहारे बड़े-बड़े काम किये जा सकते है।

आ०—आपका पहले राजदूत के रूप मे और अब उपराष्ट्रपति के रूप में राजनीति में प्रवेश हमें कुछ अटपटा सा लगा था कि एक दार्शनिक किधर जा रहे है पर अब आपकी सांस्कृतिक रुचियों और अन्य कामों को देखकर लगा कि यह तो एक प्राचीन प्रणाली का निर्वाह हो रहा है। वर्तमान की जो राजनीति है, उसमें कोई विचारक ही सुधार

कर सकता है और उसे एक नई मोड़ दे सकता है, क्योंकि उसके पास सोचने का नया तरीका होता है और नया चिन्तन होता है। वह जहाँ भी जाता है, सुधार का काम शुरू कर देता है।

उ० रा०—आज द्रव्य हिंसा का तो फिर भी कुछ अंशों में निषेध हो रहा है पर भाव-हिंसा का प्रभाव तो और भी जोरों से चल रहा है, इसके निषेध के लिये कुछ अवश्य होना चाहिये।

आ०—हाँ, अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में सक्रिय है।

उ० रा०—मै ऐसा मानता हूँ कि जीवन-उदाहरण का जो असर होता है, वह उपदेश या बोध से नहीं होता। इसीलिये आप जो काम करते है, उसका जनता पर स्वतः सुन्दर असर होता है। क्योंकि आपका जीवन उसके अनुरूप है।

आ०—आज सद्‌भावना की बड़ी कमी है। यही कारण है कि आज लोग परस्पर तने रहते है और द्वन्द्वो के शिकार होते है। हमने सोचा है कि सद्‌भावना की वृत्ति लाने के लिए एक "मैत्री-दिवस" मनाना चाहिए जिससे सब परस्पर क्षमायाचना करें। दूसरों द्वारा हुए सब कटु-व्यवहारों को भूलकर निःशल्य बने। वार्तालाप के दौरान में नेहरू जी से भी मैने यही कहा था और उन्होंने इसका समर्थन भी किया।

उ० रा०—यह चीज तो अच्छी है पर लोग इसे भावनापूर्वक पकड़े तभी ऐसे दिन मनाने का महत्त्व है। अन्यथा तो जैसे अन्य निर्दिष्ट दिन रूढ़ि मात्र होते है, वैसे ही यह हो जायगा। यदि इसकी भावना को जागृत रखा जा सके तो यह एक बहुत ही उपादेय सूझ है।

मन्थन (७७)

'स्टेट्समैन' के दिल्ली संस्करण के सम्पादक के साथ

अनैतिकता का निवारण और पत्रकार

१५ दिसंबर १९५६ को स्टेट्समैन के दिल्ली संस्करण के सम्पादक श्री कोश लैन ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। आचार्य-श्री ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन का परिचय देते हुए कहा—आज भारत में ही नही, सारे संसार में अनैतिकता का दौर है, उसे दूर करना प्रत्येक समझदार मनुष्य का कर्तव्य है। अतः पत्रकारों पर भी यह उत्तरादायित्व है कि वे आज के अनैतिक वातावरण को शुद्ध करने में अपना सहयोग दें। पर अक्सर देखा जाता है, वे इस ओर कम ध्यान देते है, वे अपने अखवारों मे लूट-खसोट और लड़ाई की बातों को जितना स्थान देते हैं, उतना नैतिक प्रवृत्तियों को नही देते, उनकी दृष्टि में राजनीति का जितना प्राधान्य है, उतना संयम का नहीं है। आज की ही वात है, मै डा० राधा कृष्णन के यहाँ गया तो फोटोग्राफर भी वहाँ पहुँच गया और वह इसलिये कि डा० राधा कृष्णन भारत के उपराष्ट्रपति हैं, और उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति को पत्रकार महत्व देते है। मै यह नहीं कहता कि मेरा फोटो लेना चाहिये। मै तो उसका निषेध करता हूँ। पर कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रकार नैतिक दृष्टि से कहाँ क्या हो रहा है, इसका ध्यान कम रखते है।

कोशलैन ने आपकी वात स्वीकार करते हुए कहा—हाँ, यह तथ्य वास्तव में सही है।

आचार्य-श्री ने फिर उनसे कहा—आज संसार की जो तनावपूर्ण

स्थिति है, उसे मिटाना जरूरी है। इसके लिये हमने एक योजना रखी है कि सारे राष्ट्र कम से कम एक दिन एक दूसरे से क्षमा मांगें, एक राष्ट्रपति दूसरे राष्ट्रपतियों से, एक सेनापति दूसरे सेनापतियों से और इसी प्रकार एक पत्रकार दूसरे पत्रकारों से अपने गलत व्यवहार की क्षमा मांगें तो इससे मैत्री भाव बढ़ेगा और आपसी तनाव कम होंगे। आपको यह बात पसन्द आई? उसके 'हाँ, यह तो अच्छा है' कहने पर आचार्य श्री ने कहा—तो आप इसमें क्या सहयोग दे सकते है? उसने कहा—इस विषय पर अपने अधिकारियों से बातचीत करूँगा। वही व्यक्ति जो पहले आने में संकोच करता था, फिर आने का वायदा कर वापस चला गया।

मन्थन (२३)

लोकसभा के अध्यक्ष के साथ
साधुदीक्षा और कानून

१६ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद लोक सभा के अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् अय्यंगार ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। वे साथ में नारंगी, अमरूद आदि फल लाये थे और वंदना के साथ ही उन्हें भेंट करना चाहा। पर आचार्य-श्री ने कहा—हम वनस्पति को सचित्त (सजीव) मानते है, अतः उसे छूते भी नही। हम तो केवल त्याग ही की भेंट चाहते हैं।

आयंगार—तो हमारा आत्म-समर्पण लीजिये। भारत में अंग्रेज लोग तराजू लेकर आये थे पर उन्होंने भारतीय संस्कृति के विरुद्ध तोला। उन्होंने पैसे वालों को भौतिक सामग्री सम्पन्नो को बड़ा माना। जो

इम्पीरियल होटल में ठहरता है, वही उनकी दृष्टि में महान् है। पर भारत उसे महान् मानता है जो वैराग्य सम्पन्न है, सेवा भावी है और त्यागी है। त्यागियों के आगे यहाँ के सम्राट् झुके और उनको अपना आदर्श माना। मै समझता हूँ, आप उसी के प्रतोक हैं।

आचार्य-श्री—आपका "हिन्दू कोड बिल" के विषय में क्या खयाल है ?

अय्यंगार—दुनिया परिवर्तनशील है। उसमें परिवर्तन होते ही रहते है। सुधार के लिये आवश्यक है कि आज की समाज व्यवस्था में भी परिवर्तन आये। मनु के सिद्धान्त आज काम नहीं करते। अतः जरूरी है है कि कोई उचित व्यवस्था हो। सुधार संसार में होता ही रहता है। मै अभी चीन गया था, वहाँ मैने अच्छी बातें देखी। वहाँ वेश्या वृत्ति नहीं है, घुड़दौड़ नहीं होती, डान्स बन्द है और कोई भिखारी नहीं है। चीन की सरकार ने व्यापार भी अपने हाथों में ले रखा है। यह इसलिये कि अधिक शोषण न हो और कोई अधिक मुनाफा न ले सके। मेरी आपसे विनती है कि आप उपदेश के अधिकारी हैं, अतः आपको भी उपदेश करना चाहिये कि लोग ज्यादा व्याज न लें, संग्रह की अति-भावना न रखें।

आचार्य-श्री —हम तो अपना कर्तव्य निभा रहे है। ऐसी भावनाएँ देने में सचेष्ट है पर आप लोगो का भी कुछ कर्तव्य है। आप लोगों का भी उचित सहयोग अपेक्षित रहता है।

आयंगार—मेरी इन विषयों में इच्छा तो रहती है पर क्या करूँ, संसद के कामों में व्यस्त रहना पड़ता है।

आचार्य-श्री—पर यह चरित्र-सुधार का काम संसद के कामों से भी बड़ा है।

अय्यंगार—हाँ, यह बुनियादी काम है, इसलिये सहज बड़ा हो जाता है।

आचार्य-श्री—आज भारत में विचित्र विचार फैल रहे है। पाश्चात्य लोग तो बड़ी आस्था और श्रद्धा से यहाँ आते है कि भारतीय संस्कृति

महान् है, उदार है, उसमें से हमें कुछ जीवन निर्माण के सूत्र पकड़ने हैं। पर यहाँ के लोग सोचते है कि पश्चिम से जो धारा बह रही है. वह जीवनदायिनी है। आश्चर्य है कि लोग अपने घर को न देखकर केवल बाहर की ओर ताकते है।

आचार्य-श्री—इस बार बौद्ध धर्म को इतना महत्व दिया गया, उसका क्या आधार है ?

अय्यंगार—बौद्ध धर्म एक भारतीय धर्म है। उसमें भारत की रुचि रहनी स्वाभाविक है। दूसरे बौद्ध धर्म एक सशक्त धर्म है। बहुत सारे देशों द्वारा वह स्वीकृत है और तीसरी बात यह कि यह सरकार की एक नीति भी थी।

आचार्य-श्री—दीक्षा बिल के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

अय्यंगार—लाइसेंस प्राप्त ही दीक्षित हो सकता है, इसका मैं समर्थक नहीं पर साथ में ऐसा भी समझता हूँ कि छोटे-छोटे बच्चों की दीक्षा नहीं होनी चाहिये। क्योंकि उनके विचार अपरिपक्व रहते हैं। भुक्त भोगी होकर जो दीक्षित होता है, वह अधिक सुस्थिर रह सकता है, इसलिये कि वह तथ्य को अच्छी तरह परख लेता है। पर कानून के द्वारा इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगनी चाहिये।

राष्ट्रपति के निजी सचिव के साथ जैन आगमों के शब्द कोष का निर्माण

ता० १७ दिसम्बर १९५६ को राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री विश्वनाथ वर्मा जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये। औपचारिक बातों के बाद आचार्य-श्री ने कहा—इस बार अणुव्रत आन्दोलन को यहाँ अच्छी गति मिली है। अणुव्रत सप्ताह का कार्यक्रम अच्छे ढंग से चल रहा है। विभिन्न वर्गो के लोगो को इसके द्वारा नैतिक जागृति की सजीव प्रेरणा मिली है। राष्ट्रपति जी से भी उस दिन (२-१२-५६ को) इस विषय पर महत्वपूर्ण वार्तालाप हुआ था। उन्होंने यह कहा था—मैं तो ऐसा चाहता हूँ कि ऐसी नैतिक धाराएँ यहाँ भारत में निरन्तर बहती रहें और जन जीवन में जो मैल आगया है, उसे धोकर बहा दें। आप जो निष्काम रूप में यह कार्यक्रम चला रहे है, उससे देश की एक बहुत बड़ी जरूरत को आप पूरा कर रहे है। लोगों में इसके प्रति आस्था बढ़ेगी। वे इसका मूल्यांकन स्वयं करेगे और अपना सहयोग भी देंगे। राष्ट्रपति जी की इसमें अच्छी आस्था है, उस दिन उनसे अनेक विषयों पर बातचीत हुई। पर एक विषय छुआ भी न गया, जो कि उनकी दिलचस्पी का विषय था। "प्राकृत सोसाइटी" से उनका विशेष लगाव है। वे उसके कार्य-कलापों में विशेष रुचि रखते हैं। हमारे यहाँ प्राकृत का एक बहुत बड़ा काम हो रहा है। समस्त जैन आगमों का शब्द कोष तैयार किया जा रहा है। संस्कृत में भी प्रत्येक शब्द दिया जायेगा। सूक्ष्म अन्वेषण के साथ यह काम किया जा रहा है। विशेष बात यह है कि इसमें किसी वेतन भोगी पंडित का सहयोग नही है, केवल संघ के साधु साध्वियाँ सारा कार्य कर रहे है। हमारे अध्ययन-अध्यापन के लिये कोई वेतन भोगी नहीं रहते।

वर्मा—मै आपके कार्यक्रमों से परिचित रहा हूँ। अणुव्रत आन्दोलन में मेरी बड़ी दिलचस्पी है। राष्ट्रपति जी चरित्रात्मक कामों में बड़ी दिलचस्पी रखते है। उनका खुद का जीवन नैतिक है। वे सरल व सादगी का जीवन पसन्द करते है। इसीलिये जैसे आन्दोलन में उनकी गहरी निष्ठा है वे ऐसी चीजों के सहारे देश की भलाई देखते है। साहित्यिक कामों में भी वे अच्छी रुचि रखते है। वे आपके कार्यो से परिचित है।

आचार्य प्रवर ने तेरापन्थ का परिचय दिया और सूक्ष्म लेखन तथा अनेकों कलात्मक वस्तुये दिखाई। उन्होने कहा—आप तो सजीव कला के निर्माता है तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षक है। आज ऐसा सूक्ष्म लेखन कही नहीं मिलता। मैने यही देखा है। ये कृतियाँ अमूल्य है।

मन्थन (२५)

हिन्दू महासभा के अध्यक्ष तथा मन्त्री के साथ

चुनाव शुद्धि

१८ दिसम्बर को रात के समय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन० सी० चटर्जी और महामंत्री श्री वी० जी० देशपांडे आचार्य श्री से वार्तालाप करने आये। आचार्य-श्री ने उनको अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधियों से अवगत कराया। 'अणुव्रत सप्ताह' का विवरण बताते हुये आचार्य-श्री ने कहा—"इस सप्ताह के अन्तर्गत हम एक दिन "चुनाव-शुद्धि" का रखना चाहते है। हमारे मुनि तथा अन्य कार्यकर्त्ता भारत की सभी पार्टियों के प्रमुखों से सम्पर्क कर रहे है और ऐसा समझा जाता है कि सभी

उस आयोजन मे भाग लेगे और यह सोचेंगे कि चुनावों में बरती जाने वाली अनैतिकता को कैसे मिटाया जा सके। आम चुनाव सामने आ रहे हैं इसलिए इस दिशा में कुछ कार्य करना आवश्यक है। कई पार्टियों के नेताओं ने इस विचार का हार्दिक स्वागत किया और यह कहा है कि वे इसमे अपना पूरा सहयोग देगे। हमने भी इस विषय में कुछ सोचा है और कुछ व्रत भी बनाये है। आपका इसमें क्या विचार है ?

श्री चटर्जी ने कहा—आप जो सुधार का काम कर रहे हैं, वह महत्वपूर्ण है और मै समझता हूं कि उसे आप अन्य क्रांतिकारी नेताओ से भी अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकेगे क्योकि आपके पास एक संगठित शक्ति है। आपको लोगो का पूरा सहयोग भी मिलेगा, क्योकि लोग ऐसा चाहते हैं। चुनाव के सम्बन्ध में आपने जो सोचा है वह उचित है और ऐसा करना भी चाहिये।

श्री देश पांडे ने कहा—महाराज ! आपको मंत्रियो से भी कुछ कहना चाहिये। क्योकि वे भी आज राष्ट्र का बहुत धन खर्च कर रहे हैं। ऐशो आराम में अपना समय बिताते हैं। राष्ट्र के निर्माण में बहुत कम ध्यान देते है। जो मोटरे उन्हें सरकारी काम के लिए दी जाती हैं उनका वे निजी कामों में उपयोग करते हैं। यह वैधानिक दृष्टि से गलत है। अतः आप यदि सुधार का काम करना चाहते हैं तो आपको यह सब बातें उन से स्पष्ट कहनी होगी। उसमें भय नही रहना चाहिए। चाहे कोई सत्ताधारी हो या सामान्य व्यक्ति हो। उसके दोषों की आपको निर्दयतापूर्वक आलोचना करनी चाहिये। हो सकता है इस कारण आप को संघर्ष मोल लेना पड़े। परन्तु ऐसी बातो से आपको संघर्ष करना ही चाहिए।

आचार्य श्री ने कहा—देखिये ! हम काम अवश्य करना चाहते है पर कोई संघर्ष खड़ा करके नही। क्योंकि संघर्ष से सुधार नहीं होगा, बल्कि दुविधा खड़ी होती है। सुधार तो शांति से किया जाना चाहिए। आपको यह विश्वास रखना चाहिये कि हमारा लगाव किसी भी पार्टी

से नहीं । जो बाते जिसे कहनी होती है, वे हम निःसंकोच कहते हैं। हमें भय किस बात का सही कहने पर भी यदि कोई नाराज हो जाता है तो हमें क्या और छिछली बातों में हम जाना नहीं चाहते।

श्री देशपांडे ने कहा—फिर आप काम कैसे कर सकेंगे ? देश की सम्पत्ति यों ही बर्बाद होती रहे और मंत्री लोग ऐसे ही मौज उड़ाते रहे, सब अनैतिकताएँ चलती रहे तब सुधार क्या हुआ ? चुनावों में नीति बरती जाय यह आवश्यक है पर ऐसा करना असम्भव है ।

आचार्य-प्रवर ने कहा—देशपांडेजी ! आपका रुख मुझे विचित्र-सा लगा । आप बात ठीक ढंग से नही कर रहे है । मैने पहले ही कह दिया था कि हम किसी पार्टी विशेष पर आक्षेप करना नहीं चाहते । हम बुराई को मिटाना चाहते है—बुरे को नहीं । एक दूसरे पर केवल छींटाकशी करना हिंसा है । ऐसा हम नही करते । हमें ऐसी आलोचना इष्ट नहीं है । क्योंकि व्यक्तिगत आलोचना से तो हम दूसरों को भड़का सकते है, उसका परिष्कार नही कर सकते ।

यह स्पष्टोक्ति सुनकर देशपांडे ने कहा—जैसा आप उचित समझें वैसा करे । चुनाव सम्बन्धी जो विचार आपने कहे, वे अच्छे हैं परन्तु यदि सभी पार्टियाँ इसको महत्व दें तो कुछ कार्य हो सकता है ।

तत्पश्चात उम्मीदवारों के लिए और मतदाताओं के लिये, बनाये गये व्रत उन्हे सुनाये । दोनों ने व्रतों की सराहना की । और पास में बैठे श्री शुभकरण जी दस्साणी से पूछा कि क्या वे इन व्रतों को अन्तिम रूप देकर हमें इनकी नई प्रतियाँ दे सकेंगे ।

चटर्जी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—मैं भी इस आन्दोलन में आने का प्रयास करूँगा । यदि न आ सका तो श्री देशपांडे जी को अवश्य भेजूँगा" इतना कह दोनों वन्दना करके चले गये ।

परराष्ट्र मन्त्री के साथ

जीवन में नैतिकता की कमी

१६ दिसम्बर १९५६ को परराष्ट्र मन्त्री डा० सैयद महमूद आचार्य श्री से भेंट करने आये। औपचारिक बातों के पश्चात् आचार्य प्रवर ने कहा—लोग मेरे पास आते हैं और अलग-अलग कमियो की बाते करते हैं। कोई कहता है—देश की आर्थिक दशा गिर गई है, कुछ कहते हैं—हमारी शिक्षा प्रणाली दूषित हैं, कई कहते है—हम बहुत काल तक परतन्त्र रहे हैं, इसलिये अब तक स्वतन्त्रता का दिमाग में उभार नहीं आया और इसीलिये हमारे कार्यकलाप विकसित नहीं होते।

पर मैं तो मानता हूँ कि सबसे बड़ी कमी नैतिकता की है। इसकी कमी जब तक दूर नहीं होगी, तब तक अन्य वस्तुओं की पूर्णता भी अपूर्ण ही रहेगी। हमने इसी कमी को पूरा करने के लिये एक आन्दोलन चलाया है। उसमें हमने वे व्रत रखे हैं, जो हर एक वर्ग के दूषणों को खदेड़ निकालें। क्या आपने उसका साहित्य पढ़ा है?

मन्त्री—हाँ, उसका विशेष साहित्य तो नही, पर नियम अवश्य सरसरी दृष्टि से पढ़े हैं और एक दिन में अणुव्रत-सेमिनार में भी सम्मिलित हुआ था। आपने यह काम शुरू करके अच्छा काम किया है। मैं समझता हूँ गाँधी जी के बाद मे आपने ही इस प्रकार नैतिक काम की ओर तवज्जह दी है। अन्य आन्दोलन तो बहुत से दलों द्वारा चल रहे हैं पर आचार-विशोधन के क्षेत्र में किसी और तरफ से कोई कदम नहीं था। जो कदम आपने उठाया है, वह देश के लिये अत्यन्त जरूरी है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री दुर्गादास के साथ

चरित्र निर्माण और पत्रकार

२१ दिसम्बर १९५६ को प्रातःकाल सब्जीमण्डी में दिल्ली के प्रमुख पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी ने आचार्य-श्री के दर्शन किये।

उन्होंने कहा—मुझे आपके दर्शन करने का पहले भी अवसर मिला था। मुझे पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में भोपाल के मुख्यमन्त्री ने आमन्त्रित किया था। वे जब उज्जैन में आपके सम्पर्क में आये थे, तब मैं भी उनके साथ था। वैसे मुझे नैतिक विषयों में रस है। अतः जब कभी मुझे ऐसे अवसर मिलते हैं, मै लाभ उठा ही लेता हूँ आपके अणुव्रत आन्दोलन के नियम गाँधी जी के "रामराज्य" के नियम है। उसमें भी तो यही है कि "सबके प्रति समवृत्ति रहे, उदारता का प्रसार हो, लोग अनैतिक न रहें" और यही आपका कहना है।

आचार्य-श्री ने कहा—आप लोगों को भी केवल राजनीति में ही नहीं, नैतिक और चरित्रनिर्माण मूलक अन्य विषयों में भी भाग लेना चाहिये। में देखता हूँ कि पत्रकार राजनीतिक विषय में जितना रस लेते है उसके अनुरूप अन्य विषयों को उनका यथाविधि सहयोग नहीं मिलता। उनको चाहिये कि वे विशुद्ध चरित्रात्मक विषयों को भी बल दे।

दुर्गा०—मुझे क्षमा करें, इस विषय में कुछ भेद है। सामान्यतया तो पत्रकार अपने इस कर्तव्य को निभा रहे है। पर पूर्ण रूप से इसमें जुट

जाना, इसमें ही अपना दिमाग लगाना और इसका ही अपने इर्द-गिर्द वातावरण रखना और इस भार को बद्धलक्ष्य अपने कंधों पर ले लेना मुश्किल है, क्योकि यह ५० मन का पत्थर है। कोई भी इसे उठाने के लिये तैयार नही। इसे उठाने वाला नीचे दब जाता है। आज जो नेता इसके विषय मे बोलते हैं, वह भी एक नीति है। उन्ही नेताओं और अधिकारियो के आचरणो की जब चर्चा की जाती है और उनकी ओर अंगुली उठाई जाती है तब उनकी जबान बन्द कर दी जाती है और अँगुलियाँ काटने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति मे आन्दोलन को कोई भी पत्र अपनी नीति नहीं बना सकता।

मैं समझता हूं, यह काम तब तक जोर नहीं पकड़ेगा, जब तक आप ऊपर के व्यक्तियों को सम्मिलित न कर ले। हमारे मन्त्री, संसदसदस्य, विधान सभाओं के सदस्य और अधिकारी लोग इसे अपना लेते हैं तो समझना चाहिये कि एक विशिष्ट लौ जल पड़ेगी और वह आगे बढ़ती जायेगी। हमारी भारतीय संस्कृति विषम मार्ग से गुजर रही है। यदि उसको बचा न लिया गया, तो आगामी दस वर्षो में उसका अवसान हो जायगा। इन वर्षो में उसे उभार मिल गया तो उसमें ताजा खून समा जायगा और नया जीवन मिल जायगा। अब यह आप लोगों पर निर्भर है कि आप उसकी रक्षा कर पाते है या नही।

आ०—मैं तो ऐसा नही मानता। इन दिनों में जिन व्यक्तियों से भेट हुई, उन सबने इसकी सफलता की कामना की है। राष्ट्रपति भवन में जो आयोजन हुआ था, उसमें राष्ट्रपति ने स्वयं कहा था—मैं चाहता हूँ कि अणुव्रत-आन्दोलन देश में फले-फूले और जनता के चरित्र का विकास करे। प्रधानमन्त्री नेहरू जी से भी मेरी ५० मिनट तक बहुत खुलकर बातचीत हुई है। बात चीत पहले भी हुई थी। पर इस बार जिस निःसंकोच और स्पष्ट भाव से बातचीत हुई वैसे पहले नही हुई थी। बातचीत अनेक विषयों पर हुई। मुझसे उन्होंने यह भी पूछा कि आप भारत साधु समाज में सम्मिलित नहीं हुए? मैंने कहा—नहीं, हमारा

और उनका मेल कैसे सम्भव हो ? उन्होंने अभी तक मठों का मोह नहीं छोड़ा है, पैसों से उनका गठबंधन उसी तरह है। फिर हम अकिंचनों का उससे क्या लगाव ? पंडित जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया और कहा—आपको उसमें सम्मिलित होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने उनसे कहा—देखिये पंडित जी, विदेशों में भारत का कितना सम्मान है, कितनी ख्याति बढ़ रही है ? विदेशी लोग भारत को एक आदर्श राष्ट्र मानते है परन्तु आन्तरिक स्थिति कितनी बिगड़ी हुई है, कुछ व्यक्तियों को छोड़ दे तो भारत का मानचित्र खोखला नजर आता है। आपकी सरकार पर भी जो श्रद्धा है, वह भी उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व और नैतिक जीवन के कारण है। अन्यथा आपकी सरकार का जो धरातल है, वह आपके सामने है। क्या आप आशा करते हैं कि राष्ट्र की नींव इस धरातल पर मजबूत रह सकेगी ? आप इस विषय में क्यों नहीं सोचते और चरित्र-निर्माण के कामों को प्रोत्साहन क्यों नहीं देते ?

मैंने उनसे यह भी कहा कि—आज जो राष्ट्रो में आपसी सम्बन्ध बनाने की दौड़ लग रही है, वह भी एक नीति के अतिरिक्त कुछ नहीं और उसका स्पष्ट पता तब चलता है, जब किसी बात के कारण आपस में तनाव बढ़ता है। इसलिये हमने यह सोचा है कि वर्ष में एक दिन ऐसा मनाया जाय, जिस दिन अपनी भूलों के लिये शुद्ध व पवित्र हृदय से व्यक्ति-व्यक्ति परस्पर क्षमा माँगें और दूसरों को क्षमा करे। वह रिवाज के तौर पर नहीं, हृदय से होना चाहिये। यदि कुछ ऐसा हो तो आप का क्या विचार है ?

नेहरू जी ने कहा—यह काम तो बहुत सुन्दर है, पर मैं इसे नहीं कर सकता। अगर इसको शुरू किया जाय तो मै इसके बारे में कुछ कह सकता हूँ और कुछ कर भी सकता हूँ। इसी प्रकार इस बारे में उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, राजर्षि टंडन, ढेबर भाई, मोरार जी भाई आदि से भी बातचीत हुई। सभी ने इस कार्यक्रम को पसन्द किया

श्रौर कुछ सुझाव भी दिये ।

इस प्रकार सरकार की टक्कर का खतरा तो स्वतः दूर हो जाता है श्रौर वैसे हमारा यह दृष्टिकोण भी नहीं है कि कोई पत्र इसे अपनी नीति बनाये । कोई उचित श्रौर उपयोगी चीज होगी तो पत्र उसे स्वतः अपनी नीति बना लेंगे । मैं आपको तो इसलिए कहता हूँ, कि आप चिन्तक हैं श्रौर चिन्तक के दिमाग को मैं काम में लेना चाहता हूँ । मन्त्रियो श्रौर अधिकारियों को मैं उतना महत्त्व नही देता, क्योंकि वे चुनाव के माध्यम से अपने पदों पर आते हैं । आज है श्रौर कल नहीं । पर विचारक सदा विचारक रहता है । अतः मैं उनको विशेष महत्त्व देता हूँ ।

दुर्गा०—ठीक है, मैं तो आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ श्रौर मैं मध्यस्थ भावना वाला हूँ । मुझे कुछ कड़ा लिख देने में भी भय नहीं है ।

लगभग आधे घंटे तक बातचीत हुई । प्रवचन का समय हो गया था । आचार्य प्रवर प्रवचन करने के लिये पधार गये ।

मन्थन (२८)

राष्ट्रकवि के साथ

२१ दिसंबर १९५६ को रात्रि में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने सहोदर सियारामशरण गुप्त व अपने परिवार के अन्य सदस्यों सहित आचार्य-श्री के दर्शन किये ।

श्रौपचारिक वार्तालाप के बाद जैन तत्वों पर चर्चा हुई । उन्होंने जिज्ञासु भाव से अनेक आशंकायें प्रकट की । आचार्य श्री ने उनका उचित समाधान किया । स्याद्वाद तथा नय-वाद आदि पर भी लम्बी देर तक

बातचीत होती रही। उन्होंने कहा—जैसा कि मैंने पहले भी आपके समक्ष निवेदन किया था—मेरी यह हार्दिक भावना है कि भगवान् महावीर पर कुछ कवितायें लिखूं। यह मेरे जीवन की अन्तिम साध है। किन्तु मेरे सामने एक समस्या है कि उनके जीवन सम्बन्धी विविध विचार भिन्न भिन्न तरीकों से माने जाते हैं। उनमें एकरूपता नहीं है। कौन सही है और कौन गलत, यह मैं कैसे निर्णय करूं। यदि आप मेरा पथ-प्रदर्शन करें तो मैं अपनी कामना पूर्ण कर सकूंगा। इस विषय में विस्तृत वार्तालाप फिर कभी करूंगा।

वार्तालाप कवि-गोष्ठी के रूप में परिणत हो गया। कई सन्तों ने अपनी अपनी रचनायें सुनाईं। राष्ट्रकवि ने भी अपनी कवितायें सुनाईं। रचना सरल व सुगम थी। श्री सियारामशरण गुप्त ने भी "खामेमि सव्वे जीवे" का हिन्दी पद्यानुवाद सुनाया। उन्होंने सम्पूर्ण गीता का हिन्दी में पद्यानुवाद किया है और कहा कि जैनागमों के कई स्थलों को वे हिन्दी के पद्यों में रखना चाहते हैं। राष्ट्रकवि ने यह भी कहा कि वे अणुव्रतों के बारे में कवितायें लिखेंगे।

भारत सेवक समाज के मंत्री का आगमन

भारत सेवक समाज के मंत्री श्री चांदीवाला जी "कठौतिया भवन में" आचार्य-श्री के दर्शन करने आये। आचार्य श्री ने उनको अणुव्रत-आंदोलन की गतिविधि से परिचित कराया तथा अभी अभी चले अणुव्रत-सप्ताह की सफलता से भी अवगत कराया। मैत्री-दिवस के बारे में विस्तृत जानकारी दी और कहा—मैंने यह विचार और भी कई जगह रखा है। सभी जगह इसका सत्कार हुआ है। इस बार हम इसको प्रयोग के रूप में ३० दिसंबर को मना रहे हैं।

चांदीवाला ने कहा—हाँ, यह योजना सुन्दर है और इस प्रकार की बन्धुत्व-भावना संसार में फैले तो युद्ध और अशांति का वातावरण दूर हो सकता है। मेरा इसमें एक सुझाव भी है कि यह दिन महात्मा गांधी

का निधन दिवस रखा जाय तो और भी महत्व की भावना से जुड़ जायेगा और विशाल पैमाने पर देश-विदेश में मनाया जायेगा।

चाँदीवाला ने भारत सेवक समाज के कार्यकर्ताओं की सभा में आचार्य श्री को प्रवचन करने का निमंत्रण दिया।

मन्थन (२९)

नैतिकता के एक प्रचारक के साथ

क्रमिक विकास का महत्व

२८ दिसंबर १९५६ को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद कई व्यक्ति आचार्य-श्री से बातचीत करने आये। तेरापंथ व अणुव्रतों के बारे में विस्तृत बातचीत हुई। एक व्यक्ति श्री मोहन शकलानी आचार्य श्री के पास आया और उसने कहा—महाराज! प्रारम्भ से ही नैतिक विषयों में मेरी रुचि रही है। मै पहले थियोसॉफिकल सोसाइटी में प्रचारक था। अब मै चाहता हूँ कि अणुव्रतों के प्रचार में अपना समय लगाऊँ। आंदोलन के प्रति मेरा आकर्षण इसलिये हुआ कि यह क्रमिक विकास को महत्व देता है। व्यक्ति एक साथ ऊँचा नहीं चढ़ सकता। वह धीरे-धीरे प्रगति कर सकता है। देखिये, अंग्रेजी में मैने अणुव्रत-आंदोलन के नियम-उपनियमो को रखने का प्रयास किया है (कई पत्र दिखाये)। आचार्य प्रवर ने उन्हें विशेष जानकारी देते हुये कहा—आपके विचार अच्छे है। नैतिकता का प्रचार वास्तविक प्रचार है। निष्काम सेवा करने का यह अच्छा मौका है।

वे कई दिन तक आचार्य-श्री के पास आते रहे और जानकारी प्राप्त करते रहे।

नन्दन (३०)

केन्द्रीय श्रम उपमंत्री के साथ

काफ़िर (नास्तिक) कौन

२९ दिसंबर १९५६ को सायंकाल प्रतिक्रम के समय श्री आबिद अली दर्शनार्थ आये। आचार्य प्रवर ने कहा—आप ठीक समय पर पहुँचे हैं। हम लोग अभी प्रतिक्रमण करके निवृत्त हुये हैं।

श्री आबिद अली—प्रतिक्रमण कैसे करते हैं ?

आ०—प्रतिक्रमण के छः अंग हैं—(१) सबसे पहले पापों से निवृत्ति करना, (२) वीतराग की स्तुति करना, (३) मुक्त-आत्माओं को वंदन करना, (४) प्रतिक्रमण करना, (५) शारीरिक स्थूल स्पन्दनों को रोक कर समाधि पूर्वक चिन्तन करना, (६) उसके बाद प्रत्याख्यान किया जाता है। आपके जैसे नमाज पढ़ी जाती है, वैसे ही हमारे यहाँ प्रातःकाल और सायंकाल दोनों वक्त किया जाता है। आपके नमाज की क्या विधि है ?

श्री आबिद अली—हमारा नमाज एक प्रकार का व्यायाम है, जिसमें शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रक्रियाये समाविष्ट हैं। पहले हम सैनिक की तरह तनकर खड़े हो जाते हैं। फिर दोनों कानों में अंगुली डालकर इस प्रकार झुकते हैं और ऐसे बैठते हैं (सारी प्रक्रिया करके बताई) उसके बाद इस प्रकार उठते हैं। इसमें पैर से लेकर शिर तक का सुन्दर व्यायाम थोड़े ही समय में हो जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक पहलू भी इससे सुन्दर ढंग से सधता है। दोनों कानों को बंद करने का अर्थ है कि हमें कोई बाहरी आवाज न सुनाई दे। अल्लाह की स्मृति में ही अपने को केन्द्रित करना चाहते हैं। घुटनों के बल पर बैठकर इस प्रकार सिर धरती पर लगाने का भी यही मतलब है कि हम

उस सर्व शक्तिमान अल्लाह् के आगे सर्वथा नतमस्तक हैं—नमाज की प्रार्थना में संकीर्णता नहीं, अत्यन्त उदारता का परिचय है। उसमें ऐसा नहीं कहा गया है कि "हे मुसलमानों के पालक" प्रत्युत कहा गया है—"हे सबको पालने वाले अल्लाह् मुझे सन्मार्ग बता, खराब रास्ते से बचा।"

आ०—देश में हमने एक रचनात्मक काम चालू कर रखा है। उसका सम्बन्ध सभी वर्गों से है : उसको हमने किसी जाति या धर्म विशेष से सम्बद्ध नहीं किया है। मानवता के सामान्य नियम उसमें दिये गये हैं जो सभी धर्मों के मूल हैं। आज परस्पर एक दूसरे के प्रति कटुता बढ़ती जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम के बीच दरारे पड़ गई हैं। क्या ये दरारें हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देतीं ? इन्हे पाटने के विषय में आप क्या सोचते हैं ? हम एक "मैत्री-दिवस" (अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर) मनाने की सोच रहे हैं। आपका उसमें क्या सहयोग रहेगा ?

श्री आबिद अली—जितना मैं इस विषय मे कर सकूँगा, उतना करने का प्रयास करूँगा। आपकी सेवा में प्रस्तुत हूँ।

आ०—क्या आपके कुरान में कहीं ऐसा उल्लेख है कि हिन्दू को काफिर समझना चाहिये ?

श्री आबिद अली—हिन्दुओं को तो नहीं, पर नास्तिक को अवश्य काफिर कहा है। हमारे यहाँ कयामत का होना माना जाता है। जिसका अर्थ है कि जितने भी लोग मरते हैं, वे जी उठेंगे। खुदा उनको उनकी करनी के मुताबिक दंड देगा। उस समय लोग अपने अपने अपराधों की क्षमा के लिये खुदा से मुहम्मद से सिफारिश करायेंगे। मुहम्मद ने कहा है कि मै उन दो व्यक्तियों की सिफारिश खुदा के आगे नहीं करूँगा—(१) जो व्यक्ति यह कहा करता है कि ये धर्मस्थान मुसलमानों के नहीं हैं, दूसरों के धर्मस्थानों की बेइज्जती करता है और दखल देता है, और (२) जो व्यक्ति दूसरों को "मुसलमान नहीं" कह कर तकलीफ देता है।

ये दोनों बातें हमारे सिद्धान्तों की प्रतीक है। धर्मों में उदारता ही विशेष है। उसी के सहारे सब धर्म जीते है।

नन्दन (३१)

हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी के साथ दूसरी बार

अणुव्रत आन्दोलन की आधार भूमि

३० दिसम्बर १९५६ को रात्रि में हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक श्री दुर्गादास जी दुबारा आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। उन्होंने कहा—मैंने अणुव्रत आन्दोलन के विषय में विविध बातें सुनी थीं। बहुत सी जिज्ञासाएँ इस विषय में हुआ करती थीं। इस बार अच्छा हुआ कि यथेष्ट समाधान आपसे पा लिया। मैं चाहता हूँ, आपके इस संगठन के इतिहास की झलक भी आपसे प्राप्त कर लूँ तथा उसके विस्तार की आधार भूमिका की भी जानकारी ले लूँ।

आचार्य श्री ने तेरापंथ का इतिहास बताते हुये कहा—"तेरापंथ का उद्भव आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था। उद्भव का कारण था—तात्कालिक साधु समाज का आचार शैथिल्य। तेरापंथ के प्रवर्तक श्री भिक्षु स्वामी ने जिस अभिलाषा से दीक्षा ली थी, वह भावना पूरी होती दिखाई न दी।

उन्होंने जैन आगमों का विशेष-मंथन करने के बाद गुरुवर से निवेदन किया कि हम शास्त्रोक्त पथ से विपरीत चल रहे हैं।

गुरु ने कहा—अभी पंचम काल है। जितनी साधना हो, उतनी ही अच्छी।

भिक्षु स्वामी ने कहा—जब हम घर, कुटुम्ब, धन, धान्य सबको त्याग कर आये हैं, फिर भी अपना लक्ष्य नहीं साध सकते, यह कैसे हो सकता है? पंचम काल का सहारा लेना तो हमारी कमजोरी है।

लम्बी चर्चा के बाद उन्होंने कहा—मै इस से सहमत नहीं। इस प्रकार कोई सही मार्ग न निकलता देख आपने संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। आचार्य श्री को यह बात अखरी और उन्होंने उनका डटकर विरोध करने की मन में ठान ली।

उन्होंने कहा—भिक्षु! तुम कहाँ जाओगे? मै तुम्हारे पीछे श्रावकों को लगा दूंगा।

भिक्षु स्वामी ने सस्मित स्वर में कहा—यदि आप गाँव-गाँव में मेरे पीछे श्रावकों को लगा देते हैं तो मुझे कम परिश्रम करना पड़ेगा और लोगों में मै अपनी विचार धारा शीघ्र फैला सकूँगा।

आचार्य भिक्षु ने पहला प्रहार उन चीजों पर किया, जो कि आचार शिथिलता के कारण पनप रही थीं। उन्होंने कहा—

१—साधुओं को स्थानक में नही रहना चाहिये।

२—साधु संघ के एक ही आचार्य हों।

३—आचार्य के अतिरिक्त कोई भी अपना शिष्य न बनाये।

४—मंडनात्मक नीति रहे, खंडनात्मक नहीं।

आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण था कि साधुओं के निवास के लिये साधुओं की प्रेरणा से कोई मकान नही बनना चाहिये। साधुओं को तो उसमें ठहरना भी नही चाहिये। क्योंकि साधु बनने वाला व्यक्ति अपने एक घर को छोड़कर आता है और उसके लिये जगह-जगह स्थानक बनने लगें, तो उसकी माया ममता घटी कहाँ, प्रत्युत बढ़ी है। वह गृहस्थों से भी कही अधिक वजनदार ममतावान् बन गया क्योंकि उसके एक घर के बदले अनेक घर हो जाते हैं। इसीलिये आपने कहा—साधुओं के लिये कहीं कोई स्थानक न हो। जहाँ कहीं भी साधु जायें, वहाँ गृहस्थों से अपने आचारानुकूल स्थान माँग कर विश्राम करे।

दूसरी बात थी—संघ में एक ही आचार्य हो। अनेक आचार्य होने से संघ में एक परंपरा नही रह सकती और मनुष्य स्वभाव की सहज कमजोरी के कारण शिष्य, पुस्तक, श्रावक आदि को लेकर प्रतिद्वन्द्विता भी

हो सकती है। पर जहाँ एक आचार्य होता है, वहाँ इन दोनों की संभावना नहीं रहती।

तीसरी बात थी—आचार्य ही शिष्य बनायें, इससे एक बहुत बड़ा खतरा टल गया, क्योंकि जब प्रत्येक साधु शिष्य बनाने के फेर में पड़ जाते हैं तो फिर कोई मर्यादा नहीं रहती और न कोई योग्य-अयोग्य का विवेक ही रहता है। फिर तो यही ध्यान रहता है कि मेरे अधिक से अधिक शिष्य कैसे हों? और मैं अमुक साधु को इस विषय में कैसे पछाड़ सकूँ। माता पिता की आज्ञा बिना मूंड लेना, फुसलाकर या प्रलोभन देकर बहला लेना आदि अनेक दोष केवल शिष्य वृद्धि के ख्याल से आ जाते हैं। उनका निराकरण करने के लिये यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

चौथी बात है—मंडनात्मक नीति रखना और खंडन नहीं करना। अपने जो सिद्धान्त हैं, उनकी प्ररूपणा करना, उनके उपयोग के बारे में बताना तथा उनके प्रचार के लिये भूमिका तैयार करना। यह तो ठीक, पर दूसरों का खंडन करना और व्यक्तिगत आक्षेप करना, इससे वे सहमत नहीं थे क्योंकि किसी की आलोचना करके या निंदा करके उसको सुधारा नहीं जा सकता प्रत्युत उसे बैरी ही बनाया जा सकता है और न कोई दूसरे की कटु आलोचना करके बड़ा ही बन सकता है। इससे तो उसकी मनोवृत्ति दूषित ही होती है।

यही कारण है कि आज तक तेरापंथ की तरफ से किसी की व्यक्तिगत कटु आलोचना नहीं की गई, जबकि तेरापंथ के विषय में अनेकों पुस्तकें और पेम्फलेट आदि मिलेंगे, जो केवल विरोध में ही लिखे गये हैं।

आचार्य भिक्षु ने इन नियमों के आधार पर संघ को अत्यन्त व्यवस्थित तथा आचारनिष्ठ बनाया।

यद्यपि तेरापंथ का विरोध अब तक होता रहा है, आचार्य भिक्षु के समय में तो भोजन-पानी-स्थान आदि मिलने में भी कठिनाई होती थी। आज भी विरोध की समाप्ति नहीं हुई है। किन्तु हमारी तरफ से सदा यही रहा कि "जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद"।

यही कारण है कि आज तक तेरापंथ संघ सबसे समन्वय करता हुआ दिनों दिन प्रगति पर है।

तेरापंथ के अतिरिक्त और भी अनेकों विषयों पर वार्तालाप हुआ।

मन्थन (३२)

राष्ट्रपति के साथ तीसरी बार
जैन आगम कोष का महत्वपूर्ण निर्माण

४ दिसम्बर १९५६ को प्रातः आचार्य जी राष्ट्रपति भवन पधारे, जहाँ राष्ट्रपति जी के साथ लगभग सवा घंटे तक तेरापंथ संघ में चल रही साहित्य साधना, ग्रन्थ निर्माण, विद्या प्रसार तथा अणुव्रत आन्दोलन के बहुमुखी कार्यक्रमों पर अत्यन्त आत्मीय रूप में विचार विमर्श चला।

वार्तालाप के बीच आचार्य श्री ने बताया कि जैन आगमों पर तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक अनुशीलन के लिये पर्याप्त तथा व्यवस्थित सामग्री उपलब्ध हो सके, इस दृष्टि से आगम कोष का विशाल साहित्यिक कार्य हमारे यहाँ चल रहा है।

राष्ट्रपति जी ने कोष के कार्य को ब्योरेवार समझने में बड़ी दिलचस्पी ली। आचार्य श्री ने कोष का प्रकार, प्रणाली, संचयन विधि आदि से उन्हें अवगत कराया। साथ ही कहा—

जैन वाङ्मय विभिन्न विषयों के अलभ्य शब्दों का विशाल आगार है। खेद इसी बात का है कि जितना अपेक्षित था, उसमें मन्थन और अन्वेषण नहीं हो पाया, अन्यथा संस्कृत एवं हिन्दी जगत को उसके शब्द कोष की श्रीवृद्धि करने वाले उपयुक्त शब्द मिल पाते। उदाहरणार्थ—

जैसे मैटर (Matter) के लिये पुद्गल जितना तादर्थ्य बोधकता के लिहाज से उपयुक्त है, उतना 'भूत' या कोई दूसरा शब्द नहीं है, पर इस ओर उपेक्षा रहने से यह प्रचलित नहीं हो पाया।

राष्ट्रपति जी ने आचार्य श्री के नेतृत्व में निर्मित हो रहे आगम कोष के कार्य के लिये हर्ष प्रगट करते हुए कहा—यह साहित्य का बहुत बड़ा काम हो रहा है जिसकी आज आवश्यकता है।

जैन वाङ्मय में विभिन्न विषयों के उपयुक्त अर्थबोधक ऐसे-ऐसे शब्द मिल सकते हैं, यह जानकर राष्ट्रपति जी को बहुत प्रसन्नता हुई।

तत्त्वज्ञान, दर्शन, काव्य, गद्य आदि विविध साहित्यक प्रवृत्तियों का विहंगावलोकन कराते हुए आचार्य प्रवर ने जैन सिद्धान्त दीपिका तथा विजय यात्रा आदि की भी चर्चा की।

राष्ट्रपति जी की उत्सुकता एवं जिज्ञासा देख आचार्य श्री ने उन्हें जैन सिद्धान्त दीपिका के एक प्रकरण का कुछ हिस्सा सुनाया। मुनि श्री नथमल जी ने विजय यात्रा के दो गद्य-गीत उन्हें बताये।

राष्ट्रपति जी ने बड़ी अभिरुचि से यह सब सुना और इन साहित्यिक कृतियों के लिए बधाई दी।

आचार्य श्री ने बातचीत के बीच उन्हें यह भी बताया कि दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन कई साधु कर रहे हैं। जैन दर्शन के स्याद्वाद और आइन्स्टीन की थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी (Theory of Relativity), परमाणु और एटम आदि तुलनात्मक खोजपूर्ण सामग्री भी तैयार की गई है। आचार्य श्री ने मुनि श्री नगराज जी की ओर संकेत किया। मुनि श्री नगराज जी ने अन्य विषयों पर अपने द्वारा किये गये शोध कार्यों से राष्ट्रपति जी को विशदतया अवगत कराया।

राष्ट्रपति जी बोले—आज विकास का बहुत अच्छा कार्य हो रहा है। इसमें एक बात और मैं कहना चाहूँगा—परमाणु आदि विषयों में विज्ञान जहाँ तक पहुँचा है, वहाँ तक तो प्राचीन वाङ्मय के आधार पर सिद्ध करते ही हैं। उसके साथ-साथ परमाणु आदि विवेचनीय विषयों में

विज्ञान द्वारा प्राप्त विवरण के अतिरिक्त और जो अधिक तथा विस्तृत बातें प्राचीन वाङ्मय में प्राप्त हों उन्हें भी प्रकट किया जाये तो आगे चल कर विज्ञान जब उन तथ्यों तक पहुँचेगा, तब प्राचीन वाङ्मय का और अधिक महत्त्व वैज्ञानिकों और विद्वानों की दृष्टि में आयेगा।

मुनि श्री नगराज जी ने कहा—इस दृष्टि से भी गवेषणा कार्य किया जा रहा है। जैसे विज्ञान की दृष्टि से अन्तिम अविभाज्य अणु इलेक्ट्रन (Electron) माना गया है, जैन आगमों की दृष्टि से वह अन्तिम अणु नहीं है, वह अनन्त अणुओं के संघात से बना स्कंध है। इस दृष्टि पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

राष्ट्रपति जी जिज्ञासापूर्ण उत्सुकता से आचार्य श्री से पूछने लगे—जो रिसर्च स्कॉलर साहित्य शोध का इस प्रकार का कार्य करते है, वे दिन रात लाइब्रेरियों में बैठे रहते हैं, वहाँ इस काम में लगे रहते है, पुस्तकों की सुविधा उन्हें वहाँ रहती है, पर आप लोग जो पर्यटन करते रहते हैं, यह काम किस प्रकार करते हैं?

आचार्य श्री ने राष्ट्रपति जी को एक पोथी खोल कर दिखाई, जिसमें विभिन्न विषयों के पचासों हस्तलिखित ग्रन्थ थे। आचार्य श्री ने कहा—साधु चर्या के नियमानुसार हम अपनी कोई भी वस्तु गृहस्थों के पास नहीं छोड़ सकते, क्योंकि प्रत्येक चीज का प्रतिलेखन जो करना होता है। इसलिये अपनी प्रत्येक वस्तु अपने साथ अपने कंधों पर लिये चलते हैं। प्रत्येक साधु ऐसी दो पोथियाँ लिये चलता है।

राष्ट्रपति जी कहने लगे—यह तो आपकी चलती फिरती लाइब्रेरी है। वास्तव में बहुत बड़ा काम आप कर रहे हैं। पर्यटन प्रचार, आदि और सब काम करते हुए साहित्य का इतना बड़ा काम आपके यहाँ हो रहा है, यह बहुत खुशी की बात है।

सूक्ष्माक्षरों के पत्र को राष्ट्रपति जी ने बड़ी अभिरुचि के साथ देखा। यों स्पष्ट नहीं दिखाई देता था, इसलिए उन्होंने अपने यहाँ का एक एक आधा फुट लम्बा आई ग्लास मंगाया और उससे पत्र को देखा। बड़ा

आश्चर्य और हर्ष उन्होंने प्रगट किया। अणुव्रत आन्दोलन के विषय में भी वार्तालाप हुआ। राष्ट्रपति जी ने कहा—मैने तो उस दिन सभा में भी कहा था कि मै समर्थक का पद लेना चाहूँगा।

इस प्रकार अनेक विषयों पर बड़ा महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ।

मन्थन (३३)

फ्रांस के राजदूत के साथ

'भुला दो और क्षमा करो' की महत्वपूर्ण भावना

ता० ५ जनवरी १९५७ को सायंकाल फ्रांस के राजदूत ल-कोम्त स्तानिस्लास ओस्त्रोराग अपने सहोदर सहित आचार्य श्री के पास आये। उन्होंने अपनी स्मृति को ताजा करते हुये कहा—पाँच वर्ष पूर्व मै आपसे मिला था। आचार्य श्री ने उन्हें अणुव्रत आन्दोलन का परिचय देते हुये कहा—यद्यपि हम जैन है पर आन्दोलन के नियम पूर्णतः असाम्प्रदायिक हैं। नियम सर्वजनोपयोगी है। आन्दोलन ने जन जीवन को काफी झकझोरा है। विचारों की दृष्टि से तो वह लगभग भारत व्यापी हो चुका है पर मै चाहता हूँ कि विदेशों में भी इससे लाभ लिया जाय। ये नियम वहाँ के लिये भी लाभप्रद है, ऐसा मै सोचता हूँ। हम चाहते हैं कि भारत की तरह अन्य देश भी इसमें सम्मिलित हों, और यह काम आप लोगों के द्वारा संभव हो सकता है।

दूसरी बात है—संसार में सहिष्णुता और सद्भावना अधिकाधिक बढ़े, इसलिये हमने एक 'मैत्री दिवस' का भी आयोजन किया, जिसका

उद्घाटन राष्ट्रपति जी ने किया था। हम सोचते है कि यह दिन अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मनाया जाए ताकि आपस के संबंधों में पवित्रता पैदा हो सके।

राजदूत—मैत्री की भावना को उत्तेजित करने के क्या उपाय है ?

आचार्य श्री—इसका एक मात्र उपाय है 'फ़ारगेट ऐंड फ़ारगिव' (भुला दो और क्षमा करो)—के सिद्धान्त को जीवन में उतारना। हम औरों की भूलों को भुला दें तथा अपनी भूलों के लिये औरों से क्षमा माँगें। यदि यह भावना बलवती बन जाय तो काफी तनाव मिट सकते हैं। एक दिन की भावना का प्रसार भी काफी काम करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हम इसको अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं। आप बताइये कि एक दिन कौनसा रखा जाए, जो सभी देशों के लिये अनुकूल हो सके।

राजदूत—कोई भी एक दिन निर्धारित किया जा सकता है पर मेरे विचार से दूसरों के मतों का विशिष्ट दिन नही होना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उसमें साम्प्रदायिकता की बू आजाती है। स्मृति की दृष्टि से एक जनवरी सर्व श्रेष्ठ है।

आचार्य श्री—अभी यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल डा० लूथर इवेन्स ने भी इस विषय में अपनी अभिरुचि दिखाई और उन्होने कहा था कि वे इस पर विचार करेंगे। हम चाहते थे कि समस्त विदेशी राजदूतों व अन्य अधिकारियों के बीच हम इस भावना को रखें और इसकी महत्ता से उन्हें परिचित करायें। आप अपने इष्टमित्रों को इसकी पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न करें।

राजदूत—हाँ, जो लोग इसमें रुचि रखते हैं तथा जिन पर मेरा विश्वास है, उनसे मै अवश्य कहूँगा अपनी निजी हैसियत से अपने देश में इसका प्रसार करने का प्रयत्न करूँगा।

समय थोड़ा था। उन्हें जल्दी जाना था। उन्हे कलात्मक चीजें तथा सूक्ष्म लेखन-पत्र दिखाया गया, जिन्हें उन्होंने काफी गौर से देखा और कला की बारीकियों से युक्त इन चीजों को देख वे बड़े प्रसन्न हुए।

परिशिष्ट १

१

बिड़लाजी से वार्तालाप

सेठ जुगलकिशोर जी आचार्य श्री से बातचीत करने आये। अनेक धार्मिक, दार्शनिक और अनुभूत विषयों पर बात हुई।

उन्होंने आचार्य श्री से पूछा—क्या आपको लगता है कि भारत का उज्ज्वल भविष्य आने वाला है?

आचार्य श्री ने दृढ़ता के साथ कहा—हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि आने वाले भारत के दिन उजले होंगे। अपने दिल्ली प्रवास के समय राष्ट्र-पति और पंडित नेहरू से लेकर अनेक मामूली मजदूरों से मिलकर मैं अपने मन में ऐसा अनुभव करता हूँ कि जैसे सभी नैतिकता के प्रति निष्ठा की भावना व्यक्त करते हैं। अगर यह भावना कुछ स्थायी हो सकी और

हम भी लोगों को अपना सहयोग देते रहे तो ताज्जुब नहीं है कि भारत एक नई करवट ले ले। पंडित जी में भी इधर दो तीन वार मिलने से मुझे अन्तर लगता है। वे उत्तरोत्तर गम्भीर वनते जा रहे हैं। जैन साधुओं के आचार-व्यवहार को जानकर विड़ला जी कहने लगे—मुझे विश्वास है कि जैनी साधुओं में ९० प्रतिशत साधक हैं। पर हमारे साधुओं की स्थिति इससे उल्टी है, हालाँकि हिन्दुओं में भी कोई साधक नही है, ऐसी बात नहीं है। पर उनमें कम मिलेगे। उनकी संख्या १० प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, ९० प्रतिशत ढोंगी हैं।

मै चाहता हूँ, दिल्ली को आप अपना कार्य केन्द्र वनायें। वहाँ से सारे भारतवर्ष में आध्यात्मिकता की चेतना फूंकें।

पंडित जी से आप दो-तीन वार मिले, यह वड़े हर्ष की वात है। वे तो ऐसे आदमी हैं, जो धर्म की वात सुनते ही चिढ़ जाते है। आप संभव हो तो उनसे और मिलिये। अगर आपने एक जवाहरलाल जी को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर कर दिया तो वहुत वड़ा काम कर लेंगे। इस प्रकार यह वार्ता-प्रसंग वहुत सुन्दर रहा।

२

आटोग्राफ़ का रूप

आचार्य श्री विद्यार्थियों मे प्रवचन कर वाहर आ रहे थे। कई विद्यार्थी आचार्य श्री का आटोग्राफ़ लेने को उत्सुक खड़े थे। पेन्सिल और किताव देते हुये विद्यार्थियों ने कहा—आप इसमें अपना हस्ताक्षर कर दीजिये।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—देखो वच्चो! मैंने जो वातें आज कही हैं, उन्हें जीवन में उतारने का प्रयास करो। वही हमारा सच्चा आटोग्राफ़ होगा। ऐसे हस्ताक्षरो से क्या होगा। वच्चों ने देखा इस छोटी सी वात के पीछे आचार्य जी का कैसा गूढ़ उपदेश है।

३

अध्यापक बनाम विद्यार्थी

पिलानी बालिका विद्यापीठ में प्रवचन कर आचार्य श्री आ ही रहे थे कि एक परिचित विद्यार्थी आचार्य श्री से पूछने लगा—अब आप का आगे का क्या कार्यक्रम है ?

आचार्य श्री ने कहा—अब तो ४-१५ बजे प्रोफेसरों की एक सभा में प्रवचन है।

उसने हँसते हुये कहा—तब तो हम भी उसमें सम्मिलित हो सकेंगे ? क्यों कि आज प्रातःकाल प्रवचन में आपने हम विद्यार्थियों को वास्तविक प्रोफेसर कहा था, क्यों सही है न ?

आचार्य श्री ने सस्मित उत्तर दिया—पर तब तो वह प्रोफेसरों की सभा नहीं रहेगी। फिर तो प्रोफेसर ही विद्यार्थी बन जायेंगे। तब वहाँ तुम्हारे आने का प्रश्न नहीं रहता। वह हँस कर प्रणाम करके चल दिया।

४

पैरों में पीड़ा है क्या ?

सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला गांव के बाहर तक आचार्य श्री को विदा करने आये। रास्ते में वे बातें करते जा रहे थे। आचार्य श्री को बार-बार रुकना पड़ता था। ८-१० बार ऐसा हुआ।

बिड़लाजी ने सोचा—आचार्य श्री के पैरों में पीड़ा है, अतः वे ठहर ठहर कर चल रहे है। उन्होंने पूछा—आपके पैरों में पीड़ा है क्या ?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं, पीड़ा नहीं हैं। हमारा यह नियम है कि हम चलते समय बात नहीं करते। अतः मुझे ठहरना पड़ता है। वे कहने लगे—तब तो आपको बहुत कष्ट होता है। मुझे भी आपसे चलते समय बात नहीं करनी चाहिये।

५

मैं उपवास करूँगा

उस दिन उषाकाल में ही कुछ ऐसा आतम-प्रेरक प्रसंग आया, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं थी। सदा की भांति आचार्य श्री छोटे साधुओं को अध्ययन करा रहे थे। अपने व्यस्त कार्यक्रम में शिष्यों के अध्यापन को आप कितना महत्व देते हैं, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। अध्ययन में "शान्त सुधारस" नामक ग्रन्थ के पहले ही श्लोक में एक शब्द आया—"अम्भोधर"

आचार्य श्री शब्द की व्युत्पत्ति, समास, अर्थ आदि की पूरी छानवीन करने लगे। उन साधुओं से वह न हो सका तो उनसे बड़े साधुओं को बुलाया गया। उनमें से किसी ने कुछ वताया किसी ने कुछ। उन्होंने अर्थ वता दिया। समास वताया—अम्भःधरतीति अम्भोधरः, द्वितीया तत् पुरुष। "श्रीतादिभिः" सूत्र से सिद्ध किया। पर उनका यह प्रयास गलत था।

आचार्य श्री ने कहा—मुझे आश नहीं थी कि तुम लोगो में इतनी पोल है।

अब उन से भी बड़े साधुओं की बारी आई। आचार्य श्री कहने लगे—उन्हे क्या बुलाये। वे तो शायद बता देंगे। उन्हें भी बुलाया गया। वे भी ठीक-ठीक नहीं वता सके।

आचार्य श्री ने कहा—सभी एक सा बताते हैं, कहीं मैं ही तो गलती पर नहीं हूँ।

आन्तरिक वेदना अनुभव करते हुये आचार्य श्री कहने लगे—क्या "सप्तम्युक्तं कृता" सूत्र से यह नहीं साधा जा सकता? तुम में से किसी ने भी इस सूत्र पर ध्यान नहीं दिया। मैं यह तो कभी कल्पना ही नहीं करता था कि इस प्रकार तुम सब लोग ही गलत बताओगे। क्या हमारा संस्कृत का अध्ययन यही है? एक छोटा सा भी शब्द तुम

नहीं बता सके। मुझे यह देखकर चिन्ता होती है कि संस्कृत के क्षेत्र में विकास के स्थान पर ह्रास होता जारहा है। यदि यही क्रम चलता रहा तो भविष्य की स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक होगी। मुझे इस पर दुःख है। इसके लिए तुम को दोषी कैसे ठहराऊँ? मैं समझता हूँ इसमें मेरी ही गलती है। अतः मुझे अपना आत्म-शोधन करना चाहिये। और इसके लिये मुझे एक उपवास करना पड़ेगा। सब अवाक् रह गये। सबने निवेदन भी किया कि यह तो हमारी ही गलती है। आप उपवास क्यों करें? हम अपनी कमजोरी सुधारने की कोशिश करेंगे। पर आचार्य श्री ने उसे स्वीकार नहीं किया।

६

एक घटना

नारायण गाँव की बात है। एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया और अपनी बात सुनाने लगा—आचार्य जी! आज से सात दिन पहले मेरे मन में बहुत बेचैनी थी। रास्ता नहीं मिल रहा था। रात को कुछ भारी मन से सो गया। मुझे योग की तरफ बचपन से ही रुचि रही है और उसकी खोज में मैं बहुत से योगियों से भी मिला था। पर मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ। यहाँ मैं सिन्ध से शरणार्थी होकर आया हूँ। घर पर मैं और मेरी माताजी के सिवाय और कोई नहीं है। माताजी को छोड़कर जंगल में जाना मुझे उचित नहीं लगा, और यहाँ घर में मेरा मन नहीं लगता था। मेरे मन में यह द्वन्द्व चल रहा था। स्वप्न में मुझे मेरे गुरु दिखाई दिये। उन्होंने मुझसे कहा—तुम चिन्ता क्यों करते हो। आज से सात दिन बाद यहाँ पर एक आचार्य आयेंगे, वे तुम्हें रास्ता दिखायेंगे। उन्होंने मुझे जो आकार-प्रकार बताया वह सारा आप में मिलता है। मेरे भाग्य से आप पधार गये। आपके दर्शन से मुझे इतनी आत्म-शक्ति मिली कि उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता। फिर वह आचार्य श्री को अपने घर ले गया।

आखिर आचार्य श्री ने जब वहाँ से विहार किया तो वह इतना रोया कि वह एक शब्द भी नहीं कह सका।

कुछ दिन बाद उसने आचार्य श्री को एक पत्र लिखा। उसमें अपने हृदय के भावों को उँडेल दिया।

७

पानी झर रहा था

आचार्य श्री जैगणियाँ गाँव में पधारे। दोपहर का समय था। पाँच-चार झोंपड़ियों में साधु अलग-अलग ठहरे हुये थे। लू चल रही थी। पानी भी थोड़ा ही मिला था। आचार्य श्री के पास मटकी (घड़े) में पानी पड़ा था। पास में बैठे हुये एक साधु से कहा—पानी को व्यर्थ क्यों जाने देते हो ? उसने कोशिश की। पर टपक-टपक कर चूने वाले पानी को कैसे बचाया जा सकता था। मटकी एक पट्टे पर छोटे-छोटे पत्थरों पर रखी हुई थी। उसके नीचे कल्प की टोक्सी रखने की चेष्टा की, पर वह भी नहीं हो सका, तो आचार्य श्री ने सुझाया—जहाँ पानी टपकता है, वहाँ एक कपड़ा रख दो। पानी कपड़े में से होकर नीचे पात्र में आ जायेगा। ऐसा ही किया गया।

शाम तक पात्र में लगभग आधा सेर पानी भर गया। वह पानी काम में ले लिया गया।

पर पानी को काम में लेने से भी अधिक सन्तोष इस बात का था कि इस सूक्ष्म दृष्टि से कितना पानी बचाया जा सकता है।

८

धर्म या पाप

एक ६-७ वर्ष का बच्चा दौड़ा-दौड़ा आया और आचार्य श्री से पूछने लगा—महाराज, माता-पिता की सेवा में पाप होता है या धर्म ? इतने में एक और व्यक्ति भी कुछ बातचीत करने आये। पर एक ओर बैठ गये। आचार्य श्री ने पहले बच्चे के प्रश्न को प्रमुखता दी। कहने

लगे—माता-पिता की धार्मिक सेवा में धर्म और सांसारिक सेवा में सांसारिक धर्म। उसे जैसे समाधान मिल गया।

आचार्य श्री ने कहा—तो बताओ, यह प्रश्न तुमको किसने सुझाया? उसने सारा भेद खोलते हुये कहा कि अमुक व्यक्ति ने मुझे आप से यह प्रश्न पूछने को कहा था। आचार्य श्री कहने लगे—देखो, लोग बच्चों के दिलों में साम्प्रदायिकता का कैसा विष भर देते है? नहीं तो भला इन्हें ऐसे प्रश्नों से क्या सरोकार?

९

इलायची की भेंट

आचार्य श्री "अस्थल भोर" (रोहतक के पास) पधारे। वहाँ के महन्तजी इलायची लिये वहाँ आये। उन्होंने कहा—मैंने आपका नाम तथा आपके कार्यों की बहुत प्रशंसा सुनी थी। इच्छा थी आप से मिलूँ। आज मिलना हुआ है। यह मेरी भेंट (इलायची को चरणों में रखते हुये) स्वीकार करें।

आचार्य श्री ने कहा—ये सजीव है। इनको छूना हमारी मर्यादा के विपरीत है। दूसरी बात यह है कि हम भेंट नहीं लेते।

१०

एक प्रश्न

एक भाई ने पूछा—आप अणुव्रतों के प्रवर्तक कैसे है?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं भाई, मै अणुव्रतों का प्रवर्तक तो नहीं हूँ। अणुव्रत अनादि काल से चले आ रहे हैं। पर मैं वर्तमान अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तक अवश्य हूं। सब लोग हँसने लगे।

११

एक बालक

अणुव्रत-नियमावली में अहिंसा अणुव्रत का एक नियम यह है कि—रेशम आदि कृमि हिंसाजन्य वस्त्र नहीं पहनूँगा। इस विषय को आचार्य श्री ने खूब स्पष्ट किया। प्रवचन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बहुत से लोग आगे आये और इन प्राणि संहारक विधियों का प्रत्याख्यान करने लगे। शाम को एक छोटा सा बच्चा आया और कहने लगा—मुझे जीवित जानवर के चमड़े के उपयोग का प्रत्याख्यान करा दीजिये। आचार्य श्री ने पूछा—क्यों? वह कहने लगा—आज मैंने प्रवचन सुना था। मुझे घृणा हो गई कि हमारे लिये ये जीवित जानवर कैसे मारे जायँ।

आचार्य श्री ने पूछा—कितने दिनों तक? उसने कहा—जीवन भर।

आचार्य श्री ने कहा—यह बहुत होता है। उसने उसी दृढ़ता से कहा—नहीं महाराज! मै पूरी दृढ़ता से निभाऊँगा। इस घटना से पता चलता है कि बालकों में ये संस्कार सहज ही भरे जा सकते हैं।

१२

तर्क समाप्त हो गया

अन्तरंग अधिवेशन में विशिष्ट अणुव्रती के छठे नियम—"एक लाख से अधिक पूँजी नही रखूँगा" पर बहस चल रही थी। कई लोग कहते थे—यह नियम रहना चाहिये और कई कहते थे, नहीं रहना चाहिये। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन ने कहा—अणुव्रत तो भावनामूलक है, फिर इसमें इस नियम की क्या आवश्यकता है? और इसका मतलब तो यह हुआ कि एक लाख से अधिक पूँजी वाला तो अणुव्रती बन ही नहीं सकता।

आचार्य श्री ने मुस्कराते हुये कहा—तुम अभी इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? पहले दो-चार करोड़पतियों को विशिष्ट अणुव्रती बनने के लिये प्रेरित तो करो। फिर मै देखूंगा कि वे अणुव्रती बन सकते हैं या नहीं ?

हँसते हँसते उनका तर्क समाप्त हो गया।

१३

दो कबूतर

तीसरे प्रहर वाचन के समय आचार्य श्री की दृष्टि सहसा ऊपर बैठे हुये दो कबूतरों पर पड़ी। इधर से उधर उड़ते पक्षियों को देखकर आचार्य श्री ने कहा—इनका भी कोई जीवन है ? न कोई काम और न कोई प्रयोजन। आगे उनका निर्देश था—वे मनुष्य जो बिना प्रयोजन इधर उधर दौड़ धूप करते है और न जिनका कोई अध्ययन और चिंतन है—उनका जीवन कैसे बीतता होगा ?

मनुष्य जीता है प्रकृति से। खाने पीने की चीजें गौण हैं। हम खाते हैं तो बस प्रकृति की सहायता के लिये। अतः मनुष्य का भोजन ज्यादा घी, दूध, और गरिष्ठ व स्वादिष्ट चीजों वाला हो, यह आवश्यक नहीं है। साधारण भोजन से हमारा काम चल सकता है। मनुष्य मनुष्य की प्रकृति भिन्न होती है। अतः उसे ऐसी चीजों से जरूर बचना पड़ता है, जो उसके प्रतिकूल हों। प्रतिकूल का निराकरण हो जाने पर अनुकूल स्वयं शेष रह जाता है। भोजन यदि ज्यादा भारी और बहुमूल्य न हो, तो भी जीवन-शक्ति में कमी नहीं आने वाली है।

१४

केवल फोटो चाहिये

आज सायं पंचमी समिति पधारते वक्त सड़क पर एक यूरोपियन आया और फोटो लेने लगा। आचार्य श्री अपने ध्यान में थे, आगे निकल गये। वह फोटो नहीं ले सका।

आगे झाड़ी में जाकर सारे साधु अलग अलग चले गये। पीछे से आचार्य श्री अकेले थे और जगह की एषणा कर रहे थे कि अचानक वह यूरोपियन केमरा लिये सीधा आचार्य श्री के पास पहुँच गया। आचार्य श्री ने उससे पूछा—भाई कौन हो तुम ? पास में ही श्री डूलीचन्दजी स्वामी थे। उन्होंने देखा—कोई नया सा आदमी आचार्य श्री के पास खड़ा है। वे झट से दौड़कर आये। उन्हें देखते ही वह यूरोपियन कुछ डरा। उसने देखा कि ये मुझे पीटेंगे। अतः डरकर बोला—मैंने और कुछ नहीं किया है। केवल फोटो लिया है। मै बेल्जियम का रहने वाला हूँ। मैंने आप जैसे साधु पहले कभी नहीं देखे थे। अतः फोटो लेने की इच्छा हुई, क्षमा करें। धन्यवाद कह वह वहाँ से चला गया।

१५

बालक की जिज्ञासा

पास के एक छज्जे पर कुछ कबूतर बैठे थे। उन्हें देखकर एक बच्चे ने झट से प्रश्न किया—क्या ये कबूतर आपके पाले हुये हैं ?

आचार्य श्री ने कहा—नहीं, साधु कबूतरों को कभी नहीं पालते।

तो ये यहाँ क्यों बैठे हैं ?—बच्चे ने पूछा।

आचार्य श्री—अगर कोई जानवर आजाये तो हम उसे वापस उड़ा तो सकते नहीं। अतः ये यहाँ बैठे हैं।

इतने में कबूतर उड़ गये।

बच्चे ने हाथ ऊपर कर कहा—वे उड़ गये, वे उड़ गये।

आचार्य श्री ने कहा—हमने तो नहीं उड़ाये थे न। हम न तो किसी को पालते हैं और न किसी को उड़ाते हैं।

बालक—हाँ, हाँ कहता हुआ वहीं बैठ गया।

एक छोटे से बच्चे और आचार्य प्रवर का वार्तालाप दर्शन के कितने गहन तत्व को स्पर्श करता है।

जो आनन्द स्रोत आचार्य श्री और निश्छल बच्चे में बह रहा था, उससे आस पास बैठे हुये लोग भी प्रवाहित हुये बिना नहीं रहे।

१६

अल्लाह ने भी अनुमति दे दी

वह मुसलमान था। अवस्था लगभग ६५ वर्ष की होगी। सफेद दाढ़ी, गोरा चेहरा, बड़ी बड़ी आँखों से उसका व्यक्तित्व बाहर झाँक रहा था।

वह आचार्य श्री के पास आया। अणुव्रतों की बात चल पड़ी। नियम सुनाये गये। आचार्य श्री ने पूछा—अणुव्रती बनोगे?

उसने कहा—मैं खुदा से पूछूँगा। उसकी आज्ञा हुई तो अवश्य अणुव्रती बनूँगा।

यह कह वह मकान की ऊँची छत पर गया और लगा खुदा को पुकारने। जोर जोर से चिल्लाया। मन ही मन कुछ गुनगुनाने लगा। कुछ ही क्षणों बाद वह अतीव प्रसन्न हो, आचार्य श्री के पास आया और कहने लगा—आचार्य जी! खुदा ने भी अनुमति दे दी है। मैं अणुव्रती बनूँगा। क्या आपका इसमें सहयोग मिलेगा?

आचार्य—हाँ, आध्यात्मिक कार्यों में हमारा सहयोग रहता ही है।

मुसलमान—आपका यहाँ नुमाइन्दा कौन है?

मुनि महेन्द्रजी की ओर इशारा करते हुये आचार्य श्री ने कहा—ये हमारे नुमाइन्दा हैं। इनसे आप समय समय पर बातचीत कर सकते है।

वह बुड्ढा मुसलमान कहने लगा—मेरे लिये कोई कार्य हो तो फरमाइये।

आचार्य श्री ने कहा—तुमको कम से कम १० मुसलमान अणुव्रती बनाने होंगे।

दृढ़तापूर्वक उसने यह संकल्प किया कि वह ऐसा करेगा।

१७

अन्तिम दर्शन की प्रतीक्षा

एक बहिन अपने जीवन की अंतिम घड़ियों में प्रतीक्षा कर रही थी कि कब आचार्य श्री के दर्शन हों और वह अपने इस शरीर से मुक्त हो। नहीं तो भला यह क्षीण सा अस्थिपंजर क्या ३६ दिनों तक बिना खाये-पीये रह सकता था ? आचार्य श्री पधारे। प्रवचन हुआ। प्रवचन समाप्त होते ही आचार्य श्री ने कहा—चलो संथारे वाली बहिन को दर्शन दे आयें। धूप काफी चढ़ चुकी थी। बालू में पैर भी जलते थे। अतः पास में खड़े भाई ने कहा—अभी गरमी बहुत है, फिर शाम के समय पंचमी से आते वक्त दर्शन दीजियेगा। आचार्य श्री ने कहा—नहीं, अभी ही जाना है। आयु का क्या भरोसा। उसका घर काफी दूर था। दर्शन देकर स्थान पर आये। और थोड़ी देर में सुना—बहिन ने सदा के लिये आँखें मूँद ली। आचार्य श्री अभी उसे दर्शन देने नहीं जाते, तो क्या बहिन अपनी अज्ञात आशा के भार से अपने देह को शान्तिपूर्वक छोड़ सकती ?

१८

अनुशासन की कठोरता

दिल्ली से सरदारशहर लौटते हुए वर्षा के कारण बहादुरगढ़ में सारा संघ रुक गया था। आगे जाना संभव न हो सका। अष्टमी का दिन था। पर कुछ साधु भूल से बिगय ले आये। आचार्य श्री ने उन्हें कड़ा उलाहना देते हुये कहा—"आज अष्टमी है, यह तुम लोगों को ध्यान क्यों नहीं रहा ? माना तुम रास्ते चलते हो, वर्षा के कारण आहार थोड़ा आने की संभावना हो सकती है, पर नियम नियम है। उसे ऐसे तोड़ा नहीं जा सकता। अलग विचरने वाले साधु-साध्वी भी तो इसे निभाते हैं। तुम्हारी असुविधायें उन्हें भी हो सकती है।

इस बात में छिपी हुई अनुशासन की कर्त्तव्यता और नियम की अटलता को सहज ही आंका जा सकता है।

१६

कार्यनिष्ठा का एक उदाहरण

आचार्य प्रवर सब्जी मण्डी कठौतिया भवन में विराज रहे थे। एक दिन प्रातःकाल मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी से कहा—नई दिल्ली दूर तो वहुत है पर कुछ आवश्यक कार्य है चले जाओ। प्रातःकालीन आहार वहीं कर लेना व सायंकालीन यहाँ आकर कर लेना। मुनि श्री महेन्द्र-कुमार जी चले गये। सायंकालीन आहार के समय तक वापस नहीं पहुँचे। आचार्य श्री को चिंता हुई। वह सायंकालीन आहार न कर सकेगा। सूर्यास्त के साथ साथ मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी सदर, पहाड़गंज, नई दिल्ली, दरियागंज, चाँदनी चौक आदि में २० मील का दौरा कर सब्जी मण्डी पहुँचे। आचार्य श्री ने पूछा सवेरे तो आहार कर लिया होगा ? मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी ने कहा—केवल एक कवल। आचार्य श्री ने कहा यह कैसे ? उन्होंने कहा—आहार के प्रयत्न करता, इतना समय नहीं था। सहज रूप से किसी भक्त के यहाँ इतना ही प्रसाद मुझे मिला। आचार्य श्री ने उपस्थित अन्य साधुओं व कार्यकर्ताओं से कहा—कार्यनिष्ठा इसी को कहते हैं। काम की धुन में २० मील का विहार व कवलाहारी व्रत मनुष्य को पीड़ाकारक नहीं होता। युवक साधुओं के लिये यह एक अनुकरणीय उदाहरण है। देहली के कार्यक्रम में महेन्द्र का परिश्रम मौलिक रहा है। केवल आज के अनूठे उदाहरण के लिए मैं इसे ५१ "परिष्ठापन" पारितोषिक रूप में देता हूँ। आचार्य श्री का वात्सल्य ऐसे प्रसंगों पर वहुत वार निखर जाया करता है और युवक साधुओं को कार्यनिष्ठा की एक अद्भुत प्रेरणा दिया करता है।